साहित्य सौरभ

बनारसीदास चतुर्वेदी

साहित्य सौरभ

(स्वर्गीय श्री ब्रजमोहन वर्माके निबन्धोंका संग्रह)

रचना-काल सन् १९२९-१९३७

सम्पादक

बनारसीदास चतुर्वेदी

वाराणसी

ज्ञानमण्डल लिमिटेड
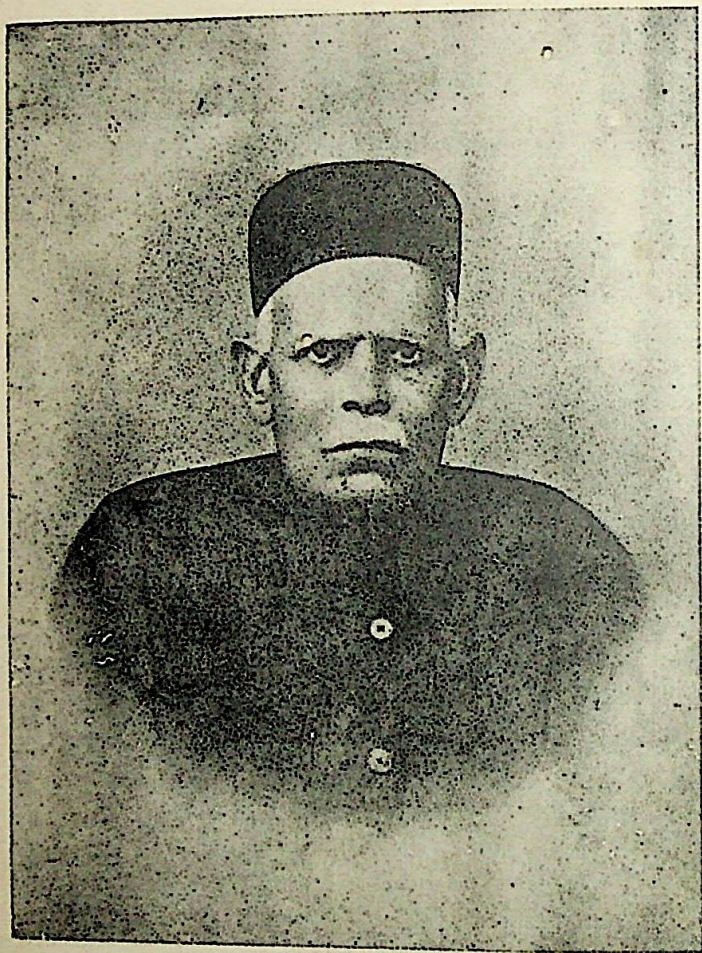
स्वर्गीय श्री कृष्णबलदेव वर्मा

स्वर्गीय पितृव्य श्री कृष्णबलदेव वर्माकी
स्मृतिमें
उनके साहित्यिक उत्तराधिकारीको
यह कृति
समर्पित है ।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

भूमिका

स्वर्गीय वर्माजी

"ये हैं 'विशाल भारत' कुटुम्वकी वहू और मैं हूँ सास"—माननीय श्रीनिवास शास्त्री-को जब मैंने वर्माजीका परिचय दिया तो वे मुस्कराकर कह उठे :—

"अब आपको एक भी शब्द अधिक कहनेकी जरूरत नहीं। मैं सम्पूर्ण स्थिति समझ गया। वहूको ही सबसे अधिक परिश्रम करना पड़ता है। सबसे पहले उठना पड़ता है और सबसे पीछे सोना, और उसीपर कुटुम्वका सारा बोझ पड़ता है!"

शास्त्रीजी वहुत देरतक हँसते रहे, और हमने भी उनका साथ दिया। वे समझ गये कि वर्मा जी ही 'विशाल भारत'की आत्मा और प्राण हैं और इसकी सफलताका पचहत्तर प्रतिशत श्रेय उन्हींको है।

सवेरे-शाम, सोते-जागते वर्माजीको 'विशाल भारत'की ही चिन्ता रहती थी। कभी कहते··"आज रातको दो वजे मुझे खयाल आया कि जिस चित्रकी हमलोग तलाशमें हैं, वह 'माडर्न रिव्यू'के अमुक अंकमें निकल चुका है। हमलोगोंको ब्लाक नहीं बनवाना पड़ेगा।" और मैं झट मजाकमें उनसे कहता··"वर्माजी आप भी अजीव आदमी हैं। रातको दो वजे क्या फालतू चीजें सोचा करते हैं! पाँच-सात रुपयेमें हमलोग नया ब्लाक तैयार करा लेते। आप अपनी नींद क्यों हराम करते हैं? इसीलिए मैं कहता हूँ कि आपको तो तुरन्त शादी कर लेनी चाहिये, जिससे आप सुखकी नींद तो सो सकें।"

वर्माजीका विवाह 'विशाल भारत' कार्यालयका एक पेटेण्ट मजाक था और हम सब उसके लिए नवीन-नवीन अवसर तलाश किया करते थे। एक वार लाल वाजार कलकत्तेके एक पुलिस अफ़सरने अच्छा मौका दे दिया। वर्माजीने हालमें लाला हरदयालजीके एक महत्त्वपूर्ण लेख 'कार्लमार्क्स'का हिन्दी अनुवाद पुस्तकाकारमें प्रकाशित किया था और उसीके वारेमें पूछ-ताछ करनेके लिए पुलिसका वह अधिकारी 'विशाल भारत' आफिसमें आया था।

अन्य अनेक प्रश्न करनेके वाद पुलिसके उस अधिकारीने वर्माजीसे पूछा, "आपकी शादी हुई है?"

तुरन्त ही मैंने उत्तर दिया, "अरे साहब! इसीका तो झगड़ा है। इनकी शादीका न होना ही सारी खुराफातोंकी जड़ है। रात-रातभर जगकर यह षड्यन्त्र किया करते हैं! आप कुछ प्रबन्ध कर सकें तो बहुत अच्छी बात हो। इनके क्रान्तिकारी दिमागकी उपज इसी तरह रुक सकती है।"

इसपर वर्माजी तो सिर्फ मुस्कराये,पर हमलोग खिलखिलाकर हँस पड़े। तबसे वर्माजीके विवाहमें एक नवीन अध्याय जुड़ गया—लाल बाजारमें सगाई !

वस्तुतः वर्माजीकी स्मरण शक्तिको देखकर आश्चर्य होता था। एक बार उन्होंने मुझे यह बतला दिया था कि तीन वर्ष पहले मैंने किसी पत्रमें अमुक सज्जनको यह वाक्य लिखा था।

यह स्मरण शक्ति उन्हें अपने पूज्य चाचा श्री कृष्णबलदेवजी वर्मासे विरासतमें मिली थी। फिर हड्डीके क्षयकी बीमारीमें उन्हें बिना हिले-डुले खाटपर नौ महीने पड़ा रहना पड़ा था और उन दिनों उन्होंने 'माडर्न रिव्यू' की पुरानी फाइलोंका विधिवत् अध्ययन-कर लिया, जो आगे चलकर विशाल भारतके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

कलकत्ते पहुँचनेपर श्री कृष्णबलदेवजी वर्मासे भेंट न हुई होती तो शायद मुझे ब्रजमोहन वर्माका परिचय भी प्राप्त न होता।

एक दिन वे (श्री कृष्णबलदेवजी) अपने भतीजे ब्रजमोहनको लेकर 'विशाल भारत' कार्यालयमें पधारे और आते ही कहा, "लीजिये, मैं अपने साहित्यिक उत्तराधिकारीको आपके सुपुर्द किये देता हूँ, यह कुछ-कुछ उर्दू जानता है और अंग्रेजी भी।"

संकोचवश मैं कुछ कह न सका। पर मनमें यह विचार अवश्य आया कि कृष्णबलदेव-जीने यह अच्छा भार मेरे सिरपर डाल दिया।

उस समयतक मैंने ब्रजमोहन वर्माका कोई लेख नहीं पढ़ा था। अब पता चला कि वे चतुष्पादके नामसे लिखते रहे हैं। इस उपनामसे मैं परिचित तो था ही, पर बैसाखीके सहारे चलनेवाला यह युवक ही डाक्टर चतुष्पाद है, इसका मुझे बिलकुल पता न था।

न जाने क्या सोचकर मैंने चकवस्तकी 'सुबहेवतन' इस विचित्र प्राणीके हाथमें देते हुए यह सुझाव रखा कि वह इस काव्य-ग्रन्थका साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत कर दे। 'सुबहेवतन' पर वर्माजीने ऐसी फड़कती हुई आलोचना लिखी कि उसे पढ़कर तबीयत खुश हो गयी।

वर्माजी बड़ी जोरदार भाषा लिखते थे। उनका शब्द-भण्डार विस्तृत था। इसका एक कारण यह भी था कि वे उर्दूकी गतिविधिसे खूब परिचित थे। एक बार मैंने कहीं लिखा था.... 'वृक्षकी पत्तियोंके ऊपरका हिस्सा', वर्माजीने उसे तुरन्त काटकर 'फुनगी' लिख दिया।

एक दिन मुझे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीका पत्र मिला—"उस दिन चैत्रकी 'माधुरी' की कापी मिली। लेख-सूची पढ़ी। उसमें एक लेख मिला.....'उर्दू कवितामें इसलाह'। उसे पढ़वाकर सुना। बड़ी खुशी हुई। लेख बहुत पसन्द आया। लेखक काव्य-मर्मज्ञ और बड़े ही सरस-हृदय हैं। उन्होंने एक मिसरेमें खुदाके साथ रियायत की है। उनका कहना है.....'

"अगर सौ बार सर मारे तो मुश्किलसे खुदा समझे,"

मुझे यह अन्याय खला है। मेरी रायमें तो

"अगर सौ साल सर मारे तो शायद ही खुदा समझे"

यदि वह लाइन इस तरह कही जाती तो असलियतके ज्यादा करीब पहुँच जाती। लेखकका नाम ब्रजमोहन वर्मा है। आपके सहकारी सम्पादकका भी यही नाम है। क्या यह लेख उन्हींका है? यदि हाँ, तो आप बड़े खुश-किस्मत हैं, जिन्हें इतना सहृदय और काव्य-तत्त्वज्ञ सहायक मिला।"

वर्माजीने इस महत्त्वपूर्ण पत्रको सार्टिफिकटके तौरपर रख छोड़ा था और निस्सन्देह उससे वर्माजीको वहुत प्रोत्साहन मिला था।

नयी बातें जाननेकी इच्छा ब्रजमोहन वर्माको बराबर रहती थी। एक बार उनका एक विस्तृत लेख छपा, जिसमें गर्भवती स्त्रियोंके भोजन इत्यादिके बारेमें बड़ी खोजपूर्ण बातें लिखी गयी थीं। वह लेख उन्होंने हमलोगोंको बिना दिखलाये ही एक मासिक पत्र-में भेज दिया था! जब वह छपकर आया तो हमलोग चकित रह गये। न जाने कितना समय उन्होंने उस लेखपर लगाया था। वैद्यों और डाक्टरोंसे पूछ-ताछ की थी और तत्स-म्बन्धी ग्रन्थोंका अध्ययन भी किया था। वह लेख भी मजाकका एक साधन बन गया। हम सब यही कहते...... "देखिये वर्माजी, इस प्रकारकी अनधिकार चेष्टा आप हर्गिज न किया कीजिये। यह मदाखलत वेजा है। जिस कूचेमें आपको कभी पैर नहीं रखना, उसके बारेमें इतनी छानबीन क्यों?"

अनेक अछूते विषयोंपर उनकी लेखनी बराबर चला करती। आज वे भूचालपर लिख रहे हैं, तो कल यूरोपमें युद्ध-सामग्रीपर। हम सदैव यही कहते—'फिर वही अनधिकार चेष्टा? उस लेखवाले मामलेमें हमने मुआफ कर दिया था, अब आपकी हिम्मत बढ़ती जाती है!"

हास्य प्रवृत्ति वर्माजीके व्यक्तित्वकी सबसे बड़ी विशेषता थी। प्रायः वे स्वयं भी बड़ा गहरा मजाक करते थे। उस समय वे अपनी हँसी उड़ानेमें भी संकोच नहीं करते थे। मित्रोंकी गोष्ठीमें ही नहीं, मित्रोंको लिखे गये पत्रोंमें भी अपने ऊपर बड़ीसे बड़ी फब्ती कसनेसे वे नहीं चूकते थे। उन्होंने १७ अक्तूबर १९३५के एक पत्रमें मेरे अनुज स्वर्गीय रामनारायणको लिखा था—

"आपको शायद मालूम ही होगा कि मैं, ११ अगस्तसे १८ सितम्बरतक छुट्टीपर था। इस बीचमें वर्माकी सैर कर डाली। रंगून, पेगू, माण्डले, मेम्यो, पगान आदि जगह देख डालीं। डैक-यात्राका वृत्तान्त आपको अक्टूबरके 'विशाल भारत'में' 'खुदाईका मास्टरपीस' लेखमें मिल जायगा।

वर्मा जाते वक्त चतुर्वेदीजी तथा अन्य मित्र सब मेरी यात्राके उद्देशपर शक करते थे। सब कहते थे कि अकेले जा रहे हो, दुकेले होकर लौटोगे। संक्षेपमें—

"सबके मन सन्देहका, बहता यही प्रवाह।
वर्माजी बरमा चले, वरमालाकी चाह।।"

लेकिन मैं अकेला ही गया था और अकेला ही लौट आया। अब यार लोग वर्मा-निवासियों-की मूर्खतापर कहते हैं—

"वर्माजी बरमातक भटके पर न मिली वरमाला।
वर्मी सब बुद्धू ही निकले, बना न कोई साला।"

वर्माजी चाहते थे कि एक बार दक्षिण अफ्रीका भी हो आयें। डेढ़ पसलीके उस पिंजरमें कितना उत्साह भरा था!

वर्माजी कार्यालयमें नियमानुसार साढ़े दस बजे पहुँच जाते थे और साढ़े पाँच बजे-तक बराबर काम किया करते थे। और मेरा समय था, ग्यारह बजेसे साढ़े बारहतकका यानी जबतक डाक आ जाय! उस डेढ़ घण्टेमें हम सबका मुख्य काम यही था कि वर्माजीसे मजाक किया जाय। धन्यकुमारजी अनुवाद कार्य धीरे-धीरे करने लगते। पाण्डेजी प्रूफ देखना बन्द कर देते। वर्माजी चिन्तित हो जाते कि कम्पोजीटर अभी आता होगा। झट प्रूफ उठाकर खुद ही देखने लगते। पाण्डेजी कहते, "आप घबराते क्यों हैं, वर्माजी? अभी आपको फर्स्ट क्लास जर्देके साथ पान खिलाता हूँ।" इसपर सारा कमरा कहकहोंसे गूंज उठता।"

'विशाल भारत'में 'प्रकाशित होनेवाले 'चाय चक्रम'में वर्माजीने—पाण्डेजीका नाम 'नटखट पाण्डे' रख दिया था। एक दिन कहींसे विवाहका निमन्त्रण-पत्र आया। उसके आधे हिस्सेको काटकर हमने वर्माजीके विवाहका निमन्त्रण बना दिया और नीचे सबके हस्ताक्षर करा दिये। उसमें वधूके स्थानपर बिल्लीका चित्र बना दिया गया था। वह कागज अब भी मेरे पास सुरक्षित है। ज्यों ही वह चित्र वर्माजीको दिया गया कि उन्होंने तुरन्त ही उसपर लिख दिया—

"मंजूर है मुझको वही आज्ञा जो कुछ हो आपकी।
शर्त लेकिन है यही, बिल्ली न हो पंजाबकी।"

इसपर खूब मजा रहा। हिन्दीके एक विवाहेच्छुक सम्पादक महोदयको वर्माजीने पंजाबकी ही एक कल्पित कन्याके साथ विवाह करा देनेके चक्करमें बुरी तरह कोस दिया था।

हँसने-हँसानेके दृष्टिकोणके पीछे वर्माजीके जीवनकी फिलासफी थी। एक पत्रमें उन्होंने श्री उपेन्द्रनाथ अश्कको लिखा था—

"आपका यह कहना ठीक है कि हमलोग जो हँसते हैं, वह अपने दुखको दबानेके लिए, लेकिन मैं समझता हूँ, यह मार्ग ठीक ही है।

ऐ शमा तेरी उम्र तबई है एक दिन।
हँसकर गुजार दे, चाहे रोकर गुजार दे॥

'हँसकर गुजारना' 'रोकर गुजारना'से बेहतर है। चारों ओर दुख-ही-दुख है, अतः हमें इस बुरे सौदेमें भरसक लाभ प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये। मेरा तो यही मकूला है.... मेरा जीवन स्वयं एक काफी बड़ा दुखान्त है। जिस समय मैं अपने दुखान्तके अन्धकारमें डूब रहा था, उस समय इत्तफाकसे मैंने प्रसिद्ध अमेरिकन कवयित्री ईला विलकाक्स की एक कविता पढ़ी। उस कविताने मुझे सबसे बड़ी सान्त्वना दी। संसारके दुखोंको झेलनेके लिए उसकी वह कविता खासी फिलासफी है। हँसो और सारा संसार तुम्हारे साथ हँस देगा, रोओ और तुम्हें अकेले ही रोना पड़ेगा। इसलिए इस पुरानी धरतीको खुशियाँ ही उधार लेनी होती है; दुख तो इसके पास अपना ही यथेष्ट है।"

पर वर्माजीके हास्यमय जीवनके पीछे महान गम्भीरता और अदम्य परिश्रमशीलता भी थी। उन्होंने निरन्तर प्रयत्न करके दूसरोंको—छोटे-बड़े सभीको—खुश करनेकी कला सीख ली थी और अपने व्यक्तित्वको इतना सजीव बना लिया था कि उनकी शारीरिक निर्बलताकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं जाता था। उन्हें बराबर यह चिन्ता रहती थी कि 'विशाल भारत'के लेखकोंकी कीर्तिका विस्तार कैसे हो। उन्हें वे निरन्तर परामर्श दिया करते थे। बीसियों लेखकों तथा कवियोंसे उनका भाई-चारा हो गया था। 'विशाल भारत' कार्यालयमें जो कोई पहुँचता उसका आतिथ्य करना उन्हींका काम था। कार्यालयका चपरासी रामधन तो उनका विशेष कृपा-पात्र था। वर्माजीके सर्वोत्तम संस्मरण भाई रामधनहीके लिखे हुए हैं।

अपने नौ-दस वर्षके साहित्यिक जीवनमें ब्रजमोहन वर्माने जितनी ठोस पाठ्य सामग्री उपस्थित की, उतनी दूसरे लेखकके लिए इससे दूने वक्तमें भी मुश्किल ही होती और यह तब, जब कि, 'विशाल भारत' जैसी संस्थाका तीन चौथाई बोझ उनपर ही था।

सन् १९३७ में जब मैं 'विशाल भारत' कार्यालयसे लम्बी छुट्टी ले चुका था, ब्रजमोहन वर्मा बीमार पड़ गये और मुझे उन्हें उसी अवस्थामें छोड़कर टीकमगढ़ आना पड़ा। जब मैं उनसे बिदा लेने गया तो मैंने देखा कि वे 'विशाल भारत'के लिए अत्यन्त चिन्तित हैं। मैंने उनसे कहा.... "वर्माजी। आप पहले स्वस्थ हो जायँ फिर 'विशाल भारत'की फिक्र कर लेना।" पर वर्माजी भला क्यों माननेवाले थे? उनका तो यह हाल था कि जब 'विशाल भारत' कार्यालयका चपरासी रामधन उनके पास जाता तो सबसे पहले वे यही पूछते, "विशाल भारत" कितना कम्पोज हुआ, उसमें कितने फर्मे छपे?" यद्यपि लम्बी बीमारीके कारण वे अत्यन्त निर्बल हो चुके थे और बोलनेमें भी उन्हें बहुत श्रम पड़ता था।

२५ अक्तूबर १९३७को उन्हें पथ्य मिला और २७ अक्तूबरको उन्होंने मुझे एक पत्रमें लिखा.....

"६५ दिन बाद मेरा बुखार उतरा, लेकिन पेटकी शिकायतें अभीतक बनी हैं। उन्हें दूर होनेमें अभी टाइम लगेगा। परसों पथ्य मिला है। कमजोरी इतनी है कि शायद १० नवम्बरतक मैं कुछ चलने-फिरनेके काबिल होऊँ। यदि १० नवम्बरतक इस काबिल हो गया कि सीढ़ियाँ उतर सकूँ तो किसीको साथ लेकर एक महीनेके लिए स्वास्थ्यके लिए कहीं बाहर जाऊँगा। सभी मेरे लिए वायु परिवर्तन बहुत जरूरी बता रहे हैं। ऐसी हालतमें १० दिसम्बरसे पहले कार्यालयमें कार्य आरम्भ नहीं कर सकता।

आपको दिसम्बरमें शान्ति निकेतन जाना ही है। कृपा करके आप १५ नवम्बरतक यहाँ आ जायँ और १५ दिन यहाँ रहकर दिसम्बरके अंकका ठीक-ठाक कर दें। जनवरीका मैं ठीक कर लूँगा। आपके आये बिना ठीक न होगा। कृपा करके "विशाल भारत"पर इतनी कृपा जरूर करें। जनवरीका नम्बर वी० पी० से जायगा, इसलिए यह जरूरी है कि दिसम्बरका अंक अच्छा निकले। कमजोरीकी वजहसे अधिक लिख नहीं सकता।

आपका

ब्रजमोहन वर्मा"

यह पत्र उन्होंने बहुत धीरे-धीरे बड़े परिश्रमके साथ लिखा था और अन्तिम पंक्ति-तक पहुँचते-पहुँचते उनका हाथ काँप गया था। पत्र में 'लिख नहीं सकता' और 'आपका—ब्रजमोहन वर्मा' बिलकुल कपकपाता हुआ लिखा गया था!

खेद है कि कई आवश्यक कार्योंके कारण मैं कलकत्ते न पहुँच सका। ७ दिसम्बर, १९३७ को बन्धुवर श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'ने एक पत्र वर्माजीकी बीमारीके विषयमें कानपुरसे लिखा कि वर्माजी बहुत बीमार हैं, उनसे मिल लो।

इस पत्रमें नवीनजीने लिखा था—"जब भी मैं ब्रजमोहनको देखता हूँ मेरा हृदय उनके लिए उछल पड़ता है। वे एक शिष्ट सज्जन हैं, इतने साहसी और इतने वीर कि उन्होंने कभी हार नहीं मानी, यद्यपि उनके शरीरका एक-एक तार झँझोड़ा जा चुका है, और जीवनभरकी लम्बी बीमारियाँ उसे तोड़ती मरोड़ती रही हैं। ऐसे लोग जो वस्तुतः इतने सज्जन सत्यप्रिय और निर्भय होते हैं, बहुत ही कम मिलते हैं।"

मैं उस समय टीकमगढ़से भी चालीस-पचास मीलकी दूरीपर था। जल्दीसे लौटकर मैं टीकमगढ़ आया और कानपुरके लिए चल पड़ा। पर कालपी स्टेशनपर ही 'प्रताप'में मुझे वर्माजीके स्वर्गवासका दुःखद समाचार मिल गया। मैं कानपुर शामको पहुँचा, वर्माजी प्रातःकाल ही परलोक सिधार चुके थे। उनके अन्तिम दर्शनोंसे भी मैं वंचित रह गया। इसे मैं अपना घोर दुर्भाग्य मानता हूँ।

दृढ़ इच्छाशक्ति द्वारा कोई मनुष्य अपनी कष्टप्रद शारीरिक निर्बलताओंपर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकता है, वर्माजीका जीवन इसका एक उज्वल दृष्टान्त है।

फ़ीरोज़ाबाद
(आगरा)

बनारसीदास चतुर्वेदी

निवेदन

वह मनुष्यताका जीवन्त सन्देश

अस्थिपञ्जर-मात्र विकृत शरीर, निःशक्त गतिहीन टाँगें, चलने-फिरनेके लिए बैसाखियोंका अवलम्ब——यौवनकालमें असाध्य व्याधिके कारण ऐसी हीनावस्थाको प्राप्त होकर भी, जो अपनी दयनीय दशाका स्वयं मजाक उड़ा सकते थे, हँसने-हँसानेमें जीवनका आनन्द अनुभव कर सकते थे और जो अदम्य साहस-सहित अथक परिश्रम-पूर्वक निरन्तर अध्ययन-रत रहकर तथा विलक्षण प्रतिभाका परिचय देकर उच्च कोटिका साहित्य सृजन करते हुए आजीवन माता सरस्वतीकी उपासनामें निमग्न रहे——ऐसे पुरुषपुंगव बन्धुवर श्री ब्रजमोहन वर्मा मानों साहित्यकी एक जीती-जागती विभूति और मनुष्यताका एक जीवन्त सन्देश थे।

रणबाँकुरे वीरों और यशस्वी कवियोंकी जन्मभूमि तथा मनोरम प्राकृतिक दृश्योंकी प्रदर्शनी बुन्देलखण्डमें पुण्यसलिला वेत्रवती नदीके तटपर अवस्थित कालपी नगरमें एक प्रतिष्ठित खत्री परिवारमें श्री ब्रजमोहन वर्माका जन्म ५ सितम्बर सन् १९०० को हुआ था। उनके प्रपितामह दो भाई थे। बड़े भाई श्री पाहूलालके कोई पुत्र न था। छोटे भाई श्री ठाकुरदासके पुत्रका नाम श्री कन्हईप्रसाद खत्री था। कन्हईप्रसाद बचपनमें अपने मकानके छज्जेसे नीचे रास्तेपर गिर पड़े थे। जब ये अच्छे हो गये तब इनके पिता और तायाने एक भव्य मन्दिर बनवाया जो कि कालपीके दर्शनीय स्थानोंमें है। इनके यहाँ सोने-चाँदीका कारोबार होता था। श्री कन्हईप्रसादने व्यवसायमें उन्नति की। ये ईस्ट इण्डिया कम्पनीके बैंकर थे। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्रामके समय इन्होंने वह पद त्याग दिया। उस संग्रामके दिनोंमें कालपी नगर विप्लवकारियोंका एक मुख्य केन्द्र था। अतः विप्लवके सिलसिलेमें वहाँ कई बार वीरवर नाना साहब धुन्धुपन्त, झाँसीकी महारानी प्रातःस्मरणीया वीरांगना लक्ष्मीबाई, जालौनकी तेजस्विनी ताराबाई आदिका आना-जाना हुआ। ये लोग उस मन्दिरमें ठहरा करते थे। अंग्रेजोंकी फौजोंके भी दौरे हुए। फलतः रक्तपात और लूट-पाटके कारण वहाँके कितने ही अन्य नागरिकोंकी तरह श्री कन्हईप्रसादका परिवार भी क्षतिग्रस्त हुआ। अन्तिम बार जब महारानी लक्ष्मीबाई कालपी आकर उक्त मन्दिरमें ठहरीं, तब अंग्रेजोंकी फौज उनका पीछा करती हुई आ रही थी। उस फौजके कालपी-प्रवेशकी खबर पाकर महारानी वहाँसे हट गयीं। जानेकी जल्दीमें उनकी कुछ चीजें मन्दिरमें छूट गयीं। ये चीजें थीं——उनकी पूजा करनेकी आबनूसकी चौकी, उनका अपना चित्र तथा नाना साहब और अमीर खाँ पिंडारीके चित्र। ये बहुमूल्य ऐतिहासिक वस्तुएँ उस परिवारमें सुरक्षित हैं।

श्री कन्हईप्रसादके चार पुत्र हुए—सर्वश्री राधाकृष्ण, छन्नूलाल, झुन्नूलाल और चौथे सुप्रसिद्ध साहित्य सेवी श्री कृष्णवलदेव वर्मा । श्री कन्हईप्रसाद काव्य-प्रेमी थे । नित्य सन्ध्या समय जब वे उक्त मन्दिरमें दर्शनोंको जाते थे, तव वहाँ काव्य-चर्चा करते थे । वालक कृष्णवलदेव भी अक्सर साथ जाते थे और अपने पिता तथा उनके मित्रोंका काव्यपाठ, आलोचना इत्यादि सुना करते थे । उनके साहित्यानुरागका सूत्रपात वहीं हुआ । आगे चलकर श्री कृष्णवलदेव वर्मा हिन्दीकी वहुमूल्य सेवा करके गौरवान्वित हुए । श्री झुन्नूलालके भी चार पुत्र हुए, जिनमें श्री व्रजमोहन वर्मा तृतीय थे । वर्माजीको अपने अनुज राजमोहनसे विशेष स्नेह था । वैसे आपसमें चारों भाइयोंमें वड़ा प्रेम था । रातको एक साथ एक थालीमें भोजन करते थे । चाहे जितनी देर हो जाय, जवतक चारों इकट्ठे नहीं हो जाते थे, कोई भोजन नहीं करता था । हमारे वर्माजी अपने पूज्य पितृव्य श्री कृष्णवलदेव वर्माके सच्चे साहित्यिक उत्तराधिकारी सिद्ध हुए ।

श्री व्रजमोहन वर्मा छात्रावस्थासे ही मेधावी और कुशाग्र-वुद्धि थे । सन् १९१८ के लगभग उन्होंने मैट्रिक्यूलेशन और स्कूल-लीविंगकी परीक्षाएँ एक साथ देनेकी तैयारी की । परन्तु परीक्षाके छै मास पूर्वसे उनके कूल्होंमें असह्य वेदना होने लगी । फिर भी काँखते-कराहते हुए उन्होंने डटकर परिश्रम किया । दोनों परीक्षाएँ एक साथ दीं और कई विषयोंमें विशिष्ट नम्वरों सहित दोनोंमें ही प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए । यह तो हुआ, परन्तु उपचारोंके वावजूद उनके कूल्होंकी यंत्रणा उत्तरोत्तर भयंकर रूप धारण करने लगी । उनके भाई लोग व्यापारके सिलसिलेमें कलकत्तेमें ही थे । अतएव यथोचित चिकित्साके लिए वर्माजी कलकत्ते आये । आते ही उन्होंने "कलकत्ता देखा"—शीर्षक एक कविता लिख डाली । कलकत्तेमें डाक्टर डवल्यू० सी० राजर्स तथा अन्य विशेषज्ञोंने उनकी विधिवत परीक्षा करके यही निदान किया कि कूल्होंमें यक्ष्माके कीटाणुओंकी अवस्थिति है, जो कि अन्य अंगोंमें फैल जायँगे; इसलिए इनको नष्ट करनेका एकमात्र उपाय है निम्नांगको निष्क्रिय कर देना । उन दिनों पेरिस प्लैस्टरका आविर्भाव नहीं हुआ था । अतएव वर्माजीको लोहेके वैंडेजसे वाँधकर खाटपर डाल दिया गया और वे इस प्रकार वँधे हुए एक स्थितिमें लगातार अट्ठारह महीनेतक पड़े रहे । साथ ही औषधोपचार भी होते रहे ।

परन्तु वर्माजी इस असहाय अवस्थासे हार माननेवाले जीव नहीं थे । उन्होंने लाइब्रेरियोंसे पुस्तकें मँगाकर लेटे-ही-लेटे पढ़ना शुरू कर दिया । इस लम्बे अर्सेकी रोगशय्यापर उन्होंने कलकत्तेकी चैतन्य लाइब्रेरी, राजा राममोहन राय लाइब्रेरी, और हिन्दू लाइब्रेरीकी प्रायः समस्त पठनीय पुस्तकोंका पारायण कर डाला । एक-एक दिनमें कई-कई सौ पृष्ठोंकी पुस्तक सरसरी निगाहसे देख जाते थे और सारांश ग्रहण कर लेते थे । स्मरण-शक्ति उनकी गजवकी थी । जो पढ़ लेते थे वह हृदयंगम हो जाता था । कलकत्तेकी सड़कोंके नाम, महत्त्वपूर्ण स्थानोंके ठिकाने, वसों और ट्रामोंके मार्ग, कहाँ जानेके लिए किस नम्वरकी वसपर जाना चाहिये—ये सव वातें वे इस प्रकार वताने लगे मानों स्वयं सव-कुछ देख-सुन आये हों । किस विषयपर किस ग्रन्थकर्ताने क्या लिखा है, किस विषयकी

जानकारी किन ग्रन्थोंसे हो सकती है—इत्यादि वातें उन्हें कंठस्थ हो गयी थीं। कोई विषय छेड़ दीजिये, फिर देखिये कि उसपर कैसी गवेषणापूर्ण चर्चा वे करते हैं। हिन्दी उर्दूकी अनेकों कविताएँ उनके रसनाग्रपर नाचती थीं। अनेक विषयोंमें उनका दखल हो गया था। एक बार उनसे एक सज्जनका टेनिसपर वार्तालाप हो रहा था, जिससे प्रभावित होकर उन्होंने पूछा—'वर्माजी, जान पड़ता है, जव आप स्वस्थ थे तव टेनिसके बहुत अच्छे खिलाड़ी थे।' वर्माजी हँसने लगे। पास बैठे लोगोंने उन्हें वताया कि 'वर्माजीने, टेनिस खेलनेको कौन कहे, कभी रैकेट भी नहीं छुआ; इन सव वातोंकी जानकारी तो इनके अध्ययनका प्रताप है।' तात्पर्य यह कि दीर्घकालीन रोगशय्याने उन्हें मानों एक जीवित कोष ही वना दिया था।

अट्ठारह महीनेके अमानुषिक उपचारसे यक्ष्माके कीटाणु तो अवश्य नष्ट हो गये परन्तु शरीर हड्डियोंका ढाँचा वन गया, एक तरफके फेफड़ेमें खरावी आ गयी, पीठ और गर्दन अकड़ गयीं और टाँगें कुछ मुड़ी रह गयीं। ऐसी करुणोत्पादक दशाको प्राप्त होकर वे दो वैसाखियोंके सहारे चलने-फिरनेके योग्य हुए। मुखपर सम्भ्रान्त कुलकी श्री अवश्य विराजती थी।

एमर्सनने लिखा है कि अध्ययन अक्सर मनुष्यका भविष्य वना देता है। यह कथन वर्माजीपर पूर्णतया चरितार्थ हुआ। एक अंग्रेजीकी कविताने उनके जीवनमें क्रान्ति उत्पन्न कर दी। उनमें सहसा ऐसे मनोवलका संचार हुआ कि घोर विषादके अन्धकारमें उन्हें चिर-स्थायी आनन्दकी ज्योति उपलब्ध हुई। उस कविताकी प्रथम दो पंक्तियाँ हैं—

Laugh and the world will laugh with you,
Weep and you weep alone.

अर्थात्

हँस रहे हो तो तुम्हारा साथ देकर जग हँसेगा,
रो रहे हो तो अकेले बैठ कर रोना पड़ेगा।

हँसने-हँसानेके इस मूल मन्त्रका यथार्थ अनुसरण वर्माजीने आजीवन किया।

रोगशय्यासे मुक्त होनेके उपरान्त वर्माजी कलकत्तेके श्रीकृष्ण सन्देश, हिन्दू पञ्च इत्यादि पत्रोंमें डाक्टर चतुष्पादके छद्म नामसे हास्य-व्यंग्यमय चुटकुले, कविताएँ और लेख लिखने लगे। ये रचनाएँ वड़ी आकर्षक होती थीं। सन् १९२९ में एक दिन वर्माजीके पूज्य पितृव्य बाबू कृष्णबलदेव वर्मा उन्हें साथ लेकर कलकत्तेके विशाल भारत आफिसमें प्रधान सम्पादक श्रद्धेय पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदीके समीप उपस्थित हुए और बोले कि अव आप इस लड़केपर हाथ रखिये। वर्माजीके गहन अध्ययन और ईश्वरप्रदत्त प्रतिभाकी चरितार्थता और सफलताके लिए यह स्वर्ण-सुयोग था। मुलाहजेमें आकर चतुर्वेदी कुछ बोल तो नहीं सके पर वर्माजीकी बाह्याकृति देखकर मन-ही-मन घवड़ाये भी। तथापि उनकी यह घबड़ाहट अधिक दिन नहीं टिक सकी। तीन ही चार सप्ताहतक वर्माजीपर और उनके कामपर दृष्टि रखकर वे उनकी कर्मनिष्ठा, परिश्रमशीलता, योग्यता, अनेक विषयोंकी

अभिज्ञता, साहित्य-सृजनकी प्रतिभा, विनयशीलता और हँसमुख स्वभावपर मुग्ध हो गये। फिर तो धीरे-धीरे विशाल भारतका सारा कार्यभार ही वर्माजीके कन्धोंपर आ पड़ा जिसे उन्होंने बड़ी खूबीसे सम्हाला। चतुर्वेदीजी तो आगे चलकर विशाल भारतकी तरफसे एक प्रकारसे निश्चिन्त हो गये, क्योंकि उन्हें इस तथ्यकी उपलब्धि हो गयी थी कि विशाल भारत-सम्बन्धी जो भी कार्य वे स्वयं नहीं देख सकेंगे या जान-बूझकर नहीं देखेंगे वह वर्माजी-की तीक्ष्ण दृष्टिसे छूटने नहीं पायेगा और उनके द्वारा कुछ विशिष्टताके साथ ही सम्पादित होगा। इतना सब करते हुए वर्माजी अन्य पत्र-पत्रिकाओंमें लेख लिखते थे। इसी बीच उन्होंने "पिस्तौलका निशाना", "आज का रूस" और "ऋषि कार्ल मार्क्स"——नामक तीन पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित करायीं। पहली पुस्तक रूसी कहानियोंका अनुवाद है, जिसमें दो-तीन कहानियोंके अनुवाद अन्य महानुभावों द्वारा किये गये हैं। दूसरी पुस्तक श्री नित्यनारायण बनर्जीकी अंग्रेजी पुस्तकका अनुवाद है जिसमें उन्होंने समयानुसार अपनी ओरसे परिवर्तन-परिवर्द्धन किया है। पुस्तक पढ़नेसे यह नहीं मालूम होता है कि यह अनुवाद है। निबन्ध तो वर्माजीके अत्युत्कृष्ट होते ही थे। माधुरीमें प्रकाशित उनके एक लेखसे आकर्षित होकर आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीने चतुर्वेदीजीको लिखा था कि आप बड़े भाग्यशाली हैं जो आपको ऐसा योग्य सहकारी मिला है।

वर्माजीसे मेरी जान-पहचान इस प्रकार हुई कि जब पूज्य श्री कृष्णबलदेव वर्मा कलकत्ते-में होनेवाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनकी स्वागत-समितिके प्रधान मन्त्री मनोनीत हुए, उस समय मेरे मित्र पण्डित बालदत्त पाण्डेयने उनसे मेरा परिचय कराया। उनकी आज्ञासे हम दोनों मित्रोंने अधिवेशनमें पढ़नेके लिए एक-एक लेख लिखा। उसी सिलसिलेमें हम दोनों उनके घर जाने लगे। वहाँ श्री कृष्णबलदेवजी बड़ी मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धिनी साहित्य-चर्चा करते थे। हिन्दी-काव्यविषयक जैसा गहन अध्ययन और प्रखर पाण्डित्य उनका था, वैसी ही विलक्षण उनकी स्मरण-शक्ति थी। चन्दबरदाईसे लेकर उनके अपने समयतकके कवियोंकी अगणित कविताओंका विशाल सागर उनकी रसनाकी नोकपर तरंगायित होता था। केशवदासकी प्रशंसा करते हुए और उनके काव्यकी व्याख्या करते हुए तो वे तन्मय हो जाते थे। हमलोग घण्टों मन्त्रमुग्ध-से बैठे हुए काव्य-रसामृत पान करते थे। वर्माजी तब बगलवाले कमरेमें रोगशय्यापर पड़े रहते थे। कुछ ही दिनों बाद वे शय्यामुक्त हुए। तब मेरा उनसे परिचय हुआ जो कि शीघ्र ही घनिष्ठ-तामें परिणत हो गया। हमलोगोंकी एक छोटी-सी मित्र-मण्डली थी। उसमें उपन्यास और कहानी लेखक पण्डित बालदत्त पाण्डेय, अनेक पुस्तकोंके प्रणेता पण्डित देवनारायण द्विवेदी, चित्रकार-प्रवर बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा और उर्दू शायर पण्डित राजनारायण चतुर्वेदी 'आजाद' तो थे ही, वर्माजी भी उसमें शामिल हो गये। फिर तो खूब गुजरती जब मिल बैठते दीवाने कई। रचना-पाठ, आलोचना-प्रत्यालोचना हँसी-मज़ाक——सभी कुछ होता था। वर्माजीकी सूक्तियोंसे तो अक्सर हँसते-हँसते पेटमें बल पड़ने लगते थे। श्री रामेश्वरप्रसाद वर्माका सान्निध्य स्वल्पकालिक ही रहा क्योंकि शीघ्र ही

उनका अचानक देहान्त हो गया। मित्रवर पण्डित बालदत्त पाण्डेय भी अब संसारमें नहीं हैं। परन्तु उन मधुर दिनोंकी स्मृति आज भी चित्तमें गुदगुदी पैदा कर देती है।

वर्माजी विशाल भारत आफिसमें अपने सहवर्गियों और अन्य कर्मचारियोंसे बहुत ही शिष्ट, विनम्र और आपसदारीका व्यवहार करते थे। सभी उनसे खुश रहते थे और उनका बहुत सम्मान करते थे। उन लोगोंके आपसके झगड़े प्रायः वे ही निपटाया करते थे क्योंकि उनकी निरपेक्षता और सहृदयतापर सभीका विश्वास था। वर्माजी आफिसको हास्यसे मुखरित किये रहते थे। उनकी सूक्तियोंसे सदा कहकहे लगा करते थे। नतीजा यह होता था कि लोगोंको अधिक परिश्रम करना अखरता नहीं था। उनकी और चतुर्वेदीजीकी आपसमें बड़ी मजेदार हास्यकी चोंचें चला करती थीं जिसका आनन्द उपस्थित सभी लोग लेते थे। एक बार जब वर्माजी कहीं बाहर चले गये थे तब आफिसमें काम बहुत जम गया। उसे निपटानेके लिए बहुत परिश्रमकी आवश्यकता थी। इसलिए सोचा गया कि वर्माजी तो कुछ दिनोंमें आ ही जायँगे, तब वे अपने आप उसे भुगत लेंगे। इस विचारका फल यह हुआ कि और भी जो काम आने लगे, उन्हें भी वर्माजीके लिए छोड़ दिया जाने लगा। वर्माजीने वापस आकर जब अपने आगे कामका पहाड़ लगा देखा तो कहा कि "एक सासने, जिसकी बहू मायके गयी हुई थी, जब यह सुना कि बहू आनेवाली है, तो उसने एक महीने आगेसे ही घरमें झाड़ू देनातक बन्द कर दिया, क्योंकि बहू तो अब आ ही रही है, आनेके साथ सारे धन्धे अपने आप कर लेगी। वही मसल यहाँ की गयी है।" चतुर्वेदीजी भला कब चूकनेवाले थे। उन्होंने कहा—"अच्छा तो यह कहिये कि आप विशाल भारतकी बहू हैं और मैं सास हूँ!" उस समयसे यह दिल्लगी स्थायी हो गयी। चतुर्वेदीजीने महा-माननीय श्रीनिवास शास्त्रीको वर्माजीका यही (बहूवाला) परिचय दिया, जिसे सुनकर वे खूब हँसे।

किसी विषय-विशेषपर लिखनेके पूर्व वर्माजी उसका अच्छी तरह अध्ययन कर लेते थे। लेख लिखकर रख देते थे और समय मिलनेपर उसमें काफी संशोधन करनेके पश्चात् ही उसे प्रकाशित करवाते थे। रात-रातभर जागकर लिखना उनके लिए कठिन न था। यही कारण है कि उनके निबन्ध ठोस और वजनदार हैं। भाषा सजीव और शैली निराली। उनका चरित्र-रेखांकन इतना अनूठा और जोरदार है कि उसे देखकर ए० जी० गार्डिनरकी शैलीका स्मरण होता है।

अनेकों कवि, साहित्यिक, पत्रकार, विद्वान्, कलाकार और नेता उनके मित्र, परिचित या प्रशंसक थे। उनकी विद्वत्ता, मिलनसारी, चुहलबाजी और परहिताकांक्षाकी मनोवृत्ति ही ऐसी थी कि जो एक बार उनके सम्पर्कमें आता वह उन्हें अपना मान लेता।

वर्माजी कविता-प्रेमी थे। उन्होंने एक मोटी-सी नोट बुक बनायी थी। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजीकी अत्यन्त प्रिय लगनेवाली कविताएँ वे उसमें दर्ज कर लेते थे। अच्छा संकलन था उनका। स्वयं भी हिन्दी और उर्दूकी सुन्दर कविता कर सकते थे। परन्तु इस तरफ उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। उनकी एक प्रारम्भिक कविता 'कलकतिया वसन्त'के

नामसे हिन्दू पञ्चमें प्रकाशित हुई थी। हास्य-व्यंग्यकी खासी पुट उसमें थी। कुछ ही दिन बाद एक आचार्य कहलानेवाले लब्धप्रतिष्ठ कविने उक्त कविताके अनेक अंश ज्योंके त्यों चुराकर एक नयी कविता रचकर अपने नामसे बाहरके एक पत्रमें प्रकाशित करा दी। वर्माजीने आचार्य महोदयकी वह रचना मुझे दिखायी। मैं तो दंग रह गया क्योंकि वर्माजीकी मूल कविता मैं पहले ही देख चुका था। वर्माजीने पूछा—"आप कुछ लिखेंगे?" मैंने कहा—"अवश्य; ऐसे नामी गरामी कविके द्वारा दिन-दहाड़े ऐसी डाकेजनीका पर्दाफाश होना ही चाहिये।" जब यह बात उदारमना श्री कृष्णबलदेवजीके सामने आयी तो उन्होंने समझाया कि "इतने बड़े कविकी प्रतिष्ठाको ठेस लगाना उचित नहीं होगा। तुम्हारी कविताकी उत्कृष्टता तो इसीसे सिद्ध है कि एक ऐसे प्रसिद्ध कविने उसे चुरा लेनेके उपयुक्त समझा। मुझे इस बातकी खुशी है। तुम्हारी काव्य-प्रतिभाके लिए यही क्या कम प्रमाण-पत्र है!" वर्माजीने मुझसे कहा—"जाने दीजिये, आप कुछ मत लिखिये।"

हमारी मित्र-मंडलीके सदस्य अपनी-अपनी रुचिके अनुसार लेख कविता कहानी इत्यादि लिखा करते थे। कुछ हास्यरसकी ओर भी उनका झुकाव हुआ। अतएव उक्त मण्डलीमें पास किये गये प्रस्तावके अनुसार मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तवके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होनेवाले 'मस्त मतवाला' नामक पत्रमें 'शायरी मैनुफैक्चरिंग कम्पनी अनलिमिटेड'के नामसे एक स्तम्भ स्थापित किया गया था जिसके मैनेजिंग डाइरेक्टर वर्माजी थे। कम्पनीका प्रास्पेक्टस उन्होंने तैयार किया था। अन्य डाइरेक्टरोंकी हैसियतसे हमलोगोंकी कविताएँ उसमें छपती थीं। कविताएँ छद्म नामोंसे प्रकाशित होती थीं। थोड़े ही दिन यह शगल रहा। वर्माजीकी कविताएँ हास्य रससे शराबोर रहती थीं। एक बार उस स्तम्भमें एक भद्दी कविता छप गयी। वर्माजीने उसपर एतराज किया और कहा कि 'हास्यरस हो या कोई रस हो, गद्य हो या पद्य, चीज ऐसी ही होनी चाहिये कि उसे पिता-पुत्री, भाई-बहन,—सबलोग एक दूसरेके सामने निःसंकोच भावसे पढ़ सकें और समान रूपसे उसका आनन्द ले सकें, न कि लज्जा अनुभव करें।' काश ऐसे ही विचार आजकलके अनेक लेखकों और कवियोंके भी होते!

वर्माजी सदा एक ही रंगमें भीजे रहनेके पक्षपाती नहीं थे। हम दो-एक मित्र कलकत्तेसे प्रकाशित 'चाबुक'—नामक साप्ताहिकमें कल्पित शायरोंके नामोंसे बड़े-बड़े शायरोंके "रंग"में हास्यरसकी कविताएँ लिखते थे। वर्माजी भी उसमें कुछ योगदान देने लगे। जब काफी रंग जम गया और पाठक भी वाह-वाह करने लगे तब वर्माजीकी सलाहसे शागिर्दों-सहित उस्तादके ईरानके लिए रुखसत होनेका एलान किया गया और उस स्तम्भको बन्द करा दिया गया। चाबुक-सम्पादक इस कारण कुछ नाराज भी हुए।

वर्माजीको चित्रकलासे भी विशेष अनुराग था और उसमें उन्हें विशेषज्ञता प्राप्त हो गयी थी। कलकत्तेमें जब जहाँ कोई चित्र-प्रदर्शनी होती थी, वे वहाँ जाकर चित्रोंका अध्ययन करते थे। कितने ही चित्रकारोंसे उनका व्यक्तिगत मेल-जोल था। विदेशोंसे
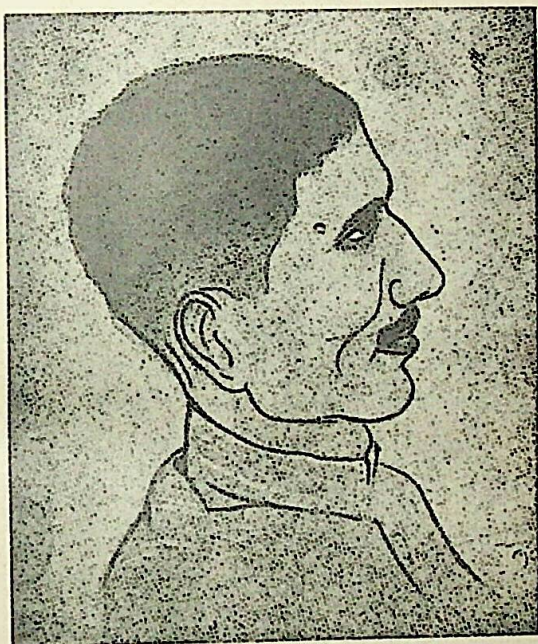
स्वर्गीय श्री ब्रजमोहन वर्मा

जन्म— ५ सितम्बर सन् १९०० ई०

मृत्यु—१० दिसम्बर सन् १९३७ ई०

आये चित्रकारोंसे वे मिला करते थे और उनसे चित्रकलापर वार्तालाप किया करते थे। चित्रकारों और चित्रकलापर उन्होंने मार्केके लेख लिखे। चित्रकार श्री रामगोपाल विजयवर्गीयकी प्रसिद्धिका कुछ श्रेय वर्माजीके एक निवन्धको भी है जिसे उन्होंने उनपर लिखा था। चतुर्वेदीजीने विशाल भारतके कला-अंकका सम्पादक वर्माजीको ही वनाया और उन्होंने उसमें कलाकी दृष्टिसे वहुमूल्य सामग्रीका संचयन किया। वर्माजीने आटोग्राफ लेनेके ढंगकी एक नोट-वुक वनायी थी। जो चित्रकार उनसे मिलने आते थे या वे जिनसे मिलने जाते थे, उनके आगे वे उस नोट वुकको वढ़ा देते थे और कहते थे कि 'इसमें कोई चित्र वना दीजिये'। उस नोट वुकमें चित्रकार-प्रवर श्री नन्दलाल वोस, श्री विनयकृष्ण सेनगुप्त, श्री किरणशशि दे, श्री रामगोपाल विजयवर्गीय, मध्य एशियाके कान्सू प्रान्तके कवि दार्शनिक और चित्रकार गेशा गेडम छोपवेल आदि महानुभावोंके हाथके वने चित्र मौजूद हैं। उस नोट वुकमें श्री विजयवर्गीय-द्वारा अंकित चित्रमें एक ऐसी नवयुवती प्रदर्शित की गयी है जो राह चलते हुए आँधीमें पड़ गयी है और इस कारण उसका वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहा है। कला-मर्मज्ञ वर्माजीके कहनेसे विजयवर्गीयजीने उस मूल चित्रकी नकल करके प्रतिलिपि एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्सकी प्रदर्शनीमें भेज दी और उसपर उन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। वर्माजीकी अपनी कोई फोटो न थी। एक भले मानस चित्रकारने उनसे वातचीत करते हुए उनके सामने ही उनका एक चित्र प्रस्तुत कर दिया। वही एक मात्र चित्र वर्माजीका है, जिसका समय-समयपर उपयोग होता है। वे अक्सर कहा करते थे—

> एक वह हैं जिन्हें तस्वीर बना आती है,
> एक हम हैं कि लिया अपनी भी सूरतको विगाड़।

वर्माजी इटलीपर लेख लिखनेवाले थे। उन्होंने इटालियन कौन्सुलेटमें जाकर इटलीके तत्कालीन सर्वेसर्वा मुसोलिनीके चित्रकी माँग पेश की पर वह नामञ्जूर हुई। वर्माजी नाछोड़ बन्दे थे। उन्होंने सीधे मुसोलिनीको पत्र लिखा। फलस्वरूप इटालियन कौन्सुलेटने उन्हें बुलाकर मुसोलिनीका स्वाक्षर-सहित चित्र सादर भेंट किया। उन दिनों मुसोलिनीके उच्चके चन्द्रमा थे।

वह असहयोग आन्दोलनका जमाना था। हजारों लोग धड़ाधड़ जेल यात्रा कर रहे थे। सशस्त्र विप्लवके हामी वीर भी चुप नहीं बैठे थे। अपनी कार्रवाईमें संलग्न थे। पत्रों और पत्रकारोंपर ब्रिटिश सरकारकी कड़ी नजर रहती थी। उन बीचों माडर्न रिव्यू, प्रवासी, और विशाल भारत आफिसोंमें बीसियों बार पुलिसकी तलाशियाँ आयीं। पाताल लोकतककी बेबुनियाद खबर रखनेवाली और तिलका ताड़ बनानेवाली पुलिसको पता लगा कि वर्माजीके निकट क्रान्तिकारियोंका आना-जाना रहता है और विप्लवी कार्रवाइयोंसे उनका कुछ सम्बन्ध है। फिर क्या था, एक पुलिस अफसर तहकीकातके लिए आये और आफिस-इन-चार्ज अशोक बाबूसे मिलकर वर्माजीको पूछने लगे। अशोक

बाबूने कहा—"अरे, वह तो बड़ा खतरनाक आदमी है ! चलिये, आपको उससे मिलाऊँ ।" ऐन उसी वक्त डाकसे चटगाँव अस्त्रागारपर आक्रमणके मामलेका विवरण (Chittagong Armoury Raid Case Report) वर्माजीको मिला । वे चट उसे कुर्सीपर बिछी रैपिंग पेपरकी गड्डीके नीचे रखकर आप उसपर विराजमान हो गये । इतनेमें पुलिस अफसरको साथ लिये हुए अशोक बाबू आये और बोले—"वर्माजी, ये अफसर महोदय आपके दर्शनोंको आये हैं ।" वर्माजी सम्मान प्रदर्शनके लिए अपनी त्रिभंगी मुद्रामें खड़े हो गये । अफसर महोदय उन्हें सिरसे पैरतक एक नजर देखते ही मानों आकाशसे गिर पड़े । अशोक बाबू मुसकुराते हुए चले गये । वर्माजीने कहा—"बैठिये ।" अफसर महोदयको तो अपनी कुर्सीपर बैठा दिया और आप सामनेकी कुर्सीपर बैठ गये । अफसर महोदयने दो-चार प्रश्न करनेके उपरान्त पूछा—"आपका विवाह हो गया है ?" वर्माजीने बड़ी दयनीय मुखमुद्रा बनाकर अत्यन्त करुण स्वरसें कहा—"आप मेरी जो अवस्था देख रहे हैं, उसमें भला कौन लड़की मुझसे विवाह करना चाहेगी और मैं भी ऐसा करना क्व चाहूँगा ?" चतुर्वेदीजीने बहती गंगामें हाथ धोया । अपनी सीटपर बैठे ही बैठे उन्होंने आवाज लगायी—"साहब, यही तो इनमें सबसे बड़ा ऐब है कि ये शादी नहीं करते; कर लेते तो चौबीसों घण्टे इनके दिमागमें जो क्रान्तिकारी विचारोंकी घुड़दौड़ होती रहती है, वह न होती ।" उपस्थित सभी लोग ठहाकेके साथ हँस पड़े । आये थे हजरत किसी और मनसूबेसे पर हँसते हुए विदा हुए ।

वर्माजीने विशाल भारतमें "चाय चक्रम" शीर्षक देकर एक स्तम्भ खोला था । वे उसमें एक कल्पित चाय क्लबकी स्थापना करके चायकी महिमाके बखानमें जमीन आसमानके कुलावे मिलाते हुए पियक्कड़ोंकी बातचीतके दौरानमें चौर्यकलाप्रवीण तथा मनचले लेखकों और उनकी कृतियोंकी धज्जियाँ उड़ाने लगे । उस स्तम्भकी रचनामें उनके कुछ मित्रोंका भी योगदान रहता था, परन्तु उस बारातके दूल्हा वे ही थे । आचार्य पण्डित पद्मसिंह शर्माके 'सतसई संहार'के बाद आलोचनाकी कुछ मनोरंजक शैली 'चाय चक्रम'में ही पायी जाती है । लोगोंने उसे बहुत पसन्द किया । उसमें वर्णित चायकी एक महिमाका तात्पर्य है कि यदि त्रेतायुगमें चाय होती, तो अर्जुनकी सारी बीमारी—सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति, इत्यादि—एक क्षणमें दूर हो जाती और महाभारतका इतना बड़ा खून-खराबा न होता । सात सौ श्लोकोंकी गीता गानेके बजाय श्रीकृष्णके केवल एक श्लोक कह देनेसे सारा काम बन जाता—

"दुग्ध-शर्करा-मिश्रित चाय आसव गरम गरम,
एक प्याला पियो बेटा, सर्व रोग-विनाशनम् ।"

चाय चक्रममें की गयी आलोचनाओंसे कई लेखक तिलमिला उठे । जवाब देते तो नहीं बना पर उन लोगोंने चतुर्वेदीजीसे व्यक्तिगत रूपसे शिकायत की । कुसुम-कोमल-हृदय चतुर्वेदीजीने तुरन्त उस स्तम्भको बन्द करवा दिया ।

एक मासिक पत्रिकामें विवाहके लिए लड़कीकी तलाशमें एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ था । वर्माजी ताड़ गये कि विवाहके लिए उतावले स्वयं सम्पादक महोदयका यह विज्ञापन

है। उन्होंने एक फर्जी लड़कीकी तरफ़से विज्ञापनदातासे पत्र-व्यवहार किया। उनका अनुमान सच निकला। पत्र-व्यवहार वड़ा ही दिलचस्प था, जो कि वढ़ता गया और लम्वे अर्सेतक जारी रहा। फोटोके आदान-प्रदान भी हुए। भावी वर महोदयने युवती और उसके पितासे मिलनेके लिए शायद पंजावकी सैर भी की। अन्तमें हजरत अच्छे खासे बुद्धू वने।

यद्यपि हँसने-वोलने और छेड़छाड़ करनेकी उनकी आदत थी तथापि उनके निश्छल सरल हृदयमें कभी किसीके प्रति कोई दुर्भावना नहीं रही। हँसी-दिल्लगीकी वात और है, यों साधारण वातचीतमें भी वे विषय-गत व्यक्तिका उल्लेख सम्मानसूचक शब्दोंमें ही करते थे। यदि किसीका कोई काम उनके द्वारा हो सकता था, तो वे अपना हर्ज करके भी उसके लिए दौड़े जाते थे। अवसर पड़नेपर उन्होंने जोखों उठाकर कई क्रान्तिकारियोंकी सहायतामें हाथ वँटाया था।

वर्माजीने भिक्षु उत्तमके साथ वर्माकी यात्रा की थी। भिक्षु उत्तमसे सम्पर्क होनेके कारण पुलिस कुछ दिनतक उनके पीछे पड़ी रही। वर्मा-यात्राका सुन्दर वृत्तान्त उन्होंने विशाल भारतमें प्रकाशित कराया था। उनका इरादा दक्षिण अफ्रिका जानेका भी था और उसके लिए वे उद्योग करते रहे। दक्षिण अफ्रिकासे स्वामी भवानीदयाल संन्यासीने उन्हें पत्र भेजा कि वे उनके यात्राके विचारका स्वागत करते हैं और उनके रहने तथा परिभ्रमणके लिए सव प्रकारका प्रवन्ध कर देंगे। चतुर्वेदीजी उनके इस तरहके इरादोंपर आश्चर्य करते थे कि इस डेढ़ पसलीके आदमीमें कितना जीवट है!

जव वे वर्मा जाने लगे, तव मित्रोंने फवतियाँ कसीं—"वर्माजी व्याह करने चले, जोड़ेके साथ आयेंगे।" उन्होंने कहा—"वेशक,"—

"वर्माजी वर्मा चले वरमालाकी चाह।"

वर्मासे लौटकर उन्होंने एलान किया—

"वर्माजी वर्मातक दौड़े, मिली न उनको वरमाला;
वर्मी सव बुद्धू ही निकले, वना नहीं कोई साला।"

सन् १९३७ के अक्टूवरमें ओरछा नरेशके आमन्त्रणपर चतुर्वेदीजी विशाल भारतके सम्पादक-पदको त्यागकर टीकमगढ़ चले गये। श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय"जी पत्रके प्रधान सम्पादक हो गये थे। वर्माजी उन्हें मुश्किलसे कुछ दिनोंतक ही सहयोग दे पाये क्योंकि अगस्त सन् १९३७ में वे टायफायड ज्वरसे आक्रान्त हो गये। रुग्णावस्थामें भी उन्हें विशाल भारतकी चिन्ता लगी रहती थी। आफिसके जो कर्मचारी उन्हें देखने आते, उनसे वे पत्रका हाल-चाल पूछा करते। लगातार दो महीनेकी चिकित्सा और उपवासके वाद ज्वर उतरा। उस समय वे इतने निःशक्त हो गये थे कि वोलनेतकमें कष्ट अनुभव करते थे। लिखनेकी चेष्टा करते थे तो हाथ काँपता था। कई दिनोंके परिश्रमसे उन्होंने दो पत्र लिखे—एक, स्वामी भवानीदयाल संन्यासीको जिसमें स्वस्थ होते ही दक्षिण अफ्रिकाके लिए रवाना होनेकी वात लिखी और दूसरा, चतुर्वेदीजीको जिसमें विशाल भारतके दिसम्बर १९३७के अंकको उत्कृष्ट वनानेके लिए कलकत्ते आनेका

उनसे अनुरोध किया। चतुर्वेदीजीवाला पत्र ही उनका अन्तिम पत्र था। चिकित्सकोंके परामर्शसे वे नवम्बरमें जल वायु परिवर्तनके लिए इटावे गये। कमजोरीके अलावा और कोई शिकायत नहीं थी। वहाँ वे दो सप्ताह भी नहीं रहे और कानपुर चले गये। कानपुरमें स्वास्थ्य सुधरनेके वजाय विगड़ने लगा और वे फिर बीमार हो गये। दिनपर दिन अवस्था खराब होती गयी। अनेक बन्धु-बान्धव और साहित्यिक उन्हें वहाँ देखने जाते थे। श्रद्धेय पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' प्राय: नित्य ही उन्हें एक बार देख जाते थे। "नवीन"जी उन्हें क्या सान्त्वना देते, वे खुद ही उनसे कहा करते—"घबड़ानेकी कोई बात नहीं है।" उनकी हालत संगीन होते देख 'नवीन'जीने ता० ७–१२–३७ को चतुर्वेदीजीको पत्र भेजा जिसमें वर्माजीकी अवस्थाका वर्णन करते हुए उन्हें तुरन्त आनेके लिए लिखा। परन्तु उसके बाद ही वर्माजीका हृदय तीव्र गतिसे बैठने लगा और १० दिसम्बर १९३७को वे सबको रोते-कलपते छोड़कर संसारसे विदा हो गये। मृत्युके दो मिनट पहले उनके, अनुज श्री राजमोहन रोने लगे, तो उन्होंने कहा—"Don't be nervous" (घबड़ाओ मत)।

'नवीन'जीका पत्र चतुर्वेदीजीको जो कि उस समय ओरछा-नरेशके साथ ग्रामोंमें भ्रमण कर रहे थे, देरसे मिला। पत्र पाते ही वे कानपुरके लिए चल खड़े हुए। परन्तु कालपी स्टेशनपर जब उन्होंने 'प्रताप' खरीदा तो उसमें वर्माजीके निधनका दु:संवाद पढ़कर वे स्तम्भित हो गये।

वर्माजीके नाते-रिश्तेदार, मित्र, प्रशंसक वहुसंख्यक थे। जिसने उस दारुण संवादको सुना, वही मर्माहत हुआ। कराल कालने साहित्यकी वह अमूल्य निधि और मनुष्यताकी वह दिव्य ज्योति समयसे बहुत पहले ही विलुप्त कर दी।

चतुर्वेदीजीके भावुकतापूर्ण मृदुल हृदयमें दो ऐसे दारुण आघात लगे हैं जिन्हें वे भूल नहीं सकते। पहला, उनके होनहार अनुज श्री रामनारायणका २८ वर्षकी उम्रमें आकस्मिक परलोक-गमन और दूसरा वर्माजीका निधन। वर्माजीके स्वर्गवासके वाद चतुर्वेदीजीके जितने पत्र मेरे पास अवतक आये हैं, प्राय: प्रत्येकमें उन्होंने वर्माजीको स्मरण किया है और उनके लेख-संग्रहके प्रकाशित न हो सकनेपर चिन्ता प्रकट की है।

वास्तवमें चतुर्वेदीजीने वर्माजीकी कृतियोंका संग्रह सत्ताइस-अट्ठाइस वर्ष पहले ही कर लिया था और तभीसे उन्हें वे पुस्तकाकारमें प्रकाशित करनेके लिए प्रयत्न करते रहे, पर विधाताके विधानको क्या कहा जाय! अबसे पहले यह श्राद्ध-कर्म सम्भव नहीं हुआ। चतुर्वेदीजीके शब्दोंमें ही पढ़िये जो कि मैं उनके हालके एक पत्रसे उद्धृत कर रहा हूँ :—

"आज २७, २८ वर्ष बाद यह श्राद्ध हो रहा है! मैं तो तभीसे इसके लिए चिन्तित और प्रयत्नशील था, पर जैनियोंका सिद्धान्त "काल लब्धि" ही ठीक है। समय आनेपर ही कार्य होता है। इतने वर्ष हमलोगोंको प्रतीक्षा करनी पड़ी! शायद हमलोगोंकी साधनाकी कमी ही इस विलम्बका कारण है।"

विस्मृत साहित्यिकों और शहीदोंकी कीर्तिरक्षा, उनकी कृतियों और कार्योंको प्रकाशमें लाना, उनपर निबन्ध लिखना, उनके परिवारवालोंको सरकारी सहायता दिलाना—

इत्यादि कार्योंके सम्पादनमें सहृदय चतुर्वेदीजी अपना हर तरहका हर्ज करके भी जीवन उत्सर्ग किये बैठे हैं। उनके ये श्राद्ध-कार्य सर्वथा अभिवन्दनीय हैं। फिर वर्माजीपर तो उनका आन्तरिक स्नेह था जो आज भी ज्योंका त्यों बना हुआ है। वर्माजीके इस श्राद्धके प्रति उनके विशाल हृदयकी कोमल भावनाकी कुछ झलक उनके निम्नलिखित उद्गारसे प्रकट होती है जो उन्होंने मुझे एक पत्रमें लिखा है—

"वर्माजी मुझे श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते, तब तो कुछ बात भी थी, पर दुर्भाग्यवश मुझे यह उल्टा काम करना पड़ रहा है! 'सास'को बहूका श्राद्ध करना पड़ा है!"

चतुर्वेदीजी मुझे जो पत्र भेजते रहे हैं, उनमें इस तरहके अनेकों मार्मिक उद्गार हैं। निम्नाङ्कित उद्धरण भी उनके पत्रोंके अंश हैं:—

"वर्माजीने ९ वर्षमें जो काम कर दिखाया, उसे हमलोग २०–२० वर्षमें भी नहीं कर सकते! विशाल भारतका ७५ फी-सदी काम वही करते थे। मैंने माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजीसे उनका परिचय देते हुए कहा था "ये वि० भा० की बहू हैं और मैं सास!" वे खूब हँसे और बोले "बहू काम करते-करते पिस जाती है! सास आराम करती है।"

'स्व० वर्माजीके विषयमें भी २५–२६ वर्षसे निरन्तर प्रयत्न करता रहा हूँ। कितना विलम्ब हो जाता है इन श्राद्ध कर्मोंको सम्पन्न करनेमें! कितने ही व्यक्तियोंके विषयमें मसाला इकट्ठा हो गया है, पर उनकी कीर्तिरक्षाके लिए सहायकोंकी कमी है।'

मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक साहित्य सौरभमें पूज्य चतुर्वेदीजीका चित्र रहनेसे वर्माजीकी दिवंगत आत्माको सन्तोष होगा। मेरे विशेष आग्रहपर चतुर्वेदीजीने अनिच्छा-पूर्वक अपना चित्र भेज दिया है। तदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत पुस्तककी प्रायः सभी सामग्री चतुर्वेदीजीके संग्रहालयकी देन है। इसमें वर्माजी-की सभी रचनाएँ नहीं हैं। कुछ तो समय या परिस्थिति-विशेषसे सम्बन्धित होनेके कारण छोड़ दी गयीं, कुछ ऐसे पत्रोंमें प्रकाशित हुई थीं, जिनका नामो-निशान नहीं है और कुछ चेष्टा करनेपर भी प्राप्त नहीं हुईं। जो हो, हमारा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक वर्माजीकी प्रतिभाका यथेष्ट परिचय देगी और साहित्य-भण्डारकी अभिवृद्धि करेगी।

"चूंकि पुस्तक-रूपमें वर्मा जीकी यह कृति उनके पितृव्य श्री कृष्णबलदेव वर्माकी पुण्य-स्मृतिमें समर्पित की गयी है, इसलिए इसके अन्तिम परिशिष्टमें उक्त मनीषीके सम्बन्धमें दो लेख प्रकाशित कर देना उचित समझा गया।

खेद है कि प्रूफ संशोधनमें कुछ अशुद्धियाँ रह गयीं। अपराधके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। पुस्तकके अन्तमे संशोधन-पत्र दे दिया गया है। एक बात यह भी है कि भाँग कितनी ही घोटी जाय, छाननेपर फोक कुछ रह जाता है; घर कितना ही बुहारा जाय, कूड़ा कुछ रह जाता है; प्रूफ भी कितना ही देखा जाय, भूल कुछ रह जाती है।

यद्यपि श्रद्धेय चतुर्वेदीजीके आशीर्वाद, प्रेरणा और उद्योगसे ही वर्माजीकी कीर्तिरक्षाका यह यज्ञ सम्पन्न हुआ है, फिर भी इसमें मित्रवर पण्डित देवनारायण द्विवेदीने अत्यधिक सहायता की है और भाई राजमोहन वर्माका योगदान भो विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।

आगरेके श्री चिरंजीलाल पालीवालके भी हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने चिरंजीव पुस्तकालयमें सुरक्षित माधुरीकी पुरानी फाइलोंसे और द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थसे वर्माजीके तीन लेख संकलित करके इस संग्रहमें प्रकाशनार्थ भेज देनेकी कृपा की है। उनकी इस कृपाके बिना यह पुस्तक उन तीनों महत्त्वपूर्ण लेखोंसे वंचित रह जाती। ज्ञानमण्डल लिमिटेड, काशीके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना हमारा कर्तव्य है, जिसने इस संग्रहको बड़ी तत्परतासे प्रकाशित किया है।

३ ई नन्दी स्ट्रीट
कलकत्ता-२९

—श्यामसुन्दर खत्री

लेख-सूची

: १ :

हमारा पेशवा

सन् १९१७ की एक रात। नौ वजेके वादका समय। बिहार प्रान्तके मोतिहारी नामक देहाती कस्वेकी धुँधली सड़कपर दो लदे-फँदे देहाती पैदल जा रहे थे।

एकको क़द साधारण, शरीर दुवला, ललाट चौड़ा, वाल छोटे, आँखें चमकदार, कान वड़े-वड़े और वाहरको उभरे हुए, मूछें छोटी-छोटी और कटी हुई, ठोढ़ी छोटी और भुजाएँ लम्वी थीं। वदनपर गाढ़ेकी मोटी धोती और गाढ़े ही की देहाती चौवन्दी-मिर्जई थी।

दूसरेका क़द लम्वा, माथा प्रशस्त, भौंहें घनी, आँखें गड्ढेमें घुसी हुई, नाक लम्वी, गाल चपटे और मूछें वड़ी-वड़ी, किन्तु विखरी हुई और अस्त-व्यस्त थीं। पोशाकमें उसकी कमरमें भी पहले देहातीके समान ही मोटी धोती थी। परन्तु वदनपर मिर्जईकी जगह गाढ़ेका कुर्ता था।

दोनोंके सिरपर गठरी-मुठरी और विस्तर-वर्तन लदे थे। दूरसे देखनेवाला उन्हें साधारण कुली ही समझता, परन्तु पाससे देखनेपर उनके कपड़ोंकी सफाई वताती थी कि वे भाड़ेके कुली न होकर निम्न श्रेणीके गरीव देहाती हैं, जो कुली या सवारीका खर्च वरदाश्त न कर सकनेके कारण खुद ही अपना माल-असवाव ढोकर स्टेशन या कहीं और ले जा रहे हैं। इस दृश्यमें कोई विशेषता न थी, क्योंकि गरीव हिन्दुस्तानमें सभी जगह इस तरहके लदे-फँदे देहाती प्रतिदिन आते-जाते दीख पड़ते हैं।

परन्तु मोतिहारीकी उस रातमें, देखनेवालोंने स्वप्नमें भी यह कल्पना न की होगी कि ये दोनों देहातीनुमा व्यक्ति भारतके आधुनिक इतिहासके निर्माता होंगे। उन्हें देखकर किसे यह खयाल हो सकता था कि इन गठरी-मुठरियोंके नीचे संसारकी दो पवित्रतम आत्माएँ चल रही हैं? यह तो दूरकी बात थी, उस समय किसीने यह सन्देह भी न किया होगा कि इन दोनोंमें एक वैरिस्टर और दूसरा वकील भी हो सकता है। उस समय कौन कह सकता था कि इन दोनों कुलियोंमें एककी गणना संसारके महान् व्यक्तियोंमें की जायगी, तो दूसरा आजादीकी जंगका पेशवा वनकर मुल्ककी रहनुमाई करेगा?

मोतिहारीकी उस धुंधली रातमें लदे-फँदे चलनेवाले इन व्यक्तियोंमें एकका नाम है मोहनदास कर्मचन्द गांधी और दूसरेका राजेन्द्रप्रसाद।

× × ×

सन् १९१७ में चम्पारनमें निलहे गोरोंके खिलाफ सत्याग्रहकी लड़ाई छिड़ी हुई थी। महात्मा गांधीके साथ राजेन्द्रवावू मोतिहारीमें मोर्चेपर डटे थे। एक दिन स्थान वदलनेका निश्चय हुआ, मगर कामके मारे नौ वजे राततक फ़ुरसत ही न मिली। रातको नौ वजेके

वाद देहातमें सामान ढोनेके लिए सवारी या मजदूर मिलना मुश्किल था। फिर क्या हो? महात्माजीके साथ राजेन्द्रवावू फौरन अपना सामान सिरपर लादकर चल खड़े हुए। उसी समय मकान वदला गया। नये मकानमें पहुँचकर अपने हाथों झाड़ू लगायी गयी, सव सामान ठीकसे रखा गया, और तव कहीं जाकर दम ली। यह उस समयकी वात है, जव राजेन्द्रवावू विहारके सवसे नामी वकील थे, और हजारों रुपया महीना पैदा करते थे।

यह एक छोटी और मामूली घटना है, परन्तु यह प्रकट करती है कि हमारा पेशवा केवल दूसरोंपर हुक्म चलानेवाला सेनापति ही नहीं, वरन् स्वयं भी एक मुस्तैद सिपाही है। वह पैसेके जोम या वड़प्पनकी शानमें अकड़नेवाला व्यक्ति नहीं, वल्कि सादगीकी जिन्दा मूरत है। वह आराम कुर्सीपर बैठकर निठल्ली वातें वघारनेवाला नेता नहीं है, वल्कि ऐसा कर्मठ व्यक्ति है, जो वोझा ढोने और झाड़ू लगानेसे लेकर ३५ करोड़ प्राणियोंके राष्ट्रके संचालनका काम तक एक-ही-सी तत्परतासे कर सकता है।

× × ×

सन् १८८३ में भारतके कुछ सपूत देशकी छिन्न-भिन्न शक्तियोंको एकत्रित करनेकी कोशिश कर रहे थे। भारतीय राष्ट्रकी वुनियाद रखनेके लिए राष्ट्रीय कांग्रेसको जन्म देनेकी तैयारियाँ हो रही थीं। इसके लिए एक नेशनल कन्वेनशनकी योजना हुई थी। जिस समय देश अपनी महान् राष्ट्रीय संस्था कांग्रेसकी प्रसव-वेदनामें पीड़ित था, उसी समय विहारके जीरादेई नामक एक छोटे गाँवमें, ३ दिसम्वर १८८३ को एक शिशुका जन्म हुआ। वही शिशु आज कांग्रेसका सभापति है।

राजेन्द्र वावूकी शिक्षा छपरा जिला स्कूलमें हुई और उन्होंने १९०२ में कलकत्ता युनिवर्सिटीकी एन्ट्रेन्सकी परीक्षा पास की। उस समय कलकत्ता युनिवर्सिटीके अन्तर्गत केवल वंगालकी ही नहीं, वरन् विहार, उड़ीसा, आसाम और व्रह्मा आदि भी थे। इस परीक्षामें राजेन्द्रवावूने युनिवर्सिटीमें सर्वप्रथम स्थान पाया था। वे ही सर्वप्रथम विहारी छात्र थे, जिन्होंने यह सम्मान प्राप्त किया।

उस वर्ष कांग्रेसका अधिवेशन लाहौरमें हुआ था, स्वर्गीय चन्द्रावरकर उसके सभापति थे। जिस समय चन्द्रावरकर महाशय कांग्रेसके सभापतिका कार्य सम्पादन कर रहे थे, उसी समय उन्हें सरकारका एक पत्र मिला था, जिसमें उन्हें हाईकोर्टका जज वनाये जानेकी सूचना थी। उस समय भारतकी अंग्रेजी सरकारमें भारतीयोंके लिए सवसे वड़े सम्मानका पद हाईकोर्टकी जजी ही थी।

राजेन्द्रवावूके एन्ट्रेन्सकी परीक्षामें सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करनेके उपलक्षमें पटनेके 'हिन्दुस्तान रिव्यू' ने लिखा था:—

'नवयुवक राजेन्द्र सव प्रकारसे प्रतिभाशाली विद्यार्थी हैं। हमें आशा है कि एन्ट्रेंसकी परीक्षामें उन्होंने जो स्थान प्राप्त किया है, उसे वे अपने युनिवर्सिटी-जीवनमें बनाये रखेंगे। ईश्वर जाने इस नवयुवकके भविष्यमें क्या है। लेकिन यदि उसका स्वास्थ्य ठीक रहा, तो कोई भी पद, जो भारतीयोंके लिए खुला है, उसकी महत्वाकांक्षाके वाहर नहीं है। हम आशा करते हैं कि वह आगे चलकर अपने प्रान्तके हाईकोर्टके न्यायाधीशका आसन

सुशोभित करेगा, और उसे भी न्यायाधीशका नियुक्ति-पत्र उसी प्रकार प्राप्त होगा, जैसे मि० जस्टिस चन्द्रावरकरको लाहौरकी कांग्रेसका सभापतित्व करते हुए प्राप्त हुआ था।'

'हिन्दुस्तान रिव्यू' की वह भविष्यवाणी आज बत्तीस वर्ष बाद पूर्ण हुई। जिस बिहारी विद्यार्थीने सन् १९०२ में कलकत्ता युनिवर्सिटीकी एन्ट्रेन्सकी परीक्षामें प्रमुख स्थान प्राप्त किया था, वही आज देशकी प्रमुख राष्ट्रीय संस्थाका सभापति है। रही हाईकोर्टकी जजीकी बात, सो आज राजेन्द्रबाबूको सारे देशके—अनुगामियों और विरोधियों, दोनों प्रकारके लोगोंसे—जो सम्मान और भक्ति प्राप्त है, वह विदेशियों द्वारा कंजूसीसे दी हुई हाईकोर्टकी जजीसे कहीं ज़्यादा ऊँची है।

इसके बाद राजेन्द्रबाबूने एफ० ए०, बी० ए०, एम० ए० और बी० एल० की परीक्षाएँ पास कीं। पहली दोनों परीक्षाओंमें भी वे प्रथम हुए थे। बी० एल० पास करनेके बाद उन्होंने एक वर्षतक मुजफ्फरपुरके ग्रीयर कालेजमें अध्यापन-कार्य किया। इसके बाद वे कलकत्तेमें वकालत करने लगे।

नवयुवक राजेन्द्रप्रसाद अपने विद्यार्थी-जीवनसे ही सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेने लगे थे। सन् १९०२ में ही उन्होंने कलकत्तेमें 'बिहारी क्लब' की स्थापना की। इसी संस्थाने आगे चलकर बिहारी विद्यार्थी कान्फरेन्सका आयोजन किया था। आज-कल देशके प्रत्येक प्रान्तमें विद्यार्थियोंकी कान्फरेन्सें हुआ करती हैं। इन सब कान्फरेन्सोंके आदि पिता बाबू राजेन्द्रप्रसाद ही हैं। सन् १९०५-६ के वंग-भंग और स्वदेशी आन्दोलनने भी राजेन्द्र-बाबूपर गहरा प्रभाव डाला और उसी समयसे उन्होंने स्वदेशीका जो व्रत लिया, वह आज भी कायम है।

सन् १९१० में स्वर्गीय गोखलेको अपनी सर्वेन्ट-ऑफ-इंडिया सोसाइटीके लिए कुछ त्यागी कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता थी। बिहारमें उनकी दृष्टि नवयुवक राजेन्द्रप्रसादपर पड़ी और उन्होंने राजेन्द्रबाबूको बातचीत करनेके लिए निमन्त्रित किया। स्वर्गीय गोखलेकी बातचीत तथा देश-सेवाके भावोंका राजेन्द्रबाबूपर गहरा प्रभाव पड़ा, और वे सर्वेन्ट-ऑफ-इंडिया सोसाइटीमें सम्मिलित होनेके लिए तैयार हो गये। परन्तु अपने बड़े भाई स्वर्गीय महेन्द्रप्रसादकी—जिनका वे पिताके समान आदर करते थे—अनुमति न मिलनेके कारण वे सर्वेन्ट-ऑफ-इंडिया सोसाइटीमें सम्मिलित न हो सके। उस समय उन्होंने अपने भाईको जो पत्र लिखा था, वह उनके उच्च चरित्रका दर्पण है:—

"मेरे हृदयमें एक उच्च और महान् आदर्शका आह्वान सुनाई पड़ता है। आपको किसी प्रकारकी कठिनाईमें डालना मेरे लिए कृतघ्नताकी बात होगी। फिर भी मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आप भारतके तीस करोड़ प्राणियोंके हितके लिए एक त्याग करें। मि० गोखलेकी सोसाइटीमें सम्मिलित होनेमें मुझे कोई त्याग नहीं करना पड़ेगा, क्योंकि चाहे अच्छी हो या बुरी, मुझे ऐसी शिक्षा मिली है, जिससे मैं अपनेको सब तरहकी परिस्थितियोंके अनुकूल बना सकता हूँ। मेरा रहन-सहन भी ऐसा है कि उसमें किसी विशेष आरामकी जरूरत नहीं होती। सोसाइटीसे मुझे जो कुछ मिलेगा, वह मेरे लिए काफी होगा। परन्तु मैं यह नहीं कहूँगा कि इसमें आपको भी कोई त्याग न करना पड़ेगा। आपने मेरे

ऊपर बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी हैं। मेरे इस कार्यसे वे एक क्षणमें ही चूर-चूर हो जायँगी। किन्तु इस क्षणभंगुर संसारमें सभी चीजें—धन, वैभव और सम्मान—शीघ्र ही उड़ जाती हैं। हम जितने ही धनी होते जाते हैं, उतनी ही हमारी चाह वढ़ती जाती है। यद्यपि कुछ लोग समझते हैं कि धनसे उन्हें सुख-सन्तोष मिलता है, लेकिन जाननेवाले जानते हैं कि सुख अपने भीतरसे मिला करता है, न कि वाहरसे। एक गरीव आदमी अपने दो-चार रुपयोंमें ही उससे अधिक सन्तुष्ट हो सकता है, जितना एक धनी लाखों रुपयोंमें नहीं होता। इसलिए हमें गरीवीसे घृणा न करनी चाहिये। संसारके महान् व्यक्ति अत्यधिक गरीव, अत्यधिक पीड़ित और अत्यधिक तिरस्कृत होते आये हैं। अत्याचार और घृणा करनेवाले तो सदाके लिए धूलमें मिल गये, उनका नाम भी नहीं सुनाई देता, लेकिन अत्याचार-पीड़ित और घृणा किये जानेवाले व्यक्ति करोड़ों आदमियोंके हृदयमें जीवित हैं।"

इससे प्रत्यक्ष है कि यौवनके तूफानी दिनोंमें, जव अधिकांश लोग सुख और आनन्दकी आकांक्षाएँ रखते हैं, राजेन्द्रवावूके विचार कितने उच्च और आदर्शपूर्ण हो चुके थे।

वकालतमें राजेन्द्रवावूने शीघ्र ही अपना सिक्का जमा लिया। पहले वे कलकत्तेमें वकालत करते रहे, फिर पटना हाईकोर्ट कायम होनेपर पटना चले गये। वहाँ भी वे शीघ्र ही प्रमुख वकील वन गये और उन्हें हजारों रुपये मासिककी आय होने लगी। लेकिन इस आयका वहुत वड़ा हिस्सा परोपकारमें ही चला जाता था।

राजेन्द्रवावू वड़े अच्छे शिक्षा-प्रचारक हैं। उन्होंने पटना युनिवर्सिटीमें अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये थे। वादमें 'सदाकत आश्रम' में उन्होंने अपने मौलिक विचारोंके अनुसार शिक्षा-पद्धति चलायी थी।

सन् १९१७ के चम्पारनके सफल सत्याग्रहमें राजेन्द्रवावू महात्माजीके दाहिने हाथ थे। इस सत्याग्रहमें कई मास साथ-साथ काम करनेसे राजेन्द्रवावूपर महात्माजीका स्थायी प्रभाव पड़ा और तवसे भारतकी इन दोनों विभूतियोंका जो घनिष्ट सम्वन्ध स्थापित हुआ, वह उत्तरोत्तर वढ़ता ही गया, यहाँतक कि आज वहुतसे लोग राजेन्द्रवावूको 'बिहारके गांधी' के नामसे पुकारते हैं।

सन् १९१९ के वादसे राजेन्द्रवावूने अपनी हजारों रुपये मासिक आयकी वकालत-पर लात मारकर राष्ट्रीय आन्दोलनमें जो भाग लिया है, वह देश-भरमें विदित है। सत्याग्रह आन्दोलनमें देशमें सवसे अव्वल नम्वर वम्वई प्रान्तका रहा, जहाँ स्वयं महात्माजी काम कर रहे थे, तो दूसरा नम्वर विहारने पाया। विहारकी इस सफलताका अधिकांश श्रेय राजेन्द्रवावूको है।

राजेन्द्रवावूका हालका सवसे महान् कार्य भूकम्प-पीड़ित विहारको सहायता पहुँचाना है। इतने लम्वे-चौड़े रिलीफके कामका संगठन करना कोई हँसी-खेल नहीं है। फिर भी राजेन्द्रवावूकी अध्यक्षतामें भूकम्पकी सेन्ट्रल रिलीफ कमेटीने जैसी तत्परता और लगनके साथ काम किया है, उसकी कांग्रेसके विरोधियोंतकने भी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। यह राजेन्द्रवावूके नामका जादू ही था, जिसपर देशने निस्संकोच होकर २८,००,००० रुपयेका फंड जमा कर दिया था। यदि वायसरायने अपना अलग फंड कायम न किया होता,

तो यह निश्चय था कि राजेन्द्रबाबूका भूकम्प रिलीफ फंड आसानीसे पचास-साठ लाख तक पहुँच जाता।

राजेन्द्रबाबूकी शक्ल-सूरतमें कोई विशेष आकर्षण नहीं है। आकर्षण तो दूर रहा, उलटे उनकी शक्ल-सूरत करुणोत्पादक जान पड़ेगी। कमजोर शरीर, गांधी टोपीके नीचे सिरसे सटाकर कटे हुए छोटे-छोटे बाल, लम्बी नाक, बड़ी-बड़ी किन्तु बिखरी हुई बेतरतीब मूछें, खद्दरका कुर्ता-धोती, दमेकी पुरानी बीमारीसे कुछ भर्राई-सी आवाज—ये सब चीजें उनके बाह्य रूपको एक प्रकारसे दयनीय बना देती हैं।

परन्तु उस खद्दरकी टोपीसे ढके हुए मस्तिष्कमें अनोखी बुद्धिमत्ता है। उन कोटरोंमें धँसी हुई आँखोंमें वह ज्योति है, जो देशके उज्ज्वल भविष्यको देख सकती है। उन बिखरी मूछोंके नीचेके ओठोंसे निकलनेवाली भर्राई-सी आवाजमें सचाईकी मिठास और जबरदस्त दृढ़ता है। उनकी दमेसे पीड़ित प्रत्येक साँस राष्ट्रके हितके लिए और जनताके परोपकारके लिए उत्सर्ग है। उनकी दुर्बल भुजाओंमें वह शक्ति है, जो वर्षोंसे संसारकी सबसे शक्ति-शाली शक्तिसे लोहा ले रही है। उनके सूखे चेहरेपर उच्च-चरित्रकी छाप है, और उस दुर्बल शरीरमें निवास करनेवाली आत्मा ऐसी महान् है, जिसपर कोई भी देश गर्व कर सकता है।

इन सबके साथ-साथ उनमें बच्चोंका-सा भोलापन, स्फटिक-सी पारदर्शी निष्कपटता, कुन्दन-सी खरी ईमानदारी, तथा विरोधियोंके प्रति भी उदारता है, और है अतुलनीय विनम्रता—वह विनम्रता जो कविके शब्दोंमें—

'झुकाती है हमारी आजिजी सरकशकी गर्दनको।'

: २ :

अदृश्य घाव

एक दिन बड़े तड़के सुप्रसिद्ध डॉक्टर महोदय चारपाईसे भी न उठे थे कि एक मरीजने दरवाजा आ खटखटाया। उसने कहा कि उसकी दशा ऐसी थी, जिसके लिए एक मिनटका विलम्व भी नहीं किया जा सकता, अतः डॉक्टर साहबको उसे फौरन देखना चाहिये। डॉक्टरने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और बैरेको वुलाकर कहा—"मरीजको अन्दर आने दो।"

जो व्यक्ति भीतर आया, उसका चेहरा देखनेसे मालूम होता था कि वह समाजकी सर्वोच्च श्रेणीका है। उसका पीला चेहरा और आकुलतापूर्ण व्यवहार उसकी शारीरिक यन्त्रणाका भेद प्रकट कर रहे थे। उसका दाहिना हाथ गलेसे लटकती हुई कपड़ेकी पट्टीमें झूल रहा था। यद्यपि वह अपनी आकृतिको वसमें रखनेकी कोशिश कर रहा था, फिर भी रह-रहकर उसके मुखसे एक दर्दभरी कराहनेकी आवाज़ निकल जाती थी।

"कृपया वैठ जाइये। कहिये, आपको क्या तकलीफ है?"

"मैं एक हफ्तेसे सो नहीं सका। मेरे दाहिने हाथमें कुछ तकलीफ है। पहले तो इससे मुझे कुछ विशेप परेशानी नहीं थी, मगर हालमें इसमें जलन होने लगी है। तवसे मुझे एक क्षण भी कल नहीं पड़ी। वड़ा भयानक दर्द होता है। घंटे-घंटेपर यह दर्द वढ़ता जाता है और अधिकाधिक यन्त्रणापूर्ण और असह्य होता जाता है। इसके मारे मैं पागल हो जाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि इसे आप जला डालिये या काट डालिये अथवा कुछ और कीजिये।"

डॉक्टरने दिलासा देते हुए कहा कि शायद आपरेशन करनेकी जरूरत न पड़ेगी।

"नहीं, नहीं", उस आदमीने जिदसे कहा—"इसका आपरेशन तो करना ही पड़ेगा। मैं खास तौरपर इसीलिए आया हूँ कि इस रोगी अंशको काटकर निकाल दूँ। और किसी उपायसे कुछ न होगा।"

उसने काफी प्रयत्नसे पट्टीमेंसे हाथ निकाला, और कहा—"एक वात आपसे कह दूँ। अगर आपको मेरे हाथमें कोई दृश्य घाव या क्षत न दिखाई दे, तो आपको आश्चर्य न करना चाहिये, क्योंकि मेरी वीमारी असाधारण है।"

डॉक्टरने मरीजको विश्वास दिलाया कि वह असाधारण चीजोंको देखकर आश्चर्य नहीं किया करता। फिर हाथ देखकर उसने अत्यन्त आश्चर्यसे हाथ छोड़ दिया, क्योंकि उसमें कुछ भी गड़वड़ी नहीं दिखाई देती थी। वह विलकुल वैसा ही दिखाई देता था, जैसा अन्य किसी भले-चंगे का हाथ। उसके रंगमें भी कोई फर्क नहीं था, मगर यह बात भी प्रत्यक्ष थी कि मरीज़ वड़ी भयंकर पीड़ासे व्यथित था; क्योंकि जब डॉक्टरने उसके हाथको

छोड़ा, तब उसने जिस व्याकुलताके साथ उसे अपने बाएँ हाथसे पकड़ा, उसने उसकी व्यथाको प्रत्यक्ष रूपसे प्रदर्शित कर दिया।

"इसमें आपको कहाँ दर्द मालूम होता है ?"

उसने दो बड़ी नसोंके बीचमें एक गोल स्थानको इंगित किया, मगर जब डॉक्टरने सतर्कताके साथ उस स्थानको अपनी उंगलीके सिरेसे छुआ, तो उसने अपना हाथ खींच लिया।

"क्या यहीं पीड़ा होती है ?"

"हाँ, बड़ी भयंकर।"

"जब मैं वहाँ उँगली रखता हूँ, तब आपको बोझा मालूम होता है ?"

आदमी जवाब न दे सका, मगर उसकी आँखोंमें छलछलाये हुए आँसुओंने उसकी कथा कह दी।

"यह बड़ी अनोखी बात है। मुझे तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।"

"न मुझे ही कुछ दिखाई पड़ता है, मगर दर्द तो जहाँका तहाँ है। मैं तो इस दर्दको सहन करनेकी अपेक्षा मर जाऊँगा।"

डॉक्टरने उसे फिर एक सिरेसे देखा, खुर्दबीनसे देखा, उसका टेम्परेचर लिया और अन्तमें सिर हिलाकर कहा—"खाल बिलकुल स्वस्थ है। नसें बिलकुल स्वाभाविक हैं, किसी तरहकी सूजन या वरम नहीं है। यह तो ऐसा ही स्वाभाविक है, जैसा कोई भी स्वाभाविक हाथ हो सकता है।"

"मैं समझता हूँ कि उस स्थानपर कुछ जरा-सा अधिक लाल है।"

"कहाँ ?"

आगन्तुकने अपने हाथपर एक पैसेके बराबरकी गोल जगह दिखाते हुए कहा—"यहाँ।"

डॉक्टरने उसकी ओर देखा। वह अपने मनमें सोचने लगा कि उसे शायद एक पागल-से काम पड़ा है।

"आपको शहरमें ठहरना पड़ेगा। मैं अगले दो-चार दिनमें आपकी सहायता करनेकी कोशिश करूँगा।"

"मैं एक मिनट भी नहीं ठहर सकता। डॉक्टर साहब, यह न समझिये कि मैं पागल हूँ अथवा मुझे किसी तरहका खब्त है। यह अदृश्य घाव मुझे बड़ी भयंकर पीड़ा दे रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप इतने गोल हिस्सेको हड्डीतक काटकर निकाल दीजिये।"

"जनाब, मैं यह नहीं करनेका।"

"क्यों नहीं ?"

"क्योंकि आपके हाथमें कोई खराबी नहीं है। वह ऐसा ही स्वस्थ है, जैसा मेरा हाथ।"

"जान पड़ता है कि आप समझते हैं कि मैं पागल हूँ, अथवा आपको धोखा दे रहा हूँ।" यह कहकर उसने जेबसे थैली निकालकर एक हजार रुपयेका नोट मेजपर रख दिया, और

कहा—"आप देखते हैं, मैं सचमुच यथार्थतापूर्वक कहता हूँ । मेरे लिए यह इतना जरूरी है कि मैं इसके लिए हजार रुपये देनेके लिए तैयार हूँ । कृपा करके आपरेशन कर दीजिये ।"

"अगर आप समस्त संसारका धन भी मुझे दे डालें, तो भी मैं किसी स्वस्थ अंगको अपने नश्तरसे नहीं छूनेका ।"

"क्यों नहीं ?"

"क्योंकि यह हमारी व्यावसायिक नीतिके अनुकूल नहीं है। समस्त संसार आपको वेवकूफ कहेगा और मुझपर आपकी कमजोरीसे अनुचित लाभ उठानेका दोष लगावेगा, अथवा यह कहेगा कि मैं एक ऐसे घावका भी निदान नहीं कर सका, जिसका कहीं अस्तित्व ही न था ।"

"वहुत अच्छा, साहव ! तव मैं आपसे एक-दूसरी कृपा करनेकी प्रार्थना करूँगा । मैं स्वयं अपने ही हाथसे आपरेशन कर लूँगा, यद्यपि मेरा वायाँ हाथ ऐसी वातोंके लिए कुछ अनभ्यस्त है । मैं आपसे केवल यही चाहूँगा कि आपरेशन कर लेनेके वाद आप मेरी खवरदारी करें ।

डॉक्टरने आश्चर्यसे देखा कि वह व्यक्ति सचमुच ही वहुत गम्भीरतासे वात कर रहा था । देखते-ही-देखते उस आदमीने अपना कोट उतार डाला, आस्तीन उलट ली और अन्य कोई औजार न होनेसे जेवसे अपना चाकू भी निकाला । इसके पहले कि डॉक्टर कुछ हस्तक्षेप कर सके उसने अपने हाथमें एक गहरा जख्म कर लिया ।

"ठहरो" डॉक्टरने चिल्लाकर कहा । उसे डर हुआ कि कहीं रोगी अपनी कोई रग न काट ले ।—"जव तुम्हारा विश्वास है कि आपरेशन होना ही चाहिये तो मैं कर दूँगा ।"

उसने आपरेशनकी तैयारी की । जव वास्तविक काटना आरम्भ हुआ, तो डॉक्टरने मरीजसे मुंह फेर लेनेके लिए कहा, क्योंकि वहुतसे आदमी अपना रुधिर देखकर घवरा जाते हैं ।

"इसकी विलकुल जरूरत नहीं है । मैं आपको वतलाता जाऊँगा कि कहाँतक काटना चाहिये ।"

आगन्तुकने वड़ी उदासीनतासे आपरेशनको सहन किया, वल्कि वतला-वतलाकर डॉक्टरकी मदद भी की । उसका हाथ जरा भी नहीं काँपा । जव वह गोल जगह काटकर निकाल दी गयी, तव उसने आरामकी एक दीर्घ साँस छोड़ी, मानो उसके सिरसे कोई भारी वोझ उतर गया हो ।

"अव तो आपको कोई दर्द नहीं मालूम होता ?" डॉक्टरने पूछा ।

"विलकुल नहीं", उसने मुसकराते हुए जवाव दिया—"ऐसा मालूम होता है, जैसे दर्द ही काटकर निकाल दिया गया हो । काटनेसे जो थोड़ी टीस मालूम होती है, वह भी ऐसी जान पड़ती है, जैसे वहुत गर्मीके वाद ठंडी हवाका झोंका । खून निकलने दीजिये । इससे मुझे आराम पहुँचता है ।"

जब घावपर पट्टी बँध चुकी, तब आगन्तुक प्रसन्न और सन्तुष्ट दिखाई पड़ने लगा। अब तो वह बिलकुल बदला हुआ व्यक्ति जान पड़ने लगा। उसने कृतज्ञतासे अपने बाएँ हाथसे डॉक्टरका हाथ दबाया।

"मैं सचमुच आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ।"

आपरेशनके कई दिन बाद तक डॉक्टर मरीजको उसके होटलमें देखनेके लिए जाता रहा। अब डॉक्टर उसे बड़े आदरसे देखता था। क्योंकि वह व्यक्ति देशमें बहुत उच्च श्रेणीका था। वह पढ़ा-लिखा और सुसंस्कृत था तथा उस अंचलके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित परिवारका था।

जब घाव बिलकुल अच्छा हो गया, तब मरीज अपने घर लौट गया।

तीन सप्ताह बाद मरीज फिर डॉक्टरके दवाखानेमें आ मौजूद हुआ। उसका दाहिना हाथ फिर उसी तरह पट्टीमें झूल रहा था, और उसने ठीक उसी स्थानपर उसी प्रकारके यन्त्रणापूर्ण दर्दकी शिकायत की, जैसा आपरेशनके पूर्व था।

उसका चेहरा मोमकी तरह पीला हो रहा था और भौंहोंपर ठंडे पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। वह बिना एक शब्द कहे आरामकुर्सीपर गिर पड़ा और उसने डॉक्टरको दिखानेके लिए हाथ बढ़ा दिया।

"हे ईश्वर! क्या हुआ?"

उसने कराहते हुए उत्तर दिया—"आपने काफी गहरा नहीं काटा था। दर्द फिर लौट आया। अबकी बार पहलेसे भी खराब है। मैं तो करीब-करीब हो बीता। मैं आपको तकलीफ नहीं देना चाहता था, इसलिए सहता रहा, मगर अब अधिक नहीं बरदाश्त कर सकता। आप फिरसे आपरेशन कीजिये।"

डॉक्टरने उस स्थानकी परीक्षा की, जहाँ उसने नश्तर लगाया था। वह स्थान बिलकुल अच्छा हो गया था। वहाँ नयी खाल चढ़ी हुई थी। एक भी रग हिली-डुली नहीं जान पड़ती थी। नाड़ी बिलकुल स्वाभाविक थी। ज्वर बिलकुल नहीं था, फिर भी उसका अंग-अंग काँप रहा था।

"मैंने पहले कभी इस प्रकारकी कोई बात न देखी, न सुनी।"

फिरसे आपरेशन करनेके सिवा और कोई उपाय ही नहीं था। आपरेशन किया गया और सब बातें अच्छी तरह समाप्त हो गयीं। दर्द बन्द हो गया। यद्यपि मरीजको बहुत आराम बोध हुआ, परन्तु इस बार वह मुस्करा नहीं सका। इस बार उसने डॉक्टरको जो धन्यवाद दिया, वह दुःखपूर्ण मरी-सी आवाजमें था।

विदा होते समय उसने कहा—"आप आश्चर्य न करें, यदि एक महीनेमें मैं फिर वापस आऊँ।"

"आप इसका खयाल ही न कीजिये।"

"यह तो ऐसा निश्चित है, जैसे स्वर्गमें ईश्वरका होना। अच्छा, प्रणाम।"

डॉक्टरने अपने कई सहयोगियोंसे इस विषयका जिक्र किया। उनमेंसे प्रत्येकने इसपर पृथक् सम्मति प्रकट की, परन्तु कोई भी सन्तोषजनक समाधान न बतला सका।

एक मास वीत गया, मगर मरीज फिर नहीं आया। और भी कई सप्ताह वाद मरीज तो नहीं आया। हाँ, उसके वासस्थानसे एक पत्र आया। डॉक्टरने यह सोचकर कि अव फिर दर्द नहीं उठा होगा, प्रसन्नतासे चिट्ठीको खोला। चिट्ठी इस प्रकार थी—

"प्रिय डॉक्टर साहव,

मैं अपने दर्दके मूल कारणके विषयमें आपको संशयमें नहीं रखना चाहता और न यह चाहता हूँ कि मेरा गुप्त भेद मेरे ही साथ मेरी कब्रमें चला जाय। मैं आपको अपनी इस भयंकर वीमारीके इतिहाससे परिचित करना चाहता हूँ। यह अवतक तीन वार लौट चुकी है। मैं और आगे इसके साथ लड़ना नहीं चाहता। मैं यह पत्र लिखनेके योग्य इसीलिए हो सका हूँ कि मैंने अपने हाथमें उस स्थानपर एक जलता हुआ कोयला रख लिया है, जिससे भीतर होनेवाली उस नारकीय ज्वालाका कुछ उपशम हो सके।

"छः मास पूर्व मैं बड़ा ही सुखी था। मैं धनी था, सन्तुष्ट था और पैंतीस वर्षकी आयुवाले व्यक्तिको जितनी वातें रुच सकती हैं, उन सवमें मुझे आनन्द मिलता था। मैंने एक वर्ष पूर्व विवाह किया था। यह विवाह-सम्वन्ध प्रेमका सम्वन्ध था। एक वड़ी सुन्दरी, दयालु और सुसंस्कृत रमणी मेरी पत्नी थी। वह पहले एक काउन्टेसकी सहेली थी, जो मेरी जमींदारीसे अधिक दूर नहीं रहती। वह मुझे प्यार करती थी और उसका हृदय कृतज्ञतासे लवालव भरा था। छः मास वड़े सुखसे वीते। प्रत्येक दिन पिछले दिनसे अधिक आनन्द प्राप्त होता था। जव मैं शहर जाता और वहाँसे लौटता, तो वह मीलों पैदल चलकर मुझे लेनेके लिए आती थी। वह अपनी पहली मालकिनके यहाँ भी, जहाँ वह वहुधा जाया करती थी, दो-चार घंटेसे अधिक न ठहरती थी। मेरे प्रति उसका अत्यधिक अनुराग देखकर उसके साथके अन्य व्यक्तियोंको अकचकाहट होती थी। वह कभी किसी अन्य पुरुषके साथ नाचती न थी, और यदि स्वप्नमें किसी अन्य पुरुषको देखती, तो उसे पाप कहकर स्वीकार करती। वह एक सुन्दर निष्पाप वालिका-सी थी।

"मैं नहीं कह सकता कि वह कौन-सी वात थी, जिससे मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि उसका यह सव प्रेम दिखावटी वहाना मात्र था। मनुष्य इतना मूढ़ होता है कि वह अपने सवसे वड़े आनन्दमें भी दुःख ढूँढ़ता है।

"उसकी एक छोटी सीने-पिरोनेकी मेज थी, जिसकी दराजको वह सदा तालेसे वन्द रखती थी। यह वात मुझे परेशान रखने लगी। मैंने वहुधा यह देखा कि वह कभी न तो उस दराजको खुला ही छोड़ती थी और न कभी उसमें ताली ही लगी छोड़ती थी। ऐसी कौन-सी चीज है, जिसे वह इतनी सावधानीसे छिपाकर रखती है? मैं ईर्ष्यासे पागल हो उठा। उसकी निर्दोष आँखों, उसके चुम्वनों और प्रेमभरे आलिंगनोंको मैं अविश्वासकी दृष्टिसे देखने लगा। शायद ये सव धूर्ततापूर्ण धोखेवाजी थी।

"एक दिन काउन्टेस मेरी स्त्रीको वुलानेके लिए आयी। उसने मेरी स्त्रीको दिनभर अपने घर रहनेके लिए राजी भी कर लिया। मैंने भी वादा किया कि तीसरे पहर मैं भी काउन्टेसके यहाँ चला आऊँगा।

"उन दोनोंकी गाड़ी मुश्किलसे अहातेके बाहर निकली होगी कि मैं उस सीने-पिरोनेवाली मेजकी दराज खोलनेकी चेष्टा करने लगा। मैंने अनेक चाबियाँ लगायीं, जिनमेंसे एकसे अन्तमें वह खुल ही गयी। उसमें स्त्रियोंकी प्रत्येक छोटी-मोटी चीजोंको बिथूनते हुए मुझे रेशममें बँधा हुआ पत्रोंका एक बंडल मिला। कोई भी उन्हें एक नजरसे देखकर ही पहचान सकता था। अवश्य ही वे प्रेमपत्र थे। वे एक गुलाबी फीतेमें बँधे थे।

"मैं यह सोचनेके लिए भी नहीं रुका कि इस प्रकार अपनी स्त्रीकी कौमार्य-अवस्थाकी गुप्त बातोंको चुराकर जानना अनुचित है। मेरे अन्तरमें जैसे कोई मुझे यह काम करनेका आदेश दे रहा हो—कौन जानता है कि ये पत्र उसकी बाल्यावस्थाके न हों, बादके हमलोगोंके विवाहके पश्चात्के हों? मैंने फीता खोल डाला और एकके बाद एक सब पत्रोंको पढ़ा।

"वह घड़ी मेरे जीवनकी सबसे भयंकर घड़ी थी।

"उन पत्रोंसे किसी पतिके विरुद्ध जो सबसे अक्षम्य विश्वासघात हो सकता है, प्रकट हो रहा था। वे पत्र मेरे एक अत्यन्त घनिष्ठ मित्रके लिखे हुए थे। और उसकी ध्वनि... उनसे अत्यन्त प्रेमपूर्ण आत्मीयता और अत्यन्त गहरी आसक्ति टपक रही थी। लेखकने अपनी प्रेमिकासे किस प्रकार सब बातोंको गुप्त रखनेकी ताकीद की है। उसने मूर्ख पतियोंके लिए क्या कहा है? अपने पतिको अन्धेरेमें रखनेके लिए उसने उसे क्या-क्या उपदेश दिये हैं। उन पत्रोंमेंसे प्रत्येक हमारे विवाहके बादका लिखा हुआ था। और उसपर मैं अपनेको सबसे अधिक सुखी समझता था। मैं अपने मनके भावोंको नहीं बतलाना चाहता। मैं उन पत्रोंके हलाहलकी अन्तिम बूँदतक पी गया। तब मैंने उन्हें फिर ज्यों-का-त्यों बाँधकर उनके गुप्त स्थानको लौटा दिया और दराजमें पहलेकी भाँति ताला बन्द कर दिया।

"मैं जानता था कि यदि मैं काउन्टेसके यहाँ नहीं जाऊँगा, तो मेरी स्त्री अवश्य ही शामको लौट आयेगी। हुआ भी ठीक यही। वह बड़ी प्रसन्नतासे गाड़ीसे फुदककर नीचे उतरी और दौड़कर बरामदेमें मुझसे लिपट गयी। उसने अत्यन्त मधुर चुम्बनों और आलिंगनोंसे मेरा स्वागत किया। मैंने भी ऐसा रूप धारण किया, मानो कोई अनहोनी बात ही न हुई हो।

"हमलोग गपशप करते रहे, साथ-साथ भोजन किया और रोजकी भाँति अपने-अपने कमरोंमें सोनेके लिए गये। इस बीचमें मैंने एक कार्यक्रम ठीक किया, जिसे मैंने उन्मत्त व्यक्तिकी-सी दृढ़ताके साथ पूरा करनेका निश्चय कर लिया। आधी रातको मैं उसके कमरेमें घुसा। वह सो रही थी। उसके सुन्दर निष्पाप चेहरेको देखकर मैंने अपने मनमें कहा कि प्रकृति भी कैसी धोखेबाज है, ऐसे सुन्दर चेहरेके भीतर इतना पाप भर देती है। उन पत्रोंके हलाहलने मेरे हृदयमें अपना पूरा प्रभाव कर लिया, और उससे मेरे शरीरकी नस-नस जल रही थी। मैंने बिना आवाजके अपना दाहना हाथ उसकी गर्दनपर रख दिया और उसे अपनी समस्त शक्तिसे दबाया। उसने एक क्षणके लिए अपनी आँखें खोल दीं। मुझे चकित दृष्टिसे देखा, फिर उसने नेत्र बन्द कर लिये और वह संसारसे विदा हो गयी। वह आत्म-रक्षाके लिए हिली-डुलीतक नहीं, बल्कि ऐसे शान्तिपूर्वक मर गयी,

मानो वह स्वप्न देखती हो । उसके मनमें मेरे प्रति किसी प्रकारका—उसकी हत्या करनेके लिए भी—द्वेष नहीं था । उसके ओठोंके बीचसे रक्तकी एक बूंद निकली और मेरे हाथ पर गिर पड़ी । आप वह जगह जानते ही हैं, जहाँ वह बूंद गिरी थी । मैंने तो उसे सवेरे देखा, जब वह सूख चुकी थी । हमलोगोंने उसे विना दिक्कतके गाड़ दिया । मैं देहातमें अपनी निजी जमींदारीपर रहता हूँ । वहाँ कोई वड़े अफ़सर नहीं रहते, जो किसी प्रकारकी पूछ-ताछ करते । इसके अतिरिक्त वह मेरी पत्नी थी, इसलिए किसीको यह खयाल भी नहीं हो सकता था कि इसमें भी कुछ सन्देहकी वात है । उसके न तो कोई रिश्तेदार ही थे और न कोई मित्र, अतः मुझे किसी प्रकारकी जवावदेही भी नहीं करनी पड़ी । मैंने जान-बूझकर उसके मरनेका समाचार उसके अन्तिम संस्कारके वाद ही भेजा था, जिससे दूसरोंके आने-जाने आदिसे वच सकूँ ।

"मुझे अपने इस कामके लिए किसी प्रकारकी आत्म-ग्लानि भी नहीं मालूम हुई । मैंने बड़ी क्रूरताका कार्य किया था, परन्तु वह इसकी अधिकारिणी थी । मैं उससे घृणा नहीं करता था । मैं उसे आसानीसे भूल सकता था । किसी भी हत्यारेने अपना काम ऐसी उदासीनतासे न किया होगा, जैसा मैंने किया ।

"जैसे मैं लौटकर आया, वैसे ही काउन्टेसकी गाड़ी आकर रुकी । वह अन्तिम संस्कारमें सम्मिलित होनेके लिए आयी थी, परन्तु उसे देर हो गयीं थी, और मैं चाहता भी यही था । वह बहुत अधिक घवड़ाई हुई-सी दीख पड़ती थी । इस अप्रत्याशित समाचारकी भयंकरताने उसे प्रायः गुम-सुम-सा वना दिया था । वह एक विचित्र ढंगसे वोल रही थी । उसने मुझे सान्त्वना देनेकी चेष्टा की, परन्तु उसकी वातोंका अर्थ ही समझ में न आया । एक वात यह भी है कि मैंने उसकी बातोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, क्योंकि मुझे किसी प्रकारकी सान्त्वनाकी आवश्यकता ही नहीं थी । तब उसने आत्मीयताके साथ मेरा हाथ पकड़कर कहा—"मैं आपसे कुछ भेदकी वात कहना चाहती हूँ, और आशा करती हूँ कि आप उसका कोई अनुचित लाभ न उठावेंगे ।"

"फिर उसने कहा—"मैंने आपकी स्वर्गीय पत्नीको पत्रोंका एक वण्डल दिया था । वे पत्र कुछ ऐसे ढंगके थे, जिन्हें मैं अपने घरमें नहीं रख सकती थी । क्या आप कृपा करके वे पत्र मुझे लौटा देंगे ?" जिस समय वह यह वातें कह रही थी, मुझे ऐसा मालूम होता था कि मेरे अंग-अंगमें लकवा मार गया हो । मैंने अपनेको शान्त रखनेकी चेष्टा करके पूछा—"उन पत्रोंमें क्या है ?" वह इस प्रश्नपर काँपने लगी और बोली—"आपकी पत्नीके समान स्वामिभक्त और विश्वसनीय दूसरी स्त्री मैंने संसारमें नहीं देखी । उसने मुझसे यह कभी नहीं पूछा कि उन पत्रोंमें क्या है । इतना ही नहीं, वल्कि उसने यह प्रतिज्ञा भी की थी कि वह कभी उन पत्रोंपर नज़र भी न डालेगी ।'

"वह आपके पत्र कहाँ रखती थी ?'

"उसने मुझसे कहा था कि वह उन्हें ताले-कुंजीके अन्दर अपनी सीनें-पिरोनेकी मेजमें रखती है । वे एक गुलावी फीतेमें वँधे हैं । आप उन्हें आसानीसे पहचान जायँगे । कुल तीस पत्र हैं ।"

"मैं उसे उस कमरेमें ले गया, जहाँ वह मेज रखी थी। वहाँ मैंने दराज खोली और बंडल निकालकर उसे दे दिया—"यही चिट्ठियाँ हैं?"

"उसने उत्सुकतासे हाथ बढ़ा दिया। मेरी हिम्मत न पड़ी कि मैं अपनी आँखें ऊँची करूँ, सम्भव है कि वह उनसे कोई बात जान ले। वह जरा ही देरमें चली गयी।

"उसके अन्तिम संस्कारके ठीक एक सप्ताह बाद मेरे हाथमें उस स्थानपर, जहाँ उस भयंकर रातमें वह रक्तकी बूँद गिरी थी, बड़ी मर्मान्तक पीड़ा उठ खड़ी हुई। आगे जो कुछ हुआ, उसे आप जानते ही हैं। मैं जानता हूँ कि यह केवल आत्म-प्रतारणाके सिवा और कुछ नहीं है। फिर भी मैं उससे किसी प्रकार छुटकारा नहीं पा सकता। जिस जल्दबाजी और निर्दयतासे मैंने अपनी निर्दोष, सुन्दरी पत्नी की हत्या की है, यह उसीका दण्ड है। मैंने अब इस पीड़ासे लड़ना छोड़ दिया। मैं अपनी प्राणप्यारीके पास जा रहा हूँ और वहाँ उससे क्षमा याचनाकी चेष्टा करूँगा। वह निश्चय ही मुझे क्षमा कर देगी। वह मुझसे फिर वैसा ही प्रेम करेगी, जैसा वह जीवित अवस्थामें करती थी। डॉक्टर साहब, आपने मेरे लिए जो कुछ किया है, उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।"

(एक हंगेरियन कहानीका अनुवाद)

: ३ :

स्वर्गीय सतीशचन्द्र राय

स्वर्गीय सतीशचन्द्र रायकी मृत्युसे बंगभाषा और संस्कृतका एक महान् विद्वान् तथा बंगालमें हिन्दीका एक बड़ा हिमायती उठ गया। पिछली अर्द्ध शताब्दीमें देशमें पाश्चात्य सभ्यता और पाश्चात्य विचारोंकी एक ऐसी बाढ़ आयी, जिसने देशकी अच्छी-बुरी सभी वस्तुओंको एकबारगी नष्ट कर डालनेकी चेष्टा की। यह बाढ़ हमारे जीवन के प्रत्येक मार्गमें—राजनीति, समाज, साहित्य आदि प्रत्येक वस्तुमें—दृष्टिगोचर होती थी। देश-भरमें सुधार, परिवर्तन और क्रान्तिका बोलबाला था। साहित्य-क्षेत्रमें भी नये विचारों-का सूत्रपात हुआ। कविताने नया रूप धारण किया, परन्तु इस परिवर्तनमें सबसे बुरी बात यह थी कि नवीन सुधारवादी किसी भी पुरानी चीजकी उत्कृष्टता और सौष्ठवको स्वीकार करनेके लिए तैयार न थे। मध्य युगमें देशमें हिन्दी, बंगला आदि भाषाओंमें वैष्णव कवियोंने बड़ी सुन्दर, बड़ी सरल और बड़ी कोमल कविता की थी। नवीन विचार-वालोंने अपने नये जोशमें इस कविताकी भी पूरी उपेक्षा की। बंगालमें इस वैष्णव-कविता-को पुनः जीवित करनेका श्रेय अधिकांशमें स्वर्गीय सतीशचन्द्र रायहीको है।

राय महाशयका जन्म ढाका जिलेमें एक प्रतिष्ठित जमींदार ब्राह्मण-कुलमें हुआ था। उन्होंने ढाकामें एफ० ए० तक शिक्षा पायी थी, फिर कलकत्ता आकर बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाएँ बड़ी योग्यतापूर्वक पास कीं। आरम्भहीसे वे बंगला और संस्कृतमें बड़े तेज थे। बी० ए०की परीक्षामें वे द्वितीय हुए थे और एम० ए० की परीक्षा में—जो उन्होंने संस्कृतमें दी थी—वे विश्वविद्यालयमें प्रथम हुए थे, और उन्हें 'सोनामणि-पुरस्कार' भी मिला था। कुछ दिनोंतक उन्होंने अध्यापनका कार्य किया, मगर यह देखकर कि उससे उनके अध्ययनमें बाधा पहुँचती है, उन्होंने नौकरी छोड़ दी और संस्कृत तथा प्राचीन साहित्यकी खोज एवं अध्ययनमें लग गये।

उन्होंने वैष्णव-पदावलीके अध्ययनमें सारा जीवन व्यतीत कर दिया। पिछले चालीस वर्षसे वे वैष्णव-साहित्यका अध्ययन और प्रकाशन कर रहे थे। सबसे पहले उन्होंने 'पदकल्पतरु' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया, जिसमें डेढ़ सौसे अधिक वैष्णव कवियोंके रचे हुए तीन हजारसे अधिक पद संगृहीत हैं। साहित्य-परिषद् द्वारा प्रकाशित पदावली-के प्रकाशनके पूर्व वैष्णव-पदावलियोंका सबसे अच्छा संस्करण यही था।

उसी समय राय महाशयने कालिदासके अमर काव्य 'मेघदूत', जयदेवके 'गीतगोविन्द' और भानुदत्तकी 'रसमंजरी'का बंगला-पद्यमें अनुवाद प्रकाशित कराया। ये अनुवाद बहुत पसन्द किये गये। सबने उनकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की। चटगाँव-साहित्य-सम्मेलनके

सभापति स्व० अक्षयकुमार सरकारने अपने सभापतिके भाषणमें 'गीतगोविन्द'के सम्वन्धमें कहा था—"यह सर्वोत्कृष्ट संस्करण है। इसकी भूमिका आश्चर्यजनक है। इसके अनुवाद-सम्पादकका प्रयास पूर्ण सफल हुआ है। अनुवादकने जयदेवके आक्रमणकारियोंको हतप्रभ कर दिया है।"

सन् १९२० में राय महाशयने 'अप्रकाशित पद-रत्नावली' प्रकाशित की। उसमें अत्यन्त सुन्दर ६०० अप्रकाशित पद, कई तालिकाएँ, एक विद्वत्तापूर्ण भूमिका और कठिन शब्दोंका अर्थ आदि था। यह पुस्तक ढाका युनिवर्सिटीमें बी० ए०की पाठ्य-पुस्तकोंमें नियत की गयी थी। इस पुस्तककी एक प्रति कवीन्द्र रवीन्द्रनाथके पास भेजी गयी थी। उसकी प्राप्ति-स्वीकार करते हुए कवीन्द्रने लिखा था—"आपने वैष्णव-साहित्यके सम्पादन और प्रकाशनमें जो परिश्रम, खोज और दक्षता दिखलायी है, उसने बंगला-साहित्यको अत्यन्त लाभ पहुँचाया है। इस विषयमें आपके श्रेयको सभी साहित्य-प्रेमी स्वीकार करेंगे।"

राय महाशयका वंगीय साहित्य-परिषद्से पुराना सम्बन्ध था। वे 'परिषद्-पत्रिका' के स्थायी लेखक थे। उन्होंने समय-समयपर इस पत्रिकामें प्राचीन वैष्णव कवियोंपर बड़े पांडित्यपूर्ण लेख लिखे थे। उन्होंने नीमानन्ददास द्वारा संगृहीत 'पदरससार' नामक एक दुर्लभ ग्रन्थकी पाण्डुलिपि खोज निकाली थी। इस 'पदरससार'में प्राचीन वैष्णव कवियोंके पदोंका महत्वपूर्ण संग्रह है। उन्होंने सन् १९१३में पवनाके उत्तर-वंगीय-साहित्य-सम्मेलनमें इस पुस्तकपर एक निवन्ध भी पढ़ा था।

वंगीय साहित्य-परिषद्ने राय महाशयको 'पदकल्पतरु'का सम्पादन करनेके लिए आमन्त्रित किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह 'पदकल्पतरु' राय महाशयके पांडित्य और परिश्रमका ज्वलन्त उदाहरण है। यह वृहद् ग्रन्थ प्राचीन वैष्णव-पदावलियोंका प्रामाणिक संग्रह है। राय महाशयकी इस कृतिने तवतकके लिए उन्हें अमर कर दिया, जबतक बंगालमें वैष्णव-साहित्य पढ़ा जायगा। इस 'पदकल्पतरु'में विभिन्न कवियोंके पद हैं। भिन्न-भिन्न प्रतियोंमें जो पाठान्तर मिलता है, वह दिया गया है; कठिन पदोंके अर्थ दिये गये हैं और सदृश भाववाली संस्कृत, प्राकृत तथा अन्यान्य साहित्योंकी रचनाएँ उद्धृत की गयी हैं। यद्यपि यह कार्य १७ वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ था, परन्तु अबतक केवल चार खण्ड ही प्रकाशित हो सके हैं। पाँचवाँ और अन्तिम भाग प्रेसमें छप रहा है। इस भागमें कई अनुक्रमणिका और तालिकाओंके अतिरिक्त एक सहस्र नवीन खोजकर निकाले हुए पद हैं। इस महत्वपूर्ण कार्यके लिए राय महाशयको जो पारिश्रमिक मिला, वह तो केवल नाममात्रका था। वास्तवमें उन्होंने केवल साहित्य-सेवाके लिए ही यह महान् परिश्रम किया था। उन्होंने इसके लिए ऐसा कठोर परिश्रम किया कि उनका स्वास्थ्य एकदम विगड़ गया और वे वहुत बीमार पड़ गये।

'पदकल्पतरु'की समाप्तिके वाद वे विद्यापति. चंडीदास आदि कवियोंके प्रामाणिक ग्रन्थ तथा 'चैतन्य-चरितामृत' नामक प्रसिद्ध बंगला ग्रन्थका प्रामाणिक संस्करण निकालना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने मसाला एकत्रित करना आरम्भ कर दिया था।

राय महाशयने भवानन्द लिखित एक और 'हरिवंश' नामक प्राचीन ग्रन्थ खोज निकाला था। उन्होंने इस पुस्तकपर कई लेख भी लिखे। अन्तमें ढाका युनिवर्सिटीने राय महाशय द्वारा इस ग्रन्थको सम्पादित कराकर प्रकाशित करनेका निश्चय किया। इसकी छपाई प्रायः समाप्त हो चुकी है।

राय महाशयने पन्द्रह प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंके आधारपर 'गोपालचरित्रम्' नामक एक सुन्दर संस्कृत-काव्यका भी सम्पादन किया है, जो अभीतक अप्रकाशित पड़ा है। काव्य-माधुरीमें जयदेवके 'गीतगोविन्द'के वाद इसी 'गोपाल-चरित्रम्'का ही नम्बर होगा।

राय महाशय हिन्दी और उर्दू साहित्यसे भी वहुत अनुराग रखते थे। उन्होंने एक मौलवी रखकर उर्दू फारसी सीखी थी। अपने जीवनके पिछले कुछ वर्षोंमें हिन्दी-साहित्यमें उनका अनुराग वहुत वढ़ गया था। इसी वीचमें राय महाशयसे साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मासे मित्रता हो गयी, जिसके फलस्वरूप राय महोदयने वड़े ध्यानपूर्वक सूर, तुलसी, विहारी आदि कवियोंकी कृतियोंका अध्ययन किया। थोड़ी ही चेष्टासे वे हिन्दीमें विद्वत्ता-पूर्ण लेख लिखने लगे। उनके लेख 'सुधा', 'माधुरी', 'सम्मेलन-पत्रिका', 'विशाल भारत' आदि पत्रोंमें प्रकाशित हुए थे।

श्री सतीशचन्द्रजी प्रयागके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थायी समितिके भी सदस्य निर्वाचित हुए थे। वे वृन्दावन और भरतपुरके साहित्य-सम्मेलनोंमें सम्मिलित भी हुए थे। भरतपुरमें उन्होंने विद्यापतिपर एक सुन्दर निवन्ध पढ़ा था, जो 'विद्यापति और उनकी कविता'के नामसे पुस्तिकाके रूपमें सम्मेलन द्वारा प्रकाशित हुआ है। सम्मेलनने उनसे इस वातकी प्रार्थना की थी कि विद्यापतिकी कृतियोंके एक प्रामाणिक संस्करणका सम्पादन करें, परन्तु राय महाशयने कहा कि यह कार्य इतना वड़ा है कि एक व्यक्तिके किये नहीं हो सकता। उन्होंने सम्मेलनको इस वातका आश्वासन दिया कि वे इस कार्यमें सम्मेलनको यथासम्भव सहायता देंगे। उन्होंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा बंगीय साहित्य-परिषद्को यह वतलाया कि विद्यापतिका सुन्दर प्रामाणिक संस्करण निकालना कितना आवश्यक है। विलायतमें अनेक प्रसिद्ध कवियोंकी कृतियोंका अध्ययन, प्रकाशन और प्रसारके लिए 'चासर-सोसायटी', 'शेक्सपियर सोसायटी', 'ब्राउनिंग सोसायटी' आदि समितियाँ हैं। राय महाशयकी इच्छा थी कि इसी प्रकारकी एक 'विद्यापति-संजीवनी समिति' वनायी जाय। इस विषयपर 'विशाल भारत'में उनका एक लेख भी प्रकाशित हुआ था। साथ ही उन्होंने इस विषयपर वर्षोंतक अनेकों हिन्दी और बंगला पत्रोंमें लेख भी लिखे थे।

उन्होंने आजीवन संस्कृत-साहित्यका अध्ययन किया था। वे वड़ी जल्दी सुन्दर श्लोक वना लेते थे। उन्होंने संस्कृत-पद्योंका वंगला-पद्यमें जो उत्तम अनुवाद किया है, उससे उनकी काव्य-प्रतिभा प्रकट होती है।

अपने पिछले जीवनमें उन्हें दर्शन शास्त्रसे प्रेम हुआ, और उन्होंने पूर्व और पाश्चात्य दर्शन, भगवद्गीता और उपनिषदोंका अध्ययन किया। महर्षि द्विजेन्द्रनाथके दार्शनिक

लेख उन्होंने प्रेमसे पढ़े थे। लोकमान्य तिलकका 'गीता-रहस्य' उनके अन्तिम दिनोंका सर्वप्रिय ग्रन्थ था। अंग्रेजी दार्शनिकोंमें वे हर्वर्ट स्पेन्सरको अधिक पसन्द करते थे।

राय महाशय वहुभाषाविज्ञ थे। वे संस्कृत, प्राकृत, बँगला, हिन्दी, मैथिली, उर्दू और कुछ पर्शियन, गुजराती और उड़िया जानते थे।

अपने प्रारम्भिक जीवनमें उन्हें ऐतिहासिक खोज और पुरातत्वमें भी अनुराग था। उन्होंने 'श्रीहर्ष' तथा बंगालके राजा लक्ष्मणसेनपर वड़े सुन्दर लेख लिखे थे। उन्होंने भारतवर्षके हिन्दू-मन्दिरोंके स्थापत्य-शिल्पका भी गहरा अध्ययन किया था और उसपर एक लेखमाला प्रकाशित करनेके लिए मसाला भी संग्रह किया था।

राय महाशयको पूर्वीय और पश्चिमीय कलासे भी अनुराग था। वे चित्रकलामें श्रीअवनीन्द्रनाथ ठाकुरकी नवीन शैलीके पोषक थे। वे अंग्रेजी साहित्यके वड़े मार्मिक ज्ञाता थे। उन्हें फ्रेंच साहित्यसे भी प्रेम था। वे गेटेकी कृतियोंकी श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ तुलना किया करते थे। राय महाशयको फलित ज्योतिषमें भी रुचि थी। उन्होंने पूर्वीय और पाश्चात्य दोनों ही ज्योतिष शास्त्रोंका अध्ययन किया था। उन्हें संगीत भी प्रिय था। वे न केवल संगीतको वहुत अच्छी तरह समझते थे, वल्कि स्वयं भी वड़ा अच्छा तवला और मृदंग वजाते थे। अपने संगीतके ज्ञानसे उन्हें छन्दशास्त्रके अध्ययनमें वड़ी सहायता मिली थी। वे उच्चकोटिके आलोचक थे। वँगलामें वंकिमवावू और श्री रवीन्द्रनाथके वाद आलोचकोंमें शायद उन्हींका नम्वर था।

सन् १९३० में 'विशाल भारत'के अप्रैलके अंकको प्रकाशित हुए एक सप्ताह ही हुआ था कि अचानक एक दिन श्रीसतीशचन्द्र रायका निम्नलिखित पत्र मिला—

धामगढ़
पो० ढाकेश्वरी मिल,
ढाका, ३०—४—३०

"श्री हरि शरणम्

माननीय श्रीमान् 'विशाल-भारत' सम्पादक महाशय,

प्रिय सम्पादक जी,

आपका प्रेरित अप्रैल महीनाका 'विशाल-भारत' यथासमय मिला। यह कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है कि इस अंकके लेख और चित्र भी पूर्ववत् महत्वपूर्ण और सुन्दर निकले हैं। वरन् इसके 'सत्याग्रह-संग्राम', 'पटियाला नरेश के विरुद्ध भयंकर दोषारोपण', 'पूज्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीका सन्देश' इत्यादि कई सचित्र और चित्रहीन लेख ऐसे उमदा निकले हैं कि जिनकी तुलना आधुनिक मासिक साहित्यमें बहुत कम दीख पड़ती है। पूर्वोक्त पहले दो लेखोंके विषयमें अवतक साप्ताहिक और मासिक संवादपत्रोंमें थोड़ी-वहुत आलोचना हुई, पर 'विशाल-भारत'की वहुत मनोरंजक आलोकचित्र-मालाने इन प्रसिद्ध विषयोंके ऊपर इतना प्रकाश डाला कि वह सर्वथा एक नूतन आकार ही धारण किया है।

पूज्य पंडितजीका लेख समादरके कारण उनके अविकल हस्ताक्षरोंसे ही छापा गया। यह रीति वहुत प्रशंसनीय होते हुए भी मुझ-से अनेक बंगाली भाइयोंके लिए कुछ जटिल

हस्ताक्षरोंके ऐसे लेख पढ़ना शायद मुश्किलकी बात होगी। इसलिए मेरी समझमें उस लेखके साथ देवनागरी अक्षरोंमें एक प्रतिलिपि मुद्रित करना आवश्यक है। मैं आशा करता हूँ कि आगामी संख्यामें उस लेखकी एक देवनागरी प्रतिलिपि मुद्रित कर दी जायेगी, क्योंकि मुझे विवश होकर कहना पड़ता है कि पूजनीय पंडितजीके हस्ताक्षरोंमेंसे बहुत-कुछ मेरी समझमें नहीं आया। निखिल हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी वर्तमान अवस्था नाना कारणोंसे चिन्तनीय हो गई है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हम आशा करते हैं कि पूजनीय पंडितजी-जैसे श्रेष्ठ विद्वानों और सुलेखकोंकी अपेक्षित सहायतासे अब भी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी भविष्य कार्रवाईकी एक सुगम प्रणाली प्रवर्तित हो जायगी।

'विशाल-भारत'में नानारंगके नगण्य आपातसुन्दर आधुनिक चित्रोंके बदले उत्कृष्ट प्राचीन प्राच्य कलाके चित्र और उसके अनुसार भारतीय श्रेष्ठ चित्रकार श्रीमान् अवनीन्द्र-नाथ ठाकुर प्रभृतिके अंकित आधुनिक भावप्रधान चित्र प्रायशः दिये जाते हैं। वर्तमान अंकमें भी ऐसे बहुत उत्कृष्ट दो चित्र दिये गये हैं। एक श्रीमान् ठाकुरजीका अंकित 'शाहजहाँका अन्तिम काल' और दूसरा उनके कृती शिष्य श्रीमान् सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्यायका अंकित 'श्री गणेशजीका महाभारत लिखन'। ये दोनों चित्र पहले 'प्रवासी', 'मार्डन-रिव्यू' आदि पत्रोंमें सादर मुद्रित हो चुके हैं। फिर भी वे ऐसे उत्कृष्ट हैं कि सौ बार मुद्रित होने-पर भी उन्हें फिर देखते ही बनता है, और उन्हें जितना ही देखा जाय, वे उतने ही भावपूर्ण और मनोरंजक मालूम होते हैं। मैं चित्र-समालोचक नहीं हूँ। फिर भी उन चित्रोंमें ऐसी अपूर्व व्यंजना शक्ति (Suggestiveness) है कि मुझसे अनाड़ीके ऊपर भी वे अपना प्रभाव डाले बिना नहीं छोड़ते। दृष्टान्तके लिए गणेशजीका बहुत छोटा-सा सुन्दर चूहा ही काफी होगा। गंगोपाध्यायजीने कैसे अपूर्व विचारके साथ श्रीगणेशजीके इन्दुरको भी नहीं छोड़ा; पर स्वभावतः कागज काटनेवाले उस विरुद्ध प्राणीका अपने प्रभु श्रीगणेशजीके लिखे हुए बिखरे कागजोंकी रक्षाके लिए 'पेपरवेट'के काममें नियतकर चित्रकार-ने प्रभु-सेवाकी पराकाष्ठा दिखलाई है। श्रीगणेशजीके लेखनीधारी दोनों दाहिने हाथों और लेख-पत्रधारी दोनों बायें हाथों उत्कर्ण करि-मस्तक और महाभारत-वक्ता महर्षिजी-के हृदयसे कुछ लिखे-पढ़े बिना पवित्र गंगा-लहरीके न्याय पंचम वेदरूपी श्रीमहाभारतकी वाग्मयी उत्पत्ति—कुछ भी अपूर्व व्यंजनासे खाली नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि अधुना उन्नत भावप्रधान चित्रकलाके प्रवर्तन और प्रचारके साथ मासिक पत्रिकाओंमें चित्रोंके साथ ही साथ भाव-विश्लेषणपूर्ण चित्र-परिचय भी प्रकाशित हो, तो बहुत अच्छा हो। मेरी तुच्छ समझमें भाव-विश्लेषणके बिना इन सब उत्कृष्ट चित्रोंका महत्व ठीक-ठीक समझ लें—ऐसे समझदार हमारे देशमें बहुत कम मिलते हैं। मैं आशा करता हूँ कि भावप्रधान चित्रोंके साथ उनके यथासम्भव रसपूर्ण विश्लेषणात्मक परिचय भी 'विशाल-भारत'का एक महत्वपूर्ण विशेषत्व होगा—यद्यपि दुःखके साथ यहाँ कहना ही पड़ेगा कि प्रथम श्रेणीके चित्रोंके समान प्रथम श्रेणीकी चित्र-समालोचना भी बहुत बिरली ही होती है।

कृपाप्रार्थी—

श्री सतीशचन्द्र राय।"

इस पत्रसे स्वर्गीय सतीशचन्द्र रायकी कई बातोंपर प्रकाश पड़ता है। पहली बात तो यह मालूम हो जाती है कि वे हिन्दीके प्रेमी और एक अध्ययनशील पाठक थे। वे प्रत्येक पुस्तकको कैसी अच्छी तरह ध्यानपूर्वक पढ़ते थे। दूसरी सबसे बड़ी बात है किसी भी अच्छी चीजकी सराहना (Appreciate) करना। संसारके प्रत्येक साहित्यमें नवीन लेखकोंको उनकी अच्छी कृतियोंपर विद्वानोंसे सराहना मिलना सबसे बड़ा प्रोत्साहन है। खेद है कि छोटे लेखकोंको प्रोत्साहित करनेका गुण बहुत थोड़े विद्वानोंमें होता है। राय महाशयमें इस गुणकी कमी नहीं थी। तीसरे इस पत्रसे उनकी कलामर्मज्ञतापर भी प्रकाश पड़ता है। उन्होंने 'विशाल-भारत'में प्रकाशित 'महाभारत-लेखन' चित्रकी जैसी मार्मिक आलोचना की है, उससे प्रकट होता है कि वे चित्रकलाको अच्छी तरह समझते थे। अन्तमें हम स्वर्गीय राय महोदयके सुपुत्र श्रीभवानीचरण रायसे विनम्र अनुरोध करते हैं कि वे अपने पूज्य पिताजीका एक विस्तृत जीवन-चरित प्रकाशित करें। इससे उनकी मातृ-भाषा बंगलाके ही नहीं, वरन् राष्ट्रभाषा हिन्दीके भी साहित्य-सेवियोंको बहुत शिक्षाएँ मिलेंगी।

: ४ :

पतित-पावन

कलकत्तेका समाज—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, सिख, पारसी सभी—व्यस्त है और अत्यन्त व्यस्त है। वह व्यापार-वाणिज्य में व्यस्त है, काम-काजमें व्यस्त है, उद्योग-धन्धोंमें व्यस्त है और नौकरी-चाकरीमें व्यस्त है। जव उदरपूर्तिके इन सव धन्धोंसे छुट्टी मिलती है, तव वह पसीनेसे उत्पन्न की हुई गाढ़ी कमाईको पापाचारमें उड़ाकर समाजके अंगमें कोढ़ उत्पन्न करनेमें व्यस्त रहता है। कलकत्तेकी चमकीली सड़कों, विजलीकी जगमगाहट, ऊँची अट्टालिकाओं, मोटरगाड़ियोंकी भरमार तथा विलासमय जीवनके झीने आवरणके भीतर समाजके अनेक कुष्टक्षत वीभत्स रूपसे वहा करते हैं। समाज उनको अच्छा करनेकी चेष्टा नहीं करता, उल्टा वह उन्हें सहन करता है और जारी रखता है। वह केवल उनपर एक झीना परदा डाले रखना चाहता है, क्योंकि वे उसीके पापाचारके परिणाम हैं। समाजकी इस पाप-तृष्णाकी वलिवेदीपर लाखों प्राणियोंकी—निरीह अवलाओंकी, मासूम वच्चोंकी—आहुति चढ़ चुकी है, चढ़ रही है और ईश्वर जाने कव-तक चढ़ती रहेगी। समाज इन आहुतियोंपर ध्यान नहीं देता। वह निर्दयतासे, क्रूरतासे इन जीवोंको कुचलता हुआ अपने विलासमय पथपर अविराम गतिसे चला जाता है।

कलकत्तेमें समाजकी इस दुर्दशाका ज्ञान वहुत कम व्यक्तियोंको होगा। इस महा-नगरीकी जनसंख्या सन् १९२१ की मर्दुमशुमारीके अनुसार ९,०७,८५१ थी। इसमें स्त्रियोंकी संख्या २,९०,२६१ थी। स्वयं कलकत्तेके निवासियोंमें कितनोंको इस वातका पता होगा कि इन स्त्रियोंमें चालीस हजारसे अधिक स्त्रियाँ पाप-वासनाको तृप्त करनेके लिए घृणित जीवन विताती हैं? जरा सोचिये कि कलकत्तेकी प्रत्येक सातवीं स्त्रीको पतित जीवन विताना पड़ता है। सन् १९२१ की मर्दुमशुमारीके अनुसार नगरमें

३३,६७४ हिन्दू,
५,१३७, मुसलमान
तथा ३४६ अन्यान्य जातियोंकी—

इस प्रकार कुल ३९,१५७ स्त्रियोंने खुल्लमखुल्ला अपना पेशा वेश्यावृत्ति लिखाया था। इसके अतिरिक्त पुलिसका अनुमान है कि कम-से-कम सात-आठ हजार स्त्रियाँ और भी ऐसी हैं, जो इस घृणित व्यापारको करती हैं, परन्तु जिन्होंने अपना पेशा यह नहीं लिखाया है।

कलकतिया समाजके इस क्रूरतापूर्ण पापाचारकी करुण कहानीका एक क्षुद्र अंश—एक छोटा पैराग्राफ—पानिहाटीके 'गोविन्दकुमार-भवन'में अंकित है।

कलकत्तेसे आठ मील दूर वारकपुर ट्रंक रोडपर पानिहाटी एक छोटा-सा गाँव है। गाँव क्या है, कलकत्ता महानगरीका एक उपकूल है। कलकत्तेके धनी विलासियोंके आमोद-उद्यान सड़कके दोनों ओर मीलोंतक चले गये हैं। इसी पानिहाटीमें पतित-पावनी गंगा-तटपर एक सुन्दर दोतल्ली इमारत है। इमारतके चारों ओर हरी घासका एक खूबसूरत वगीचा-सा है। गंगाकी लहरें इसी हरे टुकड़ेसे टकरा-टकराकर लौट जाती हैं। जन-कलरवपूर्ण, धूम्र-आच्छादित, और अविरल जीवन-संघर्षके केन्द्र कलकत्तेके पास ऐसा शांत, ऐसा दिव्य और ऐसा मनोहर स्थान भी हो सकता है, इसकी कल्पना भी जरा मुश्किल है। इसी इमारतका नाम 'गोविन्दकुमार भवन' है। अव इसकी कथा भी सुन लीजिये।

सन् १९२३ में कलकत्तेके कुछ उच्चाशय नागरिकोंने समाजके इस कलंकको दूर करनेका सत् प्रयत्न किया। जिसके फलस्वरूप 'कलकत्ता इम्मारल ट्रैफिक ऐक्ट' (दुराचार-निवारक कानून) बनाया गया। इस कानूनके निर्माताओंने पापाचारकी जड़पर ही कुठाराघात करनेकी चेष्टा की। उन्होंने सोचा कि यदि इस पतित जीवनमें आनेवाली नारियोंकी आमदनीपर नियन्त्रण किया जाय, तो यह पाप धीरे-धीरे अपने ही आप नष्ट हो जायगा, अतः उक्त कानूनकी अन्य धाराओंमें एक ऐसी धारा भी रखी गयी, जिसके अनुसार पतित मकानोंमें नावालिग लड़कियोंका रखा जाना अपराध बना दिया गया। साथ ही पुलिसको यह अधिकार दिया गया कि वह पतित गृहोंसे कानूनन नावालिग लड़कियोंको हटा सके। कानून तो बन गया, मगर सबसे बड़ी समस्या यह आ खड़ी हुई कि इन लड़कियोंको उन पापालयोंसे हटाकर रखा कहाँ जाय? इस समस्याको हल करनेके लिए अधिकारियोंने 'कलकत्ता विजिलेन्स ऐसोसियेशन' (Calcutta Vigilence Association) से सहायता माँगी। इस ऐसोसियेशनका उद्देश्य जन-साधारणमें सदाचारका प्रचार करना और उनके नैतिक आचार-विचारकी चौकसी करना है। इसमें प्रायः सभी जातियों और धर्मोंके लोग हैं।

विलायतमें स्वर्गीय मिसेज़ जोज़फाइन बटलरकी स्थापित की हुई एक समिति है, जिसका नाम है 'ऐसोसियेशन आफ मारल ऐण्ड सोशल हाइजिन' (नैतिक और सामाजिक पवित्रताकी समिति)। यह ऐसोसियेशन जिन सिद्धान्तोंपर बनाया गया है, उनमें न्याय, स्वतन्त्रता, स्त्री और पुरुषोंके व्यवहारमें समानता, मानव-आत्मा और मानव-शरीरके प्रति—चाहे वह पुरुष हो या स्त्री—सम्मान आदि बातें हैं। विलायतके इस ऐसोसियेशनका उद्देश्य नैतिक संसारमें भूलें-भटकोंको मदद देकर उबारना है। इस ऐसोसियेशनकी देख-रेखमें इस समय विलायतमें अनेक समितियां और आश्रम कार्य कर रहे हैं। इस एसोसियेशनका कार्य इतना व्यापक हो गया है कि उसने समाजकी इस कमजोरीके सम्वन्धमें अपने कार्यकर्ताओंको उचित शिक्षा देनेके लिए एक स्कूल कायम कर रखा है।

कलकत्तेका विजिलेन्स ऐसोसियेशन भी इसी विलायती ऐसोसियेशनकी लाइनपर संगठित किया गया है। इतना ही नहीं, बल्कि सन् १९२८ में इस विजिलेन्स ऐसोसियेशनने विलायतके "ऐसोसियेशन फार मारल ऐण्ड सोशल हाइजिन'से इस बातकी

प्रार्थना भी की थी कि वह विजिलेन्स ऐसोसियेशनके काममें सहायता देनेके लिए विलायत-से कोई ट्रेनिंग प्राप्त कार्यकर्ता या कार्यकर्त्री कुछ दिनके लिए भारतको भेजे, जो यहाँके इन पाप-क्षेत्रोंको मिटानेके उद्देश्यसे विधिवत् जांच-पड़ताल कर सके और इस समूचे विषय-पर ज्ञानवर्धक प्रचार- कार्यमें सहायता दे सके। विजिलेन्स ऐसोसियेशनकी इस प्रार्थनाके फलस्वरूप विलायतके ऐसोसियेशनने अपने पाससे अठारह हजार रुपये व्यय करके मिस मेलिसेन्ट शेफर्ड नाम्नी एक कार्यकर्त्रीको तीन वर्षके लिए भेजा है, जो इस विषयमें दो वर्षसे कार्य कर रही हैं।

सरकारने इसी विजिलेन्स ऐसोसियेशनसे एक आश्रम खोलनेके लिए कहा, जिसमें वेश्यालयोंसे बचाई हुई लड़कियाँ रखी जायँ। उस समय श्रीयुत जे० एम० सेनगुप्त कलकत्तेके मेयर थे। हाईकोर्टके जज सर यूवर्ट ग्रीव्जकी अध्यक्षतामें एक 'मेयर-फंड' खोला गया, और उसके चन्देसे दमदममें एक छोटा-सा आश्रम खोला गया। इस आश्रमका उद्घाटन बंगालके तत्कालीन गवर्नर लार्ट लिटनने किया था, और इसका नाम 'यूवर्ट ग्रीव्ज होम' रखा गया। यह आश्रम केवल हिन्दू लड़कियोंके लिए था और उसमें ३६ लड़कियोंके रखनेका प्रबन्ध था। आरम्भमें एक अंग्रेज और एक हिन्दू महिला प्रबन्धकर्त्री बनायी गयीं। उन्हें समय-समयपर सहायता देनेके लिए महलिाओंकी एक कमेटी बनी, जिसमें दो अंग्रेज और बाकी सब हिन्दू महिलाएँ थीं।

मगर यह प्रबन्ध बहुत ही अपर्याप्त था। चालीस हजारकी सप्लाईमें ३६की गिनती नगण्यसे भी गयी बीती है, परन्तु फंडकी कमीके कारण १९२९ तक यह काम ऐसे ही चलता रहा। सन् १९२९ में एक उदारमना बंगाली सज्जन श्री गोपालचन्द्र चौधरीने पानिहाटीमें अपनी वृहत् अट्टालिका इस कार्यके निमित देनेका वचन दिया, जिसे विजीलेन्स ऐसोसियेशनने कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लिया। एक नियमित ट्रस्टके द्वारा दानकी रजिस्ट्री कराकर यह इमारत ऐसोसियेशनके सुपुर्द की गयी।

इस प्रकार इस 'गोविन्दकुमार-भवन'की स्थापना हुई। इस भवनमें ७५ लड़कियोंके रहनेका स्थान है। सन् १९२९ में 'ग्रीव्ज होम' दमदमसे हटाकर इस भवनमें लाया गया। इस समय इसमें ७० लड़कियाँ हैं। आश्रममें ६ वर्षकी आयुसे लेकर १५ वर्षकी आयु तककी लड़कियाँ भर्तीकी जाती हैं। लड़कियोंकी आयु निर्धारित करना भी एक कठिन काम है, क्योंकि हर एक बच्चेकी पैदाइशकी रजिस्ट्री निश्चित रूपसे नहीं होती। ऐसी दशामें डाक्टरोंकी सहायता ली जाती है, और डाक्टरी रायके अनुसार ही आयु निर्धारित की जाती है। समाजके पतन और क्रूरताका कुछ अन्दाज इन लड़कियोंकी आयुसे लग सकता है। इस समय आश्रमकी लड़कियोंमें

१६ बालिकाएँ ९ वर्षसे कम उम्रकी हैं,
१२ बालिकाएँ ९ वर्षसे १२ वर्षके बीचकी हैं,
३० बालिकाएँ १२ वर्षसे १४ वर्षतककी हैं,
१० बालिकाएँ १५ वर्षकी हैं और
२ बालिकाएँ १६ वर्षकी हैं।

इनमें वालिकाओंके अधिकांशमें प्रत्येककी कथा एक छोटा-मोटा दुःखान्त उपन्यास है। हर एक एक दर्दनाक फिसाना है। हर एक वालिका समाजके पतन, कुचरित्रियोंके मायाजाल और दुष्टोंकी वदमाशीकी एक जीती-जागती, चलती-फिरती तस्वीर है। देखिये, उस छोटी लड़कीको उसके भाईने एक कुटनीके हाथ दो-सौ चाँदीके टुकड़ोंपर वेच डाला था। भाई साहवने सौदा पहले ही तय कर रखा था। गत वर्ष ग्रहणके अवसरपर भाई अपनी वहनको गंगा स्नानके लिए ले गया और वहाँ खरीदार कुटनीको दिखाकर वोला कि यह स्त्री तुम्हें घर पहुँचा देगी। स्त्री उस वालिकाको एक वेश्यालयमें ले गयी, जहाँ उसे मजबूर करके पतित किया गया। एक रात जरा-सा मौका पाकर वालिका उस नरकसे भाग खड़ी हुई और पुलिसके द्वारा यहाँ पहुँची। भाईपर मुकदमा चला और १००) जुर्माना हुआ, क्योंकि उसके खिलाफ जो सवूत था, कानूनन उसकी तस्दीक नहीं होती थी। इस प्रकार भाई साहव फिर भी १००) के फायदेमें रहे। लड़कीका विवाह पहले हो चुका था, मगर अव उसका पति उसे वापस लेनेपर राजी नहीं है।

प्रायः प्रत्येक लड़कीकी कथा इसी प्रकारकी है।

लड़कियोंको कताई, बुनाई, दस्तकारी, सीना-पिरोनाके अतिरिक्त वँगलाकी शिक्षा, भोजन वनाना, गृहस्थीका काम-काज आदि सिखाया जाता है।

'भवन' से लड़कियोंकी समस्त आवश्यक वस्तुओंका प्रवन्ध होता है। उनके खाने-पीने, रहने, कपड़े-लत्ते, साधारण शिक्षा, विशेष औद्योगिक शिक्षा, दवा-इलाज आदि सव वातोंका खर्च 'भवन' देता है। इसके लिए लड़कियोंके रिश्तेदारोंसे किसी प्रकारकी सहायता या रुपया नहीं लिया जाता। लड़कियोंके रखने तथा उनकी शिक्षा, देख-रेख आदिके खर्चका औसत २५ रुपये प्रति लड़की प्रति मासके हिसावसे पड़ता है।

वंगाल गवर्नमेण्ट १० रुपये प्रति लड़की प्रति मासके हिसावसे 'भवन'को सहायता देती है, मगर वाकी १५ रुपये प्रति मासका प्रवन्ध कलकत्ता विजिलेन्स एसोसियेशनको करना पड़ता है।

कलकत्तेका समाज स्त्रियोंको पतिता वनानेमें प्रति वर्ष करोड़ों रुपये व्यय किया करता है। क्या समाज में कुछ ऐसे माईके लाल नहीं हैं, जो इन पतिताओंके उद्धारमें भी कुछ हाथ वटायें? समाजमें पतनकारियोंकी संख्याकी कमी नहीं हैं, मगर क्या ऐसे व्यक्तियोंका विलकुल ही अभाव है, जो अपनी इन गिरी हुई वहनोंको सहारा देकर पतित-पावन वन सकें?

'गोविन्दकुमार-भवन'में जितनी वालिकाएँ हैं, वे सव हिन्दू हैं, और उनमें वहुत वड़ी संख्या वंगाली लड़कियोंकी है, जो स्वाभाविक ही है; मगर प्रायः दो मास पूर्व जव इन पंक्तियोंके लेखकने भवनको देखा था, तव उसमें कई मारवाड़ी लड़कियाँ भी थीं। हम मारवाड़ी समाजके उदारमना श्रीमानोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं कि वे इस पतितोद्धारक कार्यमें सहायता दें।

यह आवश्यक नहीं कि आप 'भवन'की सहायता नकद रुपये ही से करें। आप उसे खाद्य पदार्थ, चावल, दाल, घी, तेल, कपड़ा-लत्ता, फल-फूल आदि जीवनकी नित्य-प्रतिकी

आवश्यकताओंकी चीजें प्रदान करके भी उसकी सहायता कर सकते हैं। वास्तवमें मुझसे प्रबन्धकर्त्रीने बतलाया कि एक मारवाड़ी सज्जन बहुधा अपनी जमींदारीकी पैदावार साग-सब्जी आदि 'भवन'को भेज दिया करते हैं। ३०० रुपये प्रदान करनेवाले सज्जनको इस बातका सन्तोष हो सकता है कि उन्होंने कम-से-कम एक असहाय बालिकाके भरण-पोषणका एक वर्षके लिए प्रबन्ध कर दिया है। पचीस रुपये देकर आप एक मास तक एक बालिकाके भोजनका व्यय चला सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि एक और बड़ी महत्वपूर्ण समस्या हल करना अभी बाकी है। सन् १९२३ में जो कानून बना था, उसके अनुसार केवल नाबालिग लड़कियोंकी देख-रेखकी व्यवस्था है। बालिग हो जाने पर ये लड़कियां स्वतन्त्र कर दी जाती हैं, वे जहाँ चाहें जा सकती हैं। मगर वे जायँ तो कहाँ जायँ? वर्तमान समाज उन्हें अपने यहाँ स्थान देनेके लिए तैयार नहीं है। ऐसी दशामें उनके पुनः पतित हो जानेका काफी अन्देशा है। यदि उनका विवाह हो सके, तो उनके उद्धारका यही सबसे सुरक्षित उपाय है; पिछले दो वर्षमें कुछ विवाह भी हुए हैं। मगर उनके विवाह करने योग्य नवयुवकोंको ढूँढ़ना बड़ा कठिन काम है।

एक ऐसी संस्थाकी बड़ी आवश्यकता है, जो 'गोविन्दकुमार-भवन' से निकलनेके बाद इन लड़कियोंकी सहायता कर सके। कोई ऐसा स्थान होना चाहिये, जहाँ ये लड़कियाँ आश्रय ले सकें। इस कामके लिए एक सब-कमेटी बनायी गयी थी, जिसने अपनी रिपोर्टमें यह बतलाया कि कुछ ऐसे मार्ग हैं, जिनके द्वारा ये लड़कियाँ ईमानदारीसे जीविकोपार्जन करके सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें। उदाहरणके लिए, अपने-अपने स्वभाव और रुचिके अनुसार वे आयाका काम, नर्सका काम, अथवा दर्जिन आदिका काम कर सकती हैं। 'गोविन्दकुमार-भवन'की महिला-समितिकी अध्यक्षा श्रीमती हेमलता मित्रने एक लड़कीकी भावी देख-रेख, भरण-पोषण आदिका भार अपने ऊपर ले लिया है। देशकी अन्य श्रीसम्पन्न महिलायें भी यदि इसी प्रकार एक-एक लड़कीका भार बटा लें, तो यह समस्या आसानीसे हल हो सकती है।

सन् १९२३ में जो कानून बना था, उसका प्रभाव अब कुछ-कुछ मालूम पड़ने लगा है, परन्तु उससे इस पापाचारकी गतिमें बहुत-थोड़ी ही रुकावट हुई है। वह कानून बंगालमें अपने ढंगका पहला कानून था। कानून बनानेवालोंको यहाँकी लोकल परिस्थितियोंका पूरा ज्ञान नहीं था और न इस विषयका कुछ अनुभव। अब कई वर्षके कार्यके बाद यह बात अच्छी तरह महसूस होने लगी है कि इस कानूनमें बहुत शीघ्र काफी संशोधन होना चाहिए। मिस शेफर्डने कलकत्तेके सैकड़ों वेश्यालयोंमें घूम-घूमकर जो जाँच-पड़ताल की है, उसके आधार पर बंगालकी व्यवस्थापिका सभाके अगले अधिवेशनमें एक बिल उपस्थित किया जायगा। इस बिलकी मुख्य बातें ये होंगी—

१. वेश्यालयोंको गैरकानूनी करार देना तथा वेश्यालय रखनेवालों, उनके मैनेजरों, मालिकों तथा उन मकानोंके मालिकोंको जो जान-बूझकर इस पापवृत्तिके लिए अपना मकान भाड़ेपर देते हैं, सजा देना।

२. १६ वर्षसे अधिक उम्रके उन सब व्यक्तियोंको सजा देना, जो किसी स्त्रीकी वेश्या-वृत्तिपर जीवन-निर्वाह करते हैं।

३. सार्वजनिक स्थानोंकी इस पापवृत्तिसे रक्षा करना।

४. स्त्रियोंका रोजगार करनेवालोंको—चाहे वे मर्द हों या औरत—सजा देना।

श्री जे० एन० वसु व्यवस्थापिका सभाकी आगामी मीटिंगमें यह बिल पेश करेंगे।

कानूनके साथ-साथ इस बातकी भी आवश्यकता है कि इस कलुषित प्रथाके विरुद्ध जोरदार लोकमत भी तैयार किया जाय। देशके अनेक कार्यकर्ता राष्ट्रीय जीवनके अन्य अंगोंकी स्वस्थताके लिए जी-जानसे प्रयत्न कर रहे हैं। इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि कुछ लोग हमारे राष्ट्रीय जीवनकी इस नैतिक पवित्रताके सदुद्योगमें भी हाथ बटायें।

: ५ :

दक्षिणी ध्रुवका आविष्कारक अमनसेन

एक दिन प्रात:काल समाचारपत्रोंमें ट्रौम्सोका एक समाचार पढ़ा—

"मछुओंकी एक नावने समुद्रमें तैरता हुआ एक 'सीप्लेन' पकड़ा है। यह 'सीप्लेन' पहचान लिया गया है, यह कैप्टेन अमनसेनका है।"

"इस समाचारसे इस बातकी पुष्टि होती है कि जनरल नोवाइलके दल और हवाई-जहाज 'इटेलिया'का पता लगानेमें सुप्रसिद्ध आविष्कारक कैप्टेन अमनसेनकी जान चली गयी।"

रूटरके इस छोटेसे समाचारमें संसारके एक महान् पुरुषके अद्भुत बलिदान, असीम साहस, निस्स्वार्थ सेवा और संसारकी ज्ञान-वृद्धिकी अशेष आकांक्षाओंका इतिहास छिपा है। कैप्टेन अमनसेन (Amundsen) संसारके महान् साहसी अमर व्यक्तियों-में थे। हमारी पृथ्वीके दोनों सिरोंपर ध्रुव हैं। इन ध्रुवोंपर इतनी सर्दी पड़ती है कि हम भारतवासी उसका अनुमान ही नहीं कर सकते। ये ध्रुव-प्रदेश प्राय: अज्ञात थे, क्योंकि उनपर पहुँचना तो दूर रहा, उनके समीपस्थ स्थानोंतक जाना ही असम्भवसे कुछ ही कम है। भूगोलके विद्वानोंका अनुमान था कि उत्तरी ध्रुव-प्रदेशके समीप एक उत्तरी-पश्चिमी जलमार्ग है, जिसे जहाज द्वारा पार किया जा सकता है, परन्तु अवतक इसका सत्यासत्य निश्चित करनेका साहस किसी भी घुमक्कड़ आविष्कारकने नहीं किया था। कैप्टेन अमनसेन ही सर्वप्रथम वीर हैं, जिन्होंने इस मार्गको जहाज द्वारा तय करके इस अनुमानके सत्यका निर्णय कर दिया। उनका यह काम महान् साहसका था, और उनको सुप्रसिद्ध कर देनेके लिए काफी था, परन्तु दक्षिणी ध्रुवका सर्वप्रथम आविष्कारक होना एकदम अमर नाम प्राप्त करना है।

कैप्टेन अमनसेन साहस, स्फूर्ति, बल और जीवनीशक्तिके मूर्तिमान उदाहरण थे। दिक्कतोंका सामना करना, मुश्किलोंको आसान करना और दुर्गम दु:सह स्थानोंमें हँसते-खेलते मौजसे इठलाते और क्रूर प्रकृतिको चिढ़ाते हुए चले जाना उनका बाएँ हाथका काम था। उनका जीवन दुस्साहसिक घटनाओंका जीवन है। उनका इतिहास असम्भवको सम्भव कर दिखानेकी लम्बी कहानी है।

सन् १९०३ की बात है। वैज्ञानिक संसारके विद्वानोंका अनुमान था कि उत्तरी ध्रुव प्रदेशमें उत्तरी-पश्चिमी एक जलमार्ग है जो जहाज द्वारा अतिक्रम किया जा सकता है। मगर इस मार्गका पता कौन लगावे ? वह ऐसा प्रदेश है जहाँ आदमी न आदमजात—जहाँ संसारके कोई जीव नहीं होते, जहाँ प्रकृतिने ऐसा प्रचण्ड रूप धारण किया है कि

पेड़-पत्ते भी नहीं उग पाते, जहाँ जाते हुए भगवान् भुवन-भास्करकी भी नानी मरती है ! छः मास तक उनके दर्शन ही नहीं होते और छः मासतक जब उनके दर्शन होते भी हैं, तब वे वासी भातकी भाँति शीतल रहते हैं । वस, चारों ओर निर्जनता, निस्तव्धता और भयंकरताका राज्य है । हमलोग कहते हैं कि परमेश्वर सर्वव्यापी है, मगर ज्ञात होता है कि ध्रुव-प्रदेशपर परमेश्वरके इस गुणका चार्ज वर्फने ले रखा है । वहाँ जलमें वर्फ, थलमें वर्फ, आकाशमें वर्फ और हवामें वर्फ है । वहाँ वर्फ ही के पहाड़ हैं, वर्फ ही की घाटियाँ हैं, और वर्फ ही ग्लेशियर (नदियाँ) हैं ।. . .सर्दीका तो कहना ही क्या है । इस भयंकर सर्दी ही के कारण वहाँ कोई जीव-जन्तु, पेड़-पौधे आदि जीवित नहीं रह सकते । ऐसे भयानक स्थानमें जाना तो दूर रहा, उसके पासतक पहुँचना अत्यन्त ही कठिन है, परन्तु वैज्ञानिक संसार इस प्रदेशका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अधीर था । अन्तमें इस ज्ञान-पिपासाको मिटानेके लिए इंग्लैण्डसे कई भारी-भरकम जहाज सब प्रकारके सामानसे लैस होकर इस ध्रुव मार्गका पता लगानेके लिए चले, किन्तु ध्रुव-प्रदेशकी कठिनाइयोंकी टक्कर खाकर अकृतकार्य लौट आये ।

सन् १९०३ में नार्वेकी राजधानी ओसलो (पुरानी क्रिस्टैनिया) से एक वहुत ही छोटा जहाज 'गोआ' ध्रुव-प्रदेशके लिए रवाना हुआ । यह जहाज केवल सैंतालीस टन भारी था, और तेलके इंजनसे चलता था । तीन वर्ष तक ध्रुव-प्रदेशकी वर्फीली चट्टानोंसे टक्कर लेकर, वड़ी-से-वड़ी कठिनाइयोंको अतिक्रम करके, इस छोटे जहाजने उत्तरी-पश्चिमी मार्गको ढूँढ़ ही निकाला, और यह पैसेफिक महासागरमें वेहरिंगके मुहानेपर जाकर निकला । इस जहाजका यात्री, कप्तान और कर्ता-धर्त्ता था इकतीस वर्षीय युवक कैप्टेन अमनसेन । कैप्टेन अमनसेनने न केवल इस मार्गका ही आविष्कार किया, वल्कि ध्रुव-प्रदेशकी जलवायु और ऋतुओंके सम्वन्धमें भी वहुत वड़ा वैज्ञानिक अन्वेषण और निरीक्षण किया । उन्हींके अन्वेषणोंसे विज्ञान-जगत्‌को यह मालूम हुआ कि चुम्बकीय ध्रुव (Magnetic Pole) का कोई स्थायी स्थान नहीं है । वे अपनी इस यात्रामें इतना अधिक वैज्ञानिक मसाला लाये थे, जिसपर यात्राके बीस वर्ष वाद तक ठीक-ठीक गवेषणापूर्ण हिसाव नहीं हो सका था ।

कैप्टेन अमनसेनका जन्म सन् १८७२ में दक्षिण-पूर्वीय नार्वेके एक ग्राममें हुआ था । वे 'नार्डिक' जातिके थे । यह प्राचीन जाति स्कैन्डीनेवियाकी शासक रह चुकी है, और अपने समुद्र-प्रेमके कारण 'सी-किंग्स'के नामसे प्रसिद्ध रही है । इस जातिने कोलम्बससे चार सौ वर्ष पूर्व ही अमेरिकाका पता लगा लिया था । अमनसेन पक्के 'नार्डिक' थे । उन्होंने सन् १८९० में क्रिस्टेनिया यूनिवर्सिटीसे बी०ए० परीक्षा पास की, और डाक्टरी पढ़ने लगे, परन्तु उस ओर उनका ध्यान न लगा; अतः उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया, और सन् १८९४में समुद्र यात्राके लिए निकल पड़े । उनकी इच्छा संसारके अज्ञात स्थानों—विशेषकर ध्रुव-देशोंका अन्वेषण करनेकी थी, इसलिए उन्होंने अगले नौ वर्ष केवल अपनेको इस कार्यके लिए तैयार करने ही में लगाये ।

उत्तरीय पश्चिमी मार्ग ज्ञात हो जानेके पश्चात् इस महान् अन्वेषकने दक्षिणी. ध्रुवकी

ओर ध्यान दिया। उस समयतक कोई भी अन्वेषक दक्षिणी ध्रुव तक नहीं पहुँच सका था। सुप्रसिद्ध अंग्रेज यात्री शेकल्टनने इस ध्रुवकी यात्राकी थी, किन्तु वे ध्रुवसे सौ मील इधरतक ही जा सके थे। अमनसेनने 'फार्म' नामक जहाजपर यात्राकी थी। यह जहाज कैप्टेन नानसेनकी अध्यक्षतामें उत्तरी ध्रुवके आविष्कारमें बहुत ख्याति पा चुका था।

दक्षिणी ध्रुवका जलवायु उत्तरी ध्रुवकी अपेक्षा कहीं अधिक विकराल है। वहाँ ठेठ गर्मीमें भी थर्मामीटरका पारा शून्य से ५० डिग्री नीचे रहता है। ३२ डिग्रीपर पानी जमकर वर्फ हो जाता है, इसलिए गर्मीमें भी वहाँका टेम्परेचर वर्फ जमनेके टेम्परेचरसे ८२ डिग्री नीचा होता है।

उत्तरी ध्रुवमें चारों ओर भूमिसे घिरा हुआ समुद्र है, परन्तु इसके विरुद्ध दक्षिणी ध्रुव समुद्रसे चारों ओर घिरा हुआ एक विशाल महाद्वीप है। इस द्वीपमें पहुँचना वड़ा कठिन था, क्योंकि चारों ओर वर्फकी दुर्भेद्य दीवार है।

ऐसा अनुमान है कि करोड़ों वर्ष पहले यह महाप्रदेश दक्षिण-अमेरिकासे सम्बद्ध था, परन्तु पृथ्वीके सिकुड़नेसे इसका कुछ भाग धीरे-धीरे समुद्रमें डूव गया, और इसके तथा दक्षिणी-अमेरिकाके वीचमें चार-मील गहरा समुद्र हो गया। इस प्रदेशमें मिले हुए कंकालों और पुरानी चीजोंके देखनेसे यह प्रकट होता है कि उस प्राचीन समयमें इस दक्षिणी महादेशका जलवायु यदि गर्म नहीं था, तो कम-से-कम मातदिल अवश्य था, जिससे वहाँ पर प्राणी और वनस्पति दोनों ही होते थे।

अमनसेनने दक्षिणी ध्रुवकी वर्फीली दीवारके किनारे डेरा डाला, और फिर वहाँसे वर्फके ऊँचे पहाड़ों और भयंकर घाटियोंको प्रवल वेगसे पार करते हुए १४ दिसम्वर सन् १९११ को ठीक दक्षिणी ध्रुवपर पहुँचकर वहाँ नार्वेका झण्डा गाड़ दिया। उनकी इस यात्राकी कहानी वीरताकी एक अद्वितीय कथा है।

इस यात्राका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था—"हम लोगोंने हिसाव लगाया था कि हम लोग १४ दिसम्वरको अपने ध्येय—ध्रुवपर पहुँच जायेंगे। चौदहवीं दिसम्वरका दिन आ गया। हमें मालूम हुआ कि उस रात्रिको हमलोग कम सोये, हमलोगोंने वड़ी फुर्तीसे जल-पान किया और अन्य दिनोंकी अपेक्षा सवेरे ही चल पड़े। और दिनोंकी भाँति वह दिन भी अच्छा था। सूर्य चमक रहा था। थोड़ी-थोड़ी हवा भी चल रही थी। हम लोगोंने जल्द ही काफी रास्ता तै कर लिया। उस समय हमलोगोंने आपसमें वातचीत भी अधिक नहीं की। प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने विचारोंमें मग्न था। मैं समझता हूँ कि हममें से प्रत्येकके दिमागमें प्रायः एक ही प्रकारके विचार दौड़ रहे थे। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर हम लोग उस अनन्त उपत्यकापर वढ़े चले जा रहे थे। हर एककी दृष्टि दक्षिणकी ओर लगी हुई थी। सव सोच रहे थे कि क्या हम ही सर्वप्रथम दक्षिणी ध्रुवपर पहुँचने वाले होंगे? इतनेमें 'हाल्ट' का शव्द हुआ। यह शव्द किसी महान् जयघोष के शव्दसे कम नहीं था। लो, दूरी समाप्त हो गयी। हम लोग अपने ध्येयपर पहुँच गये। चारों ओर सन्नाटा था। हमारे सामने विस्तृत उपत्यका फैली हुई थी—वह उपत्यका, जिसपर उससे पहले कभी किसी

मनुष्यने कदम नहीं रखा था। किसी ओर किसी प्रकारका कोई चिह्न या निशान नहीं था।"

"यह क्षण वड़ा पवित्र था। हम सवलोगोंने मिलकर अपने हाथोंसे अपने देशका झण्डा इस भौगोलिक दक्षिणी ध्रुवकी इस उपत्यकापर, जिसे हम लोगोंने 'महाराज सप्तम हाकानकी उपत्यका' नाम दिया था, गाड़ दिया।"

इस यात्रामें अमनसेन और उनके पाँच वीर साथियोंने महान् साहसका परिचय दिया था। वे वर्फसे ढके हुए पाँच हजार फीट ऊँचे पहाड़ोंको पार करके ध्रुवपर पहुँचे थे। एक ओर प्रकृतिकी क्रूर शक्तियाँ थीं और दूसरी ओर पाँच वीरोंकी अजेय आत्मा। अन्तमें इन अजेय वीरोंने प्रकृतिको परास्त करके अपने ध्येयको पूरा कर दिखाया। इन लोगोंको वर्फकी दीवारपर वनाये हुए अड्डेसे ध्रुवतक पहुँचनेमें ४९ दिन लगे थे, परन्तु वहाँ से लौटनेमें केवल ३८ दिन।

जिस समय अमनसेन दक्षिणी ध्रुवपर पहुँचनेकी चेष्टामें थे, उसी समय अंग्रेजोंका एक दल भी वहाँ पहुँचनेकी कोशिश कर रहा था। उस दलके नेता थे कैप्टेन स्काट। वे लोग एक-दूसरे मार्गसे गये थे, जिसमें उन्हें वड़ी दिक्कतें उठानी पड़ीं। वे लोग ६८ दिनकी कठिन यात्रा करके अमनसेनके लगभग एक मास पीछे, १२ जनवरी सन् १९११ को जव ध्रुवपर पहुँचे, तो उन्होंने अमनसेनका छोड़ा हुआ एक खेमा देखा, और देखा कि ध्रुवपर नार्वेका झण्डा फहरा रहा था। उन्हें इस वातका खेद हुआ कि अमनसेनका दल उनसे पहले ही ध्रुवपर पहुँच चुका था। लौटते समय उन लोगोंको वड़े खराव मौसमका सामना करना पड़ा, और मुसीवतपर मुसीवत आती गयी। उन लोगोंका ईंधन समाप्त हो गया। फल यह हुआ कि वे वेचारे सवके सव मर गये, प्रायः साल भर वाद उन लोगोंकी वर्फमें जमी हुई लाशें मिली थीं।

सन् १९१८ में कैप्टेन अमनसेनने दूसरी वार उत्तरी ध्रुवकी यात्रा की। इस वार उनका उद्देश्य साइवेरियाके उत्तरके उत्तरी-पूर्वी मार्गका अन्वेषण करना था, परन्तु इस कार्यमें वे सफल न हो सके। यहाँ उनका जहाज वर्फमें ऐसा जकड़ गया था कि अन्तमें ९ फीट मोटी वर्फको तोड़कर उसे निकालना पड़ा।

अवतक ध्रुवतक जानेके लिए केवल दो ही साधन थे। एक तो जहाँ तक सम्भव हो, जहाजपर यात्राकी जाय, और दूसरे वर्फपर पैरमें 'स्की' वाँध कर, पैदल या कुत्तों और हिरनोंकी विना पहियेवाली गाड़ी 'स्ले' पर। परन्तु आजकल हवाई जहाजोंके आविष्कार और उन्नतिसे एक नया और सुलभ साधन निकल पड़ा है? कैप्टेन अमनसेन इस साधनका उपयोग करनेसे भी नहीं चूके। उन्होंने सन् १९२६ में इटलीके वने हुए हवाई-जहाजमें १६ यात्रियोंके साथ उत्तरी ध्रुवकी सफल यात्रा की। उन्होंने दो वार ध्रुवका चक्कर लगाया और वेहरिंग समुद्रमें जाकर उतरे। वह यात्रा २७०० मील लम्बी थी और उसे तय करनेमें ७१ घण्टे लगे थे। इस प्रकार हवाई-जहाज द्वारा ध्रुव-यात्रा करने वाले पहले व्यक्ति भी कैप्टेन अमनसेन थे।

कैप्टेन अमनसेन केवल अन्वेषक ही नहीं थे, वल्कि वे वड़े विचारशील पुरुषोंमें थे।

वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें बड़ी दिलचस्पी रखते थे, और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंका मनन भी करते थे। गोरे लोग गोरोंकी श्रेष्ठता (White Superiority) के बहुत गीत गाते हैं, और रंगीन लोगोंको गोरोंसे निकृष्ट बताते हैं। एक बार जब कैप्टेन अमनसेनसे इस विषयमें पूछा गया तो उन्होंने कहा—

"विज्ञान गोरोंके इस श्रेष्ठताके दावेको स्वीकार नहीं करता। आजकल विज्ञान और रसायनका युग है। नये आविष्कारोंने गोरोंके इस झूठे दावेकी पोल खोल दी है। यह सिद्ध हो चुका कि मनुष्यकी बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता और मनोवृत्तिसे उसके रंग-रूपका कोई सम्बन्ध नहीं है।"

उनका यह भी विचार था कि ध्रुव-प्रदेशके रहनेवालोंका यूरोपियन लोगोंसे कोई उपकार नहीं हो सकता, क्योंकि जहाँ कहीं भी गोरे जाते हैं, वहाँ वे तपेदिक, आतशक और ह्विस्की ले जाते हैं। पादरी लोग नंगे आदिनिवासियोंको कपड़े और टोपी आदि देकर उन्हें सभ्य बनाते हैं। फल यह होता है कि उनके शरीरमें काफी हवा और सूर्यकी स्वास्थ्यदायिनी किरणें नहीं लग पाती, और वे तपेदिकमें मर जाते हैं। गोरोंने आदि-निवासियोंकी कुछ-कुछ भलाइयाँ जरूर की हैं, परन्तु खातेमें बुराइयोंकी भी एक भयानक रकम जमा है।

गत वर्ष इटलीके कर्नल नोवाइल अपने कुछ साथियोंके साथ हवाई-जहाजपर उत्तरी ध्रुवकी यात्राके लिए गये थे। वे ध्रुव-प्रदेशके किसी दुर्गम स्थानमें जहाजकी मशीन आदि-की गड़बड़ीके कारण ऐसी बुरी तरह फँस गये कि वहाँसे उनका वापस आना मुश्किल हो गया। उन्होंने अपने उद्धारके लिए समस्त संसारको वेतारके तारसे प्रार्थनाएँ भेजीं। उनके उद्धारका यत्न करना भी सीधे मौतके मुँहमें जाना था। यह भी किसी साधारण व्यक्तिका कार्य न था। कैप्टेन अमनसेनने इस दुष्कर और परोपकारी कार्यके लिए कमर बाँधी। वे एक 'सी-प्लेन'में उनके उद्धारके लिए चल दिये और इसी पवित्र उद्देश्यके लिए उनके प्राणोंका बलिदान हो गया।

दक्षिणी ध्रुवके आविष्कारकी सत्रहवीं जयन्तीके दिन नार्वेकी राजधानी ओसलोमें और डेनमार्ककी राजधानी कोपेनहेगनमें अमनसेनके स्मरणमें दो मिनटकी शान्ति रखी गयी। लोगोंका चलना-फिरना आदि सब बन्द रहा। ओसलोमें उनके स्मरणमें जो सभा हुई थी, उसमें उनके कुटुम्बियोंके अतिरिक्त नार्वेके बादशाह और युवराज भी थे। कोपेन-हेगनकी सभामें वहाँके युवराजने भाषण देते हुए कहा था—"ध्रुवका 'उत्तरी प्रकाश' (उदीची उषा) अमनसेनके नामको जाज्वल्यमान अक्षरोंमें क्षितिजपर लिख रहा है।"

——

: ६ :

भिक्षु उत्तम

बर्मा-प्रान्तके निवासियोंमें धनिकोंकी कमी नहीं है। बर्मियोंमें सैंकड़ों वकील, वैरिस्टर, डॉक्टर, प्रोफेसर, जज, मिनिस्टर आदि पढ़े-लिखे डिग्रीधारी लोग भी हैं। फिर भी बर्मा-निवासियोंमें मुल्ककी आजादीकी लड़ाईमें सबसे बढ़कर भाग लेनेका सेहरा अगर किसीके सिर बाँधा जाय, तो वह किसी धनी-मानी अथवा उपाधि या डिग्रीधारी बर्मीके सिर न बंध कर एक धनहीन बौद्ध सन्यासीके सिरपर ही बँधेगा, और उस सन्यासीका नाम है भिक्षु उत्तम।

उस दिन मैं आफिसमें बैठा कुछ लिख रहा था, इतनेमें किसीने कहा—'वर्मा जी, आपने कागजमें हमारा वात पढ़ा?'

सिर उठाकर देखा, सामने पीला चीवर कन्धेपर डाले, बर्मी छाता हाथमें लिये, गायके खुर–जैसा बर्मी जूता पैरोंमें पहने भिक्षु खड़ा है।

मैंने कुर्सी देते हुए कहा—'नहीं, मैंने पढ़ा नहीं। क्यों क्या हुआ?'

'जापानी मन्दिरसे हमारा सब कुछ चूरी गया।'—भिक्षुने गम्भीरतासे बर्मी-हिन्दी-में कहा।

'यह तो बड़ी बुरी खबर सुनायी।'—मैंने कहा।

'एक कामके लिए ढाई सौ रुपया इकट्ठा करके रखा था वह, पत्र-व्यवहारके लिए एक नया टाइपराइटर खरीदा था वह, और कपड़े-लत्ते—सब कुछ चोर उठा ले गया। बस, शरीरके कपड़े बचे हैं।'

मैंने मुँह बनाकर अफसोस और हमदर्दी प्रकट करते हुए कहा—'राम-राम, बैठे-बिठाये मुफ्तमें पाँच-छः सौकी हानि हो गयी।'

इसपर जोरका अट्टहास हुआ। मैं आश्चर्यसे देखने लगा कि मामला क्या है। भिक्षु बोला—'अच्छा हुआ—बहुत अच्छा हुआ। भगवान्‌ने देखा कि भिक्षु होकर उत्तमा रुपया-पैसा, चीज-वस्त रखता है। बस, चोरी करा लिया। अब उत्तमा फिर पक्का भिक्षु हो गया।'

फिर वही प्रसन्नता-भरा अट्टहास। मैं चकित रह गया। फिर भी मैंने पूछा—'पुलिसको खबर हुई?'

'हां, पुलिस इनक्वायरी (तहकीकात)के लिए आयी थी, लेकिन मैंने अखबारोंमें नोटिस छपा दिया है कि जिसने मेरा सामान चुराया है, उसने अच्छा ही किया है। और चीजें तो उसके काम आ जायँगी, लेकिन मेरे बक्समें कुछ जरूरी कागज-पत्र हैं, जो उसके

किसी काम न आयँगे, यदि वह कृपा करके मेरे कागज-पत्र लौटा दे, तो मैं उसका कृतज्ञ हूँगा। मैं न उसकी रिपोर्ट करूँगा और न उसे पुलिस हवाले ही करूँगा।'

ऊपरकी घटना एक सामान्य घटना है, लेकिन इससे भिक्षु उत्तमके चरित्रकी एक दिशा-पर खासी रोशनी पड़ती है। इससे प्रकट होता है कि भिक्षु कैसा निस्पृह, कैसा खुश-दिल और कैसा वेफिक्र आदमी है। वास्तवमें भिक्षु उत्तममें फक्कड़पन और जिन्दादिली ऐसे जौहर हैं, जिनसे उसके पास रहकर मुहर्रमी तबीयतवालोंकी मनहूसियत भी भाग खड़ी होती है। उनसे घंटों वातचीत करके भी तवीयत नहीं ऊबती।

भिक्षु उत्तम पढ़े अधिक नहीं हैं, पर 'गुने' खूब हैं। उन्हें संसारका विस्तृत ज्ञान है, लोगोंकी अच्छी परख है, क्योंकि उन्होंने दुनिया देखी है—और खूब देखी है।

एक दिन मैंने भिक्षुसे पूछा—'आपने किन-किन महाद्वीपोंकी यात्रा की है?'

भिक्षुने कहा—'मैं सिर्फ दो जगह नहीं गया हूँ।'

'कहां?'—मैंने पूछा।

भिक्षुने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—'स्वर्ग और नरक।' और खिलखिलाकर हँस पड़े।

उत्तमका जीवन अनेक विचित्रताओंसे भरा है। उत्तमका जन्म अकयाबमें हुआ था। पाँच वर्षकी उम्रमें ही पिताकेमर जानेपर विधवा माताने उन्हें बर्मी भाषाके प्राइमरी स्कूलमें भर्ती करा दिया। उस स्कूलकी पढ़ाई समाप्त करके वालक उत्तम ऐंग्लो-वर्नाकुलर स्कूलमें पहुँचा, और वहाँसे सातवाँ दर्जा पास करके नार्मल स्कूलमें दाखिल हुआ। नार्मल-परीक्षा पास करके उत्तम वर्मी भाषाका टीचर वन गया, और एक गर्ल्स स्कूलमें मुदर्रिसी करने लगा।

लेकिन युवक उत्तमकी दुस्साहसिक प्रकृति लड़कियोंको क,ख,ग पढ़ाकर ही सन्तुष्ट न हुई। उसका मन दुनिया देखने और कुछ करनेके लिए उतावला हो रहा था, इसलिए वह घरसे भाग खड़ा हुआ और सीधा कलकत्ते आ मौजूद हुआ। यह उसके लिए बिलकुल नयी दुनिया थी—नया देश, नयी भाषा, नये लोग, न कोई जान, न कोई पहचान, न कोई मित्र, न कोई सहायक और न गाँठ में पैसा। हाँ, उसके पास कुछ पूंजी जरूर थी, और वह थी रगोंमें जोश मारता हुआ नया खून, कठिनाइयोंसे लोहा लेनेका अरमान और अपने बूते अपना भविष्य वनानेकी इच्छा। इस अपरिचित नगरमें सवसे पहला सवाल था रोटीका, इसलिए इस नौजवान वर्मीने कलकत्ते जैसी महानगरीकी खाक छाननी शुरू की, और अन्तमें एक काम ढूंढ ही निकाला, वह था जवाहरातके एक दलालके यहाँ क्लर्की। रोटीका सवाल हल करके उसने अपनी शिक्षाकी ओर ध्यान दिया। वह कलकत्तेके डफ कालेज (मौजूदा स्काटिश चर्च कालेज) में भर्ती हो गया, और वहींसे तीन वर्ष वाद उसने एन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। इस शिक्षामें भी एक वड़ी दिक्कत थी। कालेजमें वर्मी भाषा पढ़ाई न जाती थी, इसलिए उत्तमने बँगला भाषा सीखी और उसीमें परीक्षा पास की। भारतीय नेताओंमें उत्तमके सिवा कोई दूसरा ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसने देशी भाषाकी मुदर्रिसीसे जीवन शुरू करके अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पायी हो।

इतिहासमें विद्यार्थी उत्तमने पढ़ा कि भारतवर्षका स्वर्ण-युग यदि कोई कहा जा सकता है, तो वह उसका बौद्धकाल था। उस समय भारतीय सभ्यता और संस्कृतिकी पताका दूर-दूर देशोंतक फहरायी थी। भारत भगवान् बुद्धकी जन्मभूमि है, इसलिए उत्तमके हृदयमें आरम्भसे ही उसके लिए अपार श्रद्धा और प्रेम था। भारतकी वर्तमान पतित अवस्थाको देखकर इस नौजवान वर्मीके मनमें विचार हुआ कि वह भूले हुए भारतीयोंको एक वार फिर तथागतका सन्देश सुनावे, लेकिन इसके लिए बौद्ध धर्म और बौद्ध शास्त्रोंका ज्ञान होना जरूरी था, इसलिए वह कलकत्तेकी नौकरी छोड़ फिर वर्मा पहुँचा। वहाँ उसने गृहस्थाश्रम छोड़कर भिक्षुकी दीक्षा ली, और चार वर्षतक विधिवत् पाली भाषा और बौद्ध-दर्शन आदिका अध्ययन किया। अध्ययन समाप्त करके वह फिर भारत लौटा और बौद्ध-धर्मका प्रचार करने लगा। लेकिन धर्मकी चर्चा करनेपर यहाँके लोग उससे कहते 'तुम संस्कृत जानते ही नहीं, इसलिए तुम धर्मकी बात क्या जानो।' अव उसे अनुभव हुआ कि भारतमें कुछ काम करनेके लिए यह जरूरी है कि उसे संस्कृत और हिन्दू-शास्त्रोंका ज्ञान हो तथा वह भारतीय सभ्यतासे पूर्ण परिचित हो। वस, उसने वनारसका टिकट कटाया, और वहाँ क्वीन्स कालेजमें वह तीन वर्षतक संस्कृत और हिन्दीका अध्ययन करता रहा। इससे निपटकर वह भारतीय संस्कृतिका अध्ययन करनेको निकल पड़ा, और एक वर्षतक वंगालसे पेशावर और कश्मीरसे मदरासतकका चक्कर लगाता रहा।

सन् १९०४ में यह वर्मी साधु घूमता-फिरता इंग्लैंड पहुँचा। वहाँ उसने केम्ब्रिज और आक्सफोर्डकी शिक्षा-प्रणालियोंका अध्ययन किया। लन्दनमें रहते समय भिक्षुको वैरिस्टर वननेकी सूझी, और वह मिडिल टेम्पेलमें भर्ती होनेकी तैयारी करने लगा। वर्मामें जव उसकी माताको उसके इस विचारकी खवर लगी, तो माताने पुत्रको चिट्ठी लिखी कि 'वेटा, तू संन्यासी हो चुका है, इसलिए ऐसा काम मत सीख, जिसमें तुझे वहुत-कुछ सच-झूठ, छल-प्रपंच करना पड़े।' माताका यह पत्र पाकर भिक्षुने वैरिस्टर वननेका विचार छोड़ दिया, और सन् १९०५ में वह भारत लौट आया।

उस समय वंगालमें वंग-भंगकी लपटें उठ रही थीं, स्वदेशी-आन्दोलनका ववंडर चल रहा था। वंगाली विद्यार्थियोंने यूनिवर्सिटीका वायकाट कर रखा था। उनकी शिक्षाके लिए एक नेशनल यूनिवर्सिटी स्थापित हुई थी। श्री अरविन्द घोष उसके प्रिन्सपल थे। उत्तम इसी यूनिवर्सिटीमें पाली भाषाके प्रोफेसर वन गये, लेकिन आर्थिक कठिनाइयोंके कारण साल-भर वाद प्रोफेसर उत्तम नौकरी छोड़कर फिर वर्मा पहुँचे।

वर्मा साक्षरतामें अन्य भारतीय प्रान्तोंसे आगे होनेपर भी राष्ट्रीय जागृतिमें अन्य प्रान्तोंसे बहुत पिछड़ा हुआ था। वर्मा पहुँचकर उत्तमने जगह-जगह घूमकर लोगोंमें आर्थिक ज्ञान, शिक्षा-प्रचार, समाज-सुधार तथा स्वदेशी-आन्दोलनका काम शुरू किया। चूँकि उत्तम-का सम्वन्ध अरविन्द घोष और स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ वनर्जीसे था, इसलिए सकारकी नजरोंमें वे भी वागी थे। उनपर पुलिसकी कड़ी निगाह रहती थी। यह समय उत्तमके लिए वड़ी कठिनाईका था। पुलिसके डरसे लोग-बाग, यहाँतक कि बन्धु-बान्धवतक, उनसे वात करनेमें डरते थे। उनके रिश्तेदारतक उनसे कन्नी काटते थे। इतना सब होते हुए भी, वे

साल-भरतक अपना काम करते रहे। अन्तमें पुलिसकी सख्ती और लोगोंकी उदासीनता तथा डरसे ज्यादा काम होता न देखकर वे जापान चले गये।

सन् १९०७ में जापानकी क्योटो वुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीने उन्हें तीन वर्षके लिए पाली-भाषा तथा बौद्ध-दर्शनका प्रोफेसर नियुक्त किया। जापानी विद्यार्थियोंको पढ़ानेके लिए उत्तमने जापानी भाषा सीखी। जापानमें रहते समय उत्तमने अनेक नवयुवक जापानियों और चीनियोंसे परिचय प्राप्त किया। इन परिचितोंमें एक चीनी नवयुवक भी था, जिसे उस समय वहुत कम लोग जानते थे, किन्तु आज उसे सारा संसार 'नवीन चीनका पिता' डॉक्टर सनयातसेनके नामसे जानता है।

सन् १९१० में क्योटो यूनिवर्सिटीका तीन वर्षका कन्ट्रैक्ट समाप्त करके भिक्षुने अपना वेतन जेबमें रखा और दुनिया घूमनेको निकल पड़े। कोरिया, चीन, मंगोलिया, मंचूरिया होते हुए उन्होंने साइवेरियाके समूचे वर्फानी मैदानको पार किया, और यूरोप पहुँचे। यूरोपका प्रत्येक देश देखकर ऐटलान्टिकको पार करके वे अमेरिका महाद्वीपमें दाखिल हुए। वहाँ उन्होंने यूनाइटेड-स्टेट्स, कैनेडा और दक्षिणी अमेरिकाका चक्कर लगाया, जहाँसे वे दक्षिणी अफ्रीका गये और वहाँ कुछ दिन घूम-घामकर वर्मा लौट आये।

सन् १९१२ में भिक्षु उत्तम लगभग एक दर्जन वर्मी विद्यार्थियोंको साथ लेकर, जिनमें उनकी एक वहन भी थीं, उन्हें औद्योगिक शिक्षा दिलानेके लिए पुनः विदेश गये। लगभग आधे विद्यार्थियोंकी शिक्षाका प्रवन्ध जापानमें करके वे वाकीको लेकर अमेरिका पहुँचे और उन्हें वहाँके स्कूलोंमें भर्ती करा दिया। वे कुछ दिन अमेरिकामें रहकर जापान लौट आये। जव वे जापानमें थे, तभी महायुद्ध आरम्भ हो गया। उन दिनों जर्मनीके एमडन आदि जंगी-जहाजोंने प्रशान्त महासागरमें भयंकर उत्पात मचा रखा था। वे आये दिन दो-चार अंग्रेजी जहाजोंका खात्मा कर डालते थे। उसी समय भिक्षु उत्तमको आस्ट्रेलिया जानेकी सूझी। इसलिए वे टोकियोके ब्रिटिश कौंसलके पास पासपोर्टपर दस्तखत करानेके लिए पहुँचे। कौंसलने उन्हें मना करते हुए कहा 'आप आस्ट्रेलिया मत जाइये।'

'क्यों?'

'आजकल जर्मन रोज ही जहाजोंको डुवाते हैं। आपका जहाज भी डूव गया, तो? तो मुफ्तमें जान जायगी।'

उत्तम ठठाकर हँस पड़े—वोले—'आप पासपोर्टपर दस्तखत कीजिये। अगर जान जायगी भी तो सिर्फ एक वार, सो भी मेरी, आपकी नहीं।'

वेचारा कौंसल इस वेतुके जवावपर चकित रह गया। उसने चुपकेसे पासपोर्टपर दस्तखत कर दिये।

आस्ट्रेलिया घूमकर उत्तम पूर्वीय द्वीप-समूह—सुमात्रा, जावा, वोर्नियो इत्यादि,—कम्वोडिया, इन्डोचाइना, अनाम, स्याम आदि होते हुए वर्मा लौटे।

अपनी इन विस्तृत यात्राओंमें उत्तमको एक वातका वड़ा कटु अनुभव हुआ, वह है भारतकी पराधीनता। पराधीन होनेके कारण विदेशोंमें भारतीयोंको—चाहे वे कितने ही सम्मानित व्यक्ति क्यों न हों—वहुधा अपमानित और लज्जित होना पड़ता है। बौद्ध

संन्यासी होनेके कारण उत्तम जहाँ जाते, वहाँ वे बौद्ध-धर्मपर व्याख्यान भी देते। यूरोप, अमेरिका आदिमें लोग उनका व्याख्यान सुननेको आते भी थे, कुछको बौद्ध धर्मकी थोड़ी-बहुत जानकारी होती भी थी, और बहुतेरे उनके व्याख्यानसे प्रभावित होकर बौद्ध धर्मकी श्रेष्ठताको स्वीकार भी करते थे। इतना सब होनेपर भी अन्तमें वे जो कहते थे, उसका सारांश यही होता था—'हम मानते हैं कि तुम्हारे धर्मकी बहुत-सी बातें अच्छी हैं, लेकिन है तो वह गुलामोंका धर्म। क्या तुम समझते हो कि हम लोग गुलामोंका धर्म ग्रहण करेंगे ?'

पग-पगपर पराधीनताका यह अनुभव करके उत्तम इस परिणामपर पहुँचे कि जबतक देशको आजाद न बनाया जाय, तबतक धर्मका प्रचार भी असम्भव है। गुलामीके इस कड़ुवे अनुभवने ही इस संसार-त्यागी भिक्षुको मन्दिर-माला छोड़कर मुल्ककी आजादीकी जंगमें सिपाही बननेके लिए मजबूर किया।

सन् १९०५ से १९२० तक भिक्षु उत्तम स्वतन्त्र रूपसे ही सार्वजनिक कार्य करते रहे। सन् १९२० में वे पहले-पहल कांग्रेसमें शामिल हुए। तबसे वे कांग्रेसके कामोंमें प्रमुख भाग लेते रहे हैं। असहयोग-आन्दोलनमें उन्हें पहले एक सालकी कैद हुई। जेलसे छूटकर वे गया-कांग्रेसमें सम्मिलित हुए। उससे निपटकर वे युद्धके बाद यूरोपकी अवस्थाका अध्ययन करनेके लिए यूरोप गये। सन् १९२४ में यूरोपसे लौटकर उन्होंने बर्मामें एक जोरदार राजनीतिक आन्दोलन चलाया, जिसके फलस्वरूप उन्हें तीन वर्षकी सजा हुई। सन् १९२७ में जेलसे छूटकर वे मदरास कांग्रेसमें शामिल हुए और कुछ महीने बाद फारमोसा, शांघाई होते हुए जापान गये।

शांघाईमें भिक्षु उत्तमने सिखोंके गुरुद्वारेमें एक व्याख्यान दिया, जिसमें उन्होंने सिखोंकी उनकी गुलाम-मनोवृत्ति पर लानत-मलामत की। शांघाईके ब्रिटिश अधिकारी इस बातपर फौरन भड़क उठे। उत्तमने कोई अपराध तो किया नहीं था, जिसपर उन्हें गिरफ्तार किया जा सकता, इसलिए ब्रिटिश पुलिसने उनके पास राजद्रोही साहित्य होनेके सन्देहमें तलाशीका वारंट निकाला। शांघाई शहरके भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंके अधिकारमें हैं। उत्तम अपने एक जापानी मित्रके साथ शांघाईके जापानी अधिकारमें ठहरे हुए थे। ब्रिटिश पुलिस, जापानी अधिकारियोंसे आज्ञा लेकर, बड़े सवेरे तलाशीको पहुँची। अंग्रेज सुपरिण्टेण्डेण्टने मालिक मकानको वारंट दिखलाकर उत्तमको बुलाया और पूछा—'आपके पास कुछ राजद्रोही साहित्य है ?'

'हाँ, है, बहुत है।'—भिक्षुने उत्तर दिया।

भिक्षुके इस उत्तरपर बेचारा मालिक मकान सहम गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट भी भिक्षुकी इस स्वीकारोक्तिपर फूल उठा। उसने उत्सुकतासे पूछा—'कहाँ है ?

भिक्षुने अपने हृदयकी ओर इशारा करते हुए उत्तर दिया—'यहाँ, इसके भीतर भरा है।' और खिल-खिलाकर हँस पड़े। पुलिस तलाशी लेकर खाली हाथ चली गयी।

उत्तमको अपने देश और राष्ट्रके सम्मानका बड़ा ध्यान रहता है। जब वे शांघाईसे जापान पहुँचे, उसके कुछ दिन बाद ही चीनकी राष्ट्रीय सरकारने स्वर्गीय डाक्टर

सनयातसेनके समाधि-संस्कारका उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया था। इस उत्सवमें चीनी सरकारने संसारके सभी राष्ट्रोंको निमन्त्रित किया था। भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेसको भी न्योता मिला था। इसपर कांग्रेसके तत्कालीन सभापति स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरूने तार देकर भिक्षु उत्तमको कांग्रेसका प्रतिनिधि बनाकर चीन जानेके लिए आदेश दिया। भिक्षु उत्तम चीन पहुँचे। वहाँ पहुँचकर देखा कि संसारके सभी देशोंके प्रतिनिधि आये हुए हैं। प्रधान उत्सवके दिन चीनके इस महापुरुषकी समाधिपर पुष्पांजलि अर्पित करने और सम्मान प्रदर्शित करनेका कार्यक्रम बन चुका था। किस राष्ट्रका प्रतिनिधि पहले सम्मान प्रदर्शित करेगा, उसके वाद किस राष्ट्रका प्रतिनिधि होगा, यह सब बाकायदा निश्चित हो चुका था। यूरोपके शक्तिशाली राष्ट्रोंके आगे भला गुलाम भारतकी कांग्रेसके प्रतिनिधिको कौन पूछता! कांग्रेसके प्रतिनिधिकी वारी सबसे अन्तमें थी। जब भिक्षुको यह ज्ञात हुआ, तो वे चीनी सरकारकी सनयातसेन-शव-संस्कार-समितिसे लड़ पड़े। उन्होंने चीनके परराष्ट्र-सचिवके द्वारा समितिसे कहलाया—'मुझे सबसे पहले स्थान मिलना चाहिये, क्योंकि मैं संसारके सबसे बड़े जनसमुदायका—३५,००,००,००० मनुष्योंका—प्रतिनिधि हूँ, क्योंकि भारत और चीनका अत्यन्त पुराना सम्बन्ध है, क्योंकि भारतवर्ष चीनका धर्मगुरु है, क्योंकि भारत इस समय पराधीन होनेके कारण अधिक सहानुभूतिका अधिकारी है। इसके अतिरिक्त मैं स्वयं चीनियोंका धर्म-भाई बौद्ध हूँ, और बौद्धोंमें भी भिक्षु। अतः भारतीय कांग्रेसका प्रतिनिधि ही प्रत्येक दृष्टिसे सर्वप्रथम स्थानका अधिकारी है।'

समितिमें इस प्रश्नपर बड़ी गरमागरम बहस हुई। अन्तमें तीन घंटेके बहस-मुबाहसेके वाद समझौता हुआ। कांग्रेसके प्रतिनिधिको प्रथम स्थान तो नहीं मिला, किन्तु यह तय हुआ कि समाधिपर सबसे पहले रोमके पोपका प्रतिनिधि पुष्पांजलि अर्पित करे और उसके वाद दूसरे नम्बरपर भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेसका प्रतिनिधि।

उस उत्सवमें कांग्रेसके प्रतिनिधिकी शान निराली थी। तमाम देशोंके प्रतिनिधि अप-टू-डेट यूरोपियन कपड़ोंमें थे। केवल भारतीय कांग्रेसका प्रतिनिधि अपने पीले भिक्षु-वस्त्रोंमें था।

सबसे पहले पोपका प्रतिनिधि आगे बढ़ा, और उसने जाकर यूरोपियन ढंगसे फूलोंकी माला सनयातसेनकी समाधिपर चढ़ा दी। उसके वाद भिक्षुकी वारी आयी। काले-काले यूरोपियन कपड़ोंके जंगलोंके बीचमें भिक्षुका पीत चीवर बड़ी दूरसे ही चमक रहा था, जिससे लाखों दर्शकोंकी आँखें उस ओर आकर्षित हो रही थीं। जैसे ही भिक्षु तीन-चार साथियोंके साथ आगे बढ़ा, वैसे ही चीनका राष्ट्रीय बैंड बज उठा। भिक्षुने समाधिको प्रणाम किया। और बौद्ध ढंगपर शवकी प्रदक्षिणा करने लगा। भिक्षु प्रदक्षिणा करता जाता था, साथ-साथ बैंड बजता जाता था। प्रदक्षिणा समाप्त होते ही बैंड भी चुप हो गया। भिक्षुने श्रद्धासे पुष्पांजलि अर्पित की। चारों ओरसे लाखों आदमियोंने करतलध्वनि की। फिर भिक्षुसे कुछ बोलनेके लिए कहा गया। भिक्षुने एक छोटी-सी वक्तृता देकर चीन और भारतके प्राचीन सम्बन्धका उल्लेख किया और नवीन चीनके साथ भारतकी पूर्ण

सहानुभूतिका सन्देश दिया। इस प्रकार उत्तमने एक महान् राष्ट्रका प्रतिनिधि बननेका कर्तव्य निबाहा।

जापानसे उत्तमने इंग्लैंडका टिकट लिया। उस समय लाहौर-कांग्रेस होनेवाली थी, इसलिए वे बीचमें, कोलम्बोमें, अपनी यात्रा भंग करके लाहौर-कांग्रेसमें शामिल हुए। लाहौरसे वे दस-पाँच दिनके लिए बर्मा गये। बर्मासे जब वे फिर इंग्लैंड जानेके लिए रवाना हुए, तो कलकत्तेमें ही पुलिसने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उन्होंने कोई जुर्म तो किया न था, इसलिए दो-एक दिन हाजतमें रखकर पुलिसने उन्हें छोड़ दिया, लेकिन उनका पासपोर्ट जब्त कर लिया। तबसे आजतक सरकार उन्हें पासपोर्ट नहीं दे रही है। पिछले चार-पाँच वर्षमें उन्हें धर्म-प्रचारके लिए जापान, जर्मनी तथा अमेरिकाकी बौद्ध-संस्थाओंने कई बार निमन्त्रित किया, किन्तु सरकार उन्हें कहीं बाहर नहीं जाने देती। उत्तमका स्वास्थ्य भी इधर कुछ दिनोंसे अच्छा नहीं रहता था, इसलिए उन्होंने पिछले तीन-चार सालसे सार्वजनिक कामोंमें भाग लेना बन्द कर रखा था। इस साल वे फिर कार्यक्षेत्रमें आये हैं, और आजकल हिन्दू-महासभाके सभापतिके रूपमें भारतका दौरा कर रहे हैं।

भिक्षु उत्तम जैसे राष्ट्रीय विचारोंके व्यक्तिके लिए हिन्दू-महासभा जैसी संकीर्ण साम्प्रदायिक संस्थामें कार्य करना बेतुका-सा जान पड़ता है, लेकिन हिन्दू-महासभाका सभापति बननेके बादसे अबतक उन्होंने जो कुछ किया है, उससे ज्ञात होता है कि यदि हिन्दू-महासभाके कार्यकर्ताओंमें उत्तम-जैसे दो-चार व्यक्ति और भी हों, तो वह संकीर्ण साम्प्रदायिकतासे निकलकर एक सच्ची राष्ट्रीय संस्था बन सकती है।

भिक्षुमें एक गुण और भी है। वह यह कि वे या तो किसी काममें पड़ते नहीं, और यदि पड़ते हैं, तो उसे पूरा करनेकी जी-जानसे कोशिश करते हैं। यह बात उनके आजकलके कार्यसे प्रत्यक्ष हो जाती है। हिन्दू-महासभाके सभापति होनेके बादसे वे सारे देशमें दौरा करके अपना कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। यह बात निर्विवाद है कि उन्होंने पिछले तीन मासमें जितना काम किया है, उतना काम आजतक महासभाके किसी भी अन्य सभापतिने साल-भरमें भी नहीं किया। उत्तम अक्सर मजाकमें कहा करते हैं—'कुछ नेतागण जब किसी कामके लिए बुलाये जाते हैं, तो अकसर कोई बहाना निकालकर जाते ही नहीं, और यदि गये भी, तो घरमें कह जाते हैं कि दूसरे ही दिन उन्हें एक तार दे दिया जाय कि तुम्हारी स्त्री या बच्चा सख्त बीमार है, फौरन आओ। बस, लीडर महाशय उस झूठे तारको दिखलाकर छुट्टी पा जाते हैं। दुर्भाग्यवश मैं भिक्षु हूँ। मेरे न स्त्री है, न पुत्र। न नौकर, न चाकर। फिर भला बीमार कौन पड़े और तार कौन दे? इसलिए मुझे तो अपना काम करना ही होगा।'

भिक्षुमें एक और बड़ा गुण यह है कि वे दूसरेकी बुराई करना या सुनना पसन्द नहीं करते। उनके हालके दौरेमें ही दो-तीन जगह कुछ व्यक्तियोंने उनसे किन्हीं नेताओंकी बुराई की। भिक्षुने उत्तरमें कहा, 'भई, मुझे तो सबसे बुरा वही जान पड़ता है, जो दूसरेकी बुराई करता है।' भिक्षु उत्तममें उत्साह है, लगन है, सरलता है, ईमानदारी है और सबसे बड़ी बात है देशकी आजादीके लिए सर्वस्व निछावर कर देनेकी इच्छा।

: ७ :

निकोलस रोरिक

शिमलासे सवा सौ मील दूर, कुल्लूके सेव और नाशपातीके बागोंसे भरे प्रदेशमें, हिमालयके गगनचुम्बी शिखरोंकी छायामें बसे हुए एक छोटेसे पहाड़ी कस्बे 'नगर' में 'उरुस्वती हिमालियन रिसर्च इन्स्टीच्यूट' नामक एक संस्था स्थापित है। इस संस्थाका कार्य पुरातत्व, प्राकृतिक विज्ञान, भैषजविज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, प्राणिशास्त्र, रसायन-विज्ञान, भौतिक विज्ञान इत्यादि विषयोंका मौलिक अनुसन्धान करना है।

यक्षों और किन्नरोंकी इस क्रीड़ा-भूमिमें यह संस्था स्थापित करनेवाला कोई भारतवासी नहीं है, वरन् सुदूर रूसका एक महान् कलाकार, कवि, मनीषी और अन्वेषक विद्वान् है। इस महान् प्रकृति-प्रेमी कलाविद्का नाम है निकोलस रोरिक।

रोरिकका जीवन एक विचित्र जीवन है। वियावान मैदानों और भयंकर शीतके देश रूसमें (सन् १८७४ में) जन्म लेकर रोरिकने सेंट-पीटर्सबर्गकी यूनिवर्सिटीमें कानूनी शिक्षा प्राप्त की। परन्तु स्वाभाविक रुचि कला और विज्ञानकी ओर थी, इसलिए वह सेंट-पीटर्सबर्गकी 'एकेडेमी ऑफ फाइन आर्ट' में भर्ती होकर रेखांकन और चित्रकला सीखता रहा। कुछ दिनतक उसने पेरिसमें भी चित्रकलाकी शिक्षा प्राप्तकी थी। परन्तु कला-प्रेमके साथ-ही-साथ उसे पुरातत्वमें भी बड़ी रुचि थी। सन् १८९६ से १९०० तक वह सेंट-पीटर्सबर्गकी राजकीय पुरातत्व-समितिमें अध्यापक रहा। इस अध्यापन-कार्यके साथ-ही-साथ वह 'कला' नामक एक पत्रमें सहकारी सम्पादकका कार्य भी करता था। सन् १९०३ में वह रूसकी 'आर्कीटेक्चरल सोसाइटी'का सदस्य चुना गया। यह सम्मान केवल लब्धप्रतिष्ठ कलाकारों और पुरातत्ववेत्ताओंको ही प्राप्त होता है। सन् १९०६ से १९१६ तक वह रूसमें ललित-कलाओंको प्रोत्साहन देनेवाले स्कूलका डायरेक्टर और रूसी कलाके म्यूजियमका सभापति रहा।

सन् १९१० में वह यूरोपकी सुप्रसिद्ध संस्था 'कला-जगत्'का प्रथम सभापति हुआ। रूसी क्रान्तिके कुछ दिन पहले रोरिक अपने देशसे रवाना हुआ, और फिनलैण्ड, स्वीडेन, इंग्लैंड आदि घूमता हुआ अमेरिका पहुँचा। उसी समयसे उसकी जीवन-धारा और महान् कार्यशीलता दूसरी दिशाओंमें वह निकली, जिसके फलस्वरूप आज उसकी स्थापित की हुई लगभग पचास संस्थाएँ, संसारके विभिन्न भागोंमें कार्य कर रही हैं।

संसारमें रोरिककी प्रसिद्धि उसकी चित्रकलाके कारण है। 'कैनवेस' (चित्रपट) पर अपनी तूलिका और रंगोंसे उसने ऐसे चमत्कार पैदा किये हैं, अनेक नैसर्गिक भावोंको खींचकर चित्रपटपर इस प्रकार कैद कर दिया है, जिससे संसारने उसे इस कलाका महान्

आचार्य स्वीकार कर लिया। उसने लगभग ३,००० बड़े-बड़े चित्र अंकित किये हैं, जो चित्र-कलाके उत्कृष्ट रत्नोंमें गिने जाते हैं। संसारके सभी प्रसिद्ध देशोंकी बड़ी-बड़ी चित्र-शालाओं और संग्रहालयोंमें उसके चित्र संगृहीत हैं। न्यूयार्कमें तो रोरिक-म्यूजियमके नामसे एक वृहद् संग्रहालय ही है, जिसमें केवल रोरिकके अंकित किये हुए चित्र हैं। इस संग्रहालयमें रोरिककी तूलिकासे निकले हुए एक हजारसे अधिक बड़े-बड़े चित्रपट (कैनवेस) संगृहीत हैं।

रोरिक केवल किसी एकान्त कोनेमें बैठकर चित्र अंकित करनेवाला ही नहीं है। उसके स्वभावमें घुमक्कड़पन काफी मात्रामें है। संसारके अज्ञात और अल्पज्ञात कोनों और सुदूर अंचलोंमें घूमकर उनका पता लगाना, संसारको उनसे परिचित कराना और उन स्थानोंकी अन्तरात्माको अपनी तूलिका और रंगोंसे चित्रपटपर रख देना उसका काम है। उसने वैज्ञानिक अनुसंधानकारियोंके दल संगठित करके संसारके सबसे दुरूह और दुर्गम देश तिब्बत, चीन, तुर्किस्तान और मंगोलिया आदि स्थानोंकी यात्रा की। केवल इस एक ही यात्रामें उसने पाँच सौसे अधिक चित्र अंकित किये हैं। यह "चित्रमाला" A Great Saga of East (प्राच्यकी महान् गाथाएँ) के नामसे प्रसिद्ध है। इसी प्रकार उसने अनेक चित्रमालाएँ अंकित की हैं, जो 'विजडम सीरीज' (ज्ञान-चित्रमाला), 'बैनर ऑफ दी ईस्ट सीरीज (प्राच्य पताका चित्रमाला), 'चंगेजखां सीरीज', 'पृथ्वीकी कन्याएँ सीरीज', 'देश सीरीज' आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

रोरिककी प्रतिभा सार्वभौमिक है। उसके चित्रोंमें कुछ ऐसी अपील है, जो किसी भी देश, किसी भी जाति और किसी भी धर्मके लोगोंको प्रभावित कर सकती है। रंगोंका तो वह जादूगर कहा जाता है। चित्रोंकी सार्वभौमिकता, उनकी मूक वाणी, रंगोंका अद्भुत चमत्कार इत्यादि बातें मिलकर देखनेवालोंके मनमें एक विचित्र भाव पैदा कर देती है। सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता आइन्स्टाइनने कहा था कि वह रोरिकके एक चित्रसे जितना प्रभावित हुआ, उतना किसी और चीजसे नहीं हुआ।

रोरिकके चित्रांकनका ढंग अपना निजी है। उसके पूर्वीय चित्रोंमें प्राच्यकी आत्मा स्पष्ट दीख पड़ती है। उसके बहुतसे चित्र लाक्षणिक (Symbolical) हैं। उसके चित्रोंके कुछ नामोंसे ही उसकी विलक्षण प्रतिभा और सार्वभौमिकताका आभास मिल सकता है। उसकी 'सेंक्टा सीरीज' के कुछ चित्रोंके नाम हैं—'और हम द्वार खोलते हैं,' 'और हमें भय नहीं है', 'और हम प्रयत्नशील हैं', 'और हम देखते हैं', 'और हम प्रकाश उत्पन्न करते हैं,' 'सन्देशवाहक', 'चमत्कार', आदि। 'विजडम सीरीज'के कुछ चित्रोंके नाम हैं—'आगकी कलियाँ', 'चिन्तामणि', 'पथ-प्रदर्शिका', 'अन्धकारकी चिता' आदि। 'बैनर ऑफ दी ईस्ट सीरीज'में 'संसारकी माता', 'विजेता बुद्ध', 'ईसा का चिह्न', 'नेता मूसा', 'पथसंस्रव', 'काहिरा पहाड़पर मुहम्मद', 'न्यायप्रिय कन्फ्यूशस', 'मैत्रेय', 'कृष्ण', 'भगवान्', 'सर्पोंका विजेता नागार्जुन', 'कर्ताकी आज्ञा' आदि। इन नामोंसे यह प्रत्यक्ष है कि स्वयं ईसाई धर्ममें जन्म लेकर भी रोरिकके विशाल हृदयमें सभी धर्मों और सभी धर्म-प्रवर्तकोंके प्रति श्रद्धा और सम्मान है।

रोरिकके हृदयमें समस्त विश्वके प्रति प्रेम है। उसका सौन्दर्योपासक हृदय विश्वमें शान्ति, सद्भाव और प्रीति देखना चाहता है। इसी उद्देश्यसे उसने अनेक संस्थाएँ स्थापित की हैं। न्यूयार्कका 'रोरिक-म्यूजियम' विश्व-संस्कृतिका एक महान् केन्द्र है। सम्मिलित कलाओंकी आचार्य-समिति (The Master Institute of United Arts) नामक एक संस्था उसने न्यूयार्कमें १७ नवम्बर १९२१ में स्थापित की थी। इस संस्थाका 'मोटो' है—"कला समस्त मानव-जातिमें एकता स्थापित करेगी। कला एक है—उसके टुकड़े नहीं हो सकते। कलाकी अनेक शाखाएँ हैं, फिर भी वह एक है। कला सभीके लिए है। हर एक व्यक्ति सच्ची कलाका आनन्द उठा सकता है। 'पवित्र उद्गम' का द्वार सभीके लिए खुला रहना चाहिये। कलाका प्रकाश अनेक हृदयोंको एक नूतन प्रेमसे भर देगा।" इस संस्थाका कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसमें कलाकी सम्पूर्ण शाखाओं—संगीत, साहित्य, गान, वाद्य, नृत्य, नाटक, चित्र-कला, ग्राम-गीत, चित्रकारी, ड्राइंग, रंगमंचोंकी सजावट, मूर्तिकला, स्थापत्यकला, पत्रकार-कला आदि—की शिक्षा, प्रचार और प्रोत्साहनका प्रबन्ध है। पिछले दस वर्षमें संसारमें इस प्रकारकी पचाससे अधिक रोरिक-संस्थाएँ स्थापित हो चुकी हैं। समय-समयपर ये संस्थाएँ कला-सम्बन्धी वस्तुओंकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी किया करती हैं।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, रोरिक केवल चित्रकार ही नहीं है, वरन् वह कवि, लेखक और अन्वेषक भी है। उसकी लिखी हुई अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। न्यूयार्कका रोरिक-म्यूजियम संस्कृतिविषयक दस ग्रन्थमालाएँ प्रकाशित कर रहा है, जिसमें अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

रोरिकके हृदयमें स्त्रियोंके प्रति बड़ी श्रद्धा है। वह कहता है—'निकट-भविष्यके सुखोंको संसारमें लाना स्त्रियोंके भाग्यमें ही है।' परन्तु उसने मातृ-जातिके प्रति अपनी इस श्रद्धा और विश्वासको, शब्दोंमें प्रकट करनेके बहुत पहले ही, अपनी तूलिकासे चित्रपट-पर अंकित कर दिया है। उसके 'निर्झरका संगीत', 'प्रातःकालका गीत' और 'पक्षियोंकी भाषा' नामक चित्रोंमें उसकी यह श्रद्धा स्पष्ट दीख पड़ती है। इन चित्रोंमें जो महिला-मूर्तियाँ अंकित हैं, वे पूर्वीय देशोंकी स्त्रियोंसे मिलती-जुलती हैं। वे कोई विशेप स्त्रियाँ न होकर स्त्री-जाति मात्रकी प्रतीक हैं।

हिमालयके उच्च शिखरोंपर बैठकर उसने जो चित्र अंकित किये हैं, वे बहुत अद्भुत हैं। 'पथ-प्रदर्शिका' के चित्रके पृष्ठ-भाग (Back ground) में बादलोंके झीने आवरणसे ढका हुआ गौरीशंकर पहाड़ खड़ा है। प्रातःकालकी गुलाबी-सुनहरी किरणें उसे अपूर्व शोभा प्रदान कर रही हैं। हल्के ढीले कपड़े पहने हुए एक स्त्री—चीनकी दयाकी देवी, क्वान यिन—जा रही है, उसके सिरपर दो गरुड़ उड़ते हुए उसी ओर जा रहे हैं, जिधर वह।

'सर्प' नामक चित्रमें भयंकर समुद्र फुँफकार रहा है, जिसकी लहरें आकाशसे बातें कर रही हैं। समुद्रकी निगूढ़ गहराईके भीतरसे संसारकी माता अपनी परिचारिकाओंके साथ निकल रही है। आकाशमें चीनी ज्ञानका प्रतीक अजदहा उड़ता दीख पड़ता है।

'स्मरण रहे' नामक चित्रमें गौरीशंकरकी चोटी लाल नहीं रह गयी, अब उसका रंग बदलकर नीलाभ हो गया है। एक व्यक्ति सफेद घोड़ेपर सवार किसी कार्यका बीड़ा उठाकर बढ़ा जा रहा है। एक सिरेपर पहुँचकर वह रुककर पीछे मुड़कर देखता है। दूसरे सिरे-पर दो स्त्रियाँ खड़ी उसे ताक रही हैं। घुड़सवार उनकी आँखोंमें शुभ आशीर्वादके लिए देखता है, मगर उसे उन आँखोंसे ये शब्द निकलते जान पड़ते हैं—'स्मरण रहे तुमने क्या प्रण किया था।'

'भगवान् बुद्ध'—नामक चित्रमें हिमालयकी एक गुफामें बैठे बुद्ध ध्यानमग्न हैं, नीचे जल भरा है, जो जीवनके उद्गमका प्रतीक-स्वरूप है।

'मैत्रेयका चिह्न' नामक चित्र वास्तवमें लद्दाखके मार्गमें एक भव्य प्रतिमाका चित्र है। एक भक्त यात्री सहसा आकाशमें देखता है कि बादलोंके रूपमें संसारके भावी उद्धारक एक विजयगामी घोड़ेपर उड़े जा रहे हैं।

'बिना छलका प्याला' नामक चित्रमें भी हिमालयका दृश्य है। एक पवित्र पुरुष उस लोकसे एक अमृत-भरा प्याला लेकर आये हैं। चारों ओर वर्फ, ग्लेशियर और भयंकर ऊँची-नीची चोटियाँ हैं। मार्गकी (जीवनकी) इस भयंकर उँचाई-निचाईको देखकर वे इस फेरमें पड़े हैं कि कहीं प्यालेका (जीवनका) अमृत छलककर गिर न जाय, उसे कैसे सुरक्षित रखा जाय?

प्रसन्नताकी बात है कि रोरिक महाशयने अपने एक दर्जन उत्कृष्ट चित्र काशीके भारतीय कला भवनको प्रदान किये हैं। इन एक दर्जन चित्रोंमें 'वीरका नक्षत्र', 'दाता बुद्ध', 'मंगलमय भगवान्,' 'चरक', 'कल्कि अवतार', 'मैत्रेय', सरीखी सुप्रसिद्ध कृतियाँ तथा हिमालय और तिब्बतके कुछ दृश्य हैं।

'वीरका नक्षत्र' नामक चित्रमें रात्रिके अस्पष्ट रंगोंमें एक लड़का बड़े उत्साहसे आकाशमें एक टूटते हुए उल्काकी ओर देखता दिखाया गया है।

'दाता बुद्ध' नामक चित्र संध्याके नील-श्याम वर्णोंमें अंकित है, जिसमें भगवान् बुद्ध एक तीर्थ-यात्रीसे बड़े हृदयस्पर्शी ढंगसे मिलते हुए दिखायी देते हैं।

'मंगलमय भगवान्' नामक चित्र श्री रामकृष्णको समर्पित है। उसमें यह दिखाया गया है कि भगवान् 'ओउम्'के पवित्र चिह्नको हिममंडित शिखरोंसे दुःखित-पीड़ित संसारकी ओर ला रहे हैं।

'कल्कि अवतार'का चित्रण हिमालयकी श्रेणियोंके ऊपर छाये हुए जाज्वल्यमान बादलोंमें बड़े उग्र, दृढ़तापूर्ण और शानदार ढंगसे किया गया है।

'चरक' नामक चित्रमें आयुर्वेदके महान् आचार्य हिमालयके उच्च शिखरोंपर जड़ी-बूटियाँ एकत्रित करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी जड़ी-बूटियोंसे एक विचित्र नीली-सी आभा निकलती दिखायी देती है।

'त्रिरत्न' नामक चित्रमें दो घायल हरिण एक ऋषिकी शरणमें आते दिखायी पड़ते हैं।

भारतके लिए इन चित्रोंको प्राप्त करनेके लिए श्री रायकृष्णदासजी बधाईके पात्र

हैं। इन चित्रोंके लिए कला-भवनमें एक पृथक् 'हाल' का प्रबन्ध हो रहा है, जो न्यूयार्कके रोरिक-म्यूजियमकी एक शाखाके रूपमें होगा। बनारस जानेवाले प्रत्येक कला-प्रेमीको इनका दर्शन करना चाहिये।

महाकवि रवीन्द्रनाथने रोरिकके चित्रोंको देखकर कहा था—'आपके चित्रोंने मुझे बहुत प्रभावित किया। उनसे मुझे एक बात प्रत्यक्ष हो गयी—वह बात जो एकदम स्पष्ट है, फिर भी जिसे प्रत्येक व्यक्तिको बार-बार ढूँढ़ना पड़ता है—वह यह है कि सत्य अनन्त है। आपके चित्र स्पष्ट हैं, फिर भी शब्दों द्वारा उनका वर्णन नहीं हो सकता। आपकी कला महान् है, इसीलिए वह अपनी स्वतन्त्रताके लिए सावधान है।'

रोरिक महाशयने 'उरुस्वती-इंस्टीच्यूट'के परिचालनके लिए कुछ धन अलग रख दिया है, तथा अपनी कुछ पुस्तकोंकी बिक्रीकी आमदनी उसके लिए दे दी है।

: ८ :

स्वर्गीय पंडित ब्रजनारायण चकबस्त

जब कभी महाकवि पंडित ब्रजनारायण चकवस्तका नाम आ जाता है, तब पिछले वर्षोंकी वहुत-सी स्मृतियां सजग हो उठती हैं। हृदयकी पुस्तकके वहुतसे पिछले पन्ने एक साथ उलट जाते हैं। लखनऊके दरो-दीवार आँखोंके सामने नाचने लगते हैं और चकवस्त महोदयका वह सीधा, सादा, सरल किन्तु प्रतिभापूर्ण चेहरा हृदय-पटलपर सजीव रूपसे आ खड़ा होता है। अतीतके पचासों मधुर दृश्य सिनेमाके फिल्मकी भाँति स्मृतिके चक्षुओंके सामने दौड़ जाते हैं, पिछली वीती हुई वातें हरी हो जाती हैं और मस्तिष्कमें उस सूखी हुई पुरानी मदिराकी खुमारी देरतक वनी रहती है।

मैं उस समय लखनऊमें स्कूलका विद्यार्थी था। विद्यार्थी-जीवनके उस 'तूफान बदतमीजी' में मुझे दीन-दुनियाकी खवर न थी। लड़कपनके उस ज्ञान-हीन जीवनमें जव लाट साहब और वुद्धू मिस्त्रीमें कोई विशेष फर्क न ज्ञात होता था, उसी समयसे चकवस्त महाशयने मेरे बाल-हृदयमें एक प्रतिष्ठाका स्थान अधिकृत कर लिया था। यद्यपि मेरी उनकी व्यक्तिगत जान-पहचान न थी, किन्तु लखनऊके तत्कालीन सार्वजनिक जीवनको, जिसने एक वार भी किसी रूपमें देखा होगा, उसके हृदयपर उनका वह भोला-भाला चेहरा, वह सादी चाल-ढाल, वह लम्वी शेरवानी अचकन और वह गम्भीर ओजपूर्ण मधुर वाणी सदाके लिए अंकित हो गयी होगी। लखनऊकी बीसियों सभा-सोसाइटियोंमें उनको देखा और पढ़ते सुना है। इसके अतिरिक्त उनका निवास-स्थान मेरे स्कूलके मार्गमें था। इसलिए प्रायः प्रतिदिन एक दो-वार उस मूर्तिके दर्शन अवश्य ही हो जाते थे।

चकवस्त महोदय उर्दू-भाषाके महाकवि थे। वे लखनऊके एक प्रतिष्ठित कश्मीरी खानदानके रत्न थे। उन्होंने उच्चकोटिकी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी। उनका अंग्रेजी भाषा और साहित्यका ज्ञान वहुत गहरा था, किन्तु उन्होंने उर्दू और फारसी साहित्यका भी अच्छा अध्ययन किया था। उनका जीवन शान्त, निर्मल और पवित्र था। वे किसी प्रकारकी टीम-टाम और तड़क-भड़क पसन्द न करते थे। उनके हृदयमें देशभक्तिकी प्रचण्ड अग्नि प्रज्जवलित थी। देशवासियोंके दुखसे उनका हृदय सदा द्रवित रहता था। वे भारतवर्षकी संस्कृतिके उपासक थे और भारतीय सभ्यताके परम भक्त थे। उनको अपने देशका, अपनी जातिका और अपने हिन्दुत्वका अभिमान था। उनकी कविताका एक-एक शब्द उनके इन गुणोंको प्रकट करता है।

चकवस्त महोदय लखनऊके निवासी थे, अतः उनकी भाषामें लखनऊकी छाप लगी है। लखनऊकी वजअ-कतअ, टकसाली मुहाविरे और मर्सियोंका रंग उनकी कवितामें साफ

दृष्टगोचर होता है। उन्हें बचपन ही से कविता-कामिनीसे प्रेम था। जिस समय चकवस्त महाशयका उदय हुआ, उस समय लखनऊके उर्दू-साहित्याकाशमें बड़े-बड़े नक्षत्र देदीप्यमान थे। सुप्रसिद्ध सुलेखक पंडित विष्णुनारायण दर, जिन्दादिलीके अवतार मुंशी सज्जाद हुसैन, कवि लेखक और न्यायाधीश मुंशी ज्वालाप्रसाद 'वर्क', उर्दू-गद्यके लासानी लेखक पंडित रतननाथ दर 'सरशार' और साहित्य-पारखियोंके भीष्म पितामह पंडित श्यामनारायण मसलदान आदि अपनी-अपनी प्रतिभासे उर्दू-जगत्को चमत्कृत कर रहे थे। चकवस्त महोदयका लालन-पालन इसी साहित्यिक वातावरणमें हुआ था। उन्होंने इन महानुभावोंके सत्संगसे लाभ उठाया था।

उनमें ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा थी। लड़कपन ही से उनकी यह प्रतिभा प्रकट हो चली थी। उनकी इस प्रखर प्रतिभा और गम्भीर ज्ञानका कुछ अन्दाज इस बातसे लग सकता है कि जब वे लड़के ही थे, तब पंडित विष्णुनारायण दरने कई बार मेरे पितृव्य बाबू कृष्णबलदेव वर्मासे कहा था—'इस लड़के की (चकवस्त महाशयकी) हुज्जतें (शायराना) मेरी स्टडी (study) होती हैं।'

चकवस्त महाशय न केवल कविता लिख सकते थे, वरन् पढ़ भी सकते थे। बहुधा देखा जाता है कि बड़े-बड़े कवि उत्तम-से-उत्तम कविता लिख सकते हैं, किन्तु उसे ठीकसे पढ़ नहीं सकते। परन्तु वे ऐसे नहीं थे। प्रकृतिने उन्हें पूरा कवि बनाया था। जहाँ उनका हृदय ऊँचे-से-ऊँचा भाव उत्पन्न कर सकता था, वहाँ उनकी वाणीमें भी वह शक्ति थी कि उन स्वर्गीय भावोंको ठीकसे पढ़कर अदा कर सकें। मैंने अपने छोटेसे अनुभवमें केवल दो ही व्यक्तियोंको इस तरह पढ़ते सुना है। या तो उर्दू कविता चकवस्त महाशयके मुखसे सुनी है, अथवा व्रजभाषाकी सुधा-धार स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण कविरत्नके मुखसे निकलते देखी है। चकवस्त महाशयकी जबानमें जादू था। वे अपनी जिह्वासे आवश्यकतानुसार अमृत बरसा सकते थे, करुणाकी धार बहा सकते थे अथवा प्रलयकारी अग्निकी आकाश-स्पर्शी लपटें उठा सकते थे। उनका कविता-पाठ गजबका था। उनकी कविता और जबानमें वह शक्ति थी, जो मुर्दोंमें रूह फूंक दे, कापुरुषोंको वीर बना दे। जिस समय वे कविता पढ़ते थे, श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे। उन लोगोंके हृदयोंमें वेगवान स्पंदन होने लगता था, और उनका:—

'लहू रगोंमें दिखाता था वर्क[१] की रफ्तार[२]',

—चकवस्त

उनकी इस संजीवनी वाणीका प्रत्यक्ष प्रभाव देखनेका कई बार मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हिन्दू-विश्वविद्यालयके चन्देके लिए उनकी कवितापर रुपयोंसे बाल्टियाँ भर गयी थीं। बाबू गंगाप्रसाद वर्माकी मृत्युपर उनकी मार्मिक कविता सुनकर श्रोतागण जार-जार रो रहे थे।

चकवस्त महाशय उर्दूके कवि थे, किन्तु वे पुरानी लकीर-के-फकीर कवि न थे। उन्होंने उर्दू कविता को अपनाया, किन्तु उसे कामवासनाके कलुषित कीचड़से निकालकर

---

१. वर्क=बिजली, २. रफ्तार=गति

ईश्वरीय प्रेम और देश-प्रेमकी पवित्र अमृत-भरी गंगा-यमुनाके तीरपर लाकर खड़ा कर दिया। उनमें सिरसे लेकर पाँवतक स्वाभाविकता भरी है। उन्हें मस्त करनेके लिए शराब और बुलबुलकी आवश्यकता नहीं होती। बौरे हुए आम और कोयलकी कूक ही उन्हें उन्मत्त बना देनेके लिए काफ़ी है :—

कैफीयते गुलशन है, मेरे नशेका आलम ,
कोयलकी सदा नारा-ए-मस्ताना है मेरा ।

—चकवस्त

उद्यानका दृश्य ही मेरे नशेकी दशा है, और कोयलकी कूक ही मेरी उन्मत्त वाणी है।

'सौदा'की भाँति उन्हें शक्तिके लिए 'रुस्तम' और 'साम'के नामको नहीं रोना पड़ता :—

रुस्तम रहा जमीनपै न साम रह गया ,
मर्दोंका आस्मांके तले नाम रह गया ।

—सौदा

चकवस्त महाशयके भीष्म और अर्जुन रुस्तम और सामसे अधिक बलशाली हैं।

सरोंमें हुब्बे-वतनका जिनून बाकी है,
रगोंमें भीष्म औ' अर्जुनका खून बाकी है ।

—चकवस्त

चकबस्त महाशयने विदेशी 'सलवार' पहननेवाली उर्दू-कविता कामिनीको देश-प्रेमकी सुन्दर साड़ी पहनाई, जाति-प्रेमके उपचारोंसे उसका शृंगार किया और ईश्वरीय प्रेमके पवित्र आभूषणोंसे भूषित कर उसे एक पवित्र देवी बना दिया। उनकी कवितामें आशिकके दिलकी काल्पनिक कँपकँपी नहीं है, बल्कि देशके हृदयका वास्तविक स्पन्दन है। उनकी कवितामें दासियाँ माशूकोंकी जुल्फें नहीं सँवारतीं, बल्कि प्रखर-प्रतापी सूर्य, भारतवर्षकी सेवा करता है :—

हर सुबह है यह खिदमत खुरशीद पुरजियाकी ,
किरणोंसे गूँधता है चोटी हिमालयाकी ।

भारतवर्षके निमित्त ज्योतिर्मय अंशुमालीकी यह सेवा है कि वे प्रति दिन प्रातःकाल अपनी किरणोंसे हिमालयकी चोटी गूँधा करते हैं।

हजरत नासिखकी तरह उनकी यह इच्छा नहीं है कि उनकी कब्रपर उनके माशूकके घरका किवाड़ ढक दिया जाय :—

और तख्तोंकी हमारी कब्रमें हाजत नहीं ,
खाना-ए-महबूबका कोई किवाड़ा चाहिए ।

—नासिख

हाँ, उनके मनमें भी एक प्रबल वासना है कि मरनेके बाद :—

गर्दो गुवार यांका खिलअत है अपने तनको ,
मरकर भी चाहते हैं खाके-वतन कफनको ।

इस भारतवर्षकी धूल और मिट्टी भी अपने शरीरके लिए राजसी वस्त्रोंके सदृश है। मृत्युके पश्चात् भी यही इच्छा है कि कफनके स्थानमें देशकी रज ही मिले ।

वे कब्रके भीतरसे माशूकसे यह नहीं कहते कि तू अपने मेंहदी लगे हुए पैर मेरी कब्र-पर रखकर मुझे मत जला :—

तुर्बतपैं मेरे पाँव-हिनाई न रख मियां,
कर रहम अब तो कब्रमें आतिश फिशां न हो ।

—मसहफी

हाँ, उनकी चितासे यह आवाज जरूर निकलती है :—

रहेगा जानके हमराह दिलका सोज गदाज ,
चितासे आयगी मरनेके बाद यह आवाज ।
तलब फ़िजूल है कांटोंकी फूलके बदले ,
न लें बहिश्त भी हम होमरूलके बदले ।

हृदयका दुःख और पीड़ा प्राणोंके साथ ही रहेगी और मरनेके बाद भी चितासे यही आवाज निकलेगी कि पुष्पोंके स्थानमें कण्टकोंकी इच्छा करना व्यर्थ है, हम स्वाराज्यके बदलेमें नन्दनकानन भी नहीं चाहते ।

चकबस्त महाशयका कलाम एकदम पाक है। उन्होंने अपनी कलम गंगाजलमें डुबोई है। उनके लिए यही कहना पर्याप्त है कि उनकी जबानमें जादू था, उनकी भाषामें ओज है, वाक्योंमें बिजली है और शब्दोंमें मादकता है । उनकी कवितामें वह झनकार है, जिससे पाठकों और श्रोताओंकी हृद्तन्त्रीके तार-तार झनझना उठते हैं । उनकी कविताके कुछ अवतरण नीचे दिये जाते हैं ।

देखिये स्वर्गीय पंडित विष्णुनारायण दरकी आत्माके प्रति कहते हैं :—

"तेरा बन्दा रहे दिलसे यही पैमान रहा ,
तायरे फ़िक्र तेरे औजसे हैरान रहा ।
कद्र करना तेरी सीखें यही अरमान रहा,
यही मुसलिक, यही मजहब, यही ईमान रहा ।
आबरू क्या है तमन्नाए वफामें मरना ,
दीन क्या है किसी कामिलकी परस्तिश करना ।"

मैंने हृदयसे यही प्रतिज्ञा करा ली थी कि वह तेरा भक्त रहे, किन्तु तू इतनी ऊँचाई-पर था कि जहाँ मेरी काव्य-प्रतिभाकी पहुँच कठिन थी । तेरी कद्र करना सीखें, यही मेरे मनकी महती इच्छा थी, यही जीवनका मार्ग था और यही मेरा धर्म और ईमान था । सम्मान क्या है, केवल वफाकी आकांक्षामें प्राण अर्पण कर देना और धर्म क्या है, केवल किसी सर्वगुण-सम्पन्न महापुरुषकी पूजा करना । सम्मान और दीनकी कितनी सुन्दर परिभाषा है ।

'देशकी रज'के महत्त्वका वर्णन करते हुए कहते हैं :—

"गौतमने आबरू दी इस मुआविदे कुहनको,
सरमदने इस जमींपर सदके किया वतनको ।
अकबरने जामे-उल्फत बख्शा इस अंजुमनको,
सींचा लहूसे अपने रानाने इस चमनको ।
सब शूर-वीर अपने इस खाकमें निहां हैं,
टूटे हुए खँडर हैं या उनकी हड्डियाँ हैं ।"

अर्थात् भगवान् गौतमने इस प्राचीन मन्दिरकी प्रतिष्ठा बढ़ायी है । सरमद (एक मुसलमान साधु) ने इसी पुण्य भूमिपर निज स्वदेशको न्यौछावर कर दिया । महान् अकबरने इसी महफिलको अपने प्रेमका प्याला अर्पण किया है । इसी पवित्रोद्यानको महाराणा प्रतापने अपने पवित्र रक्तसे सिंचित किया है । हमारे समस्त शूर-वीर इसी देशकी रजमें छिपे हुए हैं । वाचकवृन्द ! सम्हलकर सम्मानपूर्वक कदम रखिये, ये टूटे हुए खण्डहर नहीं हैं, उन अजेय श्रद्धास्पद पूज्य वीरोंकी अस्थियाँ हैं ।

स्वराज्यके सम्बन्धमें सरकारकी दमन-नीतिको लक्ष्य करके आप फरमाते हैं :—

"पिन्हानेवाले अगर वेड़ियाँ पिन्हायेंगे,
खुशीसे कैदके गोशेको हम बसायेंगे ।
जो सन्तरी दरे-जिन्दांके सो भी जायेंगे,
यह राग गाके उन्हें नींदसे जगायेंगे ।
तलब फ़िजूल है काँटोंकी फूलके बदले,
न लें विहश्त भी हम होमरूल के बदले ।"

यदि पहनानेवाले हमें बेड़ियाँ पहनायेंगे, तो हम प्रसन्नतासे कारागारको आबाद करेंगे । यदि कारा-द्वारके प्रहरी सो भी जायँगे, तो हम उन्हें यह राग गाकर जगा देंगे कि फूलोंके स्थानमें कंटकोंकी इच्छा व्यर्थ है, होमरूलके बदले हम नन्दनकानन भी न लेंगे । देखिये, कवितामें कैसा ओज है ।

श्रीमती एनी बेसेन्ट, जब नजरबन्द हुई थीं, तब उनपर चकवस्त महोदयने जो कविता कही थी, उसका एक शेर है :—

तू नजरबन्द है जलवा है तेरा हर घरमें,
शमअ फानूसमें है नूर है महफिल-भरमें ।

यद्यपि तू नजरबन्द है, किन्तु तेरी प्रभा प्रत्येक घरमें छायी है, जिस प्रकार दीपक फानूसके भीतर जलता है, किन्तु उसका प्रकाश समस्त सभामें होता है । कैसी सुन्दर और विशिष्ट उपमा है ।

जिस समय यूरोपीय महायुद्धमें लखनऊसे प्रथम भारतीय सिख वीरोंकी फौज गयी थी, उसकी विदाईमें चकवस्त महोदयने जो कविता कही थी, वह भी बड़े मार्केकी है । वह कविता पढ़ते-पढ़ते मुझे श्री राखालदास बन्दोपाध्याय वर्णित महाराज समुद्रगुप्तके

चारणका स्मरण हो आता है। निस्सन्देह चकवस्त महोदयको 'राष्ट्रीय चारण' ही कहना उपयुक्त ज्ञात होता है। उस कवितामें कहते हैं :—

"साहिले हिन्दसे जर्रारवतन जाते हैं,
कुछ नई शानसे जाँवाज़ कुहन जाते हैं।
रनमें बाँधे हुए शमशीर कफ़न जाते हैं,
तेग-जन, वर्क़फिगन, क़िलअ-शिकन जाते हैं।
सामने इनके जफ़र बरहना पा चलती है,
इनकी तलवारके साये में कजा चलती है।"

भारतीय तटसे देशके शूरवीर जा रहे हैं। यह प्राणोत्सर्गी प्राचीन वीर कुछ नयी शानसे जा रहे हैं। रणमें इनके साथ केवल दो ही पदार्थ होंगे। एक तो कृपाण और दूसरा कफ़न। हट जाइये, देखिये यह कृपाण-घा, वज्रपाती, दुर्गविध्वंसक आते हैं। विजय इनके आगे-आगे नंगे पैर चलती है, इनकी करवालकी छायामें मृत्यु चला करती है।

चकवस्त महोदयने अधिकतर मुसद्दस (षटपदी) लिखे हैं। उनके मुसद्दसके अन्तिम दो चरण बड़े ही जोरदार होते हैं। उपर्युक्त कविताका एक पद है :—

"कौमका औज बढ़े नामे-वतन जिन्दा हो,
रूह परतापकी जन्नतमें न शरमिन्दा हो।"

सिपाहियोंसे कहते हैं कि तुम युद्धमें ऐसी करतूत दिखलाना, जिससे जातिका यश बढ़े और देशका नाम जीवित हो; कहीं कोई ऐसा अनुचित कार्य न कर डालना, जिससे तुम्हारे पूर्वज महाराणा प्रतापकी आत्माको स्वर्गमें लज्जित होना पड़े। हिन्दू-विश्वविद्यालय-के चन्देके लिए अपील करते हुए कहते हैं :—

"यह कार खैर वह हो नाम चारसू रह जाय,
तुम्हारी बात जमानेके रूबरू रह जाय।
जो गैर हैं उन्हें हँसनेकी आरजू रह जाय,
गरीब कौमकी दुनियाँमें आबरू रह जाय।
जरा हमैयतो-गैरतका हक अदा कर दो,
फकीर कौमके आये हैं झोलियाँ भर दो।"

उन्होंने जो कुछ लिखा है, खूब लिखा है। जहाँ प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन किया है, वहाँ तस्वीर खींचकर खड़ी कर दी है। उनका देहरादूनका वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही है :—

"अजलमें थी जो फिजा उसकी यादगार है यह,
नशेब कोहमें गहवार-ए-बहार है यह।"

अनादिकालमें जो सौन्दर्य था, उसका यह (देहरादून) एक स्मृति-चिह्न है। पर्वतके अंचलमें यह ऋतुराजका पालना है।

अथवा पहाड़ और उसके वृक्षोंकी श्रेणीके लिए कहते हैं :—

"तिलिस्मे-हुस्नका है बीचमें यह गुलदस्ता,
खड़े हैं कोहोशजर पहलुओंमें सफबस्ता।

यहाँ जो आके मुसाफिर मुक़ाम करते हैं,
ये सन्तरी उन्हें पहले सलाम करते हैं।"

सौन्दर्यके जादूका यह गुलदस्ता है, जिसमें पर्वत और वृक्ष श्रेणीवद्ध खड़े हैं। यहाँ जाकर जो पथिक ठहरते हैं, उन्हें यह प्रहरीगण पहले ही प्रणाम करते हैं।

टेढ़ी-मेढ़ी वहनेवाली क्षुद्र पहाड़ी सरिताके लिए कहते हैं :—

"निगहको दूरसे पानी है यों नज़र आता,
सफ़ेद नाग चला जा रहा है वल खाता।"

दूरसे पानी ऐसा दृष्टिगोचर होता है, जैसे श्वेत सर्प वल खाता हुआ जा रहा हो। देखिये, गायका वर्णन करते हुए कहते हैं :—

"तू वह मखलूक है खिलक़तमें नहीं जिसकी गुनाह ,
ली है क़ालिवमें तेरे रूहे-हव्वतने पनाह।
तेरी सूरतसे अयाँ होती है इन्सानकी चाह ,
रस-भरी आँख समाई हुई, अमृतमें निगाह।
नक्श है दिलपै मेरे मोहनी सूरत तेरी ,
खूव दुनियाके शिवालेमें है मूरत तेरी।"

अर्थात्, तू वह प्राणी है, जो इस विश्वमें एकदम निष्पाप है। तेरी कायाके अन्तरमें प्रेमकी आत्माने शरण ली है। तेरी शक्लसे मानवी प्रेम प्रकट होता है। तेरे लोचन रसीले हैं और तेरी दृष्टि अमृतसे ओत-प्रोत है। मेरे हृदयपर तेरी मोहनी आकृति अंकित है। इस जगत्-मन्दिरमें तेरी मूर्ति खूब है।

महात्मा गान्धीजीके निर्मल हृदयमें भी गायके प्रति कुछ इसी प्रकारके भाव हैं, तभी उन्होंने कहा है—"Cow is the poem of innocence!" अर्थात् गौ निष्पापकी कविता है।

इसी गौंकी कवितामें चकवस्त महाशय अपनी वाणीकी मधुरताका कारण बताते हैं :—

"इस हलावतसे जो दावा-ए-सखुनगोई है ,
दूधसे तेरे लड़कपनमें जवाँ धोई है।"

अर्थात् मुझे जो इस माधुर्यके साथ कविता कहनेका दावा है, उसका कारण यही है कि मैंने वाल्यकालमें तेरे (गौके) दूधसे जिह्वा धोयी है। कैसे नैसर्गिक भाव हैं!

जीवन और मृत्युकी परिभाषा देखिये :—

"ज़िन्दगी क्या है अनासिरमें जहूरे तरतीब ,
मौत क्या है इन्हीं अजज़ाका परीशां होना।"

जीवन क्या है, पंचतत्वोंमें श्रृंखलाबद्ध संगठनका प्रकट होना और मृत्यु क्या है, इन्हीं तत्त्वोंका अस्त-व्यस्त हो जाना, जीवन और मृत्युका इससे अच्छा वैज्ञानिक वर्णन हो ही नहीं सकता।

अथवा मृत्युके लिए कहते हैं :—

"फ़नाका होश आना ज़िन्दगीका दर्द-सर जाना,
अजल क्या है, खुमारे वादा-ए-हस्ती उतर जाना।"

मृत्युका होश आनेसे जीवन रूपी सिरकी पीड़ा मिट जाती है। मृत्यु क्या है, केवल जीवन-मदिराका नशा उतर जाना।

प्रेमके लिए लिखते हैं :—

"अगर दर्दे मुहब्बतसे न इन्सां आशना होता,
न मरनेका सितम होता न जीनेका मज़ा होता।"

यदि मनुष्य प्रेम-पीड़ासे अनजान होता तो न तो मृत्युका शोक ही होता और न जीवनका आनन्द ही होता।

चकवस्त महोदय हास्य-रस भी लिख सकते थे और खूब लिख सकते थे। उनकी 'कर्जनसे झपट' नामक कविता उनके इस गुणको पूर्णतया प्रकट करती है।

वे वेदान्तिक विचारोंके थे। उनकी कविताओंमें अद्वैतवादकी अच्छी झलक है।

चकवस्त महाशय केवल पद्य ही नहीं लिख सकते थे, वरन् गद्य भी वहुत उच्चकोटिका लिखते थे। यद्यपि मैंने उनका कोई गद्य-ग्रन्थ नहीं देखा है, किन्तु इधर-उधर उनके जो लेख देखे हैं, उनसे उनकी इस प्रतिभाका पूरा परिचय मिलता है।

प्रसन्नताकी वात है कि इंडियन प्रेस प्रयागने चकवस्त महोदयकी कविताओंका एक सुन्दर संग्रह 'सुवह वतन' के नामसे हिन्दीमें प्रकाशित किया है। इस संग्रहका सम्पादन श्रीयुत पं० व्रजनारायण गुर्टूने किया है, और प्राक्कथन सर तेजवहादुर सप्रूकी लेखनीसे निकला है। क्या ही अच्छा होता कि सर सप्रू अपने सुन्दर कथनको अंग्रेजीमें न लिखकर हिन्दीमें लिखते। पुस्तकमें दो-एक स्थानोंपर कुछ पंक्तियाँ छूट गयी हैं, आशा है कि वे अगले संस्करणमें ठीक कर दी जायँगी। प्रत्येक हिन्दुस्तानी समझनेवाले व्यक्तिको चकवस्त महाशयका कलाम अवश्य पढ़ना चाहिये।

खेद है कि क्रूर कालने इस जगमगाते हुए नक्षत्रको कुसमयमें ही तोड़ लिया। प्रायः तीन वर्ष हुए चकवस्त महोदयकी मृत्यु केवल ४३ वर्षकी छोटी अवस्थामें हो गयी। फूल कुम्हला गया, किन्तु उसकी अमर सुगन्ध सदा जीवित रहेगी। ईश्वर उनकी पवित्र आत्माको सद्गति प्रदान करें।

सफर इस रूहका भी तय हो रहमतके उजालेमें,
खुदा वख्शे बहुतसी खूवियाँ थीं मरनेवालेमें।

———

: ९ :

नवीन टर्की और कमालपाशा

उसका नाम हाजी हुसेन आगा है और उम्र है अस्सीसे ऊपर। वह किसान है और ऐसे देशका किसान है जहाँ किसानोंकी दशा हिन्दुस्तानके किसानोंकी ही तरह दीन और दुःखी थीं; जहाँ हिन्दुस्तानकी ही भाँति, अविद्याका अधिकार था; अन्ध विश्वासों, वेहूदा रस्म-रिवाजों और मजहवी कट्टरपनका राज्य था। वह टर्कीका किसान है।

उसकी तमाम लम्वी जिन्दगी अपने गाँवमें ही वीती थी। हाँ, उसने एक वार मक्के-शरीफकी यात्रा जरूर की थीं, जिसे उसके नामके साथ लगा हुआ 'हाजी' शव्द प्रकट करता है। इस यात्राको छोड़कर उसका समस्त जीवन खेतों और गाँवकी मस्जिदतक ही परिमित था। खेतों और मजिस्द और मुल्लाओंके अतिरिक्त भी दुनियामें कुछ है, उसे इसका ज्ञान न था। हाँ, वह यह जरूर जानता था कि कुस्तुनतुनियाँमें एक सुल्तान भी हैं, जो तुर्कोंके वादशाह हैं, मुसलमानोंके खलीफा हैं, और इस्लामके रक्षक कहलाते हैं। उनका हुक्म मानना सवका धर्म है। मगर यह हुक्म सदा दुःखदायी और गरीवोंको तंग करने और चूसनेवाले ही हुआ करते थे। उसकी तमाम जिन्दगी गुलामी और कष्टों ही में बीती थी। वह गुलामी भी मामूली गुलामी नहीं थी, वल्कि वड़ी भयंकर तेहरी गुलामी थी। पहली दरिद्रता और पेटकी गुलामी थी। दूसरी सुल्तान और उसके अत्याचारी शासकोंकी गुलामी थी। और तीसरी कट्टर मुल्लाओं और मजहवी पावन्दियोंकी गुलामी थी।

इन समस्त गुलामियों, अत्याचारों और तकलीफोंको सहते-सहते उसका दिल भर गया था। अन्तमें एक दिन ऐसा आया, जव उसने सुना कि सुल्तानोंका राज्य उठ गया, मजहवी-कट्टरपन मिटा दिया गया, अब रिआया आजाद हो गयी, पुराने बेतुके रीति-रिवाजोंको सदाके लिए सलाम कह दिया गया, किसानोंपर होनेवाले जोर-जुल्म मिट गये और तुर्कोंने नया जीवन धारण किया। बूढ़ेको जीवनके अन्तिम दिनोंमें आजादीकी हवा लगी। सूखा हुआ ठूँठ फिरसे हरा हो गया। वुड्ढी मन्द-ज्योति आँखोंने बदअमलीसे अस्त-व्यस्त देशमें फिरसे अमन-चैन होते देखा, और पुरानी जर्जरित सभ्यताके स्थानमें नयी 'अप-टू-डेट' चाल-ढाल स्थापित होते हुए देखी। पूछा, यह आश्चर्यजनक परिवर्तन, यह बिहिश्ती-रद्दोवदल किसने किया? मनुष्योंने, पेड़-पत्तोंने और हवाने एक ही स्वरसे जवाब दिया "गाजी मुस्तफा कमालपाशाने।"

बुड्ढे आगाका चित्त कृतज्ञतासे भर गया। वह अपनी कृतज्ञता, शुक्रगुजारी और प्रम प्रकट करनेके लिए छटपटाने लगा। उसने पहले कभी गाजी कमालपाशाको देखा भी नहीं था। फिर भी, सरल-स्वभाव आगाने, जितना उसे मिल सका, शहद एकत्रित किया

और उसे एक हाँडीमें रखकर तुर्की-राष्ट्रके उद्धारकर्ता, प्रजातन्त्रके सभापति और यूरोपकी फौजोंको पछाड़नेवाले गाजी मुस्तफा कमालपाशाके घरपर, अंगोरामें जाकर उपस्थित हुआ। साथमें एक पढ़े-लिखे आदमीसे यह लिखवाकर उसपर चिपकवा दिया—"मेरे प्यारे पुत्र 'गाजी' को, जिसने हम लोगोंके जीवनको इतना मधुर बना दिया है, गाँवके सबसे बूढ़े किसानकी तुच्छ भेंट।"

शहदकी हाँडी गाजीके घरपर छोड़कर आगा गायब हो गये और एक काफी-खानेमें बैठकर नयी तहजीब और नये सुधारोंका तमाशा देखने लगे। थोड़ी देरमें एक पुलिस-अफसर आ मौजूद हुआ और बोला—

"गाजी साहबने मुझे, आपको बुलानेका हुक्म दिया है।"

बुड्ढे आगा मोटरपर बैठकर कमालपाशाके घर गये। वहाँ उन्होंने बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे कहा—

"आज मैं अपने फर्जन्दसे नियाज हासिल कर रहा हूँ।"

गाजीने आगाकी बड़ी खातिर की, उन्हें मोटरपर तमाम शहर घुमाया गया प्रधान-राष्ट्र-सभाका अधिवेशन दिखलाया गया और उनके लिए गाजीने बहुतसे तुहफे मँगवाये। किन्तु तुहफेके लिए आगाने साफ इनकार कर दिया और कहा—

"भला मैं अपने बेटेसे, जिसने हमारे लिए इतना किया है, उपहार लूँगा? इतने बड़े गाजीसे उपहार लेनेवाला मैं कौन हूँ?"

वह चुपकेसे भागकर अपने घर पहुँच गया। उस दिनसे बूढ़े आगाको सब कोई जानता है, और वह गाजी कमालके 'दत्तक पिता' के नामसे प्रसिद्ध हैं। उनके लिए गाजीका हुक्म कुरान और ईश्वरके हुक्मसे ज्यादा है।

उपरियुक्त घटना इस बातको प्रकट करती है कि तुर्कीका उद्धारकर्ता, अपने देशसे ग्रीक और यूरोपियन फौजोंको मार भगानेवाला, और यूरोपियन राज्योंके महान् कूटनीतिज्ञोंसे सफलतापूर्वक टक्कर लेनेवाला मुस्तफा कमालपाशा केवल फौलादी आदमी ही नहीं है, उसके स्वभावमें सरलता है, दिलमें मुहब्बत है और इन्सानियत भी है। ऐसे ही मनुष्य किसी देशका उद्धार कर सकते हैं, किसी मुर्दा जातिको फिरसे जन्म दे सकते हैं और असम्भव-को सम्भव बना सकते हैं।

तुर्कीके इस नवीन जीवनका वृत्तान्त जाननेके लिए यह आवश्यक है कि उसका थोड़ा-सा इतिहास और इस पुनर्जन्मके पूर्वका थोड़ा-सा हाल मालूम कर लिया जाय।

कुस्तुनतुनियाँ और उसके चारों ओर पन्द्रहवीं शताब्दीतक बैजेन्टाइन साम्राज्य था। पन्द्रहवीं शताब्दीमें मुसलमानोंका जोर बढ़ा, और प्रायः पचास वर्षसे अधिकके घमासान युद्धके पश्चात् बैजेन्टाइन राज्य सदाके लिए समाप्त हो गया। मुसलमान कुस्तुनतुनियाँके मालिक हो गये। उन्होंने धीरे-धीरे सीरिया, फिलिस्तीन, ईराक, अरब, मिश्र, सूदान, ट्रिपोली और पुराने ग्रीक-राज्यके बहुतसे सूबे तथा बालकन प्रायद्वीपके बहुतसे भागोंपर कब्जा कर लिया। अरब और मक्के-मदीनेके स्वामी होनेके कारण तमाम दुनियाके

मुसलमान तुर्कीके सुलतानको मुसलमानोंका खलीफा या धर्मगुरु मानने लगे। इससे सुल्तानकी शक्ति और प्रभाव बहुत बढ़ गया।

फ़िलिस्तीनमें प्रभु ईसा मसीहकी जन्मभूमि 'जेरूसलम' है। उसे मुसलमानोंके कब्जेमें देखकर यूरोपके ईसाई-राज्योंने मिलकर उसे तुर्कीके हाथसे छीनना चाहा, मगर वर्षोंकी मार-काट और लड़ाई-झगड़के बाद भी वे सफल न हो सके। बालकनके ईसाई सूबोंने भी तुर्कीकी गुलामीसे छुटकारा पानेके लिए बहुत हाथ-पैर मारे, मगर उनकी भी कुछ न चली।

इधर यूरोपमें एक नये युगका जन्म हुआ। यह युग मशीन-युग है। भाप और बिजलीके इंजनोंके आविष्कारने जिन्दगीके तरीकोंमें भयंकर उथल-पुथल मचा दी। विज्ञानने कदम बढ़ाये, रोज नयी-नयी चीजें निकलने लगीं। रेल, तार, टेलीफोन, हवाई-जहाज, क्रूजर, सबमैरीन, टारपीडो आदि ईजाद हुए। सैकड़ों पुरानी कठिनाइयाँ दूर कर दी गयीं। मगर भयंकर बात यह है कि जितने आविष्कार मनुष्य-जीवनको सुखद और सरल बनानेके लिए हुए, उनसे कहीं अधिक उसे नष्ट और संहार करनेके लिए हुए। मशीनगनें, विकराल तोपें, बाम्ब, गैसें और एकसे एक भयंकर हथियार निकाले गये। यूरोपके समस्त देश अपनी-अपनी शक्ति बढ़ानेमें एक दूसरेसे चढ़ा-उतरी करने लगे, और थोड़े ही दिनोंमें यूरोप हथियारबन्द राष्ट्रोंका क्रीड़ा-क्षेत्र बन गया। यही नहीं, वहाँ शासन-प्रणालीमें भी बड़े गहरे रद्दोबदल हुए। एकतंत्र-शासन सदाके लिए मिट गया, और उसकी जगह उत्तरदायित्वपूर्ण प्रतिनिधि-शासन स्थापित हो गये।

जमानेकी इस नयी रफ्तारका तुर्कीपर बहुत थोड़ा असर पड़ा। तुर्क लोग अपनी पुरानी चाल-ढालसे ही चिपटे रहे। उनके यहाँ वही स्वेच्छाचारी मनमानी-करनेवाली व्यक्तिगत हुकूमत कायम रही। वे उन्हीं बाबा आदमके जमानेके औजारोंसे काम लेते रहे। उनके धर्मके बन्धन टूटनेके स्थानमें और कड़े होते गये। नतीजा यह हुआ कि तुर्की अन्य यूरोपीय देशोंकी बनिस्बत बहुत पिछड़ गया, मशीनोंकी प्रतियोगिताके कारण मुल्क गरीब हो गया। इन्हीं सब कारणोंसे लोग तुर्कीको 'दी सिक ओल्ड मैन ऑफ यूरोप' अर्थात् 'यूरोपका बीमार बूढ़ा' और 'यूरोपका कोढ़ी'के नामसे पुकारने लगे। यूरोपके अन्य देश उसको हड़प जानेकी फिक्रमें रहने लगे।

बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें तुर्कीके सिंहासनपर अब्दुल हमीद सुल्तान था। उसके कुशासन और अत्याचारोंने तुर्कीको तहस-नहसकर डाला, और अन्तमें प्रजाने बिगड़कर सन् १९०८ में उसे तख्तसे हटा दिया, और उसके स्थानमें वहीदुद्दीन सुल्तान हुआ। एक सुधार और उन्नतिकी पार्टी बनी, जिसने देशमें सुधार करनेकी बड़ी लम्बी-चौड़ी प्रतिज्ञाएँ कीं, मगर दरअसलमें किया कुछ भी नहीं।

तुर्कीको कमजोर देखकर दुश्मनोंने भी हाथ बढ़ाया। उत्तरमें रूस दबाने लगा, दक्षिण-पूर्वमें अंग्रेजोंने अदन और मिश्र हड़प लिये, पश्चिममें इटली और बालकन रियासतोंने हाथ लपकाया और खैरात-सी बँटती देखकर जर्मनी और फ्रांसने भी गुप्त सन्धियाँ कीं।

सन् १९११ में इटली-तुर्की-युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें तुर्कीको अपने अफ्रीकाके सूबों और अन्टोलियाके दक्षिणके कुछ द्वीपोंसे हाथ धोना पड़ा। यह लड़ाई खत्म ही हुई थी कि वालकन-युद्ध शुरू हो गया। इसमें तुर्कीके हाथसे एजियन समुद्रके वचे-खुचे टापू और यूरोपमें तुर्कीका जो भूभाग था अर्थात् थ्रेस और एड्रियानोपुलतक निकल गये। मगर तुर्कीकी खुशकिस्मतीसे जीतनेवाली रियासतोंमें लूटके मालके बटवारेका झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस झगड़ेमें एड्रियानोपुल और थ्रेसका कुछ भाग उसे फिरसे वापस मिल गया। इसके वाद ही महायुद्ध आरम्भ हो गया। इस प्रकार लड़ाई-झगड़ोंके मारे सन् १९०८ से तुर्कीको दम मारनेकी भी फ़ुर्सत नहीं मिली।

सन् १९१९ में जव युद्ध समाप्त हुआ, तव तुर्कीकी यह दशा थी कि देशकी सव फौजें विलकुल अस्त-व्यस्त थीं, सरकारी खजानोंमें चूहे दण्ड पेलते थे, रिआया लड़ाइयोंकी मारसे विकल थी, अकाल चारों ओर मुँह फाड़े घूम रहा था, वादशाह सुल्तान वहीदुद्दीन अपना तख्त वनाये रखनेके लिए, अपने स्वार्थोंके लिए विदेशियोंके हाथकी कठपुतली हो रहे थे, देशके नेता और पेशवा अनवरपाशा और तलाशपाशा अपनी जान बचानेके लिए भाग गये थे। नये मन्त्री दामाद फरीदपाशा और उनके साथियोंपर किसीको विश्वास नहीं था। सैकड़ों वर्षोंकी गुलामी और धार्मिक स्वेच्छाचारिताने लोगोंको ऐसा पंगु वना रखा था कि यह उनकी समझ ही में न आता था कि विना खलीफा और वादशाहके भी देशका शासन चलाया जा सकता था। इन सव वातोंको देखते हुए तुर्कीका दुर्भाग्य निश्चित जान पड़ता था। मौतके सिवा उसके लिए कोई चारा न था।

इस मौतके भयंकर अंधेरेमें एकाएक जीवनकी रोशनीकी एक हलकी किरण दिखायी दी। देशकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए, जातिका प्राण वचानेके लिए एक दृढ़-निश्चयी वीर युवक आगे वढ़ा। उसने देशवासियोंको आजादीके लिए ललकारा, सुल्तान और उनके स्वार्थी सलाहकारोंको 'चैलेंज' दिया और अपने स्वार्थ, आनन्द और तनवदनकी सुधि तथा प्राणोंका मोह छोड़कर वह स्वतन्त्रताके युद्धमें कूद पड़ा। वह महान् युवक वीर गाजी मुस्तफा कमालपाशा है। कमालपाशाने तुर्कीको नयी जिन्दगी दी है, पुराने मुर्देमें नयी रूह फूँकी है, और वेहाथ-पैरके पंगुको शक्तिशाली युवक बना दिया है। इसके लिए उन्होंने अपने व्यक्तित्वको तुर्की-राष्ट्रमें इस तरह शामिल कर दिया है कि मौजूदा तुर्कीकी उन्नति, उसकी आजादी, उसकी शक्ति, उसका जीवन,—सव केवल एक ही शव्द 'कमाल'में छिपे हुए हैं। सन् १९१९ से आजतक कमालपाशाका जीवन तुर्की-राष्ट्रका जीवन है। आप कमालपाशाके जीवनको देख जाइये, आपको नवीन तुर्कीके सम्वन्धकी समस्त वातें मालूम हो जायँगी।

कार्य-क्षेत्रमें उतरनेके पहले ही कमालपाशाने यह सोच लिया था कि तमाम तुर्कीको एक झंडेके नीचे लाकर एक नये तुर्की-राष्ट्रकी रचना करनी होगी। मगर काम आसान न था, क्योंकि इसके लिए सुल्तानसे बगावत करनी पड़ेगी, खलीफासे विद्रोह करना होगा और तमाम मुसलमानोंके विरोधका सामना करके समाजको एकदम नये ढंगसे चलाना होगा। यह सव करना कुछ हँसी-खेल नहीं है।

इसके लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह थी कि जातीय प्रतिनिधियोंकी मदद और सहयोग प्राप्त किया जाय। अतः कमालपाशाने जो उस समयतक सरकारी फौजमें नौकर थे, अर्जरूममें प्रतिनिधियोंकी एक सभा बुलायी। सुल्तानकी सरकारने अंग्रेजोंके कहनेसे पहले तो इस सभाको रोकनेकी चेष्टा की, मगर जब कमालपाशाने न माना, तब वे अपने पदसे बरखास्त कर दिये गये। २३ जुलाई १९१९ को इस सभाकी बैठक शुरू हुई और दो हफ्तेकी बहसके बाद इस सभाने निश्चय किया कि तुर्कीपर विदेशियोंका प्रभुत्व किसी तरह भी स्वीकार न किया जाय। अगर सुल्तानकी सरकार इस बातको न माने तो उसे निकाल बाहर करनेकी कोशिश की जाय। इसके लिए फौरन एक 'जातीय-सभा' बुलाना जरूरी है। इन बातोंकी खबर सुल्तान और दूसरी विदेशी सरकारोंको भी दे दी गयी।

चौथी सितम्बरको यह सभा सिवासमें एकत्रित हुई। इस सभामें भी वही पहली सभाकी बातें निश्चित हुईं, और विदेशी सरकारोंको फिर इसकी सूचना दी गयी, तथा साथ-ही-साथ कमालपाशाने सुल्तानसे भी इस बातका अनुरोध किया कि वे वजीर दामाद फरीदपाशाको निकाल दें और देशकी माँगों और इच्छाओंपर ध्यान दें। मगर दामाद फरीदने इस तारको सुल्तानतक पहुँचने ही न दिया, बल्कि बीच ही में तार-घरमें रोक लिया। अतः कमालपाशाके राष्ट्रीय-दलने १२ वीं सितम्बरको सुल्तानकी सरकारकी हुकूमत माननेसे इनकार कर दिया। अब इस बातकी जरूरत हुई कि एक 'शासन-सभा' बुलायी जाय। १४ वीं सितम्बरको कमालपाशाने इस सभाका 'प्रोग्राम' निश्चय करके सुल्तानको सूचित किया कि आगेसे यही 'शासन-सभा' अपनेको असली तुर्की-सरकार समझकर काम करेगी। इस खबरसे तो सुल्तानका तख्त हिल उठा और कमालसे समझौता करनेकी बातचीत होने लगी। मन्त्री दामाद फरीदपाशा निकाल दिया गया, मगर नये वजीरने समय बितानेके लिए चालें चलना शुरू कीं।

अन्तमें कमालपाशाने २३ जनवरी १९२० को 'शासन-सभा' बुलायी। उसमें अधिकतर राष्ट्रीय दलके लोग थे। उन्होंने इसी अधिवेशनमें एक 'राष्ट्रीय समझौते' (पैक्ट) पर हस्ताक्षर किये। यह 'राष्ट्रीय पैक्ट' तुर्क जातिके इतिहासमें बड़े महत्त्वका है। यह तुर्कीके बच्चे-बच्चेकी जबानपर है। जगह-जगह इसकी प्रतियाँ शीशेमें मढ़ी हुई टँगी हैं, और बहुतसे लोग इसे जेबमें डाले घूमते हैं। इस पैक्टके अनुसार तुर्कीने अरबपर अपना सब स्वत्व छोड़ दिया, उन्हें स्वतन्त्र मान लिया। मगर निश्चय किया कि तुर्कीके अन्य मुसलमानी प्रदेशोंपर तुर्कीका पूरा अधिकार रहेगा, दर्रा दानियाल सबके लिए खुला रहेगा, इस्तम्बोल या तुर्कीके अन्य किसी भागपर विदेशियोंका अधिकार नहीं माना जायगा, यूरोपके अन्य देशोंमें बसनेवाली अल्प-संख्यक जातियोंको जो अधिकार और सुविधाएँ मिलती हैं, वही तुर्कीमें बसनेवाली अल्प-संख्यक जातियोंको भी मिलेंगी।

इस घोषणा-पत्रसे यूरोपकी मित्र-शक्तियोंके होश उड़ गये। उन्होंने इस्तम्बोलपर कब्जा कर लिया। उनके हुक्मसे सुल्तानने 'शासन-सभा'को तोड़ देनेकी आज्ञा दे दी और राष्ट्रीय दलके नेताओंको धर्म-द्रोही और देश-द्रोही घोषित किया। इसपर 'शासन-सभा'-

ने अंगोरामें अपना अड्डा बनाया, और अपनेको तुर्कीकी राष्ट्रीय सरकार और कर्ता-धर्ता घोषित किया। इसी बीचमें सुल्तानकी सरकारने 'सेवरकी सन्धि-पत्र'पर दस्तखत कर दिये। अंगोराकी राष्ट्रीय सरकारने इस सन्धि-पत्रको एकदम अस्वीकार किया। मित्र-शक्तियोंके उभाड़नेपर यूनानने एक बड़ी फौज भेजकर अन्टोलियाके एक भागपर कब्जा कर लिया, और मित्र-शक्तियाँ स्वयं अंगोरा विजय करनेके लिए अग्रसर हुईं। मगर साकरियाकी लड़ाईमें बीस दिनतक दिन-रात भयंकर युद्ध करके भी जब वे सफल न हुईं तब उन्हें अंगोरा जीतनेकी आशा छोड़नी पड़ी।

उपर्युक्त लड़ाईने यह बात प्रकट कर दी कि अंगोराकी सरकार उपेक्षाकी नजरसे देखी जानेवाली चीज नहीं है। इधर कमालपाशाके एक प्रतिनिधिने रूस जाकर वहाँकी बोल्शेविक सरकारसे मित्रताकी सन्धि कर ली। अंगोराके लिए यह बहुत बड़ी विजय थी, क्योंकि इससे भयंकर दुश्मन जबर्दस्त दोस्त बन गया। इधर मित्र शक्तियोंमें भी आपसमें कुछ फूट हो गयी।

अब कमालपाशाने अपनी फौजोंको दुरुस्त करके यूनानियोंसे लोहा लिया। यूनानियोंकी हार हुई और कमालने स्मरनापर अधिकार कर लिया। अब मित्र-शक्तियोंसे सन्धिकी चर्चा छिड़ी। अंगोराके प्रतिनिधि लन्दन गये, मगर अंग्रेजी सरकारने उनसे मिलनेसे इनकार कर दिया। अन्तमें सन् १९२२ के सितम्बरमें स्वयं मित्र-शक्तियोंने अंगोराको सुलह करनेका न्यौता दिया, और ४ जुलाई सन् १९२३ को लूसेनमें सन्धि-पत्र पर सब राष्ट्रोंके दस्तखत हो गये। बस, उसी दिनसे नवीन तुर्कीका जन्म हुआ।

जिस दिन मित्र-शक्तियोंने अंगोरा-सरकारको सुलहके लिए बुलाया, उसी दिन सुल्तानकी सत्ता नष्ट हो गयी। सुल्तान एक अंग्रेजी जहाजपर बैठकर माल्टा भाग गये। उनके बाद फिर एक-दो आदमी सल्तनत और खिलाफतके दावेदार बने, मगर थोड़े ही दिनोंमें उनका भी खात्मा हो गया। सन् १९२४ में कमालपाशाने खलीफाका पद ही सदाके लिए उठा दिया। उन्होंने कहा कि तुर्की केवल अपना ही मालिक बननेमें सन्तुष्ट है, तमाम दुनियाके मुसलमानोंका नेता नहीं बनना चाहता।

अब शासन-प्रणाली निर्धारित करनेका प्रश्न आया। तुर्कीकी कृतज्ञ जनताने कमालपाशाको सुल्तान बनाना चाहा। तुर्कीका और तमाम दुनियाके मुसलमानोंका नेतृत्व, वीर कमालके चरणोंपर लोटने लगा। मगर जहाँ देश-प्रेमकी आग जल रही हो, वहाँ स्वार्थके तिनके कब ठहर सकते थे? कमालपाशाने दोनों ही को ठुकरा दिया। तुर्की एक प्रजातन्त्र राज्य बनाया गया और कमालपाशा उसके सभापति चुने गये। राजकाज चलानेके लिए एक 'राष्ट्रीय-महा-परिषद्' बनायी गयी।

किसी राज्यके विरुद्ध क्रान्ति करना इतना कठिन नहीं है जितना किसी धर्म और समाजके विरुद्ध आवाज उठाना है। मुस्तफा कमालने यह बात अच्छी तरह समझ ली थी कि देशकी जिन्दगीके लिए यह आवश्यक है कि उसकी सब बातें, जमानेकी रफ्तारके अनुसार, 'अप-टू-डेट' हों। पुराने धार्मिक-तरीके और रस्म-रिवाज, जो हजरत मुहम्मदके समयके

योग्य थे, आजकल बिलकुल निकम्मे हैं। बस, उन्होंने पुरानी सड़ी हुई सामाजिक-प्रथाओंकी जड़पर निर्दयतासे कुल्हाड़ा बजाना शुरू कर दिया। मुल्लाओं और शेखोंका राज्य उठा दिया गया, मस्जिदोंकी तादाद कम कर दी गयी, और प्रार्थनाएँ अरबीके स्थानमें तुर्की-भाषामें होने लगीं। तुर्कीके अधिकतर लोगोंने कमालपाशाके हुक्मको ईश्वरीय आज्ञा समझकर पालन किया; केवल थोड़ेसे मुल्लाओं और धर्मान्ध मूर्खोंने उसके विरुद्ध विद्रोह किया, मगर राष्ट्रीय सरकारने उन्हें सख्तीसे दबा दिया।

दूसरा प्रश्न राष्ट्रीय शिक्षाका था। अबतक शिक्षाके लिए केवल मौलवियोंके मकतब और दरवेशोंके मदरसे ही थे। कमालपाशाने राष्ट्रीय शिक्षाका प्रबन्ध किया। सैकड़ों स्कूल और किंडरगार्टन पाठशालाएँ खोली गयीं, जहाँ नये वैज्ञानिक तरीकोंसे लड़के और लड़कियोंको एक साथ तालीम दी जाती है। तुर्कीका यूरोपियन राज्योंके साथ बहुत घना सम्बन्ध है। तमाम यूरोपमें, बहुत-सी अलग-अलग भाषाएँ होते हुए भी, लिपि एक ही, रोमन-लिपि है। तुर्कीमें अरबी लिपि होनेके कारण व्यापारियों और अन्य लोगोंको बहुत दिक्कत उठानी पड़ती थी। कमालपाशाने अरबी लिपि उठाकर उसके स्थानमें रोमन लिपिका प्रचार किया। सैकड़ों स्कूलों, कालेजों, दफ्तरों और पब्लिक स्थानोंमें इस नयी लिपिको सिखानेका प्रबन्ध किया गया, जहाँपर न केवल स्कूली-मास्टर, बल्कि सैकड़ों बड़े-बड़े अफसर, और यहाँतक कि खुद कमालपाशा भी लोगोंको इस नयी लिपिकी शिक्षा देते हैं। इन स्थानोंके दृश्य बड़े मनोहर है; क्योंकि यहाँ मर्द, स्त्रियाँ, बुड्ढे, बच्चे, सब एक साथ ए० बी० सी० डी० सीखनेको इकट्ठे होते हैं। एक ओर एक सात वर्षका बच्चा अपनी तोतली बोलीसे ए० बी०का अभ्यास कर रहा है, तो उसीके बगलमें उसका ७० वर्षका बूढ़ा दादा अपने पोपले मुँहसे सी० डी० घोखता नजर आता है। माँ और बेटियाँ एक साथ जे० के० कहती हुई दिखायी पड़ती हैं।

मुस्तफा कमालने सबसे बड़ा काम जो किया, वह स्त्रियोंका उद्धार था। तुर्कीमें भी स्त्रियाँ परदेमें कैद थीं। स्वच्छन्द हवा और सूर्यकी रोशनी उनको मना थी। पर्देके अन्धकार-में वे अज्ञान, अत्याचार और बीमारियोंका शिकार हो रही थीं। देशकी आधी आबादी बेकार थी। गाड़ीका एक पहिया टूटा था। तुर्की-स्त्रियोंकी स्वाधीनताका शुभ विचार सबसे पहले जेनब और मलेकखानम नामकी दो महिलाओंके हृदयमें उठा था, इसके लिए उन्होंने प्रसिद्ध फ्रेंच औपन्यासिक पियेर लौटीसे प्रेमका स्वांग रचकर उसकी लेखनीकी सहायता भी प्राप्त की; मगर वे असफल हुईं। इसके बाद भी कुछ थोड़ा-सा प्रयत्न हुआ था, मगर वह भी टांय-टांय फिस होकर रह गया। लेकिन कमालने कहा—"यह सब बेहूदगी है, इसका अन्त करना ही होगा। हम तुर्कीमें पक्का जन-सत्तावाद कायम करना चाहते हैं और यह तबतक कैसे सम्भव है, जबतक आधी जाति पर्देकी बेड़ियोंसे जकड़ी है? अतः पर्देका नाश करना ही होगा।" दो वर्षमें कमालने कमाल कर दिखाया। परदा, जनानखाना और हरमका नाम ही मिटा दिया गया। और आज दिन तुर्कीकी प्रत्येक नारी स्वाधीन है। वे देशकी प्रत्येक बातमें मर्दोंके समान भाग लेती हैं। उनकी सैकड़ों अपनी

संस्थायें हैं। पर्दे और बुरकेके साथ-ही-साथ तुर्की पोशाकें भी विदा हो गयीं, अब तुर्की महिलाएँ नयेसे नये यूरोपियन फैशनमें घूमती-फिरती नजर आती हैं।

कमालपाशाने तुर्कीकी लाल फेज टोपीके खिलाफ भी जेहाद वोल दी। उनके हुक्मसे लाल टोपियोंके स्थानमें टोप पहने जाने लगे।

उन्होंने वच्चोंकी तन्दुरुस्तीकी हिफाजतके लिए 'शिशु-कल्याणकेन्द्र' (Child Welfare Centres) और लोगोंको डॉक्टरी सहायता पहुँचानेके लिए 'रक्त-चन्द्र समितियाँ' खोली हैं। व्यापारकी उन्नतिका उद्योग किया जा रहा है और किसानोंकी दशा सुधारने और उनको सुखी बनानेका भरपूर प्रयत्न हो रहा है। हाजी हुसेन आगाकी कहानीसे यह वात पूरी तरह प्रकट हो जाती है कि कमालपाशा अपने देशके किसानोंसे कितना अधिक प्रेम रखते हैं। कमालपाशाका मन्त्रिमण्डल एक सुखी-परिवारकी भाँति है। वहाँ कमालपाशा घरके वुजुर्गकी तरह हैं। उनके मन्त्रिमण्डलमें कई एक बहुत साहसी और विद्वान् पुरुष हैं, जिन्होंने न मालूम कितनी दिक्कत उठाकर प्रजातन्त्रकी स्थापना और रक्षा की है।

तुर्कीको यह नवीन जीवन दान देनेका सारा श्रेय अकेले एक कमालपाशाको है। इस नर-पुंगवने अपने अद्भुत कामोंसे दुनियाको चकित कर दिया। भला सोचिये कि एक शख्स, जिसकी तीन-तीन पसलियाँ टूटी हों, वैसी ही दशामें जाकर एक वड़ी भाग्य-निर्णय करनेवाली लड़ाई लड़े। कमालपाशा अस्पतालमें वीमार पड़ा है, करवट वदलनेकी ताकत भी नहीं है; डॉक्टर हिलने-डुलनेको भी मना करते हैं, मगर लड़ाईकी चिन्ताजनक खवर आती है, अधमरा कमाल फिर जीवित हो उठता है और उसी वीमारीकी दशामें, डॉक्टरके रोकनेपर भी सेनाका संचालन करके विजय प्राप्त करता है। ऐसे ही गुणोंके कारण तुर्कीका वच्चा-वच्चा उसका गुलाम है। कमाल ही की तरहके लोगोंमें वह शक्ति है कि जो जमानेकी रफ्तारको वदल देते हैं। स्वर्गीय अकवर साहवने कहा है कि :—

'नाज़ क्या इस पै जो वदला है ज़मानेने तुम्हें,
मर्द वह हैं जो ज़माने को वदल देते हैं।'

कमालपाशा सच्चा मर्द है।

तुर्कीके वृत्तान्तसे यह वात पूरी तरह जाहिर हो जाती है कि देशके उद्धारके लिए, स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए, सैकड़ों वकवक करनेवाले, चन्दा-खोर वातूनी नेताओंकी आवश्यकता नहीं है; केवल एक महान् व्यक्ति, जिसके हृदयमें सच्ची लगन हो, जो स्वार्थसे दूर हो, जिसमें कमालपाशा की-सी वहादुरी, उसका-सा अध्यवसाय, हिम्मत, परिश्रम करनेकी शक्ति, दृढ़-निश्चय और सहृदयता हो, देशके समस्त दुःखोंको दूर कर सकता है। सैकड़ों वकवादी नेता बेकार हैं। पण्डित व्रजनारायण चकवस्तके शब्दोंमें :—

'जवांके जोरसे हंगामा-आराईसे क्या हासिल ?
वतनमें एक दिल होता मगर दर्द-आशना होता।'

: १० :

रूसके दो प्रतिद्वन्द्वी महापुरुष—ट्राट्स्की और स्टैलिन

ट्राट्स्की

रूससे जारशाहीका अस्तित्व मिटा देनेवाले महान् क्रान्तिकारी लेनिनका दाहिना हाथ, यूरोपके मित्र-राष्ट्रोंके पिट्ठुओं—जनरल रैंगल, डेनकिन और कोलचक—को नेस्तानाबूद कर देनेवाला और संसारके पूंजीपति साम्राज्यवादियोंको नाकों चने चबवा देनेवाला ट्राट्स्की आज गृह-विहीन होकर अपने देशसे निर्वासित है। आज महान् रूसमें उसके लिए जगह नहीं है। संसारके देश उसे अपने यहाँ रहने-भरका स्थान देनेमें काँपते हैं। जर्मनीने उसे अपनी भूमिमें घुसनेसे वर्जित कर दिया और नार्वेकी पार्लियामेण्ट उसे अपने देशमें बसनेकी आज्ञा देनेको तैयार नहीं है।

कामरेड ट्राट्स्कीका असली नाम ब्रान्सटीन था। वह एक मध्य श्रेणीके यहूदीका पुत्र है। उसका जन्म एलीजेबेथग्रेडके समीप सन् १८७७ में हुआ था। उसकी शिक्षा पहले ओडेसा नगरके एक छोटे स्कूलमें और तत्पश्चात् वहाँकी यूनिवर्सिटीमें हुई थी।

नवयुवक ब्रान्सटीनकी आत्मा सदासे क्रान्तिकारी और अदमनीय रही है। सन् १८९८ में यूनिवर्सिटी छोड़नेके कुछ ही दिन बाद वह क्रान्ति करनेके अपराधमें पकड़ा गया, और जारशाहीके पेटेन्ट दण्ड-विधानानुसार साइबीरियाको निर्वासित कर दिया गया। मगर उसके समान स्वातन्त्र्य-प्रिय और तेज़-तर्रार आदमीका जारशाहीके कड़े-से कड़े बन्धनमें बन्द रह जाना असम्भव था। सन् १९०२ में वह साइबीरियासे भाग निकला और एक जाली पासपोर्टकी सहायतासे इंग्लैण्ड जा पहुँचा। इस पासपोर्टपर उसने अपना फर्जी नाम 'ट्राट्स्की' लिखा था। उसी दिनसे उसने अपना पुराना नाम त्याग दिया और यह नया नाम ग्रहण कर लिया। युवक ब्रान्सटीनने दुर्दान्त ट्राट्स्कीके जामेमें नया जन्म लिया।

यद्यपि ट्राट्स्की बहुत ही नवयुवक था, किन्तु वह थोड़े ही दिनोंमें अपनी प्रतिभासे, लन्दनमें भागे हुए रूसी साम्यवादियोंके दलका प्रधान सदस्य बन गया। इस दलके नेताओंमें प्लेखनोव और लेनिन भी थे। रूसी क्रान्तिकारियोंके सबसे प्रसिद्ध और उग्र समाचार-पत्र 'इस्क्रा' (चिनगारी) के सम्पादनमें भी वह लेनिनका सहायक था।

सन् १९०५ में ट्राट्स्की पुनः रूस लौटा, और सेंट पिटर्सबर्गके 'सोवियट-ऑफ-वर्कर्स डेपुटीज़' का सदस्य हो गया। एक दिन वह इस 'सोवियट' की एक सभाके सभापतिका

कार्य सम्पादन कर रहा था, उसी समय वह सभा-सहित गिरफ्तार कर लिया गया। फिर निर्वासित करके साइबीरियाके टोबोलस्क नगरको भेज दिया गया, मगर जारशाहीकी बदकिस्मतीसे वह जरूरतसे ज्यादा चालाक था और टोबोलस्क पहुँचनेके साथ ही वहाँसे नौ दो ग्यारह हो गया। वहाँका डूबा हुआ, वह आस्ट्रियाकी राजधानी वीयनामें जाकर निकला। वहाँ वह कई समाचार-पत्रोंमें काम करता रहा और थोड़े दिनके लिए उसने एक रासायनिक कारखानेमें भी नौकरी की थी।

उस समय रूसी क्रान्तिकारियोंके दो दल थे। एक मेन्शेविक और दूसरा बोल्शेविक। ट्राट्स्की इन दोमेंसे किसीमें भी सम्मिलित नहीं हुआ, और अपनेको दोनोंके मध्यवर्ती बनाये रहा। सन् १९१० में वह कोपेनहेगेन (डेनमार्क) में उक्त दलोंकी एक सभामें सम्मिलित हुआ था। फिर कुछ दिनतक पेरिस और ज्यूरिचमें क्रान्तिकारी पत्र निकालता रहा।

गत यूरोपीय महायुद्धमें उसने महायुद्धके कारणोंपर जर्मन-भाषामें एक पुस्तक लिखी, जिसपर उसे आठ मासके लिए बड़े घरकी हवा खानी पड़ी। वह न केवल जर्मनी ही का विरोधी था, वरन् युद्धके सम्बन्धमें मित्र-राष्ट्रोंका भी विरोधी था, इसलिए सन् १९१६ में वह फ्रांससे भी निकाला गया।

अब ट्राट्स्कीने स्पेनका रास्ता लिया, किन्तु वहाँ भी वह पकड़ा गया। परन्तु कुछ ही दिनों बाद उसे अमेरिका चले जानेकी अनुमति मिल गयी। अमेरिकामें वह 'नोवी मीर' (नवीन संसार) नामक क्रान्तिकारी पत्रका सम्पादन करता रहा।

मार्च सन् १९१७ में जारशाहीके पापोंका घड़ा फूट गया। रूसने अत्याचारोंसे पीड़ित होकर अपने बादशाहको अपनी पीठसे गिराकर रौंद डाला। प्रसिद्ध रूसी क्रान्तिकी ज्वालामयी शिखाओंसे सारा यूरोप सिहर उठा। ट्राट्स्की क्रान्तिकी खबर पाते ही रूसको चल खड़ा हुआ। मगर रास्तेमें हैलीफैक्समें जारकी दोस्त ब्रिटिश-गवर्मेंटने उसे गिरफ्तार कर लिया, किन्तु रूसकी अस्थायी सरकारके कहनेपर उसे रूस जानेकी अनुमति दे दी गयी।

रूस पहुँचकर वह लेनिनके बोल्शेविक दलमें सम्मिलित हो गया। उन दिनों रूसकी भाग्यलक्ष्मी लड़कोंके खेलनेकी गेंदके सदृश हो रही थी। वह कभी किसी दलके हाथमें जाती थी और कभी किसी दलके हाथमें। अन्तमें बोल्शेविकोंने अन्य दलोंके विरुद्ध बड़े जोरका विद्रोह कर दिया, जिससे रूसकी राजसत्ताका सूत्र बोल्शेविक-दलके हाथमें आ गया। इस विद्रोहको सफल बनानेका लेनिनको जितना श्रेय है, ट्राट्स्कीको उससे कम नहीं।

बोल्शेविकोंकी नयी सरकारमें ट्राट्स्कीने परराष्ट्र-मंत्रीका पद पाया था। रूस और जर्मनीमें जो सन्धि हुई थी, उसमें वह रूसी प्रतिनिधियोंका प्रधान था। कुछ समयके बाद वह युद्ध-मन्त्री नियुक्त किया गया। इस पदपर उसने जो कार्य किया, उससे दुनिया चमत्कृत हो उठी। उसने बोल्शेविकोंकी सुप्रसिद्ध 'लाल सेना'का ऐसा उत्तम संगठन किया कि उसके सम्मुख पूँजीपतियोंकी सेनाएँ मात हो गयीं। इसी सेनाने पोलैण्डपर चढ़ाई की

थी, इसीने जनरल डेनकिन और रैंगेलको पछाड़ा था और इसीने 'कोलचक'की कपाल-क्रिया की थी।

ट्राट्स्की लेनिनका दाहिना हाथ था। लेनिनके मस्तिष्कमें विचार उत्पन्न होते थे और ट्राट्स्की उन विचारोंको कार्यमें परिणत कर दिखाता था। साम्यवादियोंके अन्य नेतागण ट्राट्स्कीसे कहीं अधिक पुराने थे, परन्तु ट्राट्स्की अपनी प्रतिभासे उन सबसे आगे बढ़ गया था। साम्यवादी दलके अन्य नेताओंको यह बात बहुत खटकती थी। उन्होंने उसके ऊपर कुछ अपराध आरोपित किये। स्टैलिन और जीनोवीवने कम्यूनिस्ट-पार्टी-की मीटिंगमें उसपर बुरी तरह आक्रमण किया। उस समय ट्राट्स्की बीमार था। उसे अपनी बीमारीके कारण काकेशश पहाड़पर जाना पड़ा। उसकी अनुपस्थितिमें विरोधियोंने उसके मित्रों और पक्षपातियोंको भिन्न-भिन्न पदोंसे निकाल बाहर किया, मगर फिर भी लेनिनकी सहायताकी पूरी आशा थी, और वह इसीलिए निश्चिन्त था; लेकिन ईसी समय लेनिन मर गया। लेनिनके मरते ही ट्राट्स्कीका सितारा अस्त होने लगा। उसके विरुद्ध आन्दोलनने जोर पकड़ा। वह युद्ध-मन्त्रीके पदसे हटाया गया, केन्द्रीय समितिसे निकाला गया और अन्तमें सन् १९२७ में किसी अज्ञात स्थानपर कैद कर दिया गया।

भगवान् कृष्णकी मृत्युके बाद गांडीव-धारी धनुर्धर अर्जुनको भीलोंने लूट लिया था। उसी प्रकार लेनिनकी मृत्युके पश्चात् वह ट्राट्स्की—जिसके नामपर बड़े-बड़े सेनापतियोंके मुख पीले पड़ जाते थे, जिसके नामपर सारा रूस थर्रा उठता था—एक साधारण अपराधी-की भाँति कैद कर दिया गया।

आजकल ट्राट्स्कीका प्रधान विरोधी स्टैलिन रूसका कर्ता-धर्ता, विधाता है। इधर कुछ समयसे रूटर कभी खबर देता था, कि ट्राट्स्की बीमारीसे मर गया और कभी कहता था कि उसे गोली मार दी गयी, मगर यह सब झूठ ही था। अब भी ट्राट्स्की भला-चंगा है, केवल वह रूससे निर्वासित कर दिया गया है।

वह तुर्की जा पहुँचा है। उसने जर्मन-सरकारसे जर्मनीमें रहनेकी आज्ञा माँगी थी, मगर जर्मन-सरकारने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। नार्वेने भी उसकी प्रार्थनाके प्रतिकूल ही निर्णय किया है।

रूसके क्रान्तिकारी नेताओंमें ट्राट्स्की सबसे अधिक प्रतिभाशाली है। वह बड़ा प्रभावशाली वक्ता है। उसकी लेखनीमें बड़ा जोर है। छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ और पैम्फलेट लिखनेमें तो वह पक्का सिद्धहस्त है और वाद-विवादमें अद्वितीय है। उसने कई पुस्तकें भी लिखी हैं।

स्टैलिन

आजकल रूसका कर्ता-धर्ता, विधाता, डिक्टेटर जोजेफ विसारिओनोविच जुगाशविली है। संसार उसे जोज़फ़ स्टैलिन 'सेक्रेटरी, अखिल रूसी साम्यदल'के नाम से जानता है। अपने दलमें वह 'कोबा'के नामसे प्रसिद्ध है। रूसमें ट्राट्स्कीके अधःपतनके बादसे स्टैलिन

ही क़ी प्रधानता है। संसार मुसोलिनी, जनरल प्रिमो डी रिवेरा और कमालपाशा आदिके सम्बन्धमें बहुत-कुछ जानता है, परन्तु स्टैलिनका जीवन एकदम अज्ञात है। वह आधुनिक संसारके बड़े रहस्यमय व्यक्तियोंमें है। उसपर प्रायः बीस करोड़ रूसियोंकी भलाई-बुराई निर्भर करती है, परन्तु स्वयं रूसी लोग भी उसकी बातोंसे अनभिज्ञ हैं।

स्टैलिनके जीवनकी ज्ञात बातें बहुत ही थोड़ी हैं। वह जार्जियाका निवासी है, और तिफलिस नगरके समीप काकेशश पहाड़के एक ढालू प्रान्तमें सन् १८७९ में उत्पन्न हुआ था। उसका बाप मोची था, उसकी माता ग्रीसके कट्टर ईसाई-धर्मकी अनुयायिनी थी। उसके पिताका विचार उसे पादरी बनानेका था, और इसके लिए उसने उसे गिरजा-घरमें पढ़नेके लिए भी भेजा था। किन्तु एक दिन वहाँ 'कार्लमार्क्स'की पुस्तक पढ़ता हुआ पकड़ा गया और 'खतरनाक राजनैतिक प्रवृत्ति'के अपराधमें निकाल दिया गया। उस समय वह सत्रह वर्षका था।

अब जुगाशविली (स्टैलिन) ने क्लार्की कर ली। कोई-कोई कहते हैं कि वह रेलवेमें इंस्पेक्टर हो गया था। उसकी राजनीति सदासे क्रान्तिकारी थी। सन् १९०२में वह जारशाहीकी पुलिसके फन्देमें फँस गया, और साइबीरिया भेज दिया गया, मगर वह निकल भागा और सन् १९०५की प्रसिद्ध सोशल डिमाक्रेटिक पार्टीकी कांग्रेसमें सम्मिलित हुआ। वहाँ उसपर लेनिनका प्रभाव पड़ा, और उसने अपनी समस्त शक्ति बोल्शेविज्मके प्रचारमें लगायी। वह कम-से-कम छः बार गिरफ्तार किया गया, परन्तु प्रत्येक बार निकल भागा। वह लन्दन और स्टाकहोमकी साम्यवादियोंकी सभाओंमें सम्मिलित हुआ था, और कुछ दिनतक इटलीमें सुप्रसिद्ध रूसी लेखक 'मैक्जिम गोर्की' के साथ भी रहा था। स्टैलिन बाकू-से निकलनेवाले 'वर्कर्स एण्ड सोल्जर्स गजट'का सम्पादक था। कहा जाता है कि साम्य-वादी दलके व्ययके लिए उसने जाली नोट बनाये थे, और साम्यवादके प्रचारके लिए उसने बैंकोंको लूटा था। उसने काकेशश-प्रान्तको साम्यवादी साहित्यसे पाट दिया था। सन् १९१७ तक स्टैलिनके जीवनका केवल इतना ही वृतान्त ज्ञात है।

इसके पश्चात् स्टैलिन सेंट पिटर्सबर्ग (वर्तमान लेनिनग्रेड) में लेनिन, ट्राट्स्की, कामनेव और जैरन्सकी आदिके साथ षड्यन्त्र करके केरेन्सकीकी अस्थायी सरकारको उलट-पलट करता हुआ दिखायी पड़ता है। जब सन् १९१७ के नवम्बर मासमें बोल्शेविक दलने रूस-का शासन हथिया लिया, तब स्टैलिन 'राष्ट्रीय मामलातका सभापति' (Chairman of National Affairs) बनाया गया। उसने रूसके गृह-युद्धमें—विशेषकर जारिट्सनकी लड़ाईमें—अच्छी कीर्ति उपार्जित की, और उसके स्मारकमें जारिट्सनका नाम 'स्टैलिनग्रेड' रख दिया गया। अब उसने समस्त रूसको एकतामें बाँधकर वर्तमान 'यूनियन ऑफ सोशलिस्ट-रिपब्लिक' बनानेमें बड़ा प्रयत्न किया। इस कामसे उसे रूस-के भिन्न-भिन्न प्रान्तों और वहाँके अधिवासियोंका अच्छा अनुभव प्राप्त हुआ। सन् १९२३ में लेनिनकी मृत्यु हुई। उस समय स्टैलिन बोल्शेविकोंकी नीति-निर्धारिणी और कार्य-कारिणी, दोनों समितियोंका सदस्य था, अखिल रूसी साम्यवादी दलका सेक्रेटरी था और 'जन' विभागका मन्त्री था। उस समय बोल्शेविक दलमें उसके समान प्रभावशाली पद-

पर कोई भी न था, इसलिए लेनिनके पश्चात् उसका उत्तराधिकारी होना स्वाभाविक ही था।

लेकिन सोवियट सेनाओंका संगठन-कर्ता और प्रतिभाशाली आन्दोलनकारी ट्राट्स्की उसका विरोधी था। ट्राट्स्की उसे पसन्द नहीं करता था। उसका विचार था कि स्टैलिन क्रान्ति-विरोधी, मनमानी करनेवाला और अधिकार-लोलुप है, इसलिए वह बोल्शेविज्मके लिए हानिकारी है। चार वर्षतक स्टैलिन और ट्राट्स्कीमें झगड़ा चलता रहा, पर अन्तमें सन् १९२७ में ट्राट्स्की साइबीरियाको निर्वासित कर दिया गया और स्टैलिन रूसका निरंकुश भाग्य-विधाता बन गया।

बस, स्टैलिनका इतना ही वृत्तान्त संसारको ज्ञात है। वह किस प्रकारका आदमी है, यह कहना कठिन है। रूससे बाहर उसके केवल चार या पाँच फोटो (चित्र) उपलब्ध हैं। वह प्रसिद्धि पसन्द नहीं करता, इसलिए अबतक मुश्किलसे दो-एक प्रेस-प्रतिनिधि उसके पास पहुँच सके हैं। वह मास्कोमें भी बहुत कम दिखायी देता है। वह क्रेमलिनमें अपनी स्त्री-बच्चोंके साथ एकान्त जीवन व्यतीत करता है। हाँ, वह कभी-कभी थियेटर जाया करता है, परन्तु वहाँ भी जब रोशनी तेज होती है, तब अपने 'बक्स'के पर्दे डाल लिया करता है।

यूरोपके कल्पना-प्रिय समाचार-पत्रकार स्टैलिनकी नीति और उसके कार्योंसे उसके चरित्रकी कल्पना किया करते हैं। वह सालमें केवल दो बार वक्तृता दिया करता है। लोगोंका कहना है कि उसकी मातृभाषा जार्जियन है, और वह अच्छी रूसी भाषा नहीं बोल सकता, इसीलिए वह जनताके सम्मुख अधिक नहीं आता। दूसरी बात यह कही जाती है कि वह तबतक किसी नीतिका उत्तरदायित्व नहीं ग्रहण करता, जबतक वह नीति सफल न हो जाय। जारशाहीके राज्यमें जब वह जेलखानेमें था, तबसे वह इस नीतिका अनुसरण करता है। लोग कहते हैं कि वह कैदियोंको भड़काकर उनके द्वारा हिंसात्मक कार्य करा देता था, और जबतक वे कार्य सफल न हो जायँ, वह उनके श्रेयका दावा नहीं करता था। उसकी शारीरिक शक्ति भी खूब है। कहते हैं कि वह अपनी पार्टीमें अपना प्रभाव जमानेके लिए अपनी इस शक्तिका भी उपयोग करता है।

वह अच्छा वक्ता नहीं है। उसके विरोधी कहते हैं कि वह बड़ा अधिकार-लोलुप है और जरूरतके अनुसार साम्यवादी और पूँजीपति बन जाता है। चाहे कुछ भी क्यों न हो, स्टैलिन इस समय रूसमें सबसे अधिक प्रभावशाली मनुष्य है।

———

: ११ :

पतिकी खोज

रूसी साम्यवादी लेनिन जारशाहीकी जेलसे छूटकर विदेश पहुँचा । उसकी स्त्री कुप्सकाया रूसके ऊफा नगरमें रहती थी । जासूसोंसे बचनेके लिए लेनिनने विदेशसे अपनी पत्नीको चिट्ठी लिखनेका यह ढंग निकाला था कि वह किसी पुस्तकके कुछ शब्दोंके नीचे महीन पेंसिलसे बिन्दु लगाकर उस पुस्तकको ऊफाके एक डॉक्टरके पतेसे भेज देता था । डॉक्टर उसे कुप्सकायाको दे देता था । कुप्सकाया अलग कागजपर बिन्दु लगे शब्दोंको लिख लेती थी । इन शब्दोंको मिलाकर पढ़नेसे चिट्ठी बन जाती थी ।

कुछ समयके बाद कुप्सकायाने विदेशमें लेनिनके पास जानेका निश्चय किया । उसने लेनिनको इस बातकी खबर दी और ऊफासे चलकर मास्को होती हुई पीटर्सबर्ग पहुँची । वहाँ अपनी माताके रहनेकी व्यवस्था करके कुप्सकाया चेकोस्लोवेकियाकी मौजूदा राजधानी प्राग नगरीको—जो उस समय आस्ट्रियन साम्राज्यके अन्तर्गत थी—रवाना हुई, क्योंकि विदेशसे लेनिन जितनी चिट्ठियाँ यानी पुस्तकें भेजता था, वे सब प्राग नगरीसे ही आती थीं और उनपर भेजनेवालेके स्थानमें 'हर मोड्राचेक'का नाम और पता रहता था । कुप्सकाया समझती थी कि लेनिन अपनेको जासूसोंकी नजरसे बचानेके लिए प्रागमें हर मोड्राचेकके नामसे रहता था ।

कुप्सकाया रूससे रवाना हुई, तो इस ढंगसे मानो कोई अनजान देहाती स्त्री जीवनमें पहली बार विदेश-यात्रा कर रही हो । उसने रूसी सीमा पार करके हर मोड्राचेकको एक तार भी दे दिया । जिस समय वह प्राग स्टेशनपर उतरी तो उसे लेनेके लिए कोई भी न आया । वह बहुत देरतक इन्तजार करती रही; लेकिन जब इन्तजार करते-करते थक गयी तो उसने एक गाड़ी किरायेपर की और उसपर अपना ढेर-सारा असबाब लाद-फाँदकर हर मोड्राचेकके घरको रवाना हुई । मजदूरोंके मुहल्लेकी एक पतली गलीमें एक बड़े घरके दरवाजेपर जाकर गाड़ी रुकी । कुप्सकाया लोगोंसे पता पूछती हुई मकानके चौथे तल्लेपर एक कमरेके दरवाजेके सामने जाकर पहुँची । कमरेकी खिड़कियोंमें गन्दी गद्दियाँ धूपमें लटकी सूख रही थीं । उसने कमरेका दरवाजा खटखटाया । एक ठिगनी-सी बूढ़ी चेक स्त्रीने दरवाजा खोलकर पूछा—"क्या है ?"

कुप्सकायाने कहा—"मोड्राचेक हैं ?"

"हर मोड्राचेक, देखिये कौन बुलाता है ।"—बूढ़ीने पुकारकर कहा ।

एक मजदूर बाहर आया । उसने कहा—"कहिये, मैं हूँ मोड्राचेक ।'

कुप्सकाया यह देखकर हक्का-बक्का-सी रह गयी । उसने लड़खड़ाती जबानसे कहा—"नहीं, मैं अपने पतिको चाहती हूँ ।"

अव क्षण भर के लिए मोड्राचेक स्तम्भित रह गया। कुछ मिनट वाद उसकी समझमें सारी परिस्थिति आ गई।

उसने कहा—'शायद आप हर रिट्टीमेयरकी पत्नी हैं। वे तो जर्मनीमें म्यूनिक नगर में रहते हैं; लेकिन वे मेरी मार्फत आपको ऊफाके पते पर किताबें वरावर भेजा करते हैं।'

अव कुप्सकायाको ज्ञात हुआ कि उसका पति म्यूनिकमें रिट्टीमेयरके नामसे रहते हैं।

वात-चीतमें कुप्सकायाको मालूम हूआ कि मोड्राचेक एक आस्ट्रियन साम्यवादी है। वह बेचारा दिन भर कुप्सकायाके साथ घूमा-फिरा और उसने अपनी हैसियतके अनुसार उसकी ख़ातिर-तवाज़ा भी की।

अव कुप्सकाया आस्ट्रियासे जर्मनी—म्यूनिक—के लिए रवाना हुई। म्यूनिक स्टेशन पर उतरकर उसने सारा असबाव स्टेशनके वेटिंग रूममें छोड़ा, क्यों कि असबाब साथ लेकर पतिकी खोज करनेका कटु अनुभव उसे प्रागमें हो चुका था। इसलिए असवावके झंझटसे मुक्त हो वह ट्राम पर सवार होकर हर रिट्टीमेयर—यानी अपने पति—की खोजमें निकली।

हर मेड्राचेकने रिट्टीमेयरके मकानका जो नम्वर वताया था, उसे खोजने पर मालूम हुआ कि वह एक शरावख़ाना है। ख़ैर, कुप्सकायाने उसके अन्दर प्रवेश किया और कटघरेके पास जाकर भीतर खड़े हुए एक मोटे जर्मनसे पूछा—'हर रिट्टीमेयर कहाँ हैं?'

उसने उत्तर दिया—"मैं क्या खड़ा हूँ।'

कुप्सकायाने टूटे स्वरसे कहा—'नहीं, वे मेरे पति हैं।'

इसे सुनकर बेचारा जर्मन भौंचक्का रह गया। थोड़ी देर तक दोनों एक दूसरेका मुँह ताकते मूर्ख वने खड़े रहे। इतनेमें रिट्टीमेयरकी स्त्री शराबखानेमें आई। उसने कुप्सकाया और अपने पतिको इस विचित्र दशामें देखकर तुरन्त ही सारा मामला भाँप लिया और वोली—'अच्छा, तुम हर मेयरकी स्त्री होगी। उनकी स्त्री साइबेरियासे आने वाली हैं, जिनका वे दो-तीन दिनसे इन्तज़ार कर रहे हैं। चलो मैं तुम्हें उनके पास पहुँचा दूं।'

वह स्त्री कुप्सकायाको लेकर एक मकानके पिछवाड़े हिस्सेमें ले गई, जहाँ एक कमरेमें मेज पर लेनिन वैठा हुआ था। कुप्सकाया पथ-प्रदर्शिका को धन्यवाद देना तो भूल गई, उल्टे क्रोधमें आकर अपने पतिसे वोली—'तुम भी अजीब आदमी हो। तुमने मुझे अपना ठीक-ठीक पता क्यों नहीं लिखा?'

'पता नहीं लिखा—मैं तुम्हें देखने के लिए दिनमें तीन-तीन वार स्टेशन जाता हूँ। तुम कहाँसे टपक पड़ीं?'

वादमें पता लगा कि लेनिनने अपने गुप्त ढंगसे एक पुस्तकमें अपना ठिकाना अंकित करके उसे ऊफाके डॉक्टर साहवकी मार्फत कुप्सकायाको भेजा था। लेकिन संयोगवश डॉक्टर साहवको वह किताब पसन्द आ गई; अतः उन्होंने उसे कुप्सकायाको न देकर स्वयं अपने पढ़नेको रख लिया था।

जीवनमें बहुधा उपन्यासोंकी अपेक्षा कहीं अधिक 'रोमांस' और विचित्रता होती है।

: १२ :

हमारा सेनापति

सन् १९२४

गंगा-यमुनाके संगम पर लाखोंकी भीड़ है। कन्याकुमारीसे काश्मीर और क्वेटासे सदियातकके हिन्दू प्रयागमें अर्ध-कुम्भ स्नानके लिए आये हैं। इस साल संगमके पास पानी ज्यादा गहरा है, जिससे लोगोंके डूबनेका डर है। इसलिए अधिकारियोंने वहाँ तख्ते गाड़कर नहानेकी मुमानियत कर दी है। लेकिन कुम्भ-स्नानका माहात्म्य तो संगम पर नहाने ही में है। हिन्दू कहते हैं कि वहाँ वालू डालकर गहराई कम कर दी जाय और उन्हें वहाँ नहाने दिया जाय। उन्होंने दरखास्तें दीं, प्रार्थनाएँ कीं, चिरौरी-विनती की; लेकिन अधिकारियोंने उनपर ध्यान नहीं दिया। आज तो लोग सत्याग्रहके लिए तैयार हैं।

गंगा-तटपर एक ओर साधुओंके अखाड़े और स्नानार्थियोंके ठठ लगे हैं, दूसरी ओर सरकारके अधिकारी, कान्स्टेबिलों, घुड़सवारों और हथियारबन्द पुलिसके साथ तख्तोंके पास इसलिए मौजूद हैं कि इस जगह हरगिज किसीको नहाने न दिया जायगा। बीचमें कांग्रेसके स्वयंसेवकोंका एक दल सत्याग्रहके लिए आमादा है। स्नानार्थी अपने स्नान करनेके अधिकारकी रक्षा करना चाहते हैं और अधिकारी अपने कानून की—यानी वास्तवमें अपनी जिद और ठसक की।

महामना मालवीयजी समझा-बुझाकर अधिकारियोंका दुराग्रह छुड़ाना चाहते हैं; लेकिन अधिकारियोंकी जिदके आगे मालवीयजीकी जादू-भरी वाणी भी व्यर्थ सिद्ध हो रही है। वे किसी तरह समझौतेके लिए तैयार नहीं। उनका रुख देखकर कौन कह सकता कि इस झगड़ेमें क्या न होगा—गोली या लाठी काममें लाई जायगी? मालवीयजीकी समझौवल-बुझौवलमें घंटेपर घंटा वीत रहा था। पूरे चार घंटे बीत चुके हैं; पर अधिकारी टससे मस नहीं होते।

सहसा स्वयंसेवकोंके दलसे छरहरे वदनका एक युवक निकलता है और विजलीकी तरह पुलिसके घेरेको चीरता हुआ गंगामें कूद पड़ता है। पुलिस उसे रोकनेके लिए लपकती है, घुड़सवार उसे थामनेके लिए घोड़े कुदाते हैं, लाखों निगाहें उसकी ओर दौड़ पड़ती हैं। वह छलांग मारकर तख्तोंके ऊपर चढ़ जाता है और तिरंगा झण्डा फहराते हुए अदम्य शक्तिसे दनादन तख्तोंको उखाड़ने लगता है। यह घटना इतनी तेज़ीसे इतने आनन-फाननमें होती है कि पुलिस और घुड़सवार हक्का-वक्कासे बौखलाये हुए रह जाते हैं। अव तो वालंटियर और दूसरे लोग भी उसका अनुगमन करके तख्तोंपर पिल पड़ते हैं। बातकी

बातमें सारे तख्ते उखाड़ फेंके जाते हैं और स्नानार्थी कूद-कूदकर स्नान करने लगते हैं। दूसरे दिनसे वहाँ बालू पड़ने लगती है और यात्रियोंके स्नानकी सुविधा कर दी जाती है।

अधिकारियोंके दुराग्रहको ठोकर मारकर गंगामें डुबानेवाले और शारीरिक रक्षाकी परवा न करके अदम्य साहस और निर्भीकतासे गंगामें कूदकर तख्तोंको उखाड़ फेंकनेवाले इसी नवयुवकको ही आज हमारे राष्ट्रने अपना सेनापति चुना है। उसीके सिरपर आज काँटोंका ताज रखा गया है। उसका नाम है जवाहरलाल नेहरू।

वह वक्ता है, लेखक है, इतिहासज्ञ है, विचारक है, नेता है, राजनीतिज्ञ है और देशभक्त है; लेकिन इन सबसे बढ़कर अगर वह कुछ है, तो एक योद्धा और सेनापति—जनरल। उसमें वीरता, शौर्य, साहस, अनुशासन, निर्भीकता, अपने लक्षपर पहुँचनेकी लगन, हर बातकी कमजोरीको फौरन पकड़ लेने और संकट कालमें तुरत निर्णयपर पहुँचनेके गुण ऐसे हैं, जो संसारके किसी बड़े-से-बड़े सेनापतिके लिए गर्व की वस्तु हो सकते हैं। इसीलिए तो आज वह हमारी आजादीकी लड़ाईका सिपहसालार बनाया गया है।

जवाहरलालका जन्म ऐसे घरमें हुआ, जो सिर्फ भरा-पूरा ही नहीं था, बल्कि अपनी शान-शौकत और ठाठ-बाटके लिए सारे मुल्कमें मशहूर था। जवाहरलाल की आरम्भिक शिक्षा हिन्दुस्तानी और यूरोपियन शिक्षकोंके द्वारा घरपर ही हुई थी, और सिर्फ पन्द्रह वर्षकी आयुमें वे पढ़नेके लिए इंग्लैण्ड भेज दिये गये थे। इंग्लैण्डमें उन्होंने हैरोके प्रसिद्ध स्कूलसे एन्ट्रेन्स पास किया और कैम्ब्रिजके ट्रिनटी कालेजसे जन्तु-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान और रसायन-शास्त्रमें बी० ए०की परीक्षा पास की। उनकी योग्यतासे प्रभावित होकर कालेजने उन्हें एम० ए० आनर्सकी डिग्री बिना परीक्षाके ही दे दी। बादमें वे कानून पढ़नेके लिए 'इनर टेम्पिल'में भरती हुए और १९१२में परीक्षा पास करके बैरिस्टर बन गये।

स्वर्गीय पंडित मोतीलाल इलाहाबाद हाईकोर्टके प्रमुख वकीलोंमेंसे थे। पुत्रने पिता-के साथ वकालत करना शुरू किया; लेकिन उन्हें तो वकील न होकर कुछ और ही होना था, इसलिए उन्होंने वकालतके पेशेपर विशेष ध्यान नहीं दिया।

सन् १९१२में वे पटना-कांग्रेसमें शामिल हुए। बस, यहींसे उनका सार्वजनिक जीवन शुरू होता है। सन् १९१४से उन्होंने सार्वजनिक कार्योंमें विशेष रूपसे भाग लेना शुरू किया। इसी वर्ष दक्षिण-अफ्रीकामें महात्मा गांधीके सत्याग्रह-संग्रामके लिए उन्होंने पचास हजार रुपया एकत्रित करके भेजा था। श्रीमती बेसेन्टके होमरूल-आन्दोलनमें उन्होंने जोरोंसे भाग लिया।

जलियानवाला बागका हत्याकांड भारतके आधुनिक इतिहासकी एक अमिट घटना है। इस घटनाने भारतीयोंकी आँखें खोल दीं और उन्हें अपनी असहायताका बोध करा दिया। इस घटनासे जवाहरलालने आजन्म देश-सेवाका व्रत ग्रहण किया और तबसे आज तक यह बहादुर सिपाही मुल्कके लिए सब तरहका त्याग करके, सब तरहकी तकलीफें झेलकर, खून-पानी एक कर रहा है।

सन् १९१९ में अवधके किसान-आन्दोलनमें जवाहरलालने जो काम किया, उससे प्रकट हो गया कि एक योग्य संगठनकर्ता किस तरह तिनकोंको जोड़-जोड़कर एक मजबूत

रस्सा बना सकता है। इस संगठनका अधिकांश श्रेय जवाहरलालको है। जवाहरलालने गाँव-गाँव घूमकर, किसानोंके साथ बराबरीसे मिलकर, उनका प्रेम और विश्वास प्राप्त करके यह संगठन किया था। उन दिनों आनन्द-भवनके वैभवोंका यह लाड़ला किसानोंकी कुटियोंमें सोता और कृषक-पत्नियों की बनाई हुई मोटी-मोटी पनेथियाँ खाता था।

जवाहरलाल कूटनीतिज्ञ नहीं हैं। वे गोलमाल बातें नापसन्द करते हैं। सच्ची और खरी बात कहनेमें कभी नहीं चूकते। वाद-विवादसे उन्हें घृणा है। अन्य भारतीय नेताओंकी भाँति वे केवल दूसरोंको उपदेश देना नहीं जानते। वे दूसरोंसे जो बात करनेको कहते हैं, उसे पहले खुद कर दिखाते हैं। बिहारके भूकम्पमें जिस समय अन्य नेता बिहारको आर्थिक सहायता पहुँचानेके लिए अपीलें निकाल रहे थे, उस समय जवाहरलाल कुदाल लेकर मुंगेरके खंडहरोंको खोदकर लाशें निकालनेका उदाहरण बिहारी नवयुवकोंके सामने उपस्थित कर रहे थे।

जवाहरलाल भारतके लिए पूर्ण-स्वाधीनताके पक्षपाती हैं। उन्होंने मद्रास-कांग्रेसमें पूर्ण-स्वाधीनताका प्रस्ताव उपस्थित किया था, और उन्हींके सभापतित्वमें होनेवाली लाहौर-कांग्रेसने अपना ध्येय पूर्ण-स्वाधीनता प्राप्त करना स्वीकार किया था। हमारे भारतीय नेताओंमें समाजशास्त्र और संसारके इतिहासका इतना गहरा अध्ययन शायद ही किसीने किया होगा, जितना जवाहरलालने किया है।

बड़े बापके बेटे बड़े नहीं हुआ करते। जवाहरलाल इस नियमके अपवाद हैं। कलकत्तेकी कांग्रेसके सभापतिके पदपर पंडित मोतीलाल नेहरू आसीन हुए थे, और उसके बाद ही लाहौरकी कांग्रेसके सभापतिके पदके लिए जवाहरलाल का चुना जाना एक अनोखी घटना थी। शायद संसारके इतिहासमें यह पहला ही अवसर होगा, जब किसी प्रजासत्तात्मक संस्थाने बापके बाद बेटेको अपना नायक चुना हो।

जवाहरलालमें शासक होनेके भी अपूर्व गुण हैं। प्रयाग म्यूनिसिपैलिटीका चेयरमैन बनकर नगरका प्रबन्ध उन्होंने जिस योग्यतासे किया था, उसकी प्रशंसा अधिकारियोंको भी करनी पड़ी थी।

जवाहरलालका सबसे बड़ा गुण है कर्तव्य-पालन और अनुशासन—'डिसिप्लिन'। संसारमें मुसोलीनी अपनी 'डिसिप्लिन' (अनुशासन) के लिए प्रसिद्ध हैं, किन्तु उनमें अत्यधिक अहंमन्यता है। जवाहरलालमें डिसिप्लिन है, पर अहंमन्यता नहीं है। कर्तव्य पालन करने और करानेमें वे निर्ममतासे काम लेते हैं। इसमें वे किसीके साथ—चाहे छोटा हो या बड़ा—रू-रियायत नहीं करते—अपने ऊपर भी नहीं। पुलिस गिरफ्तारीका वारंट लेकर आती है। जवाहरलाल १०-१५ मिनटका समय माँगते हैं और सेक्रेटरीको ज़रूरी चिट्ठियों-का जवाब लिखाने बैठ जाते हैं। इस समयको जब कि और लोग अपने स्वजनोंसे विदा ग्रहण करनेमें लगाते, वे कर्तव्य पालनमें लगाते हैं। यह है उनकी कर्तव्यनिष्ठा। कर्तव्यके सामने वे अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी नहीं बख्शते। इसीलिए उनके अधीन काम करने-वाले उनसे डरते हैं; लेकिन इसके यह अर्थ नहीं कि उनमें सहृदयताकी कमी है। कर्तव्य पूरा हो जानेपर वे प्रत्येकके साथ, अदनासे अदना कार्यकर्ता के साथ, इतने प्रेम, इतनी

सहृदयता और इतनी बराबरीसे हँसकर मिलते-जुलते कि लोगोंको आश्चर्य होने लगता है कि ऐसे मक्खन-जैसे कोमल हृदयका व्यक्ति कर्तव्यके आगे फौलादका कैसे बन जाता है।

इस समय हमारे देशके नेताओंमें गांधीजीके बाद यदि किसीका नम्बर आता है, तो जवाहरलालका। संसारके इतिहास और रूसी साम्यवादका अध्ययन करके उनका यह विचार दिनोंदिन दृढ़ होता जाता है कि हमारे देशकी तमाम बुराइयोंको दूर करनेके लिए समूचे समाजको एक नवीन क्रान्तिकारी ढंगपर संगठित करना होगा, और इसी उद्देश्यके लिए वे कार्य कर रहे हैं। भारतमें समूचे संसारके ⅕ लोग बसते हैं। इस प्रकार जवाहरलाल केवल एक राष्ट्रवादी नेता नहीं, वरन् मानवताके एक पथ-प्रदर्शक हैं।

आज जब कांग्रेसकी शक्तियाँ बहुतोंको शिथिल दीख पडती हैं, जब कांग्रेसके भीतर ही अनेक प्रकारके मतभेद नजर आते हैं और जब राष्ट्र थका हुआ-सा जान पड़ता है, तब उसके पथ-प्रदर्शन का भार जवाहरलालके, जिन्हें हाल ही में कमलादेवी जैसी वीर जीवन-संगिनीके खोनेका आघात लग चुका है, कन्धोंपर रखा गया है। इस विषयमें महात्मा गांधीके ये शब्द हमें याद आते हैं––

"उनमें योद्धाका प्रचंड वेग है; राजनीतिज्ञकी बुद्धिमत्ता है। पवित्रतामें वे बिल्लौर-की तरह पारदर्शी हैं; उनकी सचाई सन्देहसे परे है। वे निर्भीक और निष्कलंक महारथी हैं। राष्ट्र उनके हाथमें सुरक्षित है।"

––––

: १३ :

बारह मसाले का शहर

रंगून पहुँचकर शहर और इमारतोंपर नजर दौड़ाई। शहर नया है, फैला हुआ है, साफ है, और सलीकेका बसा हुआ है; फिर भी बाहरी दृष्टिसे उसमें कोई ऐसी खूबी नहीं है, जो हिन्दुस्तानके अन्य नये ढंगके शहरोंमें न हो। वही कोलतारकी सड़कें, जिनपर जनेऊके धागेकी भाँति ट्रामकी पटरी दौड़ी हुई है; पत्थर-जड़े फुटपाथ और दोनों ओर दोतल्ले-तितल्ले मकानोंकी कतारें। मकान सादे, मधुमक्खियोंके छत्तोंकी तरह भरे हुए, कला-हीन और सौन्दर्य-रहित। कलकत्ते, बम्बई की भाँति पंचतल्ली-सततल्ली ऊँची अट्टालिकाएँ भी नहीं हैं, और न पार्कों और बगीचोंकी बहुतायत ही है।

इस प्रकार जहाँ तक स्थावर सम्पत्तिका सम्बन्ध है, केवल दस-पाँच पैगोडों और दो झीलोंको छोड़कर रंगूनमें कोई ऐसी विचित्रता नहीं है, जो विशेष रूपसे आकर्षक हो, अथवा जो उसे अन्य भारतीय शहरोंसे अलग दिखा सके।

इस आकर्षण-हीनताके होनेपर भी रंगूनमें कुछ विशेष आकर्षण है, कुछ खास रंगीनी है, और वह है उसकी मनकूला जायदादमें—उसकी मानव-सम्पत्तिमें। रंगूनमें दाखिल होते ही जान पड़ने लगता है कि हाँ, यह एक ऐसी नगरी है, जिसे सचमुच अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्प्रान्तीय शहर (Cosmopolitan city) कह सकते हैं; क्योंकि उसकी आबादीमें बर्मी, चीनी, जापानी, मलाया, सयामी, युक्तप्रान्तीय, तामिल, तेलुगू, गुजराती, बंगाली, पंजाबी आदि दर्जनों किस्मके लोग हैं, या यों कहिए कि पूरे बारह मसाले इकट्ठे हैं।

कलकत्ता रंगूनसे कहीं ज्यादा बड़ा है, और यहाँ रंगूनकी अपेक्षा कहीं अधिक किस्मोंके लोग भी बसते हैं; लेकिन बंगाली हिन्दुस्तानियोंके अतिरिक्त अन्य लोगोंकी संख्या इतनी थोड़ी है कि कलकत्तेके चौदह लाखके जन-समुदायमें उनका पता नहीं चलता। इसके विपरीत रंगूनकी आबादीका हरएक मसाला बोलता हुआ है—हरएक किस्मके लोग अनुपातमें इतने काफी हैं कि उनकी उपस्थिति अपने-आप महसूस होती है। अगर आप सूले पैगोडा, सूरतीबाजार या किसी अन्य चलती हुई सड़कपर खड़े होकर पाँच मिनटके भीतर गुजरनेवाले सभी राहगीरोंको गिरफ्तार कर लें, तो आपको लगभग एक दर्जन विभिन्न जातियों, नस्लों और भाषाओंके लोग मिल जायँगे।

बारह मसालोंकी इस खिचड़ी आबादीने रंगूनमें एक अजीब रंगीनी पैदा कर दी है। लम्बी दाढ़ीके सिख, कुच्ची दाढ़ीके चटगाइं मुसलमान, मूँछवाले हिन्दुस्तानी, मूँछ-दाढ़ी-सफाचट बर्मी, चपटी नाकके मलाया, साँवले तेलुगू, पीले चीनी, गोरे यूरोपियन, लम्बे पंजाबी, गट्टे कचीन—गरज यह है कि 'नाना आकृति नाना रूपा' रंगूनकी सड़कोंपर

शिवजीकी बारातके सभी सामान नजर आते हैं।

रंगूनकी सड़कोंपर कुछ अजीव वहार छाई रहती है। गंगा-जमनी वाशिन्दोंकी शक्ल-सूरत और चेहरे-मोहरेकी विचित्रता जो है, सो तो है ही; पर उनकी वेश-भूषा और पोशाकने रंगून की रंगीनीमें और भी चार चाँद लगा दिये हैं। सफेद शलवारके खान, नल-नीलके वेटोंकी तरह नीले कपड़ोंसे ढके हुए जहाजी खलासी, लाल-पीले चीवरोंसे आच्छादित वौद्ध भिक्षु, काले मोमजामे जैसे कपड़ोंमें लिपटे चीनी, और लाल, पीली, हरी, नीली, वैंगनी, गुलावी, फीरोजी, फाख्तई—प्रत्येक सम्भव रंगकी—रंग-विरंगी लुंगियाँ पहने हुए वर्मी रंगूनकी सड़कों पर रंगोंका एक चित्र-विचित्र संसार वसाते हैं।

रंगोंका सौन्दर्य या तो उनके मधुर सामंजस्य (Harmony) में होता है अथवा उनकी घोर प्रतिकूलता (Striking Contrast) में। रंगोंकी प्रतिकूलता यदि देखना है, तो वर्मी औरतोंको देख लीजिये। कमरमें एक-से-एक वढ़कर चटकीले शोख रंगोंकी रंग-विरंगी लुंगियाँ, शरीरपर सफेद वुर्राक ऐंजी (छोटा कोट), गालोंपर श्वेत-पीत पनाखा (वर्मी चन्दन) का लेप, माथेपर छः इंच ऊँची घोर काली केशराशि, जिसमें सफेद, लाल, हरे फूल खोंसे हुए, और सिरपर रंग-विरंगा छाता। इस प्रकार वर्मी स्त्री रंगोंकी विभिन्नताका जीता-जागता, चलता-फिरता टोटल ही नजर आती है।

इस 'कहींकी ईंट कहींका रोड़ा' वाली आवादीके सामने सवसे वड़ी समस्या है वोलीकी। इन नाना भाषा-भाषी लोगोंको एक ही स्थानमें रहना है और नौकरी-चाकरी, वाजार-हाट, सौदा-सुलुफ हर वातमें एक-दूसरेसे सावका पड़ना है। फिर आपसमें वातचीत कैसे करें? विचार विनिमय कैसे हो?

"क्योंकर जवाँ लड़ानेकी हसरत निकल सके,
इनकी जवान और है उनकी जवान और?"

ट्रामोंपर कंडक्टर तामिल, तेलुगु, वर्मी, उड़िया आदि भाषाएँ वोलनेवाले हैं। और मुसाफिर? मुसाफिरोंकी जिह्वाओंपर कम-से-कम एक दर्जन विभिन्न भाषाएँ आसन जमाये चहचहा रही हैं जैसे एक ही पेड़पर वैठी हुई तरह-तरहकी चिड़ियाँ। यात्री उत्तरकी कहता है, कंडक्टर दक्षिणकी समझता है। अथवा वाजारमें गाहक अपनी भाषामें पाव भर चीज माँगता है, और दुकानदार अपनी भाषामें पाँच सेर समझता है। ऐसी हालत में रोजमर्रा का काम चलानेके लिए किसी सम्मिलित भाषाका होना अनिवार्य हो उठा।

इस सम्मिलित भाषाका पद पानेके लिए तीन दावेदार थे—वर्मी, अंग्रेजी और हिन्दी उर्फ हिन्दोस्तानी। सीखने और समझनेकी सरलताके कारण हिन्दीकी दरखास्त मंजूर की गई; मगर इस शर्तपर कि हिन्दी अपने व्याकरणको एकदम तलाक दे डाले। हिन्दीने भी कहा—"परवा नहीं, परवा नहीं। हम वी व्याकरण का टंटा नहीं माँगटा।" और वह स्टीमरपर चढ़कर सीधी रंगून जा धमकी। रास्तेमें उसने वंगालकी खाड़ीके काले पानी में अपने व्याकरणकी गठरी फेंद की दी। आजकल रंगूनियोंकी मुश्तरका जवान हिन्दी या हिन्दोस्तानी है।

रंगून पहुँचकर हिन्दीने बड़े-बड़े कमाल दिखलाये हैं। रंगूनी हिन्दीमें स्त्री-पुरुष दोनों-को समान अधिकार हैं यानी उसमें स्त्रीलिंग पुल्लिग का कोई भेद नहीं—सब धान बाईस पसेरी हैं। रंगूनी हिन्दी जाति-पाँति का भेद नहीं करती। उसमें आपको वर्मी ,चीनी, तामिल, तेलुगु, गुजराती आदि शब्द अक्सर एक ही पंगतमें बैठे दिखाई पड़ेंगे। जान पड़ता है कि रंगूनी हिन्दीपर जात-पाँत तोड़क मण्डलका भी काफी असर पड़ा है, क्योंकि उसमें हिन्दी कर्ता और वर्मी क्रियाका, हिन्दी विशेषण और अंग्रेजी विषेष्यका, गुजराती शब्द और हिन्दी विभक्ति आदिका पाणिग्रहण पग-पगपर होता नजर आता है।

यदि सचमुच ही अराजकवाद कहीं देखनेमें आता है, तो रंगूनी हिन्दीमें। उसमें भाषा-व्याकरण-सम्बन्धी कोई भी वन्धन नहीं—स्त्रीलिंगकी जगह पुल्लिग, वहुवचनकी जगह एकवचन, भूतकालकी जगह भविष्यतकाल, कर्ताकी जगह करण, सम्प्रदानकी जगह अपादान—मतलब यह कि हर तरहकी अनियमितता ही रंगूनी हिन्दीकी विशेषता है। वह केवल एक ही नियमके अधीन है, और वह नियम यह है कि उसपर कोई भी नियम लागू नहीं हो सकता।

रंगूनी हिन्दी सुनकर पाणिनिकी अक्लमन्दीकी दाद देनी पड़ती है। पाणिनिने बड़ी बुद्धिमानी करके सहस्रों वर्ष पहले ही जन्म लेकर अपनी इहलौकिक लीला समाप्त कर दी थी। यदि वे आजकल होते और रंगून जाकर कहीं अपनी 'अष्टाध्यायी'के सूत्र सुनाने लगते, तो निश्चय मानिये कि हमारे रंगूनी भाई मारते-मारते उनका कचूमड़ निकाल देते।

रंगून पहुँचकर शक होने लगता है कि छायावादी कविताका जन्म कहीं रंगूनमें ही तो नहीं हुआ है। कारण यह कि छायावादी कवितामें 'मूक भाषा' और 'नीरव गान' की प्रधानता होती है, और रंगूनमें जो हिन्दी बोली जाती है, उसमें ५० फी सदी शब्द यदि आवाजवाले होते हैं, तो ५० फी सदी शब्द 'मूक भाषा' और 'नीरव स्वरवाले'—यानी आधी वात जवान से कही जाती है और बाकी आधी इशारों से प्रकट की जाती है। कुछ विदेशियों-के पास तो हिन्दी शब्दोंकी 'सप्लाई' दर्जन-दो-दर्जन से ज्यादा नहीं होती; पर वे इतनी ही पूँजीसे अपना काम चला लेते हैं।

रंगूनमें मारवाड़ियोंकी चार धर्मशालाएँ हैं, जिनमेंसे दोमें यात्री ठहरते हैं और बाकी दो मारवाड़ी भाइयोंकी विवाह-शादीके लिए रिजर्व हैं। एकमें वर और बारात ठहरती है और दूसरीमें लड़कीवाले विवाह भरके लिए आ वसते हैं। हम लोग बारातवाली धर्म-शालामें जाकर ठहरे थे। बिना दूल्हा या बाराती वने इस धर्मशालामें ठहरना सौभाग्य-की बात समझनी चाहिए। लड़कीवाली धर्मशालामें वर्माका सबसे बड़ा हिन्द-पुस्तकालय है। पुस्तकालयमें समाचार-पत्रोंका अच्छा चयन रहता है। पुस्तकें भी काफी हैं, पर उनका संग्रह अप-टू-डेट नहीं है। पाठकोंकी संख्या भी काफी रहती है; लेकिन जगहकी बड़ी कमी है।

दो दिन धर्मशालामें रहकर हम लोगोंने आर्य समाजमें डेरा जमाया। रंगूनका आर्य समाज एक जीवित संस्था है। उसका उसूल है :—

'खाली न बैठ कुछ किया कर'

इसीलिए वह फैक्टरियोंकी भाँति दिन-रात कुछ-न-कुछ किया करता है। दस बजे सवेरेसे चार बजे शामतक उसमें डी० ए० वी० स्कूल लगता है; छः बजे शामसे मद्रासी भाइयोंको हिन्दी सिखानेके क्लास लगते हैं, और आठ बजे रातसे रात्रि-पाठशाला चलती है। इसके बीचमें सभाएँ, व्याख्यान, कानफरेंसें, श्राद्ध और शादी-विवाह भी इसके हालमें होते रहते हैं। ऊपरके तल्लेमें बारह साफ-सुथरे कमरे हैं, जिनमें नौ आने रोज देकर कोई भी यात्री ठहर सकता है। इमारतके नीचे ही यात्रियोंकी सुविधाके लिए निरामिष भोजनालय है।

रंगूनमें ही नहीं, वरन् समूचे वर्मामें जहाँ कहीं भारतीय काफी संख्यामें बसे हैं, उन्होंने अपने धार्मिक स्थान, जैसे आर्य समाज, ठाकुरवाड़ी और गुरुद्वारे बना रखे हैं। ये सब स्थान धर्मके केन्द्र होनेके साथ-साथ धर्मशालाओंका काम देते हैं। इन धार्मिक स्थानोंसे लोगोंका परलोक सुधरता है या नहीं, यह बात तो यमराजके सेक्रेटरी मुंशी चित्रगुप्त जानते होंगे; लेकिन इनसे यात्रियोंको निश्चय ही बहुत लाभ पहुँचता है, और इसके लिए वे श्रेय के अधिकारी हैं।

रंगूनका शहर नया है, इसलिए उसमें प्राचीन ऐतिहासिक इमारतें आदि नहीं हैं। केवल श्वे द गं पैगोडा ही एक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण वस्तु है। पाली अपभ्रंशके 'धागोबा' शब्दको बिगाड़कर अंग्रेजोंने 'पैगोडा' बना डाला है। पैगोडा शब्दके अर्थ हैं स्तूप। वर्मी अपनी भाषामें उसे 'फया' कहते हैं। श्वे द गं पैगोडा वर्माका सबसे पवित्र स्थान है।

श्वे द गं पैगोडा एक ऊँची टेकरीपर बना है। वर्माके पैगोडा अक्सर टीलों या टेकरियों-पर ही बनाये जाते हैं। ऊपरतक चढ़नेके लिए चारों दिशाओंमें चार सीढ़ियाँ होती हैं। इन सीढ़ियोंके प्रवेश द्वारके दोनों ओर एक-एक सिंह की मूर्ति होती है। जितना बड़ा पैगोडा होता है, उसीके अनुसार इन मूर्तियोंका आकार भी बढ़ता जाता है।

ट्रामकी लाइन श्वे द गं पैगोडा के दरवाजेपर जाकर खतम होती है। प्रवेश-द्वारपर लकड़ीकी कटावदार जालीकी मेहराब लगी हुई है, जिसपर सोनेका वर्क चढ़ा है। इसकी कारीगरी लाजवाब है। स्तूपके ऊपर पहुँचनेके लिए लगभग सौ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। एक साथ सीढ़ियाँ चढ़नेमें यात्रीको थकान न हो, इसलिए प्रत्येक आठ-दस सीढ़ियोंके बाद पन्द्रह-बीस फीट लम्बा फर्श छोड़ दिया गया है। सीढ़ियोंके ऊपर पक्की छत है। इन सीढ़ियोंपर दोनों ओर नीचेसे ऊपरतक सैकड़ों दुकानें हैं, जिन पर पूजार्थियोंके लिए फूल, अगर और मोमकी बत्तियाँ, खिलौने, तस्वीरें, मनिहारीका सामान, चाय, बिस्कुट और जलपान आदि चीजें बिकती हैं। दूकानदार ९५ फी सदी औरतें हैं। वे रेशमी लुंगियाँ पहने, नख-सिख सँवारे, पान चबाती हुई दूकानदारी किया करती हैं। प्रायः सभी यात्री अपनी-अपनी श्रद्धाके अनुसार पूजाके लिए फूल आदि ले जाते हैं। दो पैसेमें बाँसकी तीलीमें बँधा हुआ एक फूल, दो मोमकी और दो अगरकी बत्तियाँ (धूपबत्तियाँ) मिलती हैं। बाज-बाज श्रद्धालु दस-दस रुपयेके फूल ले जाते हैं।

मन्दिरमें जानेके लिए हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई किसी जाति या किसी भी

जानवरके लिए रोक-टोक नहीं है। हाँ, जूता पहनकर जानेकी मनाही है। इसके यह मानी नहीं हैं कि मन्दिरमें जूता ले जाना मना है। आप हाथमें जूता लेकर मजेमें चले जाइंये और उसे ठीक देवताकी बगलमें रख लीजिये, सिर्फ पाँवमें पहनकर मत जाइये। लोग अकसर जिस फूलवालीसे फूल खरीदते हैं, उसीके पास जूता धरोहर रख आते हैं, और लौटकर ले लेते हैं।

सीढ़ियोंके ऊपर पहुँचकर सामने ३७० फीट ऊँचा विशाल स्तूप खड़ा दीख पड़ता है। स्तूपका आकार ठीक घंटेकी शक्ल का है। समूचे स्तूपपर नीचेसे ऊपरतक सोना चढ़ा है। इसी कारण इसे श्वे द गं (स्वर्ण-निर्मित) पैगोडा कहते हैं। शिखरके समीप सोनेका एक विशाल छत्र लगा है। सुबहका वक्त था, बाल रविकी सुनहरी किरणें चमचमाते हुए सोनेमें अजीब चकाचौंध पैदा कर रही थीं। प्रधान स्तूपकी जड़के चारों ओर श्रद्धालुओंने सैकड़ों छोटे-छोटे पैगोडे बना रखे हैं। उसके बाद चारों ओर संगमरमर-जड़ा खुला सहन है, जिसपर लोग परिक्रमा करते हैं। इस सहनके बाद इमारतें हैं, जिनमें कहीं मूर्तियाँ स्थापित हैं, कहीं भिक्षुगण बैठे अध्ययन करते हैं और कहीं यात्रियोंके लिए विश्राम-स्थान हैं।

समूचे पैगोडामें भगवान् बुद्धकी छोटी-बड़ी सैकड़ों मूर्तियाँ हैं। प्रधान मूर्तियाँ अत्यन्त विशालकाय हैं और अधिकांश नीचेसे ऊपरतक सोनेसे मढ़ी हैं। कुछ मूर्तियाँ पत्थरकी हैं, कुछ ईंट-चूनेकी। कलाकी दृष्टिसे वे प्राय: कलाशून्य हैं। फिर भी उन्हें देखकर दर्शकके मनपर काफी प्रभाव पड़ता है, क्योंकि एक ओर तो उनका हाहाहूती आकार दर्शकपर रोब जमाता है, और दूसरी ओर उनका चमाचम सोना आँखें चौंधिया देता है। मूर्तियोंके कला-हीन होनेपर भी इधर-उधरके मन्दिरोंमें लकड़ीकी नक्काशीका जो काम दीख पड़ता है, उसे देखकर दाँतों-तले अँगुली दबानी पड़ती है। वास्तवमें लकड़ीकी कारीगरीमें बर्मियोंको कमाल हासिल है। शायद ही और कहींके बढ़ई इतना बारीक और नफीस काम कर सकें। बर्मियोंको सोना बहुत प्रिय है। वे हर चीजपर सोनेका वर्क चढ़ा देते हैं। स्तूपके इर्द-गिर्दके मन्दिरोंके शिखरोंपर जो उत्कृष्ट लकड़ीका काम है, उस सबपर भी सोना मढ़ रखा है। पैगोडाके ऊपर पहुँचकर यही जान पड़ता है मानो हम किसी स्वर्णपुरीमें आ गये हैं।

पैगोडामें सफाईका क्या कहना। हिन्दुओंके प्रधान तीर्थ-स्थानोंकी तुलनामें यह कई गुना ज्यादा साफ है। देव मूर्तियोंके सामने बढ़िया मेजपोशोंसे ढकी मेजें रखी हैं, जिनपर चीनीके एक-से-एक खूबसूरत दर्जनों फूलदान रखे हैं। पूजार्थी जाकर इन्हींमें अपना फूल रख देता है। एक ओर लोहेका एक बड़ा तश्त रखा है, जिसमें आरतीवाली मोमबत्ती जलाकर रख दी जाती है, दूसरी ओर एक ऊँचे स्टैण्डपर चीनीका एक खूबसूरत कूंडा राखसे भरा धरा है, जिसमें अगरबत्ती जलाकर खोंस दी जाती है। कई एक दान-बक्स रखे हैं, जिनमें लोग चढ़ौतीके पैसे डाल देते हैं। इस प्रकार कोई भी चीज देवतापर नहीं चढ़ाई जाती।

बर्मा-निवासी मांसभक्षी हैं और किसी चीजके खाने-पीनेमें परहेज नहीं करते। फिर भी कम-से-कम अपने मन्दिरोंमें वे 'अहिंसा परमो धर्म:'के सिद्धान्तका पालन जरूर करते हैं। पैगोडाके भीतर किसी जानवरको नहीं मारते। इसलिए यहाँ छोटे-मोटे जानवर बड़ी

बेफिक्री और आजादीसे घूमते नजर आते हैं। मैंने देखा कि दो-चार कुत्ते पैगोडाके सहनमें 'मार्निंग-वाक' कर रहे थे। एक कुकुर दम्पति प्रेमालापमें मग्न था। एक देवमूर्तिसे सटकर बैठी हुई श्रीमती विड़ालवालादेवी उर्फ मुसम्मात पूसी जीभसे वदन चाटकर अपना श्रृंगार कर रही थीं। शिखरों और छतोंपर वैठे हुए सैकड़ों कवूतर धूप ले रहे थे। एक ठिकाने पेड़के नीचे मिसेज मुर्गी अपने वच्चोंको एकत्रित करके किंडरगार्टनके सवक देती दिखाई देती थीं। यह भी देखा कि एक महिलाने देवताके भोगके लिए थाल भरकर रखा था। इतनेमें एक कुत्तेको नाश्तेकी जरूरत मालूम हुई, तो आकर उसी थालसे मुँह भरकर निकाल लिया; लेकिन न तो किसीने उसे मारा और न टोका।

वर्मी दानशील खूब होते हैं। उनकी खर्राचीका तो कहना ही क्या। चूँकि यह पैगोडा उनका पवित्रतम मन्दिर है, इसलिए इसे सजाने-वजानेमें वे खूब दिल खोलकर खर्च करते हैं। सजावटका फैंसी-से-फैंसी सामान ला-लाकर मन्दिरको भेंट करते हैं। एक वड़े कमरेमें शीशेके शो-केसोंके अन्दर मन्दिरको भेंटमें मिली हुई कीमती चीजें रखी हैं।

अपनी चमक-दमकसे दिनमें यह पैगोडा यदि स्वर्णपुरी-सा दीख पड़ता है, तो रातमें एकदम परीदेश-जैसा हो उठता है। वात यह है कि इस तीन सौ फीट ऊँचे स्तूपमें नीचेसे लेकर धुर चोटीतक विजलीके लैम्प लगा रखे हैं, जो रात भर जलते हैं। एक तो नीचेसे ऊपरतक सोना दूसरे वारहो महीने दीवाली, फिर परीदेश वननेमें कसर ही क्या!

रंगून वर्माकी राजधानी होनेके साथ-ही-साथ वर्माका व्यापारिक केन्द्र भी है। वर्माका व्यापार तीन भागोंमें विभक्त है। वैंक, खानें, सागौनकी लकड़ी, मिल और फैक्टरियाँ तथा आयात-निर्यातका मुख्य भाग अंग्रेजोंके हाथमें है, कपड़ा, गल्ला, चावल आदिका थोक रोजगार भारतीयों और चीनियोंके पास है, और कुम्हार, कुँजड़े, फूल, विसातखाने आदिकी छोटी-छोटी दूकानें वर्मियोंके हाथमें हैं। रोजगारका मलाई-मक्खन अंग्रेज खा जाते हैं, मठा भारतीय और चीनियोंको मिलता है और तलछट वर्मियों को।

वर्मियोंके पास भी जो रोजगार हैं, उन्हें ९० फीसदी स्त्रियाँ ही करती हैं, वर्मी पुरुष तो नर मधुमक्खीकी भाँति खाने-पीने आनन्द करनेमें ही मगन रहते हैं। घर-बाहर सभी तरहका प्रवन्ध स्त्रियाँ करती हैं। वर्मी पुरुष तो वादशाह जहाँगीरके इस सिद्धान्तके समर्थक नजर आते हैं—

'हो आध सेर कवाव मुझको, एक सेर शराव हो,
है सल्तनत नूरेजहाँकी, खूब हो कि खराव हो।'

वर्मी स्त्रियाँ खूब साफ-सुथरी, वनी-ठनी, होशियार और परिश्रमी होती हैं। रोजगार-व्यापारमें भी दक्ष होती हैं। लेकिन वे उन्हीं रोजगारोंको चला सकती हैं, जिनकी पूँजी दो-चार सौ रुपयेके भीतर हो, इससे वड़े काम उनकी सामर्थ्यसे वाहर हैं।

रंगूनकी एक खास चीज, जो और किसी शहरमें शायद ही देखने को मिले, है यहाँका 'नाइट बाजार'। फ्रेजर रोडके चौड़े फुटपाथपर हर रोज रातमें हाट लगती है, जिसमें विसातखानेकी सस्ती चीजें, वर्तन, साबुन, पाउडर, चट्टियाँ, लुंगियाँ, कपड़े, चाय, बिस्कुट, कवाव, केक और चोरीके जूतोंसे लेकर गुदड़ी वाजारतकका सारा सामान विकता है। चौड़े

फुटपाथपर पाँच बजे शामको दूकानदार तख्त ला-लाकर डालते हैं, जिनपर दूकानें लगाई जाती हैं। फुटपाथपर स्थायी छेद बने हैं, जिनमें बाँस डालकर तिरपाल तान देते हैं, जो पानी और ओससे दूकानोंकी रक्षा करते हैं। सामनेकी स्थायी दूकानोंसे विजलीके तार लाकर रोशनी की जाती है। सात बजते-बजते गाहकों और तमाशबीनोंका मेला लग जाता है, जो आधी राततक चलता रहता है। मैंने देखा कि बाजार सस्ते, लेकिन फैंसी जापानी मालसे पटा रहता है। 'हर एक चीजका दस पैसा', 'जापानी बबुआ दस पैसा', 'साबुनकी टिक्की दस पैसा' आदिकी आवाजें लगती रहती हैं। रातमें यहाँ सैकड़ों दूकानें और हजारों आदमियोंकी भीड़ नजर आती हैं; पर सवेरे मैदान साफ होता है। दिनमें इस सड़कको देखनेवालेको कभी गुमान भी नहीं हो सकता कि रातमें यह जगह इतनी कोलाहलपूर्ण, इतनी गुलजार हो उठती होगी। दिया-जले एकाएक इतनी दूकानोंका उग आना," आधी राततक इतनी धूम-धाम रहना और सवेरे सब कुछ गायब हो जाना—ऐसा जान पड़ता है, मानो किसीने अलादीनका चिराग रगड़कर यह सब पैदा किया हो, और फिर चिराग रगड़कर गायब कर दिया हो।

वैसे तो हर जातिमें सभी तरहके लोग होते हैं, और बर्मियोंमें भी सभी तरहके लोग मिल जायँगे; लेकिन आमतौरसे बर्मी चिन्ताहीन, शौकीन-मिजाज, आराम-पसन्द और विलासप्रिय होते हैं। उनमें दूरदर्शिता और गम्भीरताकी कमी और लड़कपनकी ज्यादती विशेष दीख पड़ती है। जिस चीजपर आज मन चल आया उसे खरीद लिया, चाहे कल भूखा ही रहना पड़े। उनके जीवनकी फिलासफी है :—

'चख डाल माल-धनको;
कौड़ी न रख कफनको;
जिसने दिया है तनको;
देगा वही कफनको ।'

आज तमाशा देखनेकी तबीयत हुई, तो फौरन तमाशा देखने जा पहुँचे। इस बात की परवा नहीं कि तमाशा देखनेमें पैसा खर्च हो जानेसे कल खायेंगे क्या। कल जब खानेके लिए कुछ न रहा, तो लुंगी, अँगूठी या घरकी कोई और चीज गिरवी रखकर भोजनका काम चलाया। इसीलिए बर्मामें शौकीनीकी खूबसूरत और फैंसी चीजोंकी खपत खूब है। सिनेमा और तमाशे भी खूब चलते हैं। जब मैं रंगून पहुँचा था, तब बौद्धोंका चतुर्मास था। चतुर्मासमें बर्मियोंके नाच-तमाशे प्रायः बन्द रहते हैं। बर्माका 'पोये' नृत्य बहुत मशहूर है। उसे देखनेके लिए एक दिन बर्मी सिनेमा पहुँचा। सिनेमाका एक 'शो' बारह बजे दिनसे शुरू होकर छै बजे शामतक चलता रहा। एक रुपयेवाली सीटें तो खाली थीं, पर चवन्नी-अठन्नीवाली खचाखच भरी थीं। फिल्म मूक था। बर्मी टाकी अभीतक एक या दो ही तैयार हुए हैं। आगेकी ओर गायक-वादकोंका आरचेस्ट्रा था। बर्मियोंके वाद्य-यन्त्र शकल-सूरत में भारतीय वाद्य-यन्त्रोंसे मिलते-जुलते हैं।

पूरे छै घंटे तस्वीरके साथ-साथ गाना-बजाना भी चलता रहा। तस्वीरके महत्त्व-पूर्ण स्थलोंपर पात्रोंके कथनोपकथनको भी यह गायक बोलते जाते थे और इस प्रकार मूक

फिल्मको टाकी बनानेका प्रयत्न करते थे । 'पोये' नृत्य जरूर एक कलापूर्ण चीज है । नर्तकियों का अंग-संचालन और भाव-भंगी अपने ही ढंगकी होती है । बाकी रहा फिल्मका कथानक, सो उसमें वही मार-पीट, दौड़ा-दौड़, उचक-फाँद आदिके सिवा कलाकी कोई बात नहीं थी ।

रंगून जाकर मेरे लिए यह असम्भव था कि बहादुरशाहकी कब्रकी जियारत न करता । थियेटर रोडपर एक छोटे घेरेमें दिल्लीके इस आखिरी ताजदारकी कब्र है । बादशाहकी कब्रकी बगलमें बेगम जीनतमहलकी और पैताने उनकी पोतीकी कब्रें हैं । आजकल कब्रके ऊपर टीन छा दी गई है । पर चारों तरफ दीवारके बजाय लोहेकी जाली और चटाइयाँ लगी हैं । इन दीवारोंपर दो-चार पैसोंमें बिकनेवाली कुरानशरीफकी छपी हुई आयतें फ्रेममें जड़ी लटकी हैं, और एक टीनके साइनबोर्डपर उर्दूमें बहादुरशाह जफरका नाम लिखा है । कब्रपर बहुत सस्ती, हरे रंगकी सूती चादर पड़ी थी, चादरके ऊपर दो जंग लगी तलवारें रखी थीं । मुजाविरने कहा कि बादशाहकी तलवारें हैं । मगर जब मैंने कहा कि ये तलवारें बादशाहकी नहीं हो सकतीं क्योंकि ये एकदम सीधी-अंग्रेजी ढंगकी—हैं, देशी तलवारें टेढ़ी होती हैं; तब वह मान गया और बोला—'आपका कहना ठीक है । ये तलवारें तो इधर-उधरसे लाकर लोगोंको दिखानेके लिए रख दी हैं । शाही तलवारका पता अब कहाँ ।'

कब्रके चारों तरफ दीनता, उदासी और बेबसी बरस रही थी । अब तो इतनी भी गनीमत है कि कब्रपर टीन छा दी गई है, वरना कहते हैं कि बरसोंतक इसपर बगलके बंगलेमें रहनेवाले अंग्रेजके अस्तबलकी लीद और कूड़ा पड़ता था । जिसके पुरखोंके चरण-चुम्बनके लिए इंगलैण्डके बादशाहका प्रतिनिधि लालायित रहता था, जिसके पुरखे ताज-महल-जैसे भव्य मकबरेमें सोते हैं, उसकी कब्रकी यह दुर्दशा देखकर शायद प्रकृतिको तरस आया और उसने कब्रके सिरहाने बेरीका एक पेड़ उगा दिया । वह पेड़ अबतक मुगल-वैभवके इस आखिरी मजारपर अपने काँटोंकी छाया किये हुए है । बहादुरशाहका यह शेर उसकी कब्रपर एकदम ठीक उतरा :—

"पसे-मर्ग मेरे मजारपर जो दिया किसीने जला दिया,
उसे आह ! दामने-बादने सरेशाम ही से बुझा दिया ।"

अब तो कब्रपर संगमरमरकी पटिया जड़ दी गई हैं, और रंगूनके मुसलमान उसपर पक्की इमारत बनानेकी कोशिश भी कर रहे हैं, मगर पहले तो कच्ची मिट्टीका दामन ही मुगलोंका ताज पहननेवाले मस्तकको ढककर बहादुरशाहकी इस उक्तिको चरितार्थ करता था :—

"मरेपै दामने-सहराने पर्दापोशी की,
बहरना आये थे लिपटे हुए कफनसे चले ।"

यह मकबरा जमानेकी गर्दिशका एक नमूना है । यह समाधि बहादुरशाहकी समाधि ही नहीं, बल्कि यह मुगलोंके वैभवकी, अकबर और शाहजहाँके गौरवकी और दिल्लीके

लाल किलेकी शान-शौकतकी समाधि भी है। इसे देखकर दिमागमें विचारोंका एक तूफान उठने लगा। भारी हृदयसे कब्रके बाहर निकला। वायुके झोकोंसे कब्रके ऊपर छाई हुई बेरी की काँटेदार डालियाँ सुरसुरा रही थीं; जान पड़ता था, मानो कह रही हों :—

"जिनके जलवे न समा सकते थे ईवानोंमें,
उनकी खाक आज उड़ी फिरती है वीरानोंमें।"

—

: १४ :

स्वर्गीय राखालदास बनर्जी

तीन-चार वर्ष पूर्व एक दिन प्रातःकाल चारपाईसे उठकर सभ्य संसारने यह समाचार सुना कि भारतवर्षके सिन्धु प्रदेशमें महेन-जो-दड़ो नामक स्थानमें पूर्व ऐतिहासिक सभ्यताके चिह्न मिले हैं। यूरोपियन विद्वान् अवतक भारतीय सभ्यताकी प्राचीनताकी सीमा ईसाके जन्मसे कुछ शताब्दी पूर्वतक ही निर्धारित करते थे। उनके अनुसार महाभारत, रामायण, ब्राह्मण और वेदों आदिका प्राचीनतम काल ईसासे दो-चार सौ वर्ष पूर्वका ही है, साथ ही भारतीय सभ्यता भारतकी उपज नहीं है वल्कि वह मध्य एशियासे चलकर यहाँ आयी है। परन्तु महेन-जो-दड़ोके आविष्कारने यह प्रमाणित कर दिया कि यहाँ की सभ्यता—पाश्चात्य विद्वानोंके अनुसार ही——कम-से-कम ईसासे तीन हजार वर्ष पूर्वकी है। वह कहींसे चलकर नहीं आयी, वल्कि यहीं उत्पन्न हुई है। इतना ही नहीं, महेन-जो-दड़ोमें इस वातका आभास भी मिला है कि फारसके प्रसिद्ध प्राचीन नगर सूसा और मोसेपोटामियाके परम प्राचीन नगर 'किश'की सभ्यता भी सिन्धु तटसे ही चलकर उन सुदूर स्थानोंमें पहुँची है। उन दोनों स्थानोंकी सभ्यताका उद्‌गम स्थान भारतवर्षका सिन्धु प्रदेश है।

इस सुप्राचीन सभ्यताको विस्मृतिके अंधकारमय गर्भसे निकालकर संसारके सामने प्रकट करनेवाले थे, सुप्रसिद्ध पुरातत्व-वेत्ता स्वर्गीय राखालदास वनर्जी। महेन-जो-दड़ो-के पास हरप्पाके भग्न स्तूपोंका पता पुरातत्व-वेत्ताओंको पहले लग चुका था, परन्तु महेन-जो-दड़ोका पता लगाकर, वहाँ खुदाई करके, इतिहाससे पूर्व, ताम्र और प्रस्तर युगकी इस प्राचीन सभ्यताको एकाएक संसारके सामने प्रकट करनेका श्रेय राखाल वाबू को ही है।

राखाल वाबू एक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। उनका ऐतिहासिक और पुरातत्व-सम्बन्धी ज्ञान असाधारण था। श्री काशीप्रसाद जायसवालके कथनानुसार राखाल वाबूके समान प्राचीन भारतीय मुद्राओंका जाननेवाला कोई दूसरा व्यक्ति भारतवर्षमें नहीं है। उन्होंने अपने छियालीस वर्षके छोटे-से जीवनमें इतिहासकी खोजके सम्वन्धमें, जितना कार्य किया है; उसे देखकर चकित हो जाना पड़ता है।

राखाल वाबूका जन्म बंगालके एक विद्वान् ब्राह्मण-कुलमें हुआ था। उन्हें अपने ब्राह्म-णत्वका अभिमान था——इस वातका अभिमान नहीं कि वे जातिके ब्राह्मण थे, बल्कि इस वातका अभिमान कि पुश्तहापुश्तसे उनके वंशमें विद्वान् होते आये हैं, उनके पिता, पितामह आदि सब अपने पाण्डित्यकी ही कमाई खाते रहे हैं।

राखाल वाबूने कलकत्तेके प्रसिद्ध प्रेसीडेन्सी कालेजसे बी. ए. पास किया था। कालेजमें

पढ़ते समय सुप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री उनके संस्कृतके अध्यापक थे। शास्त्रीजीके उपदेशसे राखाल बाबूके मनमें पुरातत्व और भारतवर्षके प्राचीन इतिहासके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। इसी अनुरागने विकसित होकर भारतके तिमिराच्छादित अतीतको प्रकाशमय बना दिया।

बी० ए० पास करनेके बाद राखाल बाबूने कलकत्ता म्यूजियममें साधारण क्लर्की कर ली। उस समय डॉक्टर थियोडर ब्लेक कलकत्ता म्यूजियमके पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष थे। राखाल बाबूका उनसे परिचय हो गया और उन्हींसे उन्होंने पुरातत्वकी खोज-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त की। वे स्वयं कहा करते थे कि अपनी पुरातत्व-सम्बन्धी-शिक्षाके लिए वे डाक्टर ब्लेक और श्री हरप्रसाद शास्त्रीके ऋणी हैं।

एम० ए० की परीक्षाको केवल दो मास बाकी थे कि एक दिन राखाल बाबूने अपने एक मित्र श्री चारुचन्द्र मित्रके पास पहुँचकर कहा—"दादा, मैंने निश्चय किया है कि इतिहासमें एम०ए०की परीक्षा न देकर संस्कृतमें दूँगा।" चारु बाबूने समझाया कि पागलपन मत करो, समय बिलकुल नहीं है। अन्य मित्रोंने भी मना किया, मगर वे न माने। सन् १९१० में संस्कृतमें एम० ए० की परीक्षामें सम्मिलित हुए और द्वितीय श्रेणीमें प्रथम स्थान प्राप्तकर पास हो गये।

म्यूजियममें छः वर्षतक डॉक्टर ब्लेककी देख-रेखमें नौकरी करनेके बाद वे पुरातत्व विभागके सहकारी सुपरिण्टेण्डेण्ट हो गये। एम० ए० की परीक्षाके कुछ दिन पूर्व वे बम्बई प्रदेशके पुरातत्व विभागके इंचार्ज हो गये। सन् १९१०में उन्होंने विश्वविद्यालयसे 'जुबली रिसर्च स्कालरशिप' प्राप्त किया। इसी समय उन्होंने पूनाके शान और यारावादा क़िलोंकी खोज करके एक विस्मृत युगके इतिहासपर नया प्रकाश डाला। पूनामें रहते समय राखाल बाबूके सबसे बड़े लड़केका देहान्त हो गया। इस घटनासे उन्हें बड़ा धक्का लगा। बस तमीसे उनके स्वास्थ्यमें घुन लग गया।

नौकरी छोड़नेके बाद उन्होंने कुछ दिनतक अंग्रेजी दैनिक 'बसुमती' के सम्पादकीय विभागमें भी कार्य किया। परन्तु थोड़े ही दिनमें उसे छोड़कर वे बनारस चले गये और हिन्दू विश्वविद्यालयमें इतिहासका अध्यापन करने लगे। गत ज्येष्ठ मासमें बहुमूत्र रोगसे उनका देहान्त हो गया।

राखाल बाबूने ऐतिहासिक विषयोंपर बँगला, अंग्रेजी और हिन्दीमें अनेकों पुस्तकें और अगणित निबन्ध लिखे हैं। उन्होंने सबसे पहले 'पाषाणेर कथा' लिखकर इतिहासको सहज, सरल और सर्वसाधारणके समझने योग्य भाषामें एक बिलकुल ही नवीन रूप दिया था। उनके लिखे हुए 'करुणा' और 'शशांक' नामक उपन्यासोंको पढ़ते समय पाठकोंको यही जान पड़ता है कि वे अबसे दो सहस्र वर्ष पहलेकी भारतीय हिन्दू सभ्यतामें विचरण कर रहे हैं। उनके उपन्यासोंमें केवल तत्कालीन रीति-नीति, आचार-विचार और समाजका सजीव चित्रण ही नहीं होता, बल्कि इतिहासकी मर्यादा भी अक्षुण्ण रहती है—वे सत्यके पथसे विचलित नहीं होते। उनकी 'करुणा', 'शशांक' और 'मयख' नामक तीन पुस्तकें हिन्दीमें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

कलकत्तेके बंगाली नाटकोंमें दृश्य-पट, साज-सामान और पोशाक आदिमें विषमता देखकर राखाल वावूको वुरा मालूम हुआ। इसलिए उन्होंने 'स्टार थियेटर' और 'नाट्य मन्दिर'के कई ऐतिहासिक नाटकोंके प्रवन्धमें स्वयं भाग लिया। उन्होंने काल, पात्र और स्थान आदिके अनुसार दृश्य-पट, पोशाकें और साज-सामान तैयार कराया। यही नहीं, वरन् उन्होंने उस समयकी मिली हुई ऐतिहासिक वस्तुओंको भी स्टेजपर संग्रह करके, उस प्राचीन समयका सजीव चित्र उपस्थित कर दिया।

राखाल वावूने समालोचनापर भी कई निवन्ध लिखे हैं।

राखाल वावूकी अमर कीर्ति महेन-जो-दड़ोकी सभ्यताका आविष्कार है। इस आविष्कारसे उन्होंने संसारके प्राचीन इतिहासका एक विलकुल नया ही पृष्ठ खोल दिया है जिसे पुरातत्ववेत्ता-गण वर्षोंतक मनन करते रहेंगे।

राखाल वावू वड़े सत्यनिष्ठ थे। इतिहासके सम्वन्धमें जवतक कोई वात प्रमाणों द्वारा सिद्ध न हो जाय, तवतक वे उसे कभी स्वीकार न करते थे। प्रचलित कथाओंपर वे आसानीसे विश्वास न करते थे। ऐतिहासिक व्यक्तियों, वंशों और राज्योंके गुण और दोषोंकी वे एक-सी विवेचना करते थे। इतिहास संकलनमें किसी जाति या व्यक्तिकी सुकीर्ति और अपकीर्तिका विचार न करके वे सदा सत्य और न्यायसे काम लेते थे।

उनमें विश्लेषण-शक्ति वड़ी तीक्ष्ण थी। वे सत्य और असत्यका निर्णय भी वहुत उचित करते थे।

वे प्रायः दो वर्षसे कहा करते थे कि—"मैं अधिक दिन न जिऊँगा। न मालूम किस दिन इस संसारसे कूच कर दूँ।" हुआ भी वैसा ही। वीमारीके कारण इधर वे स्वयं अपने हाथसे कुछ न लिखते थे। वे कहते थे, "यदि कोई लिखनेवाला हो तो मैं न मालूम कितना इतिहास लिखा सकता हूँ।" इन पंक्तियोंके लेखकने भी उनके समीप बैठकर 'विशाल-भारत'के लिए दो लेख लिखे थे। वे वड़े मजेमें हिन्दी वोल लेते थे। सर्वसाधारणके लिए भाषाको सुगम करनेके लिए, वे हिन्दीमें फारसी और उर्दू शब्दोंका भी समावेश करते जाते थे। उनके समीप लेख लिखते समय ऐसा मालूम होता था, मानों मैं इतिहास-ज्ञानके अगाध समुद्रके तटपर बैठा हूँ। इतिहासकी खोजमें उन्होंने वड़ी लम्वी-लम्वी यात्राएँ की थीं, इसलिए उनका सांसारिक अनुभव भी बहुत विस्तृत था।

कुछ लोग कहते हैं कि प्रकाण्ड विद्वत्ता और मनहूसीका चोली दामनका साथ है। गम्भीर विद्वान् प्रायः मुहर्रमी सूरत-शक्लके होते हैं। निरन्तर चिन्तन, मनन और अध्ययनसे उनके हृदयका सम्पूर्ण सरस अंश सूख जाता है। परन्तु राखाल वावू इस नियमके जीते जागते अपवाद थे। उनके प्रकाण्ड गम्भीर ज्ञानके साथ उनकी उल्लासमयी प्रकृतिसे हास्य और आनन्दका अविराम स्रोत वहता रहता था। तिल-तिल करके मृत्यु सामने आती दिखाई पड़ती है, परन्तु राखाल बाबूको उसकी कणमात्र भी चिन्ता नहीं, किंचित् मात्र भी भय नहीं। वे वैसे ही हँसमुख, प्रसन्न और आनन्दित दिखाई पड़ते थे जैसे किसी आनन्दोत्सव-

में हों। जिन लोगोंने राखाल बाबूको नहीं देखा वे उनके सरस स्वभावका अनुमान मुश्किलसे कर सकेंगे।

खेद है कि आज सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ राखाल बाबूकी वह सजीव मूर्ति इस संसारसे विदा हो गयी। आज उनके जीवनका भी इतिहास लिखा जाने लगा। जो हो, भारतके विस्मृत अतीतको हमें पुनः याद दिलानेके लिए उनका नाम सदा अमर रहेगा।

: १५ :

वर्तमान समाचारपत्रोंका निर्माण

अखवार बेचनेवालेने जोरसे चिल्लाकर कहा—"महात्मा गान्धी गिरफ्तार ! आधी रातको पुलिसका हमला ! ! " उसकी आवाज सुनते ही भीड़में विजलीकी भाँति सनसनी फैल गई। सैकड़ों आदमी अखवार विक्रेताके ऊपर टूट पड़े और देखते-देखते उसकी समस्त प्रतियाँ बिक गईं।

अखबारमें महात्माजीकी गिरफ्तारीका समाचार था, और वे किस प्रकार गिरफ्तार करके कहाँ पहुँचाये गये, इसका पूरा विवरण था। इसके साथ ही उनकी तसवीर, उनका संक्षिप्त जीवन-चरित, इससे पहले उनकी गिरफ्तारियाँ और सजाएँ, उनकी और ईसा मसीहकी गिरफ्तारीमें समता, उनकी गिरफ्तारीपर देशके प्रधान नेताओंकी सम्मति, सरकारके इस कार्यपर अन्य समाचारपत्रोंकी सम्पादकीय आलोचनाएँ, इस घटनासे भिन्न-भिन्न स्थानोंमें होनेवाली हड़तालोंका समाचार, और गान्धीजीके नमक-कर-विरोधी आन्दोलन तथा अमेरिकाके सन् १७६६ के चाय-कर-विरोधी आन्दोलनकी तुलना आदि बातें समाचारपत्रमें दी हुई थीं।

पाठक महाशय ! आपने एक आना पैसा खर्च करके इतनी सब बातें तथा इसके साथ ही अन्य पचासों समाचार—जैसे मामले-मुकदमे, खेल-कूद, बाजार-भाव, विलायती खबरें आदि—जान लिये, मगर क्या कभी आपने इस पर भी विचार किया है कि आपका यह एक आनेवाला अखवार कैसे तैयार होता है ? उसे कौन लिखता है ? उसमें कितने आदमियोंका हाथ है ? आपको इतनी खबरें पहुँचानेके लिए क्या-क्या कार्रवाइयाँ की गई हैं ? आपके इस एक आने पैसेका हिस्सा किस-किसके घर पहुँचा है ? क्या आपने कभी यह सोचा है कि आपके चार पैसेके अखवारको लिखनेके लिए संसारके लगभग प्रत्येक देशके सैकड़ों पत्रकारोंने थोड़ा-बहुत परिश्रम किया है ? हम लोग समाचारपत्रोंसे ऐसे परिचित हो गये हैं कि हमें कभी इसका ध्यान ही नहीं आता कि इस एक तख्ते कागजके पीछे कितने मनुष्य और कितना बड़ा संगठन काम कर रहा है। अच्छा आइये, एक बार जरा झाँककर देखिये कि दैनिक समाचारपत्र कैसे तैयार होते हैं।

'फ्री-प्रेस' ने एकाएक महात्माजीकी गिरफ्तारीका समाचार तार द्वारा दिया। बस, यह खबर पाते ही समाचारपत्रके कार्यालयमें धूम-सी मच गई। उसके तमाम कल-पुर्जे—कार्यकर्तागण—काममें लग गये। उसका निजी प्रतिनिधि महात्माजीके साथ था, उसे फौरन ही पूरा विवरण भेजनेके लिए तार दिया गया। महात्माजीकी नई-से-नई तसवीर मँगाकर उसी दम उसका ब्लाक तैयार कराया गया। पत्रके प्रतिनिधि स्थानीय बड़े-बड़े

नेताओंसे 'इंटरव्यू' (वातचीत) करके उनकी सम्मति जाननेके लिए दौड़ पड़े। महात्माजीके जीवन-चरितसे उनकी संक्षिप्त जीवनी लिखी गई। समाचारपत्रोंकी पुरानी फाइलोंसे ढूंढ़कर उनकी पूर्व गिरफ्तारियोंका हाल निकाला गया। उनकी गिरफ्तारी तथा अन्य किसी महापुरुषकी गिरफ्तारीमें समता ढूंढ़ी जाने लगी, और यह विचार आनेपर कि प्रभु ईसा मसीह भी इसी प्रकार गिरफ्तार हुए थे, वाइविलके सफे पलटे जाने लगे। उनके नमक-कर-विरोधी आन्दोलन और अमेरिकाके चाय-कर-विरोधी आन्दोलनकी समताका ध्यान आते ही उपसम्पादकगण पुस्तकालयोंको दौड़ गये और अमेरिकन इतिहासकी अनेक जिल्दोंकी छानबीन करके अपने मतलवका मसाला निकाल लाये। फ्री-प्रेसके प्रतिनिधियोंने देश-भरके नेताओंसे मिलकर और इस घटनापर उनकी सम्मतियाँ जानकर तार दिये। 'रूटर' ने विलायती पत्रोंकी सम्मतियोंकी खबर दी। भिन्न-भिन्न स्थानोंके प्रतिनिधियोंने अपने-अपने स्थानोंकी हड़तालोंके समाचार दिये और इस प्रकार दूसरे दिन जव आपने चार पैसे फेंककर अखवार खरीदा, तव आपको उसके दस-वारह कालम इसी घटनाके विवरणसे रँगे हुए मिले, और उसपर तुर्रा यह कि इतनी सव कार्रवाई केवल चन्द घंटोंके भीतर ही हो गई।

हमारे देशके समाचारपत्र अन्य यूरोपियन और अमेरिकन समाचारपत्रोंकी अपेक्षा बहुत अधिक पिछड़े हुए हैं। हमारे तरीके और साधन अवतक बहुत कच्चे और अपूर्ण हैं। यूरोप और अमेरिकामें अखवारोंका पूर्ण विकास हो चुका है। उनके उपायों और तरीकोंके देखनेसे आपको इस वातका कुछ आभास मिल जायगा कि एक दैनिक समाचारपत्र निकालनेमें कितनी मेहनत करनी पड़ती है। यहाँपर एक विलायती पत्रके तैयार करनेका कुछ हाल दिया जाता है।

विलायतके प्रत्येक समाचारपत्रके कार्यालयमें अनेक भाषाएँ जाननेवाले लोग रहते हैं। यूरोपकी तो कोई भी भाषा ऐसी नहीं है, जो विलायती समाचारपत्रके दफ्तरमें न समझी जा सके। इसके अलावा वहाँ अन्य विदेशी भाषाओंके—जैसे अरवी, हिन्दी, चीनी, जापानी आदि के—जाननेवाले भी अक्सर रहते हैं।

खवर चाहे किसी भी भाषामें क्यों न हो, उसे फौरन ग्रहण करके अपनी भाषामें परिवर्तन कर डालना समाचारपत्रके कार्यालयका मुख्य कार्य है। और यह काम चटपट होना चाहिए। अंग्रेजीमें एक कहावत है—'धीमा, परन्तु ठीक' लेकिन समाचारपत्रोंके दफ्तरोंका सिद्धान्त है—'शीघ्र, परन्तु ठीक।'

समाचारपत्रोंका व्यवसाय है खवरें देना, अतः वे इस वातका ख्याल रखा करते हैं कि उनके पत्रमें प्रकाशित होनेके पूर्व उनकी खवरें प्रकट न होने पावें। इसलिए वे अनेक विदेशी भाषाओंका व्यवहार करते हैं। जैसे, किसी पत्रका कोई संवाददाता बर्लिन से समाचार रशियन भाषामें भेजेगा, या एक ही समाचारके दो-तीन टुकड़े करके उन्हें दो-तीन भिन्न-भिन्न भाषाओंमें भेजेगा अथवा अक्सर समाचारपत्रोंके वैदेशिक विभागके सम्पादकगण अपने संवाददाताओंसे पहलेसे गुप्त संकेत निश्चित कर लेते हैं। जैसे, यदि फ्रेंच भाषामें कोई समाचार भेजा जायगा, तो उसके ठीक वही अर्थ होंगे जो उसके शब्दोंसे प्रकट होते

हैं, और यदि वह समाचार अंग्रेजी या इटेलियन भाषामें भेजा जायगा, तो उसके अर्थ एकदम उल्टे होंगे। प्रायः समस्त बड़े दैनिक पत्र समाचारोंको गुप्त रखनेके लिए संकेत बना लेते हैं।

अच्छा, अब यह देखिये कि दैनिक पत्रका संगठन कैसे होता है। उसके मोटे-मोटे दो विभाग होते हैं; एक विभागका काम खबरोंको इकट्ठा करना और दूसरेका एकत्रित की हुई खबरोंको छाँटना और प्रकाशनके लिए तैयार करना है। पहला विभाग दिनमें कार्य करता है और दूसरा रात्रिमें। इन दोनोंको जोड़ने वाला व्यक्ति प्रधान उप-सम्पादक है। नीचेके कोष्ठकसे आपको स्थूल रूपसे संवाद-पत्रके संगठनका आभास मिल जायगा।

प्रधान सम्पादक			
खेल-कूद सम्पादक	वैदेशिक विभाग का सम्पादक	समाचार सम्पादक	प्रबन्ध सम्पादक
खेल-कूद-विभागके रिपोर्टर " " " संवाद	वैदेशिक विभागके रिपोर्टर " " "	रिपोर्टर और विशेष लेखक	विशेष खबरें युद्ध-विभाग की खबरें विशेष रिपोर्टर
प्रधान उप-सम्पादक			
उप-सम्पादकगण	वैदेशिक विभाग के उप-सम्पादकगण	स्वदेशी विभागके उपसम्पादक गण	विशेष उप-सम्पादक अग्रलेख-लेखक
खेल-कूद-विभागके सम्पादक	वैदेशिक विभागके सम्पादक	समाचार सम्पादक	प्रबन्ध सम्पादक

दिनके कार्यकर्ताओं और रातके कार्यकर्ताओंमें अनवरत युद्ध चला करता है। इस झगड़ेका कारण सदा एक ही रहता है। इस कारणको दिनवाले 'हाथ-पैर काटना' कहते हैं, तो रातवाले उसे 'दोहराना और उन्नत करना' कहते हैं। मान लीजिये कि किसी एक घटनाका हाल किसी उत्साही रिपोर्टरने बड़ी मेहनतसे और बड़ी उत्तम भाषामें लिखकर तैयार किया। उसने उसे सुन्दर-से-सुन्दर शब्दोंमें सजाकर साहित्यिक छटासे अलंकृत कर दिया, परन्तु दूसरे दिन जब उसने अखबार खोलकर उस घटनाका वृत्तान्त पढ़ा, तो देखा कि उसकी साहित्यिक छटाका समस्त आवरण काट फेंका गया है, और उसके स्थानमें

केवल उस घटनाका नंगा-बूचा कठोर सत्य ही धर दिया गया है। अब आप उस उत्साही रिपोर्टरके मनकी दशाकी सहज ही कल्पना कर सकते हैं। रात्रिके उप-सम्पादकने यह कहकर कि पाठक खबर जाननेके लिए अखबार पढ़ते हैं, साहित्यिक शब्दाडम्बरके लिए नहीं, उसे काट दिया। अतएव यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं, यदि दिनवाला रिपोर्टर मौका पड़नेपर रात्रिके उप-सम्पादकसे बदला लेनेको तुल जाय।

प्रधान सम्पादक ही अखबारकी जान है। उसीके दिमागसे जो विचार-धाराओंके झरने झरते हैं, वही सैकड़ों पत्रकारोंको चलाते हैं। संभव है कि मुख्य सम्पादककी विचारधारा अन्य कई छोटे-छोटे सोतोंसे मिलकर बनी हो, परन्तु सामान्य रीतिसे वह अपने ही आप उत्पन्न होती है।

प्रधान सम्पादकके—जो अक्सर पत्रका मालिक और प्रबन्धकर्ता भी होता है—बाद दूसरा नम्बर प्रबन्ध सम्पादकका है। वह आफिसके सब व्यक्तियोंके लिए उत्तरदायी होता है, और उसकी मातहतीमें युद्धके संवाददाता, विशेष संवाददाता और अग्रलेख लिखनेवाले होते हैं। अक्सर प्रबन्ध-सम्पादक ही प्रधान सम्पादक होता है। वह आफिसमें सबसे मुख्य व्यक्ति होता है। बाकी तीन सम्पादकोंका काम उनके नामसे ही प्रकट है।

आजकल समाचार-पत्रोंके आफिसमें प्रत्येक पृथक-पृथक विभागका मुख्य व्यक्ति 'सम्पादक' नामसे पुकारा जाता है। कभी-कभी एक विभागमें केवल एक ही व्यक्ति होता है, जो उस विभागका सम्पादक और कर्ता-धर्ता होता है, मगर ऊपर बताई हुई तीन मुख्य शाखाओं—विदेशी, देशी और खेल-कूद—में प्रत्येक सम्पादकके नीचे रिपोर्टरोंका एक विशेष स्टाफ और संवाददाताओंका एक दल रहा करता है। इन्हीं लोगोंके लेखोंको दुरुस्त करनेके लिए उप-सम्पादकोंसे कह दिया जाता है।

लन्दनके प्रधान दैनिकोंके सम्पादकीय विभागमें काम करनेवालोंकी संख्या पचाससे लेकर पचहत्तरतक होती है। संवाददाताओं और संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें रहनेवाले रिपोर्टरों आदिकी संख्या अवश्य ही कई-सौ होती है। मोटे हिसाबसे यह कह सकते हैं कि विलायतका प्रत्येक दैनिक पत्र प्रायः पाँच सौ लेखनियोंकी उत्पत्ति है।

उपरोक्त नक्शेमें सहकारी सम्पादकका नाम छोड़ दिया गया है। परन्तु अक्सर सहकारी सम्पादकोंको भी रखना ही पड़ता है, क्योंकि सम्पादक भी आखिरकार हाड़-माँसका बना है। सम्पादक चाहे बीमार हो, चाहे छुट्टीपर जाय, परन्तु अखबार तो नित्य नियमित ढंगसे निकलेगा ही, अतः ऐसे अवसरोंके लिए सहकारी सम्पादक रखे जाते हैं, जो मौका पड़ते ही उचककर सम्पादकीय आसनपर बैठ जाते हैं। सहकारी सम्पादक को सम्पादकका ही अंग समझना चाहिए, मगर मजेकी बात तो यह है कि यह अंग अपने समूचेसे बड़ा है। बेचारे उकलैदसने लिखा है कि 'सम्पूर्ण वस्तु अपने अंशसे बड़ी होती है'; परन्तु यदि वह पत्रकार होता, तो देखता कि उसकी स्वयंसिद्ध पत्रकार जगत्‌में आकर उलटी हो जाती है।

समाचारोंको एकत्रित करना भी एक पृथक् विज्ञान है। कुछ समाचार तो रोजमर्राके बँधे ढर्रे हैं, जैसे—पुलिस, कोर्ट और अदालतोंकी रिपोर्टें; घुड़दौड़की खबरें; हाकी, टेनिस, फुटबाल तथा अन्य खेलोंके समाचार और राजनीतिक सभाओं, कौन्सिलों आदिकी कार्रवाई।

ये विषय रोजमर्राके हैं, अतः उनमें नवीनता नहीं होती; मगर किसी-किसी चतुर सम्पादकके लिए उनमें भी नवीनताका छींटा दे देना मुश्किल नहीं है।

मगर जब कभी कोई एकदम असाधारण घटना—जिसकी किसीको भी आशा न हो—किसी विचित्र ढंगसे घटती है, तब सम्पादकोंकी योग्यताकी कड़ी परीक्षा होती है।

यह बात एक उदाहरणसे अच्छी तरह समझमें आ सकती है। एक दिन अकस्मात् यह खबर आई कि सर्वियामें बलवा हो गया। उस वक्त अखबारोंके सम्पादकोंके दिमाग विलायतके मन्त्रि-मण्डलके झगड़ोंमें उलझे हुए थे। इसी बीचमें दिनके दस बजे तारने खबर दी कि सर्वियाके राजा-रानी अपने महलमें मार डाले गये हैं, और वहाँ बगावत हो गई है। यूरोपमें बहुत दिनोंसे ऐसी घटना नहीं हुई थी। सचमुच इस घटनाकी तुलना रोमन साम्राज्यके दिनोंकी ही एक घटनासे हो सकती थी। फल यह हुआ कि समाचार पत्रोंके कार्यालयकी तमाम चालू मशीनरी ही उलट-पलट हो गई परन्तु मजेकी बात तो यह है कि आनन-फाननमें वह पुनः एकदम भिन्न मार्गपर पूरी तेजीसे दौड़ने लगी।

इस घटनाका प्रत्येक सम्भव और असम्भव पहलू सोचा जाने लगा। जिस किसी भी व्यक्तिको बालकन-प्रदेशका कुछ भी ज्ञान है, उससे और विशेषकर उन व्यक्तियोंसे जो सर्वियाके सम्बन्धमें कुछ जानते हैं, 'इंटरव्यू' करनेके लिए रिपोर्टर भेजे गये। इस विषयका विशेष ज्ञान रखनेवाले लेखकोंको लेख लिखनेके लिए तार दिये गये। सर्वियाकी राजधानी बलग्रेडको चटपट संवाददाता रवाना किये गये। यूरोपकी भिन्न-भिन्न राजधानियोंमें रहनेवाले संवाददाताओंको तार-द्वारा चेतावनी दी गई कि वे अपने-अपने यहाँकी सरकारोंकी इस विषयकी कार्रवाइयोंपर सतर्कतासे ध्यान रखें।

समस्त यूरोपमें सर्वियाके सिंहासनपर जिन-जिन व्यक्तियोंका हक पहुँचना सम्भव था, उनके नाम और पतेका निश्चित-रूपसे पता लगाया गया, और उनके साथ 'इंटरव्यू' किया गया। अब इस बातपर ध्यान दिया गया कि अंग्रेजोंके यूरोपियन-स्वार्थोंपर बलवेका क्या असर पड़ेगा। इस विषय पर अनेक सुदक्ष व्यक्तियोंकी रायें ली गईं और उनका एक दूसरेसे मिलान किया गया। नतीजा यह हुआ कि दूसरे दिन 'डेली एक्सप्रेस' पत्रके सोलह कालम इस घटनाके वर्णनसे भरे थे। यद्यपि सोलह कालम देखनेमें बहुत मालूम होते हैं, परन्तु असल में केवल दस घण्टेमें इस सम्बन्धमें जितना मसाला एकत्रित किया गया था, सोलह कालम उसके केवल एक-तिहाई मात्र थे।

खबर मालूम होनेके एक घण्टेके भीतर-ही-भीतर 'डेली एक्सप्रेस' आफिससे सैकड़ों तार भेजे गये। राजा और रानीके विशेष चित्र उसी दम तैयार कराये गये और उनकी संक्षिप्त जीवनियाँ लिखी गईं। इतनी सब बातें प्रधान सम्पादक और उसके उप-सम्पादकोंको एक घण्टेसे भी कम समयमें सोचनी और करनी पड़ीं, क्योंकि एक क्षणकी भी देर हो जानेसे दूसरे दिन पत्रमें पूर्ण समाचार नहीं निकल सकते थे।

इस उदाहरणसे यह प्रत्यक्ष हो जायगा कि दैनिक समाचारपत्रोंका संगठन कितना व्यापक और पक्का होता है। क्षण भरके भीतर ही साधारणसे साधारण घटनासे लेकर इतिहासमें उथल-पुथल कर देनेवाली घटनाओंतकमें यह संगठन कैसी योग्यतासे काम कर

सकता है। बड़ी-बड़ी घटनाओंके समाचारोंको पूरा उतारनेपर ही अखबारोंकी सुकीर्ति और नाम होता है।

प्राय: रोज ही लोग प्रधान सम्पादकोंसे पूछा करते हैं—"क्या आपको अपने अखबारके इतने कालम रोज-रोज भरनेमें दिक्कत नहीं होती ?" बेचारे सम्पादकको दिक्कत होती है, और इतनी अधिक होती है, जिसकी परेशानीसे उसके बाल असमय ही में सफेद हो जाते हैं, मगर यह परेशानी समाचारों या मसालेकी कमीसे नहीं होती। उसे परेशानी इस बातसे होती है कि प्रतिदिन उसके पास इतना अधिक मसाला इकट्ठा हो जाता है, जिसके लिए उसके पास जगह नहीं होती।

प्रधान उप-सम्पादक महाशय रद्दीकी टोकरीके बादशाह होते हैं। प्रधान सम्पादक चाहे जैसी स्कीमें बनावें, भिन्न-भिन्न सम्पादकगण चाहें जो हुक्म दें, रिपोर्टर लोग चाहे सोनेकी कलमोंसे लिखें, संवाददातागण चाहे जितनी अधिकसे अधिक सनसनीखेज खबरें दें—परन्तु इनमेंसे कोई भी बात प्रधान उप-सम्पादकको टससे मस नहीं कर सकती। वे जिसे चाहते हैं, टोकरीके हवाले कर देते हैं, जिसे चाहते हैं, अपनी भयावनी नीली पेंसिलसे काट डालते हैं।

जरा देखिये कि उनके पास जगह तो दस कालमकी है, और उनके सामने मेजपर बीस कालम या उससे भी अधिककी 'कापी' पड़ी है। वे जानते हैं कि दूसरे दिन अनेकों रिपोर्टर, संवाददाता और लेखक अपना लेख नदारद पाकर चिल्लायेंगे, भूकेंगे, काटने दौड़ेंगे और डंक मारेंगे, मगर फिर भी वे चुपचाप सख्तीसे काम करते रहते हैं। उन्हें इस बातका विश्वास है कि उनकी योग्यताकी अन्तिम परख उन चीजोंसे होगी, जो उनके पत्रमें छप जायँगी, न कि उन चीजोंसे जो छूट जायँगी। दिन-भरमें जितनी खबरें इकट्ठी की जाती हैं और रातमें जो खबरें आती हैं—वे सब प्रधान उप-सम्पादकके हवाले कर दी जाती हैं। वे अपने अन्य उप-सम्पादकोंके साथ छै बजे शामको ड्यूटीपर आते हैं और रातमें दो या तीन बजेतक—जबतक अखबार प्रेसमें छपने नहीं लगता, तबतक, वे आफिसमें रहते हैं। जब रातके पिछले पहर प्रेसकी मशीनें खड़खड़ाने लगती हैं, तब कहीं प्रधान उप-सम्पादक तथा उनके सहकारियोंकी आत्माको कुछ शान्ति नसीब होती है। जब मशीनें चलने लगीं, तब सम्पादकीय विभागकी हाय-तोबा ठंडी पड़ी, और 'चलो भई, घर चलें' की आवाज सुनाई देने लगी।

बहुतसे लोग कल्पना करते हैं कि पत्रकारका कर्तव्य है 'कापी' उत्पन्न करना। उन्हें यह नहीं ज्ञात है कि पत्रकारका इससे भी महत्त्वपूर्ण काम है 'कापी' को हलाल करना।

एक प्रधान उप-सम्पादकके अतिरिक्त कोई दस-बारह उप-सम्पादक होते हैं, जो देशी खबर, विदेशी समाचार, खेल-कूद, व्यापार, जहाजोंकी आमदरफ्त, सराफा-बाजार आदिके समाचार, विदेशी संवाददाताओंके संवाद इत्यादिको पढ़ते और छाँटते हैं। इन पत्रकारोंमें भिन्न-भिन्न विषयोंके अनुभवी व्यक्ति होते हैं। कभी-कभी तो उन्हें कलम उठानेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती, और कभी-कभी वे दूसरेके लेखोंमें पैरेके पैरे बिठा देते हैं।

प्रधान सम्पादक बिना किसी हिचकिचाहटके समाचारोंका मूल्य निर्धारित करता है।

वह यह निर्णय करता है कि खबरको पूरा एक कालम देना चाहिए या उसे संक्षिप्त करके केवल दस लाइनों में ही दे देना चाहिए। इस निर्णयतक पहुँचनेमें उस बेचारेको समाचारोंकी रिपोर्टोंकी लम्बाई, चौड़ाईसे किसी प्रकारकी सहायता नहीं मिलती। अक्सर ऐसा होता है कि किसी महत्त्वपूर्ण घटनाकी खबर समाचारपत्रके आफिसमें केवल दो-तीन छोटे-छोटे पैराग्राफ ही में पहुँचती है और प्रधान उप-सम्पादकको अन्तिम क्षण उसे फिरसे खूब लम्बा करके लिखना पड़ता है।

दूसरी ओर अक्सर किसी घटनाकी रिपोर्टें दो-दो कालमकी आती है और उसे घटाकर पचास लाइनों या पाँच लाइनोंमें कर देना होता है।

ये बातें बहुधा संवाद देनेवाले आदमियोंकी समझमें नहीं आती हैं। वे अक्सर लिखते हैं—

"समाचारोंको चुननेमें आप किस नीतिसे काम लेते हैं, यह बात अक्लमें नहीं आती। गत सप्ताह हमने एक बहुत ही तुच्छ घटनाका जल्दी-जल्दी लिखा हुआ संवाद भेजा था, उसे आपने समूचेका समूचा छाप दिया। इस सप्ताह हमने एक कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण घटनाका संवाद बहुत सावधानीसे तैयार करके भेजा था, जिसे आपने काट-कूटकर कुल-जमा छः लाइनोंमें प्रकाशित किया है।"

ऐसे संवाददाताओंकी शिकायत अक्षरशः सत्य होती है, परन्तु बात यह है कि दैनिक समाचारपत्रोंमें खबरोंका निजी मूल्य कुछ भी नहीं है। उनका मूल्य अपेक्षाकृत है।

जिस समय पहली तुच्छ घटनाका बुरी तरह लिखा हुआ संवाद आया था, उस समय अखबारोंमें कोई विशेष खबर नहीं आ रही थी। रोजमर्राकी बातोंसे पाठक ऊब उठे थे, इसलिए उस तुच्छ घटनाका संवाद अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान था, और इसीलिए समूचा ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर दिया गया।

दूसरी ओर जब दूसरी महत्त्वपूर्ण घटनाका संवाद आया, उसी समय कोई और भी अधिक महत्त्वपूर्ण घटना घटी थी, जिससे पाठकोंका ध्यान उस ओर लगा था, और इसलिए पत्रका अधिकसे अधिक कलेवर उसी घटनाके विवरणसे भरा था। इसलिए संवाददाताके भेजे हुए समाचारका अपेक्षाकृत मूल्य कम था और उसे कुल छः लाइनें मिलीं।

खबरोंका मूल्य इतनी तेजीसे घटता-बढ़ता है कि शामको कोई खबर या लेख एकदम रद्दी समझकर फेंक दिया गया है, मगर यदि घंटे-दो-घंटेके भीतर उस लेखके विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली किसी घटनाका समाचार आ गया—चाहे वह एक ही लाइनका क्यों न हो—तो वह समूचा लेख ज्यों-का-त्यों प्रकाशित हो जायगा।

इन बातोंसे यह प्रत्यक्ष है कि प्रधान उप-सम्पादकमें कैसे-कैसे गुण होने चाहिएँ। उसमें भला-बुरा पहचाननेकी तीक्ष्ण बुद्धि हो, उसका निर्णय भ्रम-रहित हो, उसमें चटपट काम करनेकी शक्ति हो, साथ ही वह जल्दबाज न हो, उसमें विषयके मतलबकी बात तुरत पकड़ लेनेकी योग्यता हो; मगर ऐसा न हो कि वह अपने जोशमें उसके साथ बह जाय। उसमें जीवित कल्पना-शक्ति होनी चाहिए। इसके अलावा उसमें सबसे बड़ा गुण यह होना चाहिए कि वह वर्तमान घटनाओं और इतिहासका पूर्ण ज्ञाता हो।

खबरें इन्हीं उप-सम्पादकोंके हाथोंसे गुजरकर पत्रोंका कलेवर और चरित्र बनाती हैं। जिस प्रकार एक दक्ष कुम्हार गीली मिट्टीके आकार-हीन लोंदेको चाकपर रख अपने उस्तादी हाथोंके दो-चार हथफेरोंसे जैसा चाहता है वैसा वर्तन वना देता है, ठीक वैसी ही दशा उप-सम्पादकोंकी है।

मान लीजिये कि शामसे कुछ पूर्व कोई दुर्घटना हो गई। अब पत्रके कार्यालयमें उसके समाचार दनादन आने लगे। खबरें इकट्ठी करनेवाली एजेन्सियोंने उसकी खबर दी, विशेष रिपोर्टरोंने रिपोर्ट दी, स्थानीय संवाददाताने संवाद भेजा और प्रत्यक्षदर्शी आदमियोंने उसका हाल बताया। इस प्रकार कोई आधे दर्जन भिन्न-भिन्न उद्‌गमोंसे समाचार आये। यदि ये समाचार ज्योंके त्यों छाप दिये जायँ, तो खबर बहुत लम्बी होनेके साथ-ही-साथ एकदम अर्थहीन बेसिर-पैरकी हो जाय। सुदक्ष उप-सम्पादक इन सबको पढ़कर चटपट एक सिलसिलेवार, आकर्षक कथा बनाकर धर देता है, जिसमें कोई भी महत्त्वपूर्ण बात छूटने नहीं पाती और कोई निरर्थक चीज बढ़ने भी नहीं पाती। साथ ही जो कुछ लिखा जाता है, उसका सही होना भी जरूरी है। उप-सम्पादकोंकी इस मेहनत और योग्यताका पाठकोंको कुछ पता नहीं रहता। पाठकगण उत्कृष्टताका पूरा श्रेय प्रधान सम्पादकोंको ही दे डालते हैं। बेचारे उप-सम्पादकगण अपना खून-पानी एक करके भी अज्ञातके पर्देमें पड़े रहते हैं।

उप-सम्पादकोंके पाससे 'कापी' कम्पोज होनेके लिए चली जाती है, और वहाँसे उसके प्रूफ भिन्न-भिन्न विभागोंके सम्पादकोंके पास होकर प्रबन्ध-सम्पादकके हाथमें जाते हैं। इन लोगोंको उसमें रद्दोबदल करनेका अवसर रहता है।

प्रबन्ध-सम्पादक या प्रधान सम्पादक सब प्रूफोंको पढ़कर देखता है कि कोई अवांछनीय बात या कानूनके पंजेमें फँसानेवाली खबर तो नहीं छप रही है। इस तरहसे वह एक प्रकारसे सम्पूर्ण पत्रके लिए उत्तरदायी हो जाता है।

यह तो ऊपर कहा जा चुका है कि प्रधान उप-सम्पादक महाशय रद्दीकी टोकरीके बादशाह होते हैं, मगर वे सदा टोकरी ही इस्तेमाल नहीं करते, उनके कमरेका पूरा फर्श ही टोकरीका काम देता है। इसी फर्शपर न मालूम कितने लेखकोंके हृदयोद्‌गार (लख्ते जिगर) पड़े रहते हैं, जिन्हें सबेरे झाड़ू-बरदार महाशय अपने अस्त्रसे एकत्रित करके ले जाते हैं।

हाँ, दैनिक पत्रको सबसे अधिक मसाला देनेवाला परिवर्तन-सम्पादक होता है। वह अपने विभागका सिर पैर, शरीर—सब कुछ है। उसका काम परिवर्तनमें आनेवाले तमाम अखबारोंको पढ़ना और उनमेंसे काम लायक मसाला छाँटकर निकालना है। लन्दनके दैनिक पत्रोंके परिवर्तनमें आनेवाले पत्रोंकी संख्या हजारों होती है। अमेरिका और यूरोपके समस्त देश तथा संसारके अन्य भागोंसे प्रत्येक डाकमें गट्ठरों अखबार आते हैं। परिवर्तन सम्पादकको इन सब पत्रोंको पढ़कर उनकी मलाई उतारनी पड़ती है।

प्रबन्ध-सम्पादकके पाससे प्रूफ लौट आनेपर सब मसाला एकत्रित करके 'फार्म' बनाये

जाते हैं, और इन 'फार्मों' से साँचा तैयार करके प्लेट ढाले जाते हैं। यह प्लेट अर्द्ध चन्द्राकार होते हैं, और रोटरी मशीनमें लगा दिये जाते हैं।

लोग पूछते हैं—"क्या यह सम्भव नहीं है कि जब 'फार्म' बनानेके लिए तैयार हों, तब किसी पेजके भरनेमें कुछ मसाला कम पड़ जाय ?" मगर यह असम्भव है।

हमारे हिन्दी-पत्रोंका एक किस्सा मशहूर है कि एक बार पत्रके एक कम्पोजीटरने आकर सम्पादक महाशयसे कहा कि कोई समाचार और दे दीजिये क्योंकि कुछ पंक्तियोंकी जगह खाली रहती है। इसपर सम्पादकजीने लिखकर दे दिया—"कलकत्तेमें भीषण अग्निकाण्ड'। कल रातमें कलकत्तेके चौरंगी मुहल्लेमें बड़े जोरकी आग लगी, जिससे मेसर्स लेडलाकी दूकान, एरिस्ट्रोक्रेटिक थियेटर और कलोनियल मैंसन आदि इमारतें जलकर खाक हो गईं।" जरा देरमें कम्पोजीटरने फिर लौटकर कहा—"थोड़ी-सी और कमी पड़ती है, बस एक-दो लाइन।"

सम्पादक महोदयने कलम उठाकर फिर लिख दिया—"हमने अपना विशेष प्रतिनिधि भेजकर उपर्युक्त घटनाका पूरा पता लगवाया, तो मालूम हुआ कि उपर्युक्त समाचार गलत है।"

मगर विलायती पत्रोंमें यह सब बातें असम्भव हैं। पहले तो भिन्न-भिन्न लम्बाईके अनेक लेख रहते हैं, जो सुविधा अनुसार पृष्ठोंपर रख दिये जाते हैं; दूसरे सम्पादकोंके पास साधारण विषयोंके छोटे-बड़े अनेक लेख 'रिजर्व' में रहते हैं, जो जरूरत पड़नेपर काममें लाये जा सकते हैं; तीसरे समाचारोंके शीर्षक या हेडिंगको सुविधा-अनुसार मोटे या पतले टाइपमें देकर या घटा-बढ़ाकर स्थानके अनुसार 'फिट' कर लिया जाता है। इसके अलावा अखबारमें सबसे बड़ी चीज 'लेड' है। यह लेड पतले शीशे (धातु) के टुकड़े होते हैं, जिन्हें दो पंक्तियोंके बीचमें रखकर उन्हें पृथक् करते हैं। जरूरत पड़नेपर अधिक 'लेड' देकर अथवा 'लेड' निकालकर जगह को घटा-बढ़ा सकते हैं। लोगोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि 'लेड' की बदौलत प्रत्येक 'कालम' में २५ प्रति सैकड़ातककी घटा-बढ़ी हो सकती है।

फार्म तैयार होकर मशीनमें बिठा दिये जाते हैं, और मशीन धड़धड़ाने लगती है। कुछ ही मिनटोंमें छपे हुए, कटे हुए, तह किये हुए अखबारोंकी पचास हजार प्रतियाँ प्रति घंटेके हिसाबसे निकलने लगती हैं। अब कुलियों और गाड़ियोंकी आमद-रफ्त और 'हाकरों' की हड़बड़ाहट शुरू हो जाती है।

समाचारपत्रका आफिस दिन-रातमें किसी समय भी बन्द नहीं होता। अन्तिम उप-सम्पादक पाँच बजे सबेरे आफिस छोड़ता है और नौ बजते-बजते रिपोर्टर लोग आ पहुँचते हैं। इन कतिपय घंटोंमें आफिसमें केवल एक दरवान रहता है, परन्तु उस समय भी टेलीफोनसे उसका सम्बन्ध कम-से-कम आधे दर्जन अधिकारियोंसे बना रहता है।

आजकलकी अखबारी दुनियाके तरीकोंमें कितने महान् परिवर्तन और कितनी उथल-पुथलकारी बात हो गई, इसका पाठकोंको कभी स्वप्नमें भी ध्यान नहीं आता। अबसे सौ वर्ष पूर्व खबरें हरकारों-द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजी जाती थीं।

क्रीमियन-युद्धका समाचार लन्दनमें एक सप्ताहमें जाकर पहुँचा था, परन्तु आजकल तार, टेलीफ़ोन और वेतारके तारसे न्यूयार्ककी ख़बर दो मिनटमें भारत, आस्ट्रेलिया और अफ्रिका पहुँच सकती है। विलायतमें होनेवाली डर्बीकी घुड़दौड़का फल, घुड़दौड़ समाप्त होनेके एक मिनट कुछ सेकेण्डके अन्दर ही कलकत्तेमें मालूम हो गया था। पुराने जमानेके अखबारोंको ले जानेके लिए 'टिकटिक' करनेवाली घोड़ागाड़ियाँ काममें आती थीं, आज-कल हवासे बातें करनेवाली ट्रेनें, मोटरें और हवाई-जहाज कुछ घंटोंमें ही अखबारोंको हफ्तों दूरके स्थानमें पहुँचा देते हैं।

अमेरिकाका एक अखबार 'न्यूज-आफ दी वर्ल्ड' (संसार समाचार) है। वह प्रतिदिन तीस लाख पाठकोंको संसारकी खवरें देता है। सौ वर्षसे भी कम हुए जब उसकी साल भरकी सब प्रतियोंकी संख्या उतनी नहीं होती थी, जितनी आजकल एक सप्ताहकी होती है। पहले हाथसे चलनेवाली मशीन काममें आती थी, आजकल उसे छियासठ वड़ी-वड़ी मशीनें ७२ पृष्ठोंवाले अखवारकी दस लाख प्रतियाँ प्रति घंटेके हिसावसे छापती हैं। अखबारको देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें पहुँचानेके लिए पन्द्रह स्पेशल ट्रेनें दौड़ा करती हैं।

तीस लाख प्रतियोंका क्या अर्थ है, इसका कुछ आभास आपको इस बातसे हो सकेगा कि इन प्रतियोंके लिए कागज वनानेके लिए ७,५०० पेड़ प्रति सप्ताह काटे जाते हैं। साल-भरमें ३,९०,००० पेड़ अकेले इस एक अखवारका कागज वनानेमें वलिदान हो जाते हैं।

यदि एक दिनकी प्रतियोंके सव पृष्ठ लम्वाईमें एक दूसरेसे मिलाकर रख दिये जायँ तो वारह हजार मील लम्बे हों। अथवा यह समझिये कि छपे हुए पत्रोंका एक रास्ता तैयार हो जाय, जो भारतवर्षसे लेकर यूरोप महाद्वीप, अटलांटिक महासागर और समूचे अमेरिका महाप्रदेशको पार करता हुआ सैन्फ्रांसिस्कोतक जा पहुँचेगा। इस सड़कपर २७० मन स्याही पुती रहेगी।

मोटर-वोट, मोटरकार और हवाई-जहाज—इनमेंसे किसीकी भी 'स्पीड' तीन सौ मील प्रति-घंटेसे ज्यादा नहीं है, मगर 'न्यूज आफ दी वर्ल्ड'की मशीनें एक घंटेमें दो हजार मील लम्बा कागज छापकर धर देती हैं। आजकल के आधुनिक समाचारपत्र निःसन्देह महान् आश्चर्यकी वस्तु हैं।

———

: १६ :

अमेरिकाका कलंक

जाति-विद्वेष, धर्म-विद्वेष और वर्ण-विद्वेष मानव-समाजका सामाजिक कुष्ट है। इन विद्वेषोंने वसुन्धराको कितनी वार कितने मनुष्योंके रक्तसे सींचा है, इसकी कोई गिनती नहीं। इन विद्वेषोंने कोमल प्रकृति मनुष्योंसे कितनी अमानुषिकता, कितनी निष्ठुरता, कितना पाप, कितना अत्याचार कराया है, इसका अनुमान करनेसे ही मनुष्य सिहर उठता है।

मध्यकालका रक्तरंजित इतिहास इस वातकी गवाही देता है कि जाति, धर्म और वर्ण-विद्वेषोंने मानवताको किस प्रकार आठ-आठ आँसू रुलाया है। उच्च वर्ण हिन्दुओंने अस्पृश्यों पर जुल्म किये, मुसलमानोंने हिन्दुओं पर गजव ढाये, यहूदियोंने ईसाइयोंको सताया, ईसाइयोंने यहूदियोंको मारा, प्रोटेस्टेन्ट और कैथोलिक सदियों तक एक दूसरेका खून वहाया किये—इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि इतिहास मुख्यतः इन विद्वेषोंके कराये हुए काले कारनामों के संग्रह ही का नाम है; लेकिन एक विशेषताकी वात यह है कि यह विद्वेष प्रायः शासक और वलशाली जातियोंमें ही दिखायी देता है।

बीसवीं शताब्दीमें समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्वके जनतन्त्रवादी तराने सुनकर यूरोपियन लोग मध्ययुगको, उसके अत्याचारोंके कारण, 'अन्धकार युग'के नामसे पुकारने लगे। यह समझा जाने लगा कि उन पुराने अत्याचारोंका जमाना अब लद गया। बीसवीं शताब्दीमें इस तरहकी वातें होना असम्भव है; लेकिन नहीं, इस बीसवीं शताब्दीमें और भगवान् यीसूके १९३३वें वर्षमें भी संसारकी शासक जातियोंमें जाति, धर्म और रंगका विद्वेष मौजूद है, और उग्र रूपमें मौजूद है। अखबार पढ़नेवाले जर्मनीमें हिटलरशाहीके यहूदी-विद्वेषसे परिचित होंगे। दक्षिण-अफ्रीका तथा संयुक्तराज्य अमेरिकाकी कुछ रियासतोंमें काले रंगवालोंके प्रति वहाँके 'गोरे नेटिवों'का विद्वेष इतना बढ़ा हुआ है कि काला ईसाई गोरोंके गिरजेमें जाकर प्रार्थना भी नहीं कर सकता। अगर ईसा मसीह स्वयं आकर दक्षिण-अफ्रीकाके किसी गोरे गिरजेमें घुसना चाहें, तो ईसाई-मतके गोरे ठेकेदार उन्हें धक्का मारकर निकाल देंगे, क्योंकि एशियाई होनेके कारण उनकी गणना भी 'डैम निग्गर' में ही होगी।

परन्तु वर्ण-विद्वेषका विष जितना अधिक अमेरिकामें फैला है, उतना और कहीं नहीं मिलेगा। कालोंके प्रति अमेरिकनोंकी घृणा अमेरिकन जातिका सबसे बड़ा कलंक है। इस वर्ण-विद्वेषसे प्रेरित होकर अमेरिकन जैसी अमानुषिकता और क्रूरता दिखलाते हैं,

उसके सामने चंगेज और हलाकू भी पानी भरते हैं। उनकी इस क्रूरताका एक प्रचलित नमूना नीचे की सच्ची घटनासे मिलेगा।

अबसे चालीस वर्ष पहले यंग डेन्डी नामक एक नौजवान अमेरिकन हब्शीने अपनी ही जातिकी मार्था डकेट नामक एक नवयुवतीसे विवाह किया था। डेन्डी लम्बा-चौड़ा जवान था, और मार्था दुबली-पतली-सी नवयुवती। उन्होंने एक नन्हीं-सी कोठरी भाड़े पर लेकर अपना गृहस्थ-जीवन आरम्भ किया। उस समय उनकी सारी जमा-पूँजी उनके स्वस्थ शरीर, परिश्रमी स्वभाव, खुशदिली और उत्साहमें ही थी। आज वे अपने बनवाये हुए विशाल भवनमें रहते हैं; परन्तु अमेरिकाके गोरोंने अपनी काली करतूतसे उनका उत्साह और प्रसन्नता सदाके लिए नष्ट कर दी है।

जीवनके आरम्भमें उनके भविष्य पर किसी प्रकारकी आशंकाकी छाया न थी। यंग डेन्डी बढ़ई था। वह होशियार, मेहनती और विश्वसनीय था, इसलिए बराबर उसकी माँग रहती थी। वह कभी खाली रहता ही न था। उसकी स्त्री धुलाईका काम करती; अपनी कोठरीको साफ-सुथरा चमाचम रखती और अपने बच्चोंको पालती-पोसती थी। दोनों मेहनत करके कमाते, किफायतसे खर्च करते और अपनी बचतको फायदे के कामोंमें लगाते थे। कुछ दिन बाद वे एक दो-कोठरीवाले घरमें रहने लगे, और जब उनका परिवार और भी बढ़ा, तो उन्होंने अपने लिए एक चार कमरेकी साफ-सुथरी झोपड़ी बना ली।

जब बच्चे कुछ बड़े हुए, तो उन्होंने उन्हें स्कूल भेजना शुरू किया, और इस बातका बराबर ध्यान रखा कि वे दर्जेमें सदा प्रथम आते रहें। डेन्डी-परिवारके बच्चेका दर्जेमें दूसरा स्थान पाना अनहोनी बात थी; लेकिन केवल स्कूल ही काफी न था। स्कूलकी लम्बी छुट्टियोंमें भी तो लड़कोंके लिए कोई काम जरूरी था, इसलिए उन्होंने जमीनका एक छोटा टुकड़ा खरीदा, जिस पर कपास बोई गई, ताकि लड़के परिश्रमका सबक सीख सकें। यहाँ तक कि छोटी बच्ची मैटी भी यह जानती थी कि कपास किस प्रकार चुनना चाहिये, और अपने हिस्सेकी पूरी कपास चुना करती थी।

जब उनके बड़े लड़केने स्कूलकी पढ़ाई समाप्त की, तब मि० डेन्डी ठेकेदारी करने लगे थे। वे विलन्टन नगरमें स्वयं अपने बनाये हुए नक्शोंसे गोरोंके लिए इमारतें बनाया करते थे। उनकी ईमानदारीका नमूना पेश किया जाता था। इधर मार्था भी पीछे न थी। अब वह अच्छे-से-अच्छे धोबियोंको नौकर रखकर अपने धोबीखानेका काम चलाती थी।

लेकिन विलन्टन संयुक्त-राज्य अमेरिकाके दक्षिणी भागमें है, जहाँके गोरोंमें रंग-विद्वेषका विष पूर्ण मात्रामें है। इस स्वतन्त्र प्रजातन्त्रके गोरे कहते हैं—"हम लोग हब्शियोंके सबसे बड़े मित्र हैं। निश्चय ही हब्शी हमारे नौकर-चाकर हैं, और उन्हें अपने स्थान पर ही रहना पड़ेगा।"

डेन्डी-परिवार जैसे-जैसे सम्पत्तिशाली होता गया, वैसे-वैसे गोरोंकी निगाह उसपर अधिकाधिक पड़ती गई; लेकिन डेन्डी और उनके परिवारवाले सदा इस बातको देखते रहते थे कि गोरोंको ठेस लगनेका कोई मौका न आने पावे। बस, केवल उन्होंने एक बातमें

गोरोंकी इच्छा का उल्लंघन जरूर किया था, वह यह थी कि उन्होंने अपने बच्चोंको खूब शिक्षा दी थी। उनका वड़ा लड़का स्कूल तक ही नहीं पढ़ा, बल्कि उसने कालेजमें प्रवेश किया और डॉक्टरी पास की। जब वह डॉक्टर बनकर अमेरिकाके एक उत्तरी नगरमें सफलतासे प्रैक्टिस करने लगा, तव उनके गोरे पड़ोसी भी अनिच्छापूर्वक अपने कस्बेके इस अधिवासीकी सफलताका अभिमान करने लगे। डेन्डीके दूसरे पुत्र रावर्टने न्यूयार्क जाकर काम शुरू किया। उसकी सफलताकी अफवाहें भी क्लिन्टनके गोरोंमें पहुँचीं, और जब वह एक बार अपने घर आया और उसने कस्बेके दूकानदारोंसे बहुत-सा सामान खरीदा, तब उन अफवाहोंकी और भी पुष्टि हो गयी।

डेन्डीकी लड़की वायला भी कस्बेके गोरोंमें बड़ी लोकप्रिय थी। उसने हब्शियोंके स्कूलमें गृह-विज्ञानका क्लास खोला और एक धनी वैंकरको राजी कर उस क्लासके संचालनके लिए पैसेका प्रवन्ध भी कर लिया।

इसी प्रकार डेन्डीकी अन्य तीन सन्तान हाई स्कूलमें अध्यापक हैं। एक लड़का गत महायुद्धमें पंगु हो गया था, जो आजकल फौजी अस्पतालमें है। रह गया सबसे छोटा लड़का नारिस।

नारिसने अपनी माताका उत्साह तो प्राप्त किया था, परन्तु उसकी दूरदर्शिता नहीं पाई थी। उसे अपने पिताकी बुद्धि तो मिली थी, परन्तु सावधानी नहीं। वह बड़ा होशियार था, और हर बातमें गोरे लड़कोंसे भी बढ़ा हुआ था। गोरे लड़के अनिच्छासे उसकी योग्यताको स्वीकार करते थे, लेकिन भीतर ही भीतर द्वेषसे जलकर सुलगते रहते थे।

वे देखते थे कि यह काला लड़का स्कूल जाता है, जब कि उनमेंसे अनेकोंने अपनी इच्छासे या पढ़ाईसे ऊबकर पढ़ना छोड़ दिया था। जब कि गोरे लड़के घर पर ही बने रहते थे, तब यह काला लड़का कालेजमें पढ़ता था। उसने वर्जीनिया यूनियन यूनिवर्सिटीकी पढ़ाई भी समाप्त कर डाली और घर लौट आया।

सन् १९२४ में मिस्टर और मिसेज डेन्डीने यह निश्चय किया कि एक बड़ा आरामदेह मकान बनाया जाय, जिसमें सब वयस्क लड़के एकत्रित होने पर रह सकें। उन्होंने हब्शियोंकी अंधेरी गलियोंमें नहीं, वरन् कस्बेकी बाहरी तरफ, खुली चौड़ी सड़क पर, जहाँ उन्नतिके साधन प्राप्त थे, जमीनका एक टुकड़ा खरीदा। उस स्थानसे एक ही दो मकानोंके बाद गोरोंके मकान थे। डेन्डीने यह जमीन किसी झूठे अभिमानसे पसन्द नहीं की थी, बल्कि सफ़ाई, हवा और रोशनीके कारण खरीदी थी। जब मकानकी दीवारें खड़ी हो गईं और उसका आकार प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा, तब तो वह सारे कस्बेके गोरोंमें बातचीत का मुख्य विषय ही बन गया। कुछ भले आदमियोंने उसे पसन्द किया, लेकिन नीच श्रेणीके गोरोंमें ईर्ष्याकी ज्वाला भभक उठी। एक काला आदमी अपना निजका मकान बनावे, सो भी दोमंजिला और अनेक गोरोंके मकानोंसे अच्छा। उसका इतना दुस्साहस!

एक दिन डेन्डीको एक गुमनाम चिट्ठी मिली, जिसके ऊपर एक खोपड़ी बनी थी, जिसमें लिखा था :—

Skull

you look good
to us.
if you build a house down there, this is
what you get. you better build your house up
where the rest of the dam niggers line.
you getting too dam rich to be a nigger.
that dam manick boy of yours will die
soon.
we are only giving you warning
we want to see any nigger stay in his place.

अर्थात्—"तुम हमें भले मालूम होते हो। यदि तुम वहाँ मकान वनाओगे, तो तुम्हें यह मिलेगा। बेहतर है कि तुम उसी जगह अपना मकान वनाओ, जहाँ कमवख्त हव्शी रहते हैं। तुम कमवख्त हव्शीकी हैसियतसे वहुत ज्यादा मालदार हुए जाते हो। तुम्हारा कम्वख्त मर्द-सा लड़का शीघ्र ही मरेगा।

"हम तुम्हें केवल सावधान करते हैं।

"हम चाहते हैं कि हव्शी अपनी ही जगहमें वने रहें।"

मर्द-से लड़केसे मतलब नारिससे था।

मिस्टर डेन्डी चुपचाप अपना घर वनवाते रहे; मगर अव वे सावधान रहते थे। धीरे-धीरे जनमत भी उनके पक्षमें जान पड़ने लगा और कोई घटना नहीं घटी। लेकिन उसी समयसे नारिस उत्पीड़नकी वस्तु वन गया। कस्वेका प्रवन्ध चोरीसे शराव बेचनेवाले राजनीतिज्ञोंके हाथमें आया, और उन्होंने नारिसको फँसानेकी कोशिश शुरू कर दी। इस स्वावलम्वी, साफ-सुथरे कपड़ेवाले, सुशिक्षित लड़केकी उपस्थिति ही अशिक्षित गोरोंको काटती थी। दो बार उस पर चोरीका माल रखनेके जुर्म पर झूठा मुकदमा चलाया गया, और स्थानीय अदालतने विना सवूतके ही उसे सजा दे दी; लेकिन अपीलमें वह वेदाग छूट गया। उसके मुकदमेंमें जिलेके सवसे अच्छे वकील नियुक्त किये गये थे। एक काला हव्शी जिलेके सवसे अच्छे वकीलको नियुक्त करके गोरेकी अदालतमें मुकदमा जीत जाय, यह स्थिति गोरोंके लिए असह्य हो गयी। वे झींककर कहते—"यह जरूरतसे ज्यादा होशियार हो गया है। इसके वापके पास इतना धन हो गया है, जितना हव्शीके पास न होना चाहिये।" उन्होंने उसे अन्य जुर्मोंमें पकड़ा, परन्तु वह हमेशा अपीलमें छूटता रहा, और उसके हर वार छूटनेसे गोरोंका क्रोध और अधिक वढ़ता गया।

४ जुलाई सन् १९३३ को क्लिन्टनके हव्शियोंने 'मरे' झील पर एक पिकनिक दल संगठित किया। एक लारी भरकर आदमियोंको नारिस ड्राइव करके ले गया और दूसरी लारीको मार्विन लोलिस नामक एक गोरा। तीसरे पहर वहाँ पर इस वातकी वहस छिड़ गयी कि नारिस और उस गोरेमें किसने लारी अच्छी चलाई थी। यह मामूली-सी वहस

शीघ्र ही गरमागरम हो उठी। परिणाम यह हुआ कि गोरा वाही-तवाही बकने लगा, जिसके उत्तरमें नारिसने उसके मुँह पर दो हाथ जड़ दिये।

आगेकी कहानी बहुत संक्षिप्त है। गोरोंको इतने दिनोंसे जिसका इन्तजार था, वह बहाना मिल गया। नगरको लौटते हुए रास्तेमें पुलिसने नारिसको गिरफ्तार कर लिया और ले जाकर थानेकी हाजतमें वन्द कर दिया। उसकी नवयुवती पत्नी और माता उससे मिलनेके लिए आईं, पर उसे जमानत पर छुड़ा न सकीं। अब थानेके पास भीड़ जुड़नी शुरू हुई। नौ वजते-वजते समूचा थाना भर गया। वाहर मोटरोंकी कतारें लग गईं। इतनेमें रस्सा लेकर एक मनुष्य आया। यही संकेत था। इस संकेतके मिलते ही किसीने हाजतका ताला खोल दिया और अब संघर्ष शुरू हुआ। नारिस शक्तिशाली जवान था और बुजदिल भी न था; लेकिन अन्तमें उसे बेकावू करके उसकी मुश्कें कस दी गईं। उसकी माँ छोटे बच्चेको गोदमें लिए वाहर खड़ी चिरौरी-विनती कर रही थी; लेकिन उसकी चिरौरी-विनती व्यर्थ गई, और नारिसको मोटरमें पटक कर वे लोग चलते बने। उसकी माँको भी किसीने मारकर गिरा दिया। उसके वाद उसे सिर्फ इतना ही स्मरण है कि मोटरोंकी कतार उस नारिसवाली मोटरके पीछे जा रही थी।

दूसरे दिन 'सरकारी तौर पर' नारिसकी लाश कस्वेसे कुछ मील पर पायी गयी। पहले उसका गला घोंटकर उसे अधमरा किया गया था, वादमें पीट-पीटकर उसकी जान निकाली गयी थी।

इस प्रकार गोरा अमेरिका वर्ण-विद्वेषके वशीभूत प्रतिवर्ष अनेक निरपराध हब्शियोंकी हत्या किया करता है। अधिकाँशको वह जिन्दा जला-जलाकर मारा करता है। गोरी महिलाएँ भी, जो जरा-जरा सी वात पर बेहोश हो जानेके नखरे किया करती हैं, इस अमानुषिक कृत्यमें शामिल होती हैं, और उसमें राक्षसी उल्लास और प्रसन्नता प्रकट करती हैं। अमेरिकाकी सरकार गोरोंके हाथमें है। गोरे अधिकारी इन राक्षसी कृत्योंके करनेवालोंको विना दण्ड दिये ही छोड़ देते हैं, बल्कि वे अप्रत्यक्ष रूपसे इन बदमाशोंको उकसाते और सहायता पहुँचाते हैं।

एक सौ सत्तावन वर्षके वाद अमेरिकाके मौजूदा प्रेसिडेण्टने पहले-पहल प्रेसिडेण्टके पदसे यह फरमाया है कि 'इस प्रकारके कृत्य सामूहिक हत्याके सबसे कुत्सित रूप हैं।' लेकिन उनकी यह जबानी भर्त्सना गोरे दानवोंके नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज ही जान पड़ती है।[१]

---

१. इस लेखमें वर्णित घटना 'Crisis' नामक पत्रिकासे ली गयी है।

: १७ :

खुदाईका मास्टरपीस

जब आदम और हव्वाने अदन बगीचेमें खुदाके मना किये हुए फलको चुराकर खाया, तो खुदाको बड़ा गुस्सा आया, और उसने हुक्म-उदूलीके जुर्मपर इन दोनों गुनहगारोंको जमीनपर ढकेल दिया। आदम और हव्वाको जमीनपर गिरनेका बड़ा रंज हुआ। कहाँ बहिश्तका अलौकिक सुख और सौन्दर्य और कहाँ इस दुनियाकी सूखी धरती ! अपने पुराने दिनोंकी याद करके दोनों जार-जार रोते और पछताते थे।

उनका रोना और पछताना देखकर खुदाको भी उन पर तरस आया; पर अपने पुराने हुक्मको रद्द करके आदम और हव्वाको फिर बहिश्तमें दाखिल करना खुदाई शानके खिलाफ था, इसलिए खुदाने इसी जमीनपर ही उन दोनोंके आरामके सामान बनाये। उसने पौधोंमें फूल उगाये; पेड़ोंमें फल और मेवे लगाये; खेतोंमें सुनहरा नाज पैदा किया और मोती-से पानीकी नदियाँ बहाईं। उसने उजालेके लिए सूरज बनाया; आरामके लिए रात बनाई; और आसमानके शामियानेमें चाँद और तारोंकी कन्दीलें लटका दीं। लेकिन इन चीजोंके होने पर भी आदम और हव्वाके जीवनमें एक भयंकर एकरसता थी। उसमें विचित्रता न थी, रंगीनी न थी। उनके जीवनमें विभिन्नता और रंगीनी लानेके लिए खुदाने एक-एक करके नौ रसोंकी सृष्टि की।

आदम और हव्वाको अब अपने इसी जीवनपर सन्तोष करना पड़ा, और वे किसी तरह अपने दिन काटने लगे। वे दोनों रोज नियमसे खुदाको याद करते और उसकी इबादत करते थे। जिन्दगी-भर इबादत करनेपर खुदा उनपर बहुत खुश हुआ, और बोला—"माँगों, क्या माँगते हो ?"

आदमने कुछ कहनेके लिए जबान खोली ही थी, तबतक उसे रोककर हव्वा बोली—"ऐ खुदा, तूने हमारे आरामके लिए तरह-तरहकी चीजें बनाईं, हमारी दिलचस्पीके लिए नौ रस पैदा किये हैं, जिसके लिए हम तेरे शुक्रगुजार हैं। मगर मैं तेरी खुदाईका करिश्मा देखना चाहती हूँ। तू कोई ऐसी चीज बना, जो तेरी सारी खलकतसे निराली हो; जिसमें नवों रसोंका मेल हो; जिसे देखकर खुशी हो; जिसे देखकर रंज हो; जिसे देखकर हँसी आये; जिसे देखकर रूलाई आये; जिससे मुहब्बत पैदा हो; जिससे नफरत पैदा हो; जिसमें वीरता हो; जिसमें कायरता हो। गरज यह कि वह दुनियाकी सारी चीजोंमें अजीबो-गरीब हो।"

खुदाने जवाब दिया—"तूने ऐसी चीज माँगी है, जिसका बनाना मेरी खुदाईके लिए भी मुश्किल है, इसलिए कोई दूसरी चीज माँग।"

हव्वा बोली—"ऐं खुदा, तूने चाँद-सूरज बनाये हैं, इसलिए ऐसी चीज बनाना तेरे लिए नामुमकिन नहीं है।"

खुदाने कहा—"तुम दोनोंकी उम्र खात्मेके नजदीक है। अगर मैं ऐसी चीज बनाऊँ भी, तो उसे बनानेमें इतने दिन लगेंगे कि तुम लोग उसका लुत्फ न उठा सकोगे, इसलिए कुछ और माँगो।"

आदमने भी हव्वाको समझाया, पर उसने न माना। वह हठी तो थी ही, उसीके हठपर आदमने बहिश्तमें वर्जित फल खाया था, भला इस वक्त अपना हठ कैसे छोड़ देती। तभी तो 'तिरिया-हठ' दुनियामें मशहूर है। उसने कहा—"कुछ परवा नहीं, अगर हम दोनों उसका मजा न उठा सकेंगे, तो हमारी औलाद तो उसका मजा चख सकेगी। मैं इसीमें सन्तुष्ट हूँ, भविष्यमें मेरी औलादको खुदाका सबसे बड़ा करिश्मा—खुदाईका सबसे अनोखा मास्टरपीस—तो देखनेको मिलेगा।"

खुदाने कहा—"अच्छा, मैं ऐसी चीज बना दूँगा, चाहे उसके बनाने में कितना ही समय क्यों न लगे।"

अब खुदा सोचमें पड़ गया कि वह कौन-सी ऐसी चीज बनावे, जिसमें हव्वाकी सारी बातें मिल सकें। वह सोचता रहा, सोचता रहा। दिन बीते, हफ्ते बीते, वर्ष बीते, सदियाँ बीती, लाखों-करोड़ों वर्ष बीत गये। आदम और हव्वाकी औलादोंकी भी करोड़ों पुश्तें बीत गयीं। फिर भी खुदाकी समझमें न आया कि वह ऐसी अजीबो-गरीब चीज कैसे बनाये। यहाँ तक कि जार्ज स्टीफेन्सने रेलके इंजनका आविष्कार कर डाला। इस इंजनको देखकर अकस्मात् खुदाको एक विचार सूझा, और उसने कुछ ही दिनमें हव्वाकी मनचाही चीज बनाकर तैयार कर दी, जिसका नाम रखा गया—"थर्डक्लास।"

(२)

'थर्डक्लास'में सचमुच हव्वाकी कही हुई हर चीज मौजूद है। उसे देखकर हँसी आती है, उससे खुशी होती है, उससे रंज होता है। वह सैकड़ोंको वीर बनाकर मरने-मारने पर आमादा कर देता है, वह लाखोंको कायर बनाकर हर तरहका अपमान सहनेको मजबूर करता है। उसमें श्रृंगार है, उसमें वीभत्सता है, उसमें वीरता है, उसमें जुगुप्सा है, उसमें भयानकता है, उसमें शान्ति है। उसमें हरएक रस है, हरएक रूप है, हरएक रंग है गरज यह कि थर्डक्लास खुदाईका मास्टरपीस है।

भला, यह कैसे सम्भव था कि ऐसी अद्भुत चीज बने और वह लोकप्रिय न हो, अथवा वह केवल रेल तक ही परिमित रहे? थर्डक्लास बढ़ा और खूब बढ़ा। आज संसारमें सबसे अधिक प्रचार उसीका है। करोड़ों आदमी उसके भक्त और सेवक हैं। रेलसे बढ़कर वह गाड़ी, इक्का, ताँगा, सिनेमा, बायसकोप, थियेटर—हर जगह, हर चीजमें फैल गया। आजकलकी मन्दीने तो उसे इतना प्रोत्साहन दिया कि आज दुनियाकी हर चीज थर्डक्लास बन रही है। जेनेवाके राष्ट्र संघसे लेकर हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओं तकमें वह सचराचर व्याप्त है, राष्ट्र संघके सदस्योंमें थर्डक्लास राष्ट्रोंकी भरमार है, तो हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाएँ थर्डक्लासके लेखों और लेखकोंसे भरी पड़ी हैं।

जिस प्रकार भारतकी भलाईकी चिन्ता भारतीयोंके मस्तिष्कमें पैदा होकर भी आई० सी० एस० वालोंके दिमागमें ही अपने पूर्ण विकासको पहुँचती है, उसी प्रकार थर्ड-क्लास यद्यपि रेलगाड़ीमें पैदा हुआ था, किन्तु उसका पूर्ण विकास स्टीमर या जहाजपर ही होता है। . . . ..

सबसे पहली बात यह है कि स्टीमरपर पहुँचकर थर्डक्लासको 'डेक-पैसेंजर'का लकब मिल जाता है। 'डेक' शब्दका अर्थ है जहाजका तल्ला या खण्ड, और 'पैसेंजर' शब्दके मानी हैं यात्री। फर्स्ट-सेकेण्ड क्लासवालोंका स्थान भी जहाजके किसी-न-किसी डेकपर ही होता है, पर उन्हें 'डेक-पैसेंजर' नहीं कहते, ठीक उसी तरह, जैसे हमारे गोरे शासक भी किसी न किसी देशके 'नेटिव' (निवासी) होते हैं, मगर नेटिव शब्दका उपयोग उनके लिए न होकर केवल काले आदमियोंके लिए ही होता है। और जिस प्रकार 'नेटिव' शब्दके अन्दर असभ्यता, बर्बरता, जंगलीपनके भाव भरे रहते हैं, उसी प्रकार 'डेक्-पैसेंजर' शब्दके साथ भी बर्बरता, पशुता तथा अन्य घृणास्पद बातोंकी गठरी लदी रहती है।

इस सुविकसित थर्डक्लासका पूर्ण उत्कर्ष देखनेके लिए आपको यूरोप या अमेरिका जानेकी जरूरत नहीं है। आप मेरे साथ ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनीके स्टीमरपर कलकत्तेसे रंगून तककी यात्रा कर डालिये, आपको सिर्फ चौदह रुपयेमें खुदाके इस सबसे बड़े करिश्मेका मजा मिल जायगा।

(३)

अरनकोला स्टीमर नौ बजे छूटनेवाला है, चूंकि डेक पैसेंजरके लिए कोई स्थान रिजर्व नहीं होता, इसलिए अच्छी जगह मिलनेकी आशासे छै बजे सवेरे ही आउटरम घाटपर पहुँचता हूँ, तो देखता हूँ कि यार लोग मुझसे भी ज्यादा चन्ट हैं—वे तीन ही बजे रातसे आकर घाटपर धूनी रमाये बैठे हैं, यद्यपि स्टीमरका कहीं पता भी नहीं है। घाटके किनारे पोर्ट-कमिश्नरकी रेलवे लाइनपर लाल, पीले, हरे, नीले, हरएक आकारके बक्स, बण्डल, सूटकेस, बोरिये, बकुचे आदि दूर तक छितराये पड़े हैं। लाइन के पत्थरोंपर माल-असबाबके इन छोटे-बड़े अस्त-व्यस्त स्तूपोंका दृश्य वैसा ही दीख पड़ता है, जैसा हवाई-जहाजसे भूकम्पध्वस्त क्वेटा का। . . .

घाटपर पहुँचकर एक और महान तथ्यका ज्ञान होता है, वह यह कि जैसे हरएक अंग्रेज बच्चा पैदाइशी शासक होता है, वैसे ही स्टीमरके थर्डक्लासका हरएक यात्री पैदाइशी मुजरिम और स्मगलर होता है—कम-से-कम कस्टम-विभागकी तो यही राय है। डेक पैसेंजरका टिकट खरीदते ही इस बातकी सम्भावना पैदा हो जाती है कि आप अफीम, कोकीन आदि वर्जित वस्तुओंको चोरीसे ले जा रहे हैं, इसीलिए कस्टमवाले आपकी एक-एक चीजकी तलाशी लेते हैं। फर्स्ट या सेकेण्ड क्लासका टिकट लेनेपर आपके मुजरिम होनेकी सम्भावना अपने-आप विलीयमान हो जाती है, फिर कोई नहीं पूछता। . . . .

आठ बजे घाटका फाटक खुलता है, और स्टीमरपर दो सीढ़ियाँ लगी हुई दीख पड़ती हैं। एक सीढ़ी बिलकुल खाली नजर आती है, उसपर इक्कादुक्का मुसाफिर ही चढ़ते दीख पड़ते हैं, मगर दूसरी सीढ़ीपर ऐसी दौड़ादौड़ होती है, मानो नादिरशाहके सिपाही

दिल्लीकी लूटके लिए पिल पड़े हों। माल-असवाब लादे कुली, बोरिया-बकुचा लटकाये यात्री और कच्चे-बच्चोंको घसीटती हुई स्त्रियाँ—सब-के-सब जी-जान छोड़कर सीढ़ीपर भाग रहे हैं। पूछनेपर मालूम होता है कि पहली सीढ़ी फर्स्ट-सेकेण्डवालोंका स्वर्ग-सोपान और दूसरी डेक पैसेंजरकी नरक-नसेनी। ऊपर पहुँचते ही लोग एक-एक कम्बल, दरी, चटाई या टाट बिछाकर और उसे चारों ओरसे अपने असवाबसे घेरकर जगहपर कब्जा जमाते हैं।

जहाज नौ बजे छूटता है। मगर इस एक घंटेके बीचमें जो नाटक डेकपर होता है, वह अद्‌भुत है, अनोखा है, अपूर्व है। किसीका बच्चा खो गया है, किसीका बिस्तर गुम हो गया है, किसीका पैर कुचल गया है, किसीकी सुराही फूट गयी है, किसीको बिछोहका दुःख है, किसीको यात्राकी खुशी है, कोई जेटीके ऊपरी तल्लेपर खड़े हुए अपने किसी मित्रसे बातें करनेको उतावला है, किसीको कुलीसे झगड़नेकी आदत है—गरज यह कि हर आदमीके पास रोने, हँसने, चीखने, चिल्लाने और हाय-तोबा मचानेका एक न एक कारण मौजूद है, और वह उस कारणका पूरा-पूरा उपयोग कर रहा है, इसलिए इस एक घंटेमें जो कुछ देखने-सुननेको मिलता है, उसकी तुलना केवल उर्दू-शायरोंके 'हँगामये-महशर' से ही की जा सकती है।

जहाज चलने लगता है। डेक पैसेंजरोंका हँगामये-महशर भी ठण्डा पड़ने लगता है। धीरे-धीरे जहाजारोहण द्वारा जनित अराजकता समाप्त होकर घण्टे-दो घण्टेमें सुव्यवस्था स्थापित हो जाती है। देखता हूँ कि डेक मुसाफिरोंके तीन लोक हैं। उनकी एक दुनिया मेरे सरके ऊपर बसी है, और दूसरी मेरे पैरोंके नीचे आबाद है। मैं मध्य-मार्गका पथिक हूँ, मेरा स्थान बीचके डेकपर है। टाल्सटायने एक कहानी लिखी है, जिसका नाम है—'आदमीको कितनी भूमि चाहिये?' इस कहानीमें उसने सैकड़ों मील धरती नापकर अन्तमें यह बताया है कि हर आदमीको सिर्फ साढ़े पाँच हाथ जगह (कब्र-भरकी) चाहिये। मगर स्टीमर कम्पनी टाल्सटायसे भी कहीं आगे बढ़ी हुई है, क्योंकि देखता हूँ कि डेक मुसाफिरोंमें अनेक अभागोंको मुश्किलसे साढ़े चार फीट जगह मिल सकी है।

मुसाफिरोंपर नजर डालनेसे जान पड़ता है कि डेकपर जानबुलकी अध्यक्षतामें कोई अखिल एशियाई कानफरेन्स हो रही है, जिसमें ईरान, काबुल, कन्धार, पंजाब, युक्त-प्रान्त, बिहार, बंगाल, आसाम, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, तामिल-नाडू, उड़ीसा, लंका, बर्मा, मलाया, सयाम और चीन, जापान आदि देशों और प्रदेशोंने अपने-अपने प्रतिनिधि भेजे हैं। उनमें स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी हैं। डेककी दुनियामें दो पैरोंसे चलनेवाला हरएक जानवर आ सकता है—केवल ऐंग्लो-इण्डियन नस्लकी मादाको छोड़कर।

कम्पनीने ऐंग्लो-इंडियन औरतोंको डेकपर सफर करनेकी मुमानियत कर रखी है। बारूदखानेमें सिगरेट पीनेकी मनाही इसलिए होती है कि उससे विस्फोट होनेका अन्देशा होता है, किन्तु यह समझमें नहीं आता कि डेकपर ऐंग्लो-इंडियन नस्लकी मादाके आ जानेसे विस्फोट होने या जहाज डूबनेका कौन-सा खतरा पैदा हो जाता है, जो इस प्रकार-की मुमानियतकी गयी। ऐंग्लो-इंडियन कौम गोरोंके पापोंका परिणाम है; शायद कम्पनीके

गोरे मालिक यह नहीं चाहते कि उनके पापोंकी ये साकार मूरतें थर्डक्लास जनताके सामने आवें, इसीलिए उन्होंने यह मनाही की है।

डेककी दुनिया कुछ अजीब चहल-पहलकी दुनिया है। एक ओर सूरती मुसलमानोंके एक दलने ताशका अड्डा जमा रखा है, दूसरी ओर एक भाटिया परिवारके घरेलू जीवनका नक्शा फैला है। लड़के खेल रहे हैं, माताएँ बच्चोंको दूध पिला रही हैं, और उनके सुबोध पतिदेव तरकारीके लिए आलू-परवल छील रहे हैं। कुछ दूरपर एक बंगाली दम्पतिका आसन है; उन्होंने एक ही बिस्तर लगाया है, जिसपर पति-पत्नी एक ही तकियेपर सिर रखे लेटे हैं, मानो अपनी पुष्प-शय्याकी पुनरावृत्ति करने जा रहे हों। एक ब्राह्मण देवता स्नान करके 'आदौ राम तपोवनादि गमनं हत्वा मृगां कांचनम्'···आदि पढ़कर एक ही श्लोक-पाठमें समूची रामायण के पारायणका पुण्य लूटनेकी कोशिश कर रहे हैं : एक पढ़े-लिखे सज्जन 'स्टेट्समैन' पढ़ रहे हैं; कुछ गुजराती छोकरे सिनेमाके किसी पत्रमें देख-देखकर एक्ट्रेसोंके सौन्दर्यका मूल्य निर्धारित करनेमें व्यस्त हैं, और कुछ लोग गप-शपमें मस्त हैं। जहाजके कुछ खलासी केला, नीबू, ताश और सोडा-लेमोनेड बेचनेकी कोशिशमें हैं। एक पाईका केला एक पैसेमें, धेलेका नीबू दो पैसेमें, छै पैसेके ताश चार आनेमें और दो पैसेका लेमोनेड दो आनेमें बिक रहा है। हर चीज थर्डक्लास है, और हो क्यों नहीं ? आखिर हम भी तो थर्डक्लासके ही मुसाफिर हैं।

मेरे समीप एक 'जहरबादी' (बर्मी मुसलमान) का आसन है, वह बसीनका रहनेवाला है और टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेता है। उसे इस बातका फख्र है कि अब उसने उर्दूमें (!) नमाज पढ़ना सीख लिया हैं। वह कहता है कि बसीनमें हलुवा, बर्मी जूते और झींगा मछली बहुत उम्दा होती है। इस हलुवे, जूतों और मछलियोंका मजा चखनेके लिए वह मुझे बसीनमें निमन्त्रित करता है।

सहसा संगीत सुनाई पड़ता है। चारों ओरसे गानेकी आवाज आती है। देखता हूँ कि यह अखिल एशियाई कानफरेंस वास्तवमें अखिल एशियाई संगीत-सम्मेलन ही है। जान पड़ता है कि हरएक प्रान्त और हरएक देशने अपने-अपने तानसेनोंको चुन-चुनकर ही यहाँ भेजा है। एक काबुली अपने दगदर्रो स्वरमें भैरव राग अलाप रहा है। एक चीनी लड़की अपनी भाषामें कुछ गुनगुना रही है। एक ठिकानेपर दो-तीन बिहारी भाई उँगलियोंसे कान बन्द करके बिरहा गा रहे हैं। एक दूसरी जगह चार-पाँच हिन्दुस्तानियोंका एक दल बड़े जोश-खरोशके साथ आल्हा पढ़ रहा था:—

'खट-खट खट-खट तेगा बोलै,
बोलै छपक-छपक तलवार;
चलै दुनब्बी और तिनब्बी,
ऊना चलै बिलायत क्यार।'

एक साठ वर्षके सफेद बालोंवाले सज्जनने एक ग्रामोफोन लगा रखा है, जो अपने कर्कश स्वरमें चीख रहा है :—

'सपने में साजन आये पलँगपर,
वहियाँ पकड़ मोरी......'

साजनकी इस धृष्टतापूर्ण कार्रवाईकी ताईदमें धौली खोपड़ी मुस्कराकर हिल रही है! एक मुसलमान मस्त होकर गा रहा है :—

'मेरे मौला मदीने वुला ले मुझे ।'

वह मस्त होकर अपने साथीकी नंगी पीठपर तवला भी वजाता जाता है; लेकिन देखता हूँ कि मौला से स्टीमर अधिक शक्तिशाली है, जो इस वेचारेको मदीनेके वजाय वर्माकी ओर घसीटे लिये जा रहा है। दिन-भर इसी तरह अविराम गतिसे संगीत चलता है। एक चुप होता है, तो दूसरा शुरू कर देता है।

यह जानकर प्रसन्नता होती है कि जहाजी कम्पनीको इस वातका पता है कि 'डेक पैसेंजर' नामधारी जीव भी कुछ खाता है। इसीलिए जहाजपर हलवाईकी एक दूकान भी है। पाखाने और नलके पास एक छोटी कोठरीमें हलवाई देवता विराजते हैं। उसमें उनका चूल्हा है, भण्डार है, दूकान है। भण्डारके लिए दो वड़े-वड़े लोहेके टव हैं, जिनपर काला कोलतार पुता है। उन काले-काले गन्दे टवोंको देखकर ही कुछ खानेकी इच्छा अपने-आप दूर हो जाती है।

वरसातके दिन हैं, आसमानपर वादलखां की तवीयत मजेमें आती है, और वे भड़भड़ाकर वरस पड़ते हैं। डेककी यात्राका लुत्फ तो वरसात ही में है। सवसे ऊपरवाले डेकके यात्रियोंपर छायाके लिए है, केवल कैनवेसका तिरपाल। किन्तु कहाँ भादोंके दल वादल मेघ और कहाँ वेचारा वी० आई० कम्पनीका तिरपाल! थोड़ी देरमें ऊपरके यात्रियोंके साज-सामान ही नहीं, शरीर तक तर-वरतर हो जाते हैं। सोचता हूँ कि फर्स्ट-सेकेण्ड क्लासवालोंको यह सुख कहाँ नसीव!

मेल-स्टीमर होनेके कारण जहाज वहुत तेजीसे जा रहा है। गंगाका पीला पानी हरा हुआ, फिर नीला हुआ, फिर एकदम काला हो गया। अब चारों तरफ पानी-ही-पानी है। वंगालकी खाड़ी आ गयी। समुद्रमें काली-काली उत्ताल तरंगें उठ रही हैं। चारों ओर क्षितिजपर समुद्र आसमानसे शेकहैण्ड करता दीख पड़ता है। लहरोंकी कोरोंपर उठा हुआ झाग ऐसा दीख पड़ता है, जैसे समुद्रकी काली साड़ीमें रुपहली वाँकड़ी टँकी हो। इन विशाल झाग-भरी तरंगोंपर हमारा सवा लाख मन भारी जहाज ऐसे उतराता है, जैसे खौलते हुए घीके कड़ाहमें नन्हीं-सी पूड़ी।

अभीतक गाना जारी है—एक दर्जनसे अधिक भाषाओंमें। मैं सोचता हूँ, क्या ये सवलोग एक ही भाषा नहीं बोल सकते? क्या इनके गलोंसे एक ही आवाज नहीं निकल सकती? एक विशाल तरंग स्टीमरसे टकराकर हुंकार मारती है, मानो कह रही है—हाँ, निकल क्यों नहीं सकती; देखो, मैं अभी सभीके गलोंसे एक ही स्वर निकाले देती हूँ। तरंगें वढ़ने लगती हैं, जहाज जोरसे हिलने-डुलने लगता है। यह देखिये, अब तो सचमुच ही चीनी-जापानी, हिन्दुस्तानी-वंगाली, उड़िया-गुजराती—सभीके कंठोंसे एक

ही ध्वनि, एक ही आवाज निकलने लगती है; वह है कँ करनेकी आवाज। अन्धेरा हो जाता है, लोग सो जाते हैं।

सवेरा होता है; मगर आजकी डेककी दुनिया, गत कलकी दुनियासे बिलकुल निराली है। आज चहल-पहल नहीं है, गाना-बजाना नहीं है, गप-शप नहीं है, खान-पान नहीं है। उसके बजाय आज मनहूसियत है, मुर्दनी है, सन्नाटा है। किसीको उबकाई आती है, कोई ओकता है, बाकी सब चुपचाप मुर्दोंकी भांति मुँह लपेटे पड़े हैं—कोई सीधा, कोई उलटा। कल इसी डेकपर बाजार या मेलेका कलरव था, आज मरघट या कब्रस्तानकी निस्तब्धता है। सारा दिन ऐसे ही बीतता है। हाँ, आज लहरोंका ताण्डव-नृत्य और गम्भीर गर्जन खूब जोरपर है।

प्यास लगती है, बटलरसे पूछता हूँ, बर्फ मिलेगी? जवाब मिलता है, बर्फ सिर्फ फर्स्ट-सेकेण्ड क्लासवालोंको ही मिल सकती है, डेक पैसेंजरोंको नहीं—दाम देनेपर भी नहीं। सोचता हूँ, डेकवालोंको बर्फ क्यों नहीं मिलती? कोई कारण समझमें नहीं आता, सिवा इसके कि कम्पनी शायद यह समझती है कि यात्रीको ठंडक पहुँचानेके लिए बरसातका पानी और समुद्रकी लहरोंसे उड़े हुए नमकीन छींटे ही काफी हैं। उन्हें बर्फकी क्या जरूरत है?

बीच-बीचमें पानी बरस जाता है, जिसकी बौछार बीचके डेकपर मेरे विस्तरतक पहुँचती है; मगर किया क्या जाय, मेरे पास इधर-उधर सरकनेकी जगह नहीं है, और कैनवेसके पर्दोंमें पानी रोकनेकी सामर्थ्य नहीं है। खैर, दिन कटता है, रात आती है। लोग सो जाते हैं, मगर मुझे नींद नहीं आती। अब बादल छट गये हैं, खूब चाँदनी खिली है। ऊपर असीम नीलाकाश, नीचे असीम काला समुद्र और इन दोनोंके बीच ज्योत्स्नाकी पिघली हुई चाँदी। चाँदनीमें नाचती हुई तरंगोंका नृत्य, जगह-जगहपर उठता हुआ सफेद झाग, उड़नेवाली मछलियोंका उड़ना और गिरना—ये सब मिलकर एक अजीब समाँ पैदा कर देते हैं। मेरे पास दो बर्मी नवयुवक भी रेलिंग पकड़े इस अलौकिक दृश्यको देख रहे हैं। रात बढ़ती है, बारह बजता है। सहसा बाईं ओर सुदूर क्षितिजके समीप एक बिजलीका लैम्प पानीके भीतरसे निकलता है, और एक क्षणमें फिर डूब जाता है। बर्मी नवयुवक उल्लाससे चिल्ला उठते हैं—'बसीनका लाइट हाउस, बसीनका लाइट हाउस।' बड़ी देरतक यह प्रकाश क्षणमें पानीसे निकलता और क्षणमें पानीमें डूबता दीख पड़ता है।

सवेरा होता है। पानीके रंगमें कालेपनकी कमी भूमिकी निकटता प्रकट करती है। डेकपर सहसा पुनः चैतन्यता आती है। कल जितने आदमी निश्चल पड़े थे, आज वे सहसा सजग हो उठे। जान पड़ता है, किसी मसीहाने अपना जादूका डंडा छुआकर इन मुर्दोंको फिर जीवित कर दिया है। थोड़ी देरके बाद झुंड-की-झुंड समुद्री चिड़ियाँ आ-आकर जहाजके ऊपर मँडराने लगती हैं, और सुदूर क्षितिजपर किसी पगोडाका ऊँचा शिखर दीख पड़ता है। उसे देखकर डेक-दुनियामें फिर वही कोलाहल, फिर वही हंगामा आरम्भ हो जाता है। कोई माल-असबाब बाँधता है, कोई प्रसन्नतासे गाता है,

और कोई चौबीस घंटेके व्रतके बाद उदर-देवकी पूजा कर रहा है। फैले हुए बिस्तर सिमटने लगते हैं। खुले हुए बक्सोंमें ताले पड़ते हैं और गठरी-मुठरीकी गाँठें फिरसे कसकर बाँधी जाती हैं।

दो बजे जहाज रंगूनकी जेटीपर जा लगता है। सीढ़ियाँ लगायी जाती हैं, और मुसाफिर उतरते हैं। कुछ विशेष कारणोंसे इस बार मुझे थर्डक्लासकी नरक-नसेनीसे उतरनेके बजाय फर्स्ट-सेकेण्ड क्लासके स्वर्ग-सोपानसे उतरनेका विशेषाधिकार दिया गया। नीचे उतरकर मैं समझता हूँ कि चलो डेक-यात्रा अथवा डेक-यातनाकी इतिश्री हुई। मगर नहीं, डेक-पैसेंजर इतनेसे ही छुटकारा नहीं पाता। जिसे अंग्रेजीमें Parting Kick (विदाईकी लात) कहते हैं, वह तो अभी बाकी ही है। देखता हूँ कि डेक-संसारके सारे प्राणी अपने माल-असबाबके साथ एक कटघरे में बन्द हैं। यहाँ पुलिस हर यात्रीसे उसका नाम, बापका नाम, जाति, पेशा आदि इतनी बातें पूछती है, मानो उसे यात्रीसे सगाई-सम्बन्ध स्थापित करना हो। फर्स्ट-सेकेण्ड क्लासके यात्री इस झंझटसे बरी होते हैं। पुलिसको उनके बापोंकी जरूरत नहीं होती। अब डाक्टर आते हैं, हरएक डेक-यात्रीको टीका लगाते हैं और उसके कपड़ोंमें भाप देते हैं।

अधिकारियोंका ख्याल है कि थर्डक्लासका यात्री रोग-कीटाणुओंका आनरेरी प्रचारक है। कहीं वह बर्मामें इन कीटाणुओंका प्रचार न कर दे, इसीलिए यह कार्रवाई की जाती है। मान लीजिये कि आपके शरीरमें दुनिया-भरके संक्रामक रोगोंके कीटाणु भरे पड़े हैं, आपके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंको प्लेग, हैजा, चेचक अथवा कुडुकधुस्सकी बीमारी हो जाना अवश्यम्भावी है; पर यदि आप खनखनाते हुए इकसठ रुपये खर्च करके सेकेण्ड क्लासका टिकट खरीद लें, तो बिना किसी इलाजके ही आपकी रोग-प्रसारिणी शक्ति अपने-आप नष्ट हो जायगी। तब रंगूनमें न तो आपके टीका ही लगाया जायगा और न आपके कपड़े ही भपाये जायंगे।

एक बात और भी मजेकी है। रोगोंकी रोक-थामकी यह कार्रवाई केवल बर्मा जानेवाले डेक-यात्रियोंके साथ ही की जाती है। बर्मासे कलकत्ते लौटनेवाले यात्रियोंको न तो टीका दिया जाता है, और न उनके कपड़े ही भपाये जाते हैं। कदाचित् हमारे अधिकारी हम भारतीयोंके लिए रोगोंको आवश्यक समझते हैं, तभी तो उन्होंने संसार-भरके लोगोंको भारतमें तरह-तरहके रोगाणुओंका चालान लाने का अबाध अधिकार दे रखा है।

दौड़ना-धूपना, चढ़ना-उतरना, हँसना-रोना, गाना, वमन करना, लड़ना-भिड़ना, भूखा रहना, पानीमें भींगना, धूपमें तपना, हवामें सूखना, टीका लगना और अन्तमें गरमा-गरम भापसे गुजरना इत्यादि नाना प्रकार की रंग-बिरंगी क्रियाओंके बाद डेक-यात्राका पर्व समाप्त होता है।

थर्डक्लासमें कलकत्तेसे रंगून तककी यात्रा करनेके बाद भी यदि कोई व्यक्ति थर्डक्लास-को खुदाईका मास्टरपीस नहीं मानता, तो समझ लीजिये कि वह एकदम थर्डक्लास आदमी है।

: १८ :

फीरोजखाँकी बन्दूक

बुड्ढा फजल कादिर जातका खट्टक पठान है। वह बन्नूकी सरहदपर पैदा हुआ था और अपने गाँव कूज-पराराका 'लम्बरदार' है। कूज-परारा मुट्ठी-भर गन्दे कच्चे मकानोंका एक गाँव है, जो अटकके पास सिन्धु नदीके पश्चिम धूपसे तपी हुई पहाड़ियोंके ऊँचे दामनमें बसा हुआ है। हिन्दुस्तानकी सरहदके इस हिस्सेकी नाहमवार चटियल जमीन संगदिल, और अनउपजाऊ है। निचाट नंगी चट्टानें तीन-तीन चार-चार हजार फीटकी उँचाईतक दीवारकी तरह उठती चली गयी हैं। आसपास गहरे-गहरे नाले हैं, जो बरसातमें तो घरघराकर बहते हैं; पर सालके ग्यारह महीने सूखे पड़े रहते हैं। तरावट देनेवाली सब्जीकी खोजमें दर्शककी आँखें चारों तरफ हेरती-हेरती थक जाती हैं, मगर हरियालीका तिनका भी नजर नहीं आता। इस बियावान वीरान खित्तेकी जहाँ-तहाँ बिखरी हुई आबादी अपने दीन-हीन गाँवोंके पास छोटे-मोटे खेतोंको खरोंच-खरोंचकर कुछ पैदा कर लेती है और उसीपर किसी तरह मार-पीटकर जिन्दगी बसर करती है। उनकी बकरियाँ और सूखे-साखे मवेशी भी चट्टानी ढालोंपर न-जाने किस ढंगपर जिन्दा रहते हैं। ५०० फीट ऊँचा एक ढाल कूज-पराराको पहाड़ियोंके असली सिलसिलेसे मिलाता है। इस ढालके ऊपरसे सिन्धु-नदी अटकके पुराने किलेके नीचे मटीली धारा-सी बहती नजर आती है। इस टीबेके ऊपर प्रकृतिने चट्टानोंका एक अजीब ढेर-सा इकट्ठा कर दिया है, जो नकशा बनानेवालोंको डाँडेका काम देता है। सचमुच ही सर्वेके नक्शोंमें टीलेका यह ढेर 'प्वाइंट नम्बर ३०३१' के नामसे लिखा गया है।

कूज-पराराके लम्बरदारको नकशेका ज्ञान नहीं है। सर्वेयरके लिए 'प्वाइंट नम्बर ३०३१' का क्या महत्त्व है, उससे भी वह नावाकिफ है। मगर वह भली-भांति जानता है कि चारों तरफके इलाकेकी चौकसीके लिए यह टीला लासानी है। दोपहरके बाद सूरजकी रोशनीसे महफूज और देखनेवालोंकी नजरोंसे छिपा हुआ वह इस टीबेपर घण्टों बैठा रहता था। आसपासकी सारी दुनिया उसके नीचे बिखरी होती थी और वह उसकी निगरानी किया करता था।

उसके पैरोंके नीचे सिन्धुके उस पार दो मीलकी दूरीपर पंजाबका चौरस मैदान शुरू हो जाता है, और जहाँपर जमीन-आसमान मिलते नजर आते हैं, वहाँतक फैला हुआ दीख पड़ता है। उत्तरकी तरफ गर्दन घुमाकर देखनेसे बहुत दूरपर जहाँ-तहाँ काबुल नदीकी धाराके कुछ फुटफैल हिस्से नजर आते हैं, जो पहाड़ोंपर होती हुई सिन्धुके मटीले पानीमें मिलनेको आती है।

पूर्वकी तरफसे नार्थ वेस्ट रेलवेकी पटरीके साथ-साथ सूतके धागेकी तरह पक्की सड़क नदीकी तरफ आती दीख पड़ती है। अटकसे दक्षिणकी तरफ एक वदनुमा, कमर-झुका-सा लोहेका पुल सिन्धुको पार करता है। इस पुलके दो भाग हैं—एकसे रेल गुजरती है और दूसरेसे सड़क। हिन्दुस्तानकी तरफसे जो कोई भी शख्श सूवा सरहदमें दाखिल होना चाहता है—चाहे वह सड़कसे चलकर आवे, या फ्रांटियर-मेलपर आरामसे बैठकर—उसे इस पुलके ऊपरसे होकर गुजरना लाजिमी है।

अटकके पुलकी चला-फिरी बूढ़े फजल कादिरके लिए वेहद दिलचस्पीकी चीज थी। उसके टीलेके नीचे पुलपर हर तरहके आदमी, जानवर, सवारियाँ और सामान गुजरा करते थे। कभी वैलगाड़ियोंका ताँता वँध जाता था—क्योंकि हिफाजतके खयालसे अधिकतर गाड़ीवाले इकट्ठे होकर ही चलते हैं—और कभी खैवरकी राह अफगानिस्तान और हिन्दुस्तानके वीच चलनेवाले कारवानोंके ऊँटोंकी कतारें नजर आती थीं। 'पिण्डी और पेशावरके दरम्यान छावनियाँ वदलते वक्त गोरी या काली फौज मार्च करती हुई इसी पुलपर से निकलती थी। कभी तेज रफ्तारवाली मोटरें आतीं और कभीं फौजी पहरेमें सामानसे लदी हुई कमसरियटकी लारियाँ गुजरतीं।

सड़कके जरिये पुल पार करनेवालोंका कोई दिन या समय नियत नहीं। कभी तो कई-कई दिनतक एकदम सन्नाटा रहता और कभी आमद-रफ्त इतनी ज्यादा हो जाती कि खत्म होने को न आती। मगर पुलके रेलवाले हिस्सेमें हर रोज निश्चित वक्तपर निश्चित गाड़ियाँ गुजरा करतीं। रोज-रोज देखते हुए फजल कादिर इतना अभ्यस्त हो गया था कि वह ठीक-ठीक यह वता सकता था कि अब कौन-सी ट्रेन किधरसे आयेगी और उसके आनेमें कितनी देर है!

कैम्बेलपुर स्टेशनसे जैसे ही कोई गाड़ी अटककी तरफको छूटती, वैसे ही बुड्ढे फजल कादिरकी तेज आँखें ग्यारह मीलकी दूरीसे आस्मानपर उसका सफेद धुआँ देख लेती थीं। धीरे-धीरे बढ़ती हुई गाड़ी नदीकी तरफ आती और आकर पुलके करीव स्टेशनपर खड़ी हो जाती। पुलकी हिफाजतके लिए पुलके किनारेपर फौजी चौकियाँ और फसीलें (वाच टावर) बनी हैं। गाड़ी खड़ी होते ही फसीलके भीतरसे खाकी वर्दीवाले सिपाही निकलते और फजल कादिर अपने टीलेसे उन्हें चींटियोंकी तरह दौड़ते-धूपते देखता। ये सिपाही खड़वड़ाकर पुलके विशाल फौलादी फाटक खोल देते। गाड़ी भक-भक धुआँ उड़ाती हुई पुलमें दाखिल हो जाती। जैसे ही गार्डकी आखिरी गाड़ी पुलमें घुसती, वैसे ही भड़-भड़ाहटकी आवाजके साथ पुलका फौलादी फाटक बन्द कर दिया जाता। जब गाड़ी पुलके दूसरे सिरे—पश्चिमी सिरे—पर पहुँचती, तो वहाँ भी इसी तरह फाटक खोला जाता था। गाड़ी पुलसे निकलकर साँपकी तरह रेंगती हुई खैराबादकी सुरंग (टनेल) में घुस जाती। दोनों तरफके फाटक बन्द हो जानेपर सिपाही फिर अपनी फसीलके भीतर आड़में गायब हो जाते थे और पुलपर सन्नाटा छा जाता था। सुरंगके भीतर घुसते और निकलते समय ट्रेनोंकी सीटीकी आवाज फजल कादिरको सुनाई पड़ती थी। सुरंगसे

निकलकर नौशेराकी तरफ बढ़ती हुई गाड़ी जब छः मील दूर जहँगीराके पास पहुँचती, तब वह फिर फजल कादिरको नजर आती थी ।

करीब-करीब हर रोज कूज-पराराका लम्बरदार—अपनी जातिके स्वभावके अनुसार—टीलेपर चढ़कर घण्टों चुपचाप बैठा रहता । वह कुछ सोचता हो, सो भी नहीं । बस, चुपचाप खाली दिमाग बैठे-बैठे पुलकी तरफ ताकनेमें ही उसे सन्तोष था। लेकिन एक दिन—जब हमारा किस्सा शुरू होता है—फजल कादिर बहुत चिन्तामें डूबा बैठा था । वह अपने लिये चिन्तित नहीं था, उसकी चिन्ता थी अपने बेटेके लिए, जिसने दो-तीन दिन पहले ही एक ऐसा काम किया था, जो उसे मौतके तख्ते तक पहुँचा सकता था । बात यह थी कि उस साल गर्मियोंमें सरहदी कबीलोंने अंगरेजी सरकारके खिलाफ हथियार उठाये थे । गर्मी-भर छोटे-मोटे मोर्चे होते रहे, और अन्तमें सिर्फ तीन दिन पहले इन कबीलोंके एक दलने पेशावर छावनीके सप्लाई डिपोपर हमला किया था । फजल कादिरका बेटा भी इस हमलेमें शामिल था ।

इस हमलेके असफल होनेपर 'लश्कर' वाले[1] तितर-बितर होकर अपने गाँवोंको भाग रहे थे । फजल कादिरका बेटा, फीरोजखां भी अपने गाँव कूज-पराराको लौटकर गिरफ्तारीके डरसे दुबका बैठा था । सरहदकी पहाड़ियोंपर खबरें और अफवाहें बड़ी तेजीसे फैलती हैं । इसके सिवा सरहदके मरभुक्खे लोग चाँदीके चन्द टुकड़ोंकी लालचमें मुखबिरी करनेको हमेशा आमादा रहते हैं । इसलिए कोई नहीं जानता कि उसका पड़ोसी कब दगाबाजी करके उसे गिरफ्तार करवा दे ।

यही सोचते-सोचते फजल कादिर एकाएक अपने टीलेकी बैठकसे उठ खड़ा हुआ और सिन्धुकी तरफ पीठ करके लम्बे कदम रखता हुआ ढालसे नीचे उतरकर कूज-पराराको चल दिया । उसके बुढ़ापेको देखते हुए उसकी तेज रफ्तार और उसके तने हुए जिस्मपर हैरत होती थी ।

गाँवमें नीची छप्परवाले कच्चे मकानके एक धुंधले कोठेमें फीरोज चुपचाप लेटा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा था । इस बातका खयाल करके कि गिरफ्तार होनेपर उसके गलेमें फाँसीका फन्दा जरूर ही झूलेगा, फीरोजखाँ बहुत शान्त और गम्भीर दीख पड़ता था ।

मुँहसे बिना कुछ कहे फजल कादिर बेटेके पास जाकर आगकी बगलमें बैठ गया । फीरोजने हुक्केकी मुँहनाल बापके आगे बढ़ा दी ; फजल कादिर मुँहनाल हाथमें लेकर धुआँ उड़ाने लगा । थोड़ी देरतक खैबरके ये दोनों बेटे उल्लूकी तरह टकटकी लगाये आगकी तरफ देखते रहे । एकाएक बुड्ढेने एक लम्बा कश खींचकर हुक्का बेटेके आगे सरका दिया । फिर आहिस्तासे—मानो अनिच्छासे—गला साफ करनेके लिए खखारा और खखारको सामनेकी आगपर थूककर बोला—"तीन दिन पहले पेशावरमें जो मार-काट हुई थी, उसमें तुमने क्या हिस्सा लिया था ?"

नौजवानने नथुने फुलाकर हिकारतसे कहा—"किसी भी मार-काटमें हिस्सा लेनेका मुझे मौका ही कैसे मिल सकता है ? हमारी मुरदार बन्दूक ऐसी है कि कभी गोली इधर फेंकती,

१. सरहदी कबीलोंके हथियारबन्द दल 'लश्कर' कहलाते हैं ।

है, कभी उधर । जिस आदमीके निशाना साधो, उसे लगता ही नहीं ! इस वन्दूकके बजाय अगर मैं लाठी ही लेकर जाता, तो वेहतर था ।"

"क्या ऊटपटाँग बकते हो ?" फजल कादिरने चिड़चिड़ाकर कहा—"मेरे हाथों और मुझसे पहले वावा (पिताजी) के हाथोंसे इसी वन्दूकने पाँच वार पाँच आदमियोंका सफाया किया है ; लेकिन तुम्हारे हाथोंमें जाकर वन्दूक निशाना ही नहीं लेती ! जरा वन्दूक लाओ तो ।"

फीरोजने धीरे-धीरे अपने लम्वे शरीरको ऊपर उठाया और हाथ बढ़ाकर छतकी धन्नीपरसे एक पुरानी वन्दूक उतारकर फजल कादिरके आगे वढ़ा दी। वन्दूक पुराने जमानेकी 'ली-मेटफोर्ड राइफल' थी, जो वहुत खस्ताहाल हो रही थी। फजल कादिर बन्दूकके कुटे-पिटे कुन्देपर प्यारसे हाथ फेरता हुआ वोला—"यह मालकन्दकी जंगमें वावाके हाथ लगी थी, जव तुम पैदा भी नहीं हुए थे ।" कुन्देकी तलीमें चाकूसे काटी हुई पाँच गहरी लकीरें बनी थीं। उनमेंसे पहली लकीरको दिखलाते हुए फजल कादिरने कहा—"यह उस शख्सकी यादगार है, जिसके हाथोंसे वावाने वन्दूक छीनी थी । वाकी दो निशान मोहमन्द इलाकेमें लगे थे, जव तुम वहुत छोटे थे। यह चौथा निशान ईसाखेलका है । उस चोट्टेने शवकदरके रास्तेमें मुझे लूटना चाहा था, मगर इसी वन्दूकने उसे जहन्नुमरसीद कर दिया—" फजल कादिर अपनी पुरानी स्मृतिको जगाकर खुश होता हुआ कहता गया—"और आखिरी निशान अलीजईके उस वदमाशका है। उसे तुम भी जानते हो, मैं भी जानता हूँ। और अव तुम यह कहते हो कि बन्दूक आदमीपर निशाना ही नहीं लेती—कभी गोली इधर फेंकती है, कभी उधर ! गोया निशानेबाजका कसूर नहीं, हथियारका कसूर है ! 'जोया' (वेटा), इसका इम्तहान अभी हुआ जाता है कि बन्दूकका कसूर है, या बन्दूकचीका ।"

वुड्ढेने ढीठतासे एक अधजली लकड़ी उठाई और मकानके वाहर खुलेमें निकल आया। वहाँ एक खँडहरकी मिट्टीकी दीवारपर उसने अधजली लकड़ीके कोयलेसे खरबूजे-इतना बड़ा 'चाँद' और 'गुल'[1] वनाया। फिर लम्बे-लम्बे कदमोंसे उसने दीवारसे गिनकर सौ कदमकी दूरी नापी और वहाँ पेटके वल लेटकर एक पत्थरपर दृढ़तासे वन्दूक जमा दी।

उसके तीन ओर दर्शकोंका हुजूम भी जुड़ गया। दर्शकोंमें तीन-चार कुत्ते थे, जिनके वदनपर खारिश हो रही थी, दो थके-माँदे मरियल-से बूढ़े थे और लगभग एक दर्जन आवारा लड़के। बुड्ढेने सम्हलकर—दम साधकर—तीन वार वन्दूक भरी और दागी। हर वार पुरानी बन्दूककी घनगरज आवाजपर आस-पासकी पहाड़ियाँ प्रतिध्वनिसे गूँज उठतीं। आखिरी गूँज खत्म हो जानेपर फजल कादिर उठा और अपने बेटे तथा दर्शकोंके झुण्डके साथ जाकर दीवारको देखने लगा ! 'गुल'पर या 'चाँद'के भीतर निशाना पड़ना तो दूर रहा, सिर्फ एक गोली 'चाँद'के किनारेपर पड़ी थी। दूसरा निशाना 'चाँद'से लगभग दो फीट ऊपर

---

१. निशानेके अभ्यास (चाँदमारी) के लिए दीवारपर एक गोल वृत्ताकार रेखा बनाई जाती है, जिसके केन्द्र-स्थानपर एक काला निशान बनाते हैं। वृत्ताकार 'चाँद' और केन्द्रीय विन्दु 'गुल' कहलाता है।

पड़ा था और तीसरा उससे भी ज्यादा फासलेपर नीचेकी तरफ। इतने ही पर मामला खत्म नहीं था। राइफलकी घूमती हुई गोली जब ठीक-ठीक किसी चीजपर पड़ती है, तो साफ गोल सूराख बनाती है। लेकिन फजल कादिरने देखा कि एक भी निशानेका सूराख गोल नहीं है। उसकी राइफलसे निकली हुई गोलियाँ नोंककी तरफसे सीधी न घुसकर टेढ़ी-मेढ़ी होकर पड़ी हैं।

दीवारपर लगे हुए तीनों छपक्के मूक भाषामें पुकार-पुकारकर कह रहे थे कि लम्बरदारकी वन्दूक अव ऐतवारके काविल नहीं रही। जो गोली इत्तफाकसे 'चाँद' के सिरेपर पड़ी थी, वह भी कुलाचें खाकर लम्बी होकर दीवारमें घुसी थी। यह देखकर फजल कादिर हदसे ज्यादा सन्नाटेमें आ गया और चुपचाप मुँह फेरकर शामके बढ़ते हुए अँधेरेमें अपने घरको चल दिया।

उस रातको सोते-सोते फीरोजखांने जो करवट बदली, तो उसे मालूम हुआ कि उसका 'जोड़ वावा' (बूढ़ा बाप) उठकर उसके पास खड़ा है। फजल कादिरने वेटेके पास बैठकर धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"इन्सानकी तरह वन्दूक भी सिर्फ एक ही पुश्त जिन्दा रहती है। हमारी यह वन्दूक दो पुश्त तक काम दे चुकी। अब इससे यह कहना कि यह तीसरी पुश्त भी जिन्दा रहे, बेवकूफी है। 'जाया' (बेटा) अब ऐसी तरकीव निकालनी चाहिये, जिससे तुम्हारे पास अपनी अलग नई वन्दूक हो।"

दूसरे दिन सूरज निकले फजल कादिर इस बातकी टोह लगानेके लिए कि पेशावरकी वारदातके मुतल्लिक उसके बेटेके खिलाफ तो कुछ नहीं हो रहा है, रेलवेकी तरफ जाता हुआ नजर आया। पहाड़ी घाटियोंसे अभी छाया दूर भी नहीं हुई थी कि वह हाथमें लाठी लिए शहीदान खार (नाले) की सूखी तलेटीसे होकर चलने लगा। दो घण्टे तक तेजीसे चलकर वह उस ठिकाने पहुँचा, जहाँ कंकरीटके एक भोंड़े-से पुलपरसे रेलवे लाइन नालेको पार करती है। यहाँ नालेके ऊपर चढ़कर वह मैदानकी पगडण्डीपर पहुँच गया। सामने ही खैराबादका गाँव आवाद है। गाँवमें घुसकर फज़ल कादिर गाँवके 'मलिक' (मुखिया) और अपने दोस्त तथा रिश्तेदार दीवानशाहके यहाँ पहुँचा।

फजल कादिर और दीवानशाह—दोनों बुड्ढे मुहब्बतसे मिले और बैठकर बातें करने लगे। घरकी खैरसल्ला, नाते-रिश्तेदारोंकी खबरें, गाँवकी गप्पें और अफवाहें, एक दूसरेको दी गयीं और बाहरी दुनियाकी खबरें मालूम की गयीं। अफरीदियोंकी लड़ाईकी जो खबरें दीवानशाहको मालूम हुई थीं, वह उसने पूरे विस्तारके साथ कह सुनायी। उसने बतलाया कि किस तरह पेशावरके दक्षिण, वज़ीरीबागमें अफरीदी लोग कई दिनतक सरकारकी वीस हजार फौजोंका सामना करते रहे।

उसने बतलाया कि सरकारी फौज पैदल, घुड़सारों और हवाई-जहाजोंसे हमला करनेकी अचूक योजनाएँ तैयार करती है; लेकिन भागनेमें कामिल और फरेबी अफरीदी चरका देकर उसे रेगिस्तान या पहाड़ियोंमें ले जाकर भटकाते हैं, जहाँ उसकी सारी योजनाएँ फिस्स हो जाती हैं। सरकारी फौज भटक-भटकाकर जैसे ही अपने तारके घेरेके अन्दर लौट आती है, वैसे ही उसके पीछे-पीछे अफरीदी भी आ धमकते हैं और फिर वही पीछा करना

और लुकना-छिपना शुरू हो जाता है। दिन-भर तो अफरीदी सरकारी फौजसे बचनेके लिए दूर-दूर भागते फिरते हैं; लेकिन रातमें कम्बख्त ठीक छावनीके दरवाजेपर पहुँचकर पहरेदारोंकी ताकत-आजमाई करते हैं!

यह सब कहकर आखिरमें जब दीवानशाह हवाई-जहाजोंसे बम बरसानेकी बात कहने लगा, तो उसका चेहरा घृणासे भर उठा। उसने थूककर कहा—"भला पहले कभी इस बेहूदा तरीकेसे जंग तै की जाती थी! यह भी कोई बहादुरीका काम है?"

धीरे-धीरे फजल कादिरके दिलको कुछ इत्मीनान हुआ। बातचीतसे उसे मालूम हो गया कि आसपासके इलाकेमें किसीको इस बातका पता नहीं कि हाल हीमें उसके बेटेने भी सरकारके खिलाफ हथियार उठाया था। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि अलग-अलग बागियोंकी गिरफ्तारीके लिए भी सरकार कोई सरगर्मी नहीं दिखला रही है।

"मैंने सुना है कि रेलवे लाइनकी हिफाजतके लिए रेलवेके गाँवमें 'खस्सादार'[१] भरती किये जानेवाले हैं। क्या यह सच है?"—एकाएक फजल कादिरने पूछा।

खैराबादके मलिकने जवाब दिया—"यहाँ नहीं। जहाँ खस्सादार मुकर्रर किये जायँगे, वह जगह यहाँसे बहुत दूर—नौशेरा और पेशावरके बीचमें—है।"

"अगर आयन्दा कभी खैराबादके नजदीक खस्सादारोंकी जरूरत हो, तो क्या आप समझते हैं कि फीरोजखां उनमें भरती हो सकता है?"—फजल कादिरने पूछा।

"पिछले कई सालसे खैराबादका इलाका एकदम 'कलार' (खामोश) है।" दीवानशाहने जवाब दिया—"इसके सिवा अटकमें फौजकी एक पूरी कम्पनी रहती है, जो यहाँसे सिर्फ एक घण्टेकी राहपर है, खैराबादमें खस्सादारोंकी कभी जरूरत ही न होगी।"

"आपका कहना शायद सच है।"—फजल कादिरने मायूस होकर कहा—"इसलिए मैं समझता हूँ कि मेरा बेटा कभी खस्सादार न हो सकेगा। कूज-परारा-जैसे गाँवमें किसी दिलेर नौजवानकी तबीयतके मुआफिक कोई काम मिलना आसान बात नहीं है। फिर भी दीवानशाह, मैं आपसे यह इल्तिजा करता हूँ कि अगर कभी खैराबादमें खस्सादार चाहने पड़ें, तो आपके रिश्तेदार और दोस्त फजल कादिरका बेटा फीरोजखां भुलाया न जाय।"

"इस बातका मैं अभी ही वादा किये देता हूँ।" दीवानशाहने कहा—"लेकिन यह समझ रखिये कि अमन-पसन्द खैराबादको कभी भी खस्सादारोंकी जरूरत न होगी।"

शामके नजदीक फजल कादिरने दीवानशाहसे रुखसत ली और धीरे-धीरे चढ़ाई चढ़ता हुआ कूज-पराराको लौट आया। वहाँ उसने फीरोजखांको वह सब खबरें बतलायीं, जो उसने दिन-भरमें इकट्ठा की थीं। रातमें जब दोनों बाप-बेटे अपनी-अपनी चारपाइयों-पर अगल-बगल लेटे, तो बेटेने कहा—"आप बार-बार मुझे यह क्यों सुनाते हैं कि रेलवेके खस्सादारोंको साहब लोग एक रुपया रोज देते हैं, और हरएक खस्सादारको एक-एक

१. सरहदी इलाकेमें अनेक बार रेल लूटी गयी या लाइन उखाड़ फेंकी गयी थी। इसे रोकनेके लिए लाइनपर पहरेदार मुकर्रर किये गये हैं, जो खस्सादार कहलाते हैं।

राइफल और तोबड़ा भरके कारतूस भी मिलते हैं। आप यह तो जानते ही हैं कि खस्सादारों-में सिर्फ वही भरती हो सकता है, जो अपनी ड्यूटीकी जगहसे दो-चार मीलके भीतरका रहनेवाला हो। दूरका रहनेवाला खस्सादार नहीं हो सकता, और सबसे नजदीककी जगह जहाँ खस्सादार हैं, यहाँसे कम-से-कम एक दिनकी दूरीपर है। कूज-पराराके नजदीक कभी खस्सादार मुकर्रर होनेके नहीं।"

" 'जमा जोया', (मेरे बेटे) थोड़ा सब्र करो।"—बुड्ढेने जवाब दिया—"कलकी खबर कल ही जानता है।"

दूसरे दिन रोजमर्राके वक्तपर फजल कादिर बगल में अपनी बेएतबार खान्दानी राइफलको दबाकर कूज-पराराके टीलेपर—अपने बैठनेके स्थान 'प्वाइंट नं० ३०३१' पर—चढ़ा। वहाँ पहुँचकर कोई दस मिनट तक वह चारों तरफके इलाकेको गौरसे देखता—छानता—रहा। फिर पेटके सहारे लेटकर धीरे-धीरे रेंगता हुआ वह एक नालेमें पहुँचा, जो सामनेके ढालपर होकर गुजरता था। नालेके भीतर वह धीरे-धीरे लुढ़ककर अटकके पुलकी जानिब बढ़ने लगा। दस-पाँच गज लुढ़ककर वह कुछ देरके लिए एकदम ठिठक जाता और जब इत्मीनान हो जाता कि उसकी हरकतपर किसीकी निगाह नहीं पड़ी, तो फिर आगे बढ़ता। इस तरह बढ़ते-बढ़ते वह सुरंगके ऊपर एक ऐसी छिपी हुई जगहपर पहुँच गया, जो अटकके पुलके ठीक सामने पड़ती थी।

उसने अपनी पुरानी बन्दूकको बहुत होशियारीसे भरा। आहिस्तासे उसकी नाल झाड़ियों और पत्थरोंके बीचमें घुसेड़कर पुलकी तरफ कर दी और खुद पीछेके अदृश्य गढ़ेमें आरामसे लेट रहा। उसने शिस्त लगाकर देखा, तो मालूम हुआ कि उस जगहसे वह पुलके फाटकपर या पुलसे गुजरनेवाली किसी भी चीजपर आसानीसे निशाना ले सकता है। बन्दूकको इस तरह जमाकर कि जरूरत पड़नेपर बिना हिले-डुले वह उसकी नली इधर-उधर घुमा सके, फजल कादिर इन्तजार करने लगा।

शीघ्र ही उसके नीचेकी सुरंगसे घड़घड़ करती एक मालगाड़ी निकली और पुल पार करके थोड़ी ही देर बाद कैम्बेलपुरकी तरफ अदृश्य हो गयी। बीच-बीचमें दो-चार मोटरें अपने पीछे धूलके अम्बार उड़ातीं और पुलके सन्तरियोंके आराममें खलल डालती इधरसे उधरको निकल जाती थीं। आध घण्टे बाद बहुत दूरीपर आस्मानमें फजल कादिरकी पठानी आँखोंने उस चीजके आसार देखे जिसका वह इन्तजार कर रहा था।

दस मिनट बाद मुसाफिरी डब्बों से भरी हुई लम्बी फ्रांटियर मेल पंजाब की जानिब से आकर अटक स्टेशनपर थमी। पुलके उस सिरेपर कोई आधा दर्जन सिपाही खाकी वर्दी और खाकी पगड़ी पहने चौकीकी फसीलसे निकले और उन्होंने भड़-भड़ करते हुए पुलका फाटक खोल दिया। गाड़ी पुलपर दाखिल हुई। अब पुलके इस तरफका फाटक भी खोला गया और इंजन भाप और धुएँके गुब्बारे उड़ाता हुआ धीरे-धीरे तेजी पकड़ने लगा।

फजल कादिरका ऐन मौका आ गया।!

अपनी खान्दानी वन्दूकपर गोकि उसे भरोसा जाता रहा था, फिर भी उसने इंजनके सामनेके चमचमाते हुए गोल——थालीनुमा——भागपर निशाना लेकर घोड़ा दवा ही तो दिया। गोली जोरकी झनझनाहट करती इंजनसे लगकर छिटक गयी। वन्दूककी घनगरज आवाज और उसके साथ गोलीकी झनझनाहट आस-पासकी पहाड़ियोंमें वार-वार ध्वनित-प्रतिध्वनित हुई। इन पहाड़ियोंमें आवाज ऐसे जोरसे और ऐसे ढंगसे प्रतिध्वनित होती है कि यह पता लगाना नामुमकिन है कि आवाज आयी किस सिम्तसे——वन्दूक चलानेवाला है किधर।

इसके वाद जो तमाशा हुआ, उसे देखकर कूज-पराराका लम्बरदार अपनी हँसी न रोक सका। वह शैतानी भरी खुशीसे खामोश हँसी हँसने लगा। ब्रेकोंकी खिचखिचाहटके साथ गाड़ी रुक गयी। आश्चर्यसे अकचकाये हुए ड्राइवर और फोरमैन इंजनसे उतरे और परेशानीसे सिर खुजाते हुए इंजनके चारों तरफ घूम-फिरकर देखने लगे। शीघ्र ही पुलके सन्तरी और कुछ मुतफर्रिक मुसाफिर भी आकर जमा हो गये। कुछ तो वन्दूककी आवाजका सवव जाननेके लिए उतर आये और कुछ सिर्फ टाँगें सीधी करनेका वहाना पाकर ही आ गये। कोई पूरा सूट पहने था, कोई सिर्फ वनियाइन और शलवारमें था और किसीका साफा सिरपर न होकर गलेमें लटक रहा था। वे लोग स्लीपरों और रोड़ों-पर उचकते, फाँदते, धोखेसे एक-दूसरेका पैर कुचलते हुए, विना माँगे ही अपनी राय देने लगे। दस मिनटतक इसी तरह चला-फिरी और रायजनी होती रही; मगर गोलीकी पहेली हल न हुई। आखिरकार मुसाफिर अपनी-अपनी जगह वापस गये और गाड़ी सीटी देकर फिर आगे वढ़ने लगी।

अचानक फजल कादिरकी प्रतिभा जाग उठी और इस वार उसने दूसरे निशानेके लिए पुलका विशाल फौलादी फाटक चुना। फाटक इतना लम्वा-चौड़ा था कि निशाना चूकनेकी सम्भावना ही न थी।

उसकी इस गोलीने तो ऐसा रंग दिखलाया, जो फजल कादिरकी उम्मीदसे कहीं वढ़कर था। गोलीने फौलादी फाटकसे टक्कर लेकर वड़ी जोरदार झनझनाहटकी आवाज की। ड्राइवर अभीतक अनिश्चित-सा था, मगर इस गोलीने उसकी अनिश्चयता दूर कर दी। उसने फौरन ट्रेनको पुलकी तरफ तेजीसे 'वैक' किया (पीछे हटाया) और ले जाकर उसे पिछले स्टेशनकी इमारतकी हिफाजतमें खड़ा कर दिया।

इधर आनन-फाननमें पुलके दोनों फाटक भड़भड़ाकर वन्द कर दिये गये। सवसे ताज्जुवकी वात यह हुई कि फसील (वाच टावर) के धुस्सपर दस-वारह राइफलोंकी थूथनी और उनके पीछे उतनी ही खाकी पगड़ियाँ नजर आने लगीं और कुछ ही मिनटमें ये राइफलें गोलियाँ वरसाने लगीं। पहाड़ियाँ इस अनोखी जंग के शोर-गुलसे गूँज उठीं। दस-पन्द्रह मिनटतक वड़े जोर-शोरसे यह इकतर्फा 'गोलीवारी' होती रही। चूँकि दुश्मन तो कहीं नजर आता न था, लिहाजा सिपाही अधिकांश गोलियाँ इधर-उधर आसमानमें दागते थे; मगर उस तरफ एक गोली भी नहीं छोड़ी गयी, जिधर इस सारे तमाशेका वानी, कूज-पराराका लम्वरदार, लेटा हुआ मन-ही-मन मुसकरा रहा था।

एकाएक गोलियाँ थम गयीं। वुर्जकी आड़से सतर्कतासे साथ कुछ खोपड़ियाँ निकलीं। उसके वाद उठी हुई उँगलियाँ हर तरफ इशारा करके दुश्मनोंकी उपस्थिति इंगित करने लगीं। उँगलियाँ दसों दिशाओंको इशारा कर रही थीं—अगर इशारा नहीं करती थीं, तो सिर्फ उस ओर, जिधर फजल कादिर वैठा था! इसके वाद वहुत गहरा सन्नाटा छा गया। अगले दो घण्टोंमें दो रेलगाड़ियाँ और कोई एक कोड़ी मोटरें तथा सड़कपर चलनेवाली अन्य गाड़ियाँ आयीं; लेकिन वे सव पुलके उसी पार स्टेशनकी आड़में रोक दी गयीं। किसीको पुल पार करनेकी इजाजत नहीं दी गयी।

जव सूरज ढलने लगा, तव सुरंगके मुँहसे एक हथियारवन्द आर्मर्डकार निकली, जो नौशेरासे फ्रान्टियर मेलका उद्धार करनेको भेजी गयी थी। यह आर्मर्डकार शोर मचाती फजल कादिरके नीचे से गुजरती हुई पुलकी तरफ वढ़ी। आर्मर्डकारके भीतर मशीनगनोंके पीछे चाक-चौकन्ने सिपाही वैठे थे। फौलादी गाड़ीमें गोली चलानेके लिए जगह-जगह मोखले वने थे। इन मोखलोंसे रह-रहकर राइफलोंकी थूथनियाँ झाँकती थीं। आर्मर्डकारके अगले हिस्सेके ठीक वीचो-वीच चढ़ी हुई १२ पौण्डवाली एक तोप वड़े डरावने ढंगसे थूथन उठाये थी। उसके पीछे फौलादी ढालकी आड़में तोपची गोलावारीको तैयार डटे हुए थे।

लम्वरदार यह सव गौरसे देखता रहा। जव शामके अँधेरेने पहाड़ियों और घाटियोंके ऊपर अन्धकारकी काली चादर विछा दी, तव वह अपने छिपनेकी जगहसे निकला और तेजीसे वढ़ता हुआ घर जा पहुँचा। दिन-भरके दिलचस्प तमाशेसे वह वहुत खुश था।

जिन दिनों सरहदपर फसाद चलता रहता है, उन दिनों पेशावरका फौजी हेडक्वार्टर अपने अफसरोंकी जानकारीके लिए दिन-भरकी फौजी कार्रवाइयोंका एक वुलेटिन निकाला करता है। इस वुलेटिनके अगले अंकमें अन्य खवरोंके साथ यह खवर प्रकाशित हुई :—

"अटक—अफरीदी कवीलोंने आज अटकके पुलके नजदीक फ्राण्टियर मेलको रोककर लूटनेकी जवरदस्त कोशिश की; मगर पुलपर तैनात पल्टनने वड़ी वहादुरीसे उनका सामना किया, जिससे उनकी कोशिश नाकाम हुई।

वादमें आर्मर्ड ट्रेनकी हिफाजतमें फ्राण्टियर मेल पेशावर लायी गयी। तावक्ते कि दूसरा हुक्म निकाला जाय मामूली गाड़ियोंका आना-जाना मुल्तवी कर दिया गया है। खास-खास जरूरी ट्रेनें ही आयें-जायेंगी। उनकी हिफाजतके लिए इस हेडक्वार्टरने उनके साथ आर्मर्ड ट्रेन भेजनेका इन्तजाम किया है।"

पुलके इस मार्केके वाद दूसरा दिन सन्नाटेमें वीता। तीसरे दिन उद्योगशील वुड्ढेने दो मील दूर खैरावादकी सड़कपर ध्यान देनेका फैसला किया। यहाँ तीसरे पहर फजल कादिर सड़कके ऊपर एक ऊँचे टीलेपर छिपकर जा वैठा। इस टीलेसे पूरव और पश्चिम दोनों तरफसे आने-जानेवालोंका सामना होता था।

इस वार फजल कादिरने अपनी पुरानी राइफलका मुँह नौशेराकी तरफ रखा। वन्दूकको ठीक-ठिकाने जमाकर उसने अपनी पीठकी तरफ सड़कपर आँखें गड़ायीं। इस जगहसे आधा मीलकी दूरीपर एक टीलेके नीचेसे सड़क मुड़ गयी थी। इस तरह देखते

हुए फजल कादिरको ज्यादा देर न हुई थी, कि मोड़पर घूमकर एक 'क्रासले' मोटर सड़कपर आयी। मोटरके अगले हिस्से—रेडियेटर—पर अक्सर लोग खिलौने या झण्डी लगाकर रखते हैं; मगर इस मोटरपर खिलौने या झण्डीकी जगह एक खास शक्लका लाल निशान था, जो यह प्रकट करता था कि मोटर किसी फौजी अफसरकी—स्टाफ कार—है।

बुड्ढे लम्बरदारने फौरन सतर्क होकर राइफल थामी और मोटरकी तरफ पीठ करके वन्दूककी अगली 'मक्खी' पर अपनी तेज आँख गड़ा दी। घरघराती हुई मोटर उसके नीचेसे गुजरी। एक सेकेण्ड वाद ही मोटरकी पीठ उसे दिखायी पड़ी। मोटरके 'हुड'की पुश्त लगा हुआ अंडाकार शीशा जैसे ही उसकी वन्दूककी 'मक्खी'की सीधमें आया, वैसे ही लम्बरदारने घोड़ा दवा दिया। उस क्षण मोटर उससे मुश्किलसे तीस-चालीस गजपर थी।

काँचके टूटनेकी झन्नाहटके साथ गोलीने मोटरके अगले शीशे—विंड स्क्रीन—को खील-खील उड़ा दिया। क्रासलेकार पहले तो सड़ककी दाहनी तरफ ऐसे ढंगसे फिसली, मानो उलटनेवाली हो, मगर शीघ्र ही सम्हल गयी। ड्राइवर भरपूर ताकतसे एक्सेलरेटर को दवाता ही चला गया और मोटर वेतहाशा तेजीसे भाग उठी। पहाड़ियोंमें वन्दूककी प्रतिध्वनि शान्त होनेके पहले ही मोटर धूलके अम्वारमें गायव हो गयी। फजल कादिरने भी पहाड़ी-पहाड़ी चढ़ते हुए कूज-पराराकी राह पकड़ी।

दूसरे दिन पेशावर हेडक्वार्टरके फौजी वुलेटिनमें प्रकाशित हुआ :—

"खैराबाद—आज खैरावाद गाँवके नजदीक सरकारी फौजके जनरल आफिसर कमाण्डिंगकी जानपर हमला करनेकी कोशिश की गई। जनरल साहवकी कारपर गोलियाँ वरसायी गयीं। मगर सौभाग्यसे मोटर खाली थी। उसपर सिर्फ ड्राइवर ही था। ड्राइवरको मामूली चोट आयी।।"

सरहदको थोड़ा गरमानेके लिए फजल कादिरने अपना जो प्राइवेट प्रोग्राम वनाया था, उसके चौथे दिनका जिक्र है। शामके वक्त खैरावादके छोटे स्टेशनका स्टेशन मास्टर नवाव खाँ अपने आफिसमें बैठा काम कर रहा था। उसके सामने मेजपर बिल्टियों और रसीदोंका ढेर था, जिन्हें देख-देखकर वह एक वड़े-से रजिस्टरकी खानापूरी कर रहा था। शाम हो चुकी थी मगर अभी विलकुल अँधेरा नहीं हो पाया था। नार्थ वेस्ट रेलवेके रद्दी वादामी कागजपर रेलवे वावुओंकी 'घसीटी लिपि' में पेंसिलसे लिखे हुए अंकोंको पढ़ सकना कोई मामूली वात नहीं है, इसलिए अंकोंको पढ़नेके लिए नवाव खाँ ने एक धुँआधार वत्ती जला रखी थी।

नवाव खाँ मोटा-सा वदनुमा आदमी था। उसके सिरपर मटमैले रंगका साफा, वदनपर भूरे रंगका अंग्रेजी चेस्टर, टाँगोंमें मैली शलवार और पैरोंमें वहुत पीले रंगके अंग्रेजी बूट थे। इस तरह उसकी पोशाक देशी और विलायती फैशनोंकी वेहूदगियोंका खासा मिश्रण थी। नवाव खाँकी आँखोंपर पीतलकी कमानीवाला चश्मा था, और सामने मेजपर तामचीनीके तामलोटमें चाय भरी रखी थी, जिसे वह बीच-बीचमें पीता जाता था। नवाव खाँ मेहनती आदमी था, और रेलवेका नौकर होनेके लिए जिन-जिन खूबियोंकी

जरूरत होती है, वे भी किसी हदतक उसमें थीं, अगर नहीं थी तो एक चीज, जिसे कहते हैं विनम्रता या मिलनसारी।

उस दिन खैराबादसे बहुत थोड़ी ट्रेनें ही गुजरी थीं। मालगाड़ी और मामूली पैसेंजर ट्रेनोंकी आमद-रफ्त तो मुल्तबी ही थी; रातमें किसी भी ट्रेनका आना-जाना कतई बन्द था। इसलिए स्टेशनपर मामूलीसे ज्यादा सन्नाटा छाया था। प्लेटफार्मपर एक मेहतर मुरदार हाथोंसे झाड़ू लगा रहा था, और लाइनके किनारे लगे हुए नलपर एक भिश्ती ऊँघता हुआ मशक भर रहा था। स्टेशनके बाहर, सीढ़ियोंकी बगलमें, मुसाफिरोंका एक खान्दान अगली पैसेंजर गाड़ीके इन्तजारमें बैठा था, जिसके आनेकी सम्भावना अगले हफ्तेसे पहले कम थी!

एकाएक नवाब खाँको मालूम हुआ कि उसके आफिसका दरवाजा खोलकर दो अस्पष्ट मूरतें कमरेमें दाखिल होकर मेजकी तरफ बढ़ रही हैं। बिना सिर उठाये ही उसने देखा कि दो जोड़े नंगे पैर उसकी मेजके सामने आकर रुक गये।

यह बात नवाब खां-जैसे ऊँचे अफसरकी शानके खिलाफ थी कि वह अपना काम रोककर ऐरे-गैरे चपरकनातियोंकी जरूरतें पूछता फिरे। नंगे पैर फिरनेवाले छोटे आदमियोंको चाहिये कि वे बड़े अफसरोंका रुख देखते रहें; जब बड़े लोग अपने कामसे फारिग हों, तब उनके सामने आजिजीसे अपनी दरखास्त पेश करें। लिहाजा नवाब खाँने आँख उठाकर देखातक नहीं और अपने सरकारी काममें मशगूल रहा।

अगर नवाब खाँ एक बार आँख उठाकर देखनेकी तकलीफ गवारा करता, तो उसे मालूम होता कि सामनेके दोनों आदमी बहुत लम्बे कदके हैं, वे अजीब तरहका लिबास पहने हैं और उन्होंने अपनी शक्लें छिपानेके लिए आँखोंको छोड़कर सारे मुँहपर कपड़ा लपेट रखा है, जिसने उनके चेहरोंको और भी दहशतनाक बना दिया है। इतना ही नहीं, वह यह भी देखता कि एक जंग लगी हुई पुरानी राइफलकी नली खौफनाक ढंगसे उसकी छातीकी तरफ तनी हुई है और उसके तथा उनके दरमियान सिर्फ मेज-भरका फासला है!

कोई तीस सेकेण्डतक यह दृश्य ज्यों-का-त्यों रहा। उसके बाद इन बिना बुलाये मेहमानोंमेंसे एकने, जिसके हाथ खाली थे, स्टेशन-मास्टर साहबका ध्यान खींचनेके लिए फैशनके खिलाफ ढंगसे चायका बर्तन रजिस्टरपर उलट दिया। नवाब खाँने उबलकर जो सिर उठाया, तो सामने तनी हुई राइफल और अपने मेहमानोंकी शक्लें देखकर उसकी रूह कब्ज हो गयी और चीखनेके लिए मुँह खुल गया।

मगर बिजलीकी तरह कौंदकर एक फौलादी पंजेने उसका मुँह इस जोरसे दाब लिया कि निकलती हुई चीख एक घुटी हुई गलगलाहट बनकर ही रह गयी। दूसरे फौलादी हाथने गर्दन पकड़कर उसे इस तरह उठा लिया, जैसे 'क्रेन' गेहूंके गठियेको उठाता है।

नवाब खाँको उठाये हुए वह भीतरी कमरेके दरवाजेतक ले गया। वहाँ रुककर उसने अपने दाँतोंसे नवाब खाँकी पगड़ी खींच ली और दरवाजेकी मजबूत चौखटपर स्टेशन-मास्टर साहबकी नंगी खोपड़ीको एक बार, दो बार, तीन बार ठोकरें दीं। फिर बेहोश नवाब खाँको उठाकर भीतरी कमरेके एक कोनेमें डाल बाहरसे चटखनी चढ़ा दी।

अब दोनों मेहमानोंने बड़ी फुर्तीसे आफिसके बीचोबीच रजिस्टरों, कागजों, फर्नीचर तथा जल सकनेवाली हरएक चीजका बाकायदा अम्बार लगाया। मेजपर एक खुला हुआ कैश-बक्स था, जिसमें सात रुपये तीन आने नौ पाई—उस दिनकी रोकड़-बाकी—पड़ी थी। रेलवेके धनकी रक्षा करना अपना परमकर्तव्य समझकर नौजवान मेहमानने इस रकमको हिफाजतसे अपनी जेबके हवाले किया।

जलती हुई बत्तीका तेल छिड़ककर और उसी बत्तीसे ढेरको सुलगाकर दोनों मेहमान बाहर निकले और दरवाजा उटकाकर चलते बने। जब दरवाजे और खिड़कियोंकी संधोंसे जोरोंसे धुआँ निकलने लगा, उस वक्त ये दोनों लम्बी-चौड़ी मूरतें शहीदानख्वारके नालेकी राह कूज-परारा‌की तरफ तेजीसे बढ़ रही थीं।

अगले फौजी बुलेटिनमें यह वाकया दर्ज हुआ था :—

"खैराबाद··तारीखको २० बजे अफरीदियोंके एक दलने—जिसमें अन्दाजन ५० आदमी थे—खैराबाद स्टेशनपर धावा किया। एक रेलवे कर्मचारी घायल हुआ; मगर चोट गहरी नहीं आयी। आक्रमणकारियोंने स्टेशनकी इमारतमें आग लगा दी और रेलवेकी तहवीलसे तीन सौ सत्तानवे रुपये लूट ले गये।

"यह निश्चय किया गया है कि लाइनकी हिफाजतके लिए खस्सादारोंका सिलसिला नौशेरासे बढ़ाकर अटकतक जारी कर दिया जाय। इसके लिए हर स्टेशनसे लोकल खस्सादार रंगरूटोंकी भर्ती फौरन शुरू की जायगी।"

इस तरह फजल कादिर और उसके बेटे फीरोज खाँकी मुराद पूरी हुई, और फीरोज खाँको सरकार इंगलिशियाकी खिदमतगुजारीका फख्र हासिल हुआ!

एक छोटा लड़का उन्हें खैराबादसे बुलाने आया। खैराबाद जाकर वे मलिक दीवान-शाह तथा तीस अन्य रंगरूटोंके साथ रेलपर सवार होकर पेशावर गये। पेशावरके किलेमें आर्डनेन्सके सब-कण्डक्टरने उनमेंसे हर रंगरूटको एक-एक नयी 'ली इनफील्ड राइफल' दी और दो-दो खाकी कारतूसी पेटियाँ दीं, जिनमें पचास कारतूस भरे थे।

उस दिन मेसमें बियर पीते हुए आर्डनेन्सके सब-कण्डक्टरने सार्जेण्टसे कहा—"आज मुझे बन्दूक देना बहुत अखरा। ये बन्दूकें फैक्टरीसे ताजी आयी हुई एकदम नई हैं। उनमें पहला कारतूसतक फायर नहीं किया गया। और हम लोग ऐसी बढ़िया कोरी राइफलोंको इन बदमाशोंके हाथमें दे रहे हैं। सच मानो, उनके चेहरोंसे खूंख्वारी बरसती है। हमारे अफसर भी कैसे बेवकूफ हैं, जो इन लुटेरोंको हथियार देते हैं।"

उधर फीरोज खाँ अपने दिल-ही-दिलमें जो सोच रहा था, वह सब-कण्डक्टरके विचारोंसे भिन्न नहीं था। जब बन्दूककी रसीदपर फीरोजके अँगूठेका निशान लगवाया गया, तो फीरोजने अपने बापकी तरफ देखकर हिकारतसे कहा—'दाग तो दाग ही है। अंग्रेज साहब भी कैसे बेवकूफ हैं, जो यह समझते हैं कि एक आदमीके अंगूठेका दाग दूसरेके अंगूठेके दागसे जुदा होता है!"

अब फीरोज खाँ हर तरहसे खुश था; लेकिन घर लौटते वक्त एक बातने मजा थोड़ा किरकिरा कर दिया। अभीतक उसने अपने साथके बाकी तीसों रंगरूटोंको अच्छी तरह

नहीं देखा था। लौटते वक्त रेलपर अपने सामने बैठे हुए रंगरूटपर नजर पड़ते ही फ़ीरोज खाँ जल-भुनकर रह गया। उसने देखा, उसके सामने कुण्डका रहनेवाला अयूब गफ्फार बैठा है। अभी हालमें जब फीरोज गाँवसे 'कुछ जरूरी काम'का बहाना करके गायब हुआ था, तब उसकी गैरहाजिरीमें अयूबने अकोड़ा-खट्टक गाँवकी एक नौजवान लड़कीसे निकाह कर लिया था, और उस लड़कीपर फीरोज खाँ की निगाह पहलेसे ही थी।

अपने कामयाब रकीबको रू-बरू सामने देखकर फीरोजके बदनमें आग सुलगने लगी। उसकी जबान तालूसे सट गई, इसलिए उसने किसीसे बातचीत भी न की। गाड़ी पेशावरसे चलकर नासरपुर, तारू जब्बा, जँहगीरा वगैरह स्टेशनोंपर रुकती हुई आखिरकार कुण्डपर ठहरी।

अयूब भी फीरोजके रुखसे उसके मनका भाव समझ गया था, और उसके दिलमें भी फीरोजके लिए वैसी ही दुश्मनीके भाव जग उठे थे। कुण्ड स्टेशनपर वह उतर गया। रकीबके आँखोंके सामनेसे दूर हो जानेपर फीरोजका दिल कुछ ठण्डा हुआ। फिर तो वह खैराबादतक अपने साथियोंसे मजेमें बातें करता गया।

कुछ दिनोंतक खैराबाद और आस-पासके इलाकेमें खामोशी और अमन-चैन रहा। फीरोज खाँको रोज आठ घण्टे, छायामें बैठकर, गुजरती हुई ट्रेनोंको देखना पड़ता था। अपनी इस मेहनतकी उजरतमें उसे सरकारकी तरफसे, मलिक दीवानशाहकी मार्फत, रोज एक रुपया मिला करता था। हाँ, इस रुपयेमेंसे प्राइवेट समझौतेके मुताबिक दीवानशाह अपनी 'दस्तूरी' काट लेता था, और काटता क्यों नहीं, आखिर दीवानशाहको भी तो अपनी लम्बरदारीकी इज्जत बनाये रखनेके लिए कुछ खर्च चाहना ही पड़ता था।

दिनका दो-तिहाई हिस्सा फीरोज खाँका अपना था; उन सोलह घण्टोंको वह कैसे बिताता था, यह तो वही बता सकता है। दो-चार दिन बाद फीरोज खाँने लगातार आठ घण्टेकी ड्यूटीकी मेहनतको कम करनेके तरीके भी निकाल लिए। वह गाँवकी एक छोटी लड़कीको चौकसीपर बिठा देता और खुद चारपाईपर लेटकर या यार-दोस्तोंके साथ ताश या दूसरे खेल खेलकर वक्त काटा करता।

इस तरह दो हफ्ते बड़े चैनसे गुजरे! खैराबादके इलाकेमें इतना अमन-आमान हो गया कि फौजी बुलेटिनमें वहाँकी हालतके बारेमें यह प्रकाशित हुआ :—

"ऐसा जान पड़ता है कि दस-बारह दिन पहले अफरीदियोंका जो दल खैराबादकी दक्षिण-पश्चिमकी पहाड़ियोंपर शोरिश कर रहा था, वह अब उस इलाकेको छोड़ गया है। सेकेण्ड इनफैन्ट्री ब्रिग्रेडका एक दस्ता आज नौशेरासे कुण्ड, खवारा, बारमालीखेल वगैरहका चक्कर लगाकर लौटा है। उसे इन मुकामोंमें कहीं भी दुश्मनोंका कोई निशान नहीं मिला।"

फीरोज खाँकी फौजी मुलाजमतके सोलहवें दिन, खैराबादमें फ्राण्टियर फोर्स राइफल्सके एक मेजर साहब आये। वे खस्सादारोंकी देखभालके लिए तैनात किये गये थे। बातचीतमें उन्होंने दीवानशाहसे कहा—"सरकार तुमसे बहुत खुश है। तुम्हारे आदमियोंने ऐसी मुस्तैदीसे काम किया है कि आस-पासके इलाकेमें बहुत जल्द फिरसे अमन-चैन कायम हो

गया। हमें उम्मीद है कि थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारे वफादार सिपाहियोंकी जरूरत न रह जायगी और खस्सादारोंका दल तोड़ दिया जायगा।"

जब यह खुशखबरी खस्सादारोंकी चौकियोंपर पहुँची, तो वहाँ खुशीके वजाय अफसोस और रंजके आसार नजर आये। फीरोज खाँ खास तौरपर गमगीन-सा हो गया। इधर कई दिनोंसे नौजवान फीरोज फुरसतके वक्त नजदीकके गाँव कुण्डके खस्सादारोंकी चौकीके अरीव-करीव चक्कर काटा करता था। वह ऐसा क्यों करता था, इसका खुद उसे साफ-साफ पता न था। मगर इससे पहले वह खस्सादारोंकी चौकीके अस्सी गजके भीतर ही दो बार छिपकर लेट चुका था। कुण्डकी इस चौकीपर अयूव गफ्फार पाँच और खस्सादारोंके साथ, पटरीके किनारे एक ऊँची जगहपर चारपाईपर वैठे-वैठे, गप लड़ाकर ड्यूटीके घण्टे पूरे किया करता था।

उस दिन अपने छिपनेकी जगहमें लेटे-लेटे फीरोज खाँने एक हास्यजनक स्वाँग देखा। शामके वक्त जब आर्मर्ड ट्रेन लाइनपर पेट्रोल करती (गश्त लगाती) हुई अटकके पुलकी तरफको गुजरी, तो ये छहो खस्सादार एक कतारमें खड़े हो गये और उन्होंने अपनी राइफलें उस ढंगसे आगे बढ़ाई, जैसे सलामीके लिए अंग्रेज़ी फौज 'प्रेजेण्ट'के हुक्मपर बढ़ाती है। इस भोंड़ी नकलसे अपनी चौकसीका सबूत देकर, सारे खस्सादार फिर आरामसे चारपाइयों-पर जा वैठे। सिर्फ एक आदमी चारपाईपर नहीं वैठा। वह था अयूव गफ्फार, जिसके घरमें फीरोज खाँका दिल चुरानेवाली वैठी थी। छिपे हुए फीरोजके ठीक सामनेकी तरफ अयूब गफ्फार एक दरख्तके सहारे जमीनपर वैठ गया।

फीरोजके दिलमें हफ्तोंसे सुलगता हुआ विद्वेष धू-धू करके जल उठा, चेहरेसे हिकारत टपकने लगी। उसने वहुत सम्हलकर राइफलकी नाल खोली और उसमें रेशम-सा चिकना कारतूस खिसका दिया।

अयूबके दोनों कन्धोंपर जनेऊकी तरह कारतूसकी दो पेटियाँ पड़ी थीं। छातीपर जहाँ ये दोनों पेटियाँ गुणाका चिह्न × बनाती थीं, फीरोजने ठीक उस जगह शिस्त लगाई और वहुत चौकन्ना होकर, साँस रोककर, घोड़ा दवा दिया।

फीरोज खाँकी खुशीका ठिकाना न था। आज पहली वार उसकी वन्दूकने आदमी मारा था। आजकी वात वह मरते दमतक गर्वके साथ याद करता रहेगा। गोली अयूबकी छातीमें वैठी। उसका सिर एक वार पेड़से टकराया पर दूसरे ही क्षण उसकी प्राणहीन देह मुँहके बल गिर पड़ी। उसके हाथकी राइफल छिटककर रेलके किनारेकी ढलुवाँ जमीनपर लुढ़कती हुई नीचे आ गिरी।

गोलीकी आवाज सुनकर और अयूबको लुढ़कता देखकर वाकी पांचों खस्सादार जान लेकर भाग खड़े हुए।

कोई घण्टा-भर बाद वे लोग गाँवके कुछ और लोगोंके साथ, बहुत सम्हलते और डरते हुए आये और अयूवकी लाशको उठा ले गये। मगर अयूवकी बन्दूक और कारतूसकी दोनों पेटियोंका पता न लगा।

फौजी वुलेटिनके अगले नम्बरमें प्रकाशित हुआ :—

"कुण्ड—आज अफरीदियोंने कुण्डके नजदीक नार्थ वेस्ट रेलवेकी लाइन उखाड़ फेंकनेकी बहुत जोरोंसे कोशिश की। आक्रमणकारी दलमें अन्दाजन ५० से १०० आदमी-तक होंगे। स्थानीय खस्सादारोंने बड़ी बहादुरीसे सामना करके आक्रमणकारियोंको पहाड़ियोंकी तरफ भगा दिया। इस हमलेमें एक खस्सादार जानसे मारा गया और एक राइफल नम्बरी के० एस० ५३६०१ गायब हो गई।"

यह घटना 'कुण्डकी वारदात'के नामसे मशहूर हो गई। जिन फौजी अफसरोंने लाइनकी रक्षाके लिए खस्सादारोंकी स्कीम निकाली थी, उन्होंने 'कुण्डकी वारदात'को दिखलाकर यह साबित कर दिया कि उनकी स्कीम बहुत कारगर साबित हुई। अगर खस्सादार न होते तो लाइन उखड़ जाती और पेशावरके साथ समूचे हिन्दोस्तानकी आमदरफ्त बन्द हो जाती। नतीजा यह हुआ कि खस्सादारोंको बरखास्त करनेका प्रस्ताव अनिश्चित कालके लिए उठाकर ताकपर रख दिया गया। खस्सादारोंकी नौकरी मुस्तकिल हो गयी।

इस प्रकार अब सभीको सन्तोष हो गया। फौजी अफसरोंको रेलवे लाइनकी रक्षाके लिए नियमित फौज नियुक्त करनेकी चिन्ता न रही। स्थानीय आदमियोंके सहयोगसे थोड़े ही खर्चमें इलाके-भरकी लाइनकी हिफाजत होते देखकर डिप्टी-कमिश्नर साहबको भी खुशी हुई। कुण्डके खस्सादारोंको भी शिकायत नहीं थी। इसमें शक नहीं कि उन्हें अपने साथी अयूब गफ्फारसे हाथ धोना पड़ा था; लेकिन एक तो अयूब गफ्फार बड़ा लड़ाकू और जालिम आदमी था, दूसरे उसकी मौतसे उन सबकी आरामकी नौकरी सदाके लिए पक्की हो गयी, इसलिए अयूबके मरनेका सदमा खस्सादारोंने बहुत दिलेरीसे बरदाश्त किया! मलिक दीवानशाह भी बहुत खुश था। उसकी मातहतीमें तीस आदमी सरकार बहादुरकी खिदमत करते हैं। एक रुपये रोजके हिसाबसे महीनेमें उनकी तनखाहें हजार रुपयेके करीब पहुँच जाती हैं, जिसमें दीवानशाहकी 'दस्तूरी'की रकम भी कम नहीं होती।

हाँ, अगर कोई खुश नहीं थे, तो आर्मर्ड ट्रेनवाले, क्योंकि उन्हें रोज पैट्रोल करना पड़ता था, और उन्हें यह तै करना मुश्किल होता था कि जगह-जगहपर बदमाशोंकी शक्ल-सूरतवाले हथियारबन्द पठानोंके जो दल इधर-उधर घूमते दीख पड़ते थे, उनपर गोली चलायें या नहीं। दूसरा आदमी जो खुश नहीं था, वह था पेशावर किलेका आर्डनेन्सका सब-कण्डक्टर। उसे अभीतक तीस नयी-नयी राइफलोंको इन खूनी खस्सादारोंको दे डालनेका गम सताया करता था।

मगर सबसे ज्यादा खुश अगर कोई था, तो वह फजल कादिरका बेटा फीरोज खाँ। खुदाके फजलसे उसे हर तरहकी आसूदगी थी। कूज-पराराकी एहसान-फरामोश जमीनको खुरच-खुरचकर वह महीने-भरमें भी एक रुपया न पैदा कर सकता था, अब उसे हर रोज एक चमकता हुआ कलदार मिल जाता है। उसका फौजी काम उसकी तबीयतके माफिक है। इस काममें उसे फुरसत भी इतनी मिलती है कि वह जहाँ तबीयत चाहती, पहाड़ोंपर घूमा करता है। उसके हाथमें एक फर्स्ट क्लास नयी राइफल रहती है, जो इधर-उधर गोली नहीं फेंकती, बल्कि आनन-फाननमें ठीक निशानेपर जाकर बैठती है।

कूज-परारामें उसके घरके नजदीक चर्वीसे तर कपड़ेमें लिपटी हुई एक राइफल हिफाजतके साथ जमीनमें गड़ी है। इस राइफलमें किसी जमानेमें तीन जगह 'के० एस० ५३६०१' का नम्बर खुदा था। अपनी कब्रके भीतर राइफल भी अकेली नहीं है। उसका साथ देनेके लिए दो खाकी पेटियाँ भी हैं, जिनमें पचीस-पचीस भरे हुए कारतूस हैं।

अगले साल गर्मियोंमें जब सरहदी पहाड़ियोंके बेटे लूटपाट और खूँरेजीके दिलचस्प कामोंकी तलाशमें फिर बाहर निकलेंगे, तो फीरोज उनके साथ होगा, और उसके हाथमें उन सबसे बढ़कर राइफल होगी।

इस तरह इस मामलेका नतीजा हरएकके लिए खुशीका बायस हुआ, और ऐसा खुशगवार नतीजा पैदा करनेके लिए अगर किसी शख्सको अगली 'आनर्स लिस्ट'में जगह मिलनी चाहिए, तो वह है कूज-पराराका बुड्ढा फजल कादिर, जिसने अटकके पुलके ऊपर अपनी पुरानी जंग लगी हुई राइफलका घोड़ा दवाया था!

———

: १९ :

एक चीनी कलाकार और उसकी कृतियाँ

हालमें एशियाई शिक्षा-कान्फ्रेंसका बनारसमें जो अधिवेशन हुआ था, उसमें एशियाके विभिन्न देशोंसे प्रतिनिधि आये थे। इन प्रतिनिधियोंमें चीन देशके एक महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति मि० जान फू काउ भी थे। काउ महाशयके सदृश विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति संसारमें कम मिलेंगे। वे कवि हैं, लेखक हैं, चित्रकार हैं, क्रान्तिकारी देशभक्त हैं, दृढ़ सैनिक हैं और चतुर सेनानी हैं! काउ महाशयकी प्रतिभामें विरोधी बातोंका विचित्र सम्मिश्रण दिखायी देता है। एक ओर कविकी कमनीय वाणी है, तो दूसरी ओर क्रान्तिकी प्रचण्ड ज्वाला! इधर चित्रकारकी सुकुमार कल्पना है और उधर सैनिकका कठोर कर्तव्य! जिस मनुष्यको लेखनी, तूलिका और तलवारपर एक-सा अधिकार हो, वह निश्चय ही विचित्र कहा जायगा; परन्तु कवि काउ, राजनीतिज्ञ काउ, चित्रकार काउ और सेनापति काउमें—चीनके बाहर—चित्रकार काउ ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इसके दो कारण हैं; एक तो उनकी चित्र-कलाकी प्रतिभा उनकी अन्य बातोंकी प्रतिभासे अधिक बढ़ी-चढ़ी है: दूसरे उनकी कविता चीनी भाषामें होती है। साथ ही उनकी राजनीतिज्ञता और सैन्य-संचालन आदिका सम्बन्ध केवल चीनकी घरेलू राजनीतिसे है, इसलिए बाह्य-संसार चित्रकार काउसे ही अधिक परिचित है।

काउ महाशयका जन्म चीनके क्वांग-टांग प्रदेशमें हुआ था। उन्होंने चीनके प्रसिद्ध चितेरे चू लिनसे चित्र-कलाकी शिक्षा पायी थी। युवक काउका मन टांग और सिंग राज-वंशोंके चित्रोंकी ओर आकर्षित हुआ, और उसने कुछ दिनोंतक उन चित्रोंका अध्ययन भी किया; परन्तु काउकी प्रतिभा चीनी चित्र-कलाकी पुरानी परम्पराके छोटे घेरेमें बन्द रहनेवाली नहीं थी। उन्होंने एक नये मार्गका अवलम्बन किया और शीघ्र ही अपने गुरुसे कहीं आगे निकल गये। उन्होंने अपने चित्रोंमें चीनी चित्र-कलाकी विशेषताओंके प्रभाव को अक्षुण्ण रखते हुए भी उनमें एक नवीनता उत्पन्न करके अपने व्यक्तित्वकी छाप लगा दी।

फिर उन्होंने यूरोपियन कलाकी ओर दृष्टि फेरी, और फ्रेंच शैलीके शिल्पपर खासा अधिकार प्राप्त किया। उन्होंने फ्रेंच चित्र-कला मोशियो वाली सरीखे विख्यात कलाकार की अधीनतामें रहकर सीखी थी।

ऊपर कहा जा चुका है कि महाशय जान फू काउ केवल चित्रकार ही नहीं, बल्कि कवि और लेखक भी हैं। उनकी कविताओंमें 'मेढकीका गान' नामक रचना विशेष महत्त्वपूर्ण है और चीनमें अकसर पढ़ी जाती है। उनकी किताबोंमें 'चित्रांकन करनेकी विधि' और 'मेरे चित्रोंका पाठ' आदिसे उनकी चित्र-कलाका पूरा परिचय मिलता है।

चीनी प्रजातन्त्रके पिता और वर्तमान चीनके जन्मदाता स्वर्गीय डॉक्टर सन-यात-सेनसे चित्रकार काउकी बड़ी घनिष्ठ मित्रता थी। वे काउमें अगाध विश्वास रखते थे। डॉ० सेनके साथ काउने भाग्यचक्रके अनेक उलट-फेर देखे हैं। जब सन-यात-सेनने जापानमें पहली चीनी क्रान्तिकारी सोसाइटी स्थापित की थी, तब उसके सभापतिका पद मि०काउको ही दिया गया था। बादमें वे कैण्टनके चीनी क्रान्तिकारी ऐसोसियेशनके सभापति भी चुने गये। वू चंगके युद्धमें काउ महाशयने तूलिका फेंककर तलवार ग्रहण की, और सेनाका संचालन कर विजय प्राप्त की। सैनिक परिस्थितिकी दृष्टिसे यह विजय ही क्रान्तिकारियोंके लिए सबसे प्रथम सुविधाजनक विजय थी। शान्ति स्थापित हो जानेके बाद कैण्टनके अधिकारियोंने काउको क्वांग-टांग प्रान्तका—जहाँ उनका जन्म हुआ था—गवर्नर बनाना चाहा, परन्तु उन्होंने इससे इनकार कर दिया और अपनी शक्तियोंको रचनात्मक कार्योंमें लगाया। उन्होंने नौकरीसे छूटे हुए सैनिकोंको काम दिलानेमें सहायता दी और मजदूरों तथा श्रमिकोंके बच्चोंके लिए स्कूल खोले। चीनकी शिक्षा-प्रणालीमें जो हेर-फेर हुए हैं, जिनसे वह अन्य सभ्य देशोंकी बराबरी करने योग्य हुई है, उनमें काउ महाशयका बहुत बड़ा हाथ है। उनके समस्त जीवनकी सबसे बड़ी आकांक्षा यही रही है कि चीन—जो पिछड़ी हुई दशामें था—उन्नति करके संसारके अन्य राष्ट्रोंमें सम्मानका स्थान प्राप्त करे।

जब चीनमें कुछ और शान्ति हुई, तो मिस्टर काउने पुनः अपनी तूलिका और रंग सम्हाले। उन्होंने चीनी चित्रकारोंकी सुविधाके लिए एक प्रिंटिंग प्रेस खोला और कई सचित्र पत्र—जैसे 'पिंगमैन'—और 'चैंग-शैंग', आदि—भी निकाले। उन्होंने एक 'स्टूडियो' भी खोला है, जिसमें चीनी चित्रकार बिना रोक-टोकके आकर प्रेरणा ग्रहण कर सकें और उनसे सम्मति और सहायता प्राप्त कर सकें।

काउ महाशयने अपने चित्रोंसे संसारमें ख्याति प्राप्त की है। उन्हें इटली और पनामाकी प्रदर्शनियोंमें स्वर्णपदक मिले थे। बेल्जियमकी प्रदर्शनीमें जो विशेष पुरस्कार घोषित किया गया था, उसे प्राप्त करनेका दुर्लभ सम्मान भी काउ ही को प्राप्त हुआ था। काउ महाशयका स्वभाव बहुत सरल है। वे कभी पैसेके लिए चित्र नहीं बनाते। एक बार एक मंचू राजकुमारने उनसे कोई चित्र बनवाना चाहा परन्तु उन्होंने इनकार कर दिया; क्योंकि एक तो वे पैसा लेकर अपनी कला नहीं बेचते, दूसरे उनके राजनैतिक विचार मंचू-वंशके विरोधी थे।

काउ महाशय अपने साथ भारतवर्षमें अपने बहुत-से चित्र भी लाये हैं, जिन्हें उन्होंने बनारस, कलकत्ता और बम्बईमें प्रदर्शनी करके दिखलाया था। बनारसमें शिक्षा-कान्फ्रेन्सके धूम-धड़क्के और यूनिवर्सिटीके अपरिपक्व वातावरणमें उनके चित्रोंकी उतनी कद्र नहीं हुई, जितनी होनी चाहिये थी। हाँ, कलकत्तेकी ओरियण्टल सोसाइटीके भवनमें उनके चित्रोंकी प्रदर्शनीको बड़ी सफलता मिली। इस प्रदर्शनीका उद्‌घाटन बंगालके सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने किया था। कलकत्तेमें कलाकी प्रदर्शनियाँ प्रायः हुआ करती हैं, परन्तु ऐसे कलापूर्ण चित्रोंका संग्रह शायद ही कभी देखनेमें आया हो।

इस स्थानपर काउ महाशयके चित्रोंका कुछ वर्णन अनुपयुक्त न होगा । कलकत्तेमें उन्होंने जो चित्र प्रदर्शित किये थे, उनमें कुछ तो प्राचीन चित्र थे, पर अधिकांश श्रीयुत काउकी ही कृतियाँ थीं । चीन और जापानमें—विशेषकर जापानमें—घरोंकी सजावटके लिए चित्र टाँगनेकी एक विशेष परिपाटी है । उनके यहाँ प्रत्येक कमरेमें चित्र टाँगनेका एक पृथक् स्थान नियत होता है । हमारे यहाँ तो शीशेमें मढ़ाकर जो तस्वीर टाँग दी, वह दस-बीस वर्षतक ज्यों-की-त्यों टँगी रहती हैं, परन्तु उनके यहाँ यह बात नहीं है । उनका कथन है कि एक ही तसवीरको अधिक दिनतक निरन्तर देखनेसे उसकी नवीनता जाती रहती है, उसका सौन्दर्य और आकर्षण वासी पड़ जाता है । प्रतिदिन देखते-देखते हम अपने अच्छेसे अच्छे चित्रोंका अस्तित्वतक भूल जाते हैं । इसलिए जापानी लोग-यद्यपि उनके पास दस-पन्द्रह चित्र होते हैं—कमरेमें केवल एक ही चित्र टाँगते हैं । दस-पन्द्रह दिनके वाद वे उस चित्रको उतारकर, हिफाजतसे लपेटकर, खास इसीके लिए वने हुए बाँसके चोंगोंमें वन्द करके रख देते हैं, और उसकी जगह दूसरा चित्र निकालकर टाँग देते हैं । इस प्रकार बरावर बदलते रहनेसे उनकी दृष्टिमें उनके चित्रोंका सौन्दर्य वासी नहीं होता । हर दसवें-पन्द्रहवें दिन उन्हें नवीन चित्रके सौन्दर्यका आनन्द प्राप्त हुआ करता है । इस पद्धतिके कारण चीन और जापानके चित्र अकसर लपेटनेवाले—Roll Picture—चित्र हुआ करते हैं । काउ महाशयके चित्र भी लपेटनेवाले चित्र थे । वे या तो रेशमपर वने थे अथवा रेशमपर चिपके हुए थे । इस रेशमके सिरेपर लपेटनेके लिए लकड़ी और सींगके खूवसूरत कारीगरीवाले गोल मुट्ठे लगे हुए थे । आकारमें अधिकांश चित्र तीन फीट से पाँच फीटतक लम्वे तथा डेढ़ फीटसे तीन फीटतक चौड़े थे ।

काउ महाशयके चित्रोंमें सवसे पहली वात—जिसपर दर्शकोंका ध्यान जाता था—थी चित्रोंका विषय । कोई लेखक, कवि या चित्रकार जव कोई रचना करने बैठता है, तो उसके सम्मुख जो सवसे बड़ी समस्या आ खड़ी होती है वह है रचनाका विषय । वह किस चीजको अपनी कृतिका विषय वनावे ? किस वातके द्वारा अपनी कलाको प्रकट करे ? परन्तु 'मास्टर' कलाकारको अपनी रचनाके लिए विषय—सवजेक्ट—खोजनेकी आवश्यकता नहीं होती । संसारकी कोई भी वात, कोई भी वस्तु उसकी रचनाका विषय हो सकती है । साधारणसे साधारण वातको भी वह अपनी प्रतिभासे अलौकिक सौन्दर्यशाली रूप दे सकता है । नोवुल पुरस्कारके विजेता, विख्यात साहित्यिक महारथी मारिस मेटर-लिंककी मशहूर रचनाएँ हैं 'कुत्ता' और 'मधुमक्खी' । काउ महाशयके चित्रोंमें भी यही बात है । उन्होंने साधारणसे साधारण चीजोंके चित्रोंमें अपनी प्रतिभा दरसायी है । उनके चित्रोंके विषय वन्दर, चूहे, मक्खी, मकड़ी, गिद्ध, पुराना मन्दिर, झरना, लोमड़ी, नाव, वाघ, कौवे आदि हैं । हमारे जीवनकी इन नित्यप्रतिकी वस्तुओंको भी अंकित करनेमें उन्होंने कलाकी पराकाष्ठा दिखा दी है । हम लोगोंके हृदयमें प्रत्येक चीजके लिए जो एक आन्तरिक अनुभूति होती है, उसे चित्र-पटपर अंकित कर देना और इस प्रकार अंकित कर देना जो दर्शकोंकी सहानुभूतिको वरवस अपनी ओर खींच ले, कलाकी उत्कृष्टता है । परन्तु इसमें भी एक वात है । कुछ विषय ऐसे हैं, जिनके सम्वन्धमें हमारे हृदयमें पहले ही से

से अनेक विचार जमे हुए होते हैं । चालाक कलाकार थोड़ा-सा आघात देकर हमारे उन भावोंको जाग्रत कर देते हैं । उदाहरणके लिए हम हिन्दुओंके मनमें भगवान् कृष्णके प्रति बचपनसे ही विशेष श्रद्धाके भाव जमे रहते हैं । फल यह होता है कि अनेक ऐरे-गैरे चित्रकार किसी भी ऊटपटाँग आकृतिके सिरमें मोरपंख खोंसकर, उसके होठोंसे लकड़ीका एक टुकड़ा चिपकाकर भगवान् कृष्णका चित्र अंकित कर देते हैं । गीताके उपदेष्टा और भगवान्‌के अवतार योगिराज श्रीकृष्णकी आन्तरिक विशेषताएँ उस चित्रसे प्रकट होती हैं या नहीं, इससे कोई मतलब नहीं । यहाँ तो मोर मुकुट और वंशीके बाह्य चिह्नों—Symbols—को देखते ही हमारे हृदयमें कृष्ण भगवान्‌के प्रति जमी हुई चिरश्रद्धाके भाव उमड़ आते हैं और हम भक्ति-भावसे गद्‌गद हो, उस चित्रकी प्रशंसा करने लगते हैं। उस समय हम यह भी देखनेके लिए नहीं रुकते कि चित्रमें जो वंशी अंकित की गयी है, वह वास्तवमें वंशी ही है कि ठोस लकड़ीकी एक डंडी ! इसे हम सस्ती भावुकताका अनुचित रोजगार (Exploitation of cheap sentimentality) कह सकते हैं, इसीलिए आज दिन भी भारतके बाजारोंमें जर्मनी और आस्ट्रियाकी छपी हुई ऐसी लाखो तसवीरोंकी खपत है, जिनमें गोरी वेश्याओंके चित्रोंकी वेष-भूषामें थोड़ा-सा हेर-फेर करके उन्हें भारतीय देवताओंका रूप दे दिया गया है ! परन्तु जिन चीजोंके लिए हमारे हृदयोंमें पहलेसे किसी प्रकारकी श्रद्धा या घृणा, अच्छे या बुरे भाव नहीं हैं, उनके प्रति हमारी सहानुभूतिको जाग्रत कर देना निस्सन्देह कलाकी बात है । उदाहरणके लिए 'चूहे'को ले लीजिये । चूहेके प्रति हमारे मनमें पहलेसे कोई विशेष बात जमी हुई नहीं है, परन्तु चूहेका इस प्रकारका चित्र अंकित करना, जिससे उसके प्रति हमारी समस्त मानव सहानुभूति उमड़ पड़े, बड़ी दक्षताका काम है । काउ महाशयमें यह दक्षता पूर्ण मात्रामें विद्यमान है । उनके पाँच चित्रोंके सादे 'ब्लाक' यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं ।

चीनी चित्र-कला बहुत उन्नत कला है । उसके चित्रकार जिस किसी चीजको अंकित करते हैं, उसकी मुख्य विशेषताको प्रकट करनेका विशेष ध्यान रखते हैं । या यों कहिये कि वे प्रत्येक वस्तुको उसकी एक प्रधान विशेषताके लिए ही अंकित करते हैं । जैसे यदि वे किसी झरनेका चित्र अंकित करेंगे, तो उसकी तीव्रता और वेगके लिए, अथवा यदि पहाड़की तसवीर बनायेंगे, तो उसकी उच्चताके लिए। यही कलाकी विशेषता है । कैमरेमें वह बात नहीं आती । कैमरेसे आप पहाड़का ऐसा चित्र ले सकते हैं, जिसमें ऊँचाईका नाम भी न हो अथवा झरनेकी फोटो ऐसे कोणसे ली जा सकती है, जिसमें पानीका वेग ही न देख पड़े ।

महाशय काउके अंकित किये हुए 'बाघ'के दो चित्र यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं । रंगोंकी अनुपस्थिति तथा आकारमें कमी हो जानेके कारण इन चित्रोंमें मूल चित्रोंके सौन्दर्यका पचासवाँ भाग भी मुश्किलसे दिखायी पड़ता है । 'बाघ' शब्द कहनेसे ही हमारे मनमें बाघकी हिंस्र प्रवृत्ति, उसका भयावना स्वरूप, उसका क्रोधी स्वभाव, उसका महान् बल और साहस तथा उसकी शाही आन-बान आदि बातें उदय हो आती हैं । 'बाघ' का जो चित्र इन सब बातोंको एकदम प्रत्यक्ष नहीं कर देता, वह व्यर्थ है । 'बाघ'का चित्रांकन केवल

इन्हीं बातोंको प्रकट करनेके लिए ही होना चाहिये। नहीं तो कैमरेसे हम बाघकी ऐसी भी तसवीर खींच सकते हैं, जिसमें वह केवल एक निरीह कुत्तेके समान ही दिखायी दे।

'बाघ'के पहले चित्रको देखिये। उसे देखते ही आपको 'बाघ'के हिंस्र स्वभावका अनुभव होने लगेगा। बाघ एक चट्टानपर खड़ा होकर किसी वस्तुको देखकर दहाड़ रहा है। उसके खड़े होनेका ढंग, गर्दन घुमाकर देखनेकी मुद्रा, गुस्सेसे खड़ी हुई दुम, विकराल दाँत, खालकी धारियाँ आदि बातें ऐसी खूबीसे अंकित की गयी हैं, जो देखते ही बनती हैं। मूल चित्र बाघके स्वाभाविक रंगोंमें चित्रित किया गया है। चित्रमें अंकित चट्टान—जिसपर बाघ खड़ा है—कलाकी दृष्टिसे अपना विशेष महत्त्व रखती है। चित्रकारको बाघको कहीं-न-कहीं खड़ा ही करना था; मगर चट्टानपर—ऊँचाईपर—खड़ा करनेसे चित्रमें एक विशेष बल आ गया है। दूसरे, चट्टानसे बाघके आकार आदिका अनुमान अपने ही आप हो जाता है। यदि चित्रकार उसे किसी वन-बीहड़में खड़ा करता, तो पेड़-पत्तोंका व्यर्थ आडम्बर बढ़ जाता, जिससे केन्द्रीय वस्तुकी विशेषतामें निर्बलता आ जाती। चट्टानमें दरारें दिखाकर एक कलापूर्ण सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया गया है।

'बाघ'का दूसरा चित्र सफेद और काले रंगमें है। इसमें 'बाघ'के हिंस्र भावके साथ-साथ उसका क्रोधी स्वभाव बड़ी उत्तमतासे अंकित है। उसे देखते ही यह भासित होता है कि वह क्रोधसे पागल हो रहा है। अंग्रेजीका एक कथन है 'Beauty requires no explanation' (सौन्दर्यको समझानेकी आवश्यकता नहीं, वह स्वयं ही प्रकट रहता है)। बाघके इस चित्रपर यह कथन अक्षरशः लागू है। बाघके क्रोधका विकराल सौन्दर्य स्वयं ही प्रत्यक्ष है।

कौवोंका चित्र भी बड़ा सुन्दर है। एक कौवा एक बाँसपर बैठा हुआ कोई फल खा रहा है। ऊपर एक-दूसरे बाँसपर एक और कौवा उस फलपर नजर लगाये बैठा है। तीसरा कौवा इस ऊपरवाले कौवेकी नीयत बद देखकर ऊपरकी ओर चोंच उठाये उसे ललकार रहा है और बायें कोनेपर बैठे हुए चौथे महाशय चुपकेसे गर्दन बढ़ाकर इस बातकी फिराकमें है कि यदि औरोंकी निगाह चूके तो वे भी फलमें एक चोंच मार लें! कौवोंकी ये सब चेष्टाएँ ऐसी खूबीसे और ऐसी प्रत्यक्ष रीतिसे अंकित की गयी हैं कि पहली निगाह डालते ही सब बातें प्रकाशकी भाँति स्पष्ट हो जाती हैं। यहाँ जो चित्र प्रकाशित किया गया है, वह साइजमें छोटा हो जानेसे इतना साफ नहीं मालूम पड़ता; मूल चित्र एकदम स्पष्ट है। बाँस बनाकर चित्रकारने कौवोंके बैठनेके लिए उपयुक्त स्थान ही नहीं बना दिया, बल्कि कौवोंके आकारका अनुपात भी प्रत्यक्ष कर दिया। बाँसमें घासका एक पूला भी बँधा हुआ है, जो देहातका स्मरण दिलाता है।

'मछलीका मोह' नामक चित्रमें यह दिखलाया गया है कि जलके ऊपर लटकती हुई किसी लतासे पानीमें एक श्वेत पुष्प झर पड़ा है। बेचारी मछली कोई खानेकी चीज समझकर उसे गपकनेके लिए लपक रही है। मूल चित्रमें रंगोंके खेलसे बड़ा मनोहर सौन्दर्य है। मछली इस प्रकार अंकित है, जिससे उसकी व्यग्रता और वेग साफ़-साफ प्रकट हो रहे हैं। ऊपर लटकती हुई फूलोंसे लदी लता बड़ी सुन्दरतासे दिखायी गयी है। चित्र-

कारने पानीका किनारा—जहाँ लता या पेड़ लगा हुआ है—नहीं दिखलाया और उसे दिखलानेकी आवश्यकता ही नहीं है। काउ महाशयकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जानते हैं कि चित्रको कहाँ खतम करना चाहिये। अधिकांश कलाकार—चित्र-शिल्पी और साहित्य-शिल्पी दोनों ही—अपनी कृतिमें नितान्त आवश्यकतासे कहीं अधिक रचकर overdo करके उसे बिगाड़ देते हैं। काउ महाशय इस दोषसे बरी हैं। वे अपनी कृतिमें जितनी बातें नितान्त आवश्यक हैं, उन्हें छोड़कर उनसे एक बिन्दु भी अधिक नहीं बनाते। थोड़ेमें बहुत प्रकट करना साहित्य और चित्रकारी दोनों ही में बड़ा कलापूर्ण काम है। उसे महान् दक्षता-प्राप्त उस्ताद ही कर सकते हैं। इसीलिए काउ महाशयके चित्रोंमें एक प्रकारका गठीलापन है। यदि उनके चित्रमेंसे आप किसी भी छोटीसे छोटी चीजको हटा दें—या छिपा लें—तो समूचा चित्र ही अधूरा हो जायगा!

यहाँ उनका 'मस्तूल और कुहरा' नामक एक और चित्र भी प्रकाशित किया जाता है। प्रात:कालका समय है। नदीमें कुहरा पड़ रहा है। जलमें पड़ी हुई नावें कुहरेसे बिलकुल ही अस्पष्ट-सी हैं। हाँ, उनके ऊँचे मस्तूल धुँधले-धुँधलेसे दीख पड़ते हैं। नदीके दूसरी ओर सुदूर तटपर एक अस्पष्ट-सी इमारत दिखाई पड़ती है। चित्रके ऊर्ध्वभागके खाली स्थानकी शून्यता मिटानेके लिए—अर्थात् चित्रको 'बैलेन्स' करनेके लिए—चीनी अक्षरोंमें कुछ इबारत लिख दी गयी है।

मिस्टर काउके चित्रोंमें एक बात जो मुझे प्रत्यक्ष मालूम होती थी, वह थी उनकी तूलिकाकी दृढ़ता। उनका उस्तादी हाथ ऐसी दृढ़तासे चलता हुआ मालूम पड़ता है, जिसमें किसी प्रकारका डर, किसी प्रकारकी हिचकिचाहट, किसी तरहकी अनिश्चयता नहीं। उनका संसारका अध्ययन बहुत बढ़ा-चढ़ा और कल्पनाकी उड़ान बहुत ऊँची है। उनके चित्रोंको देखकर ऐसा मालूम होता है कि जिस समय वे किसी चीजका चित्र अंकित करनेके लिए सादा कागज—पट—अपने सामने रखते हैं, उस समय उनके मानस-नेत्रोंको उस सादे पटपर उस वस्तुका चित्र अंकित दिखायी देता है। वे केवल तूलिकाके दो-चार दृढ़ उस्तादी हाथ फेरकर ही उसे रूपमय बना देते हैं।

भारतवर्षमें ऐसे महान् चित्रकार दो ही एक होंगे। ईश्वर करे, हमारी इस पुण्यभूमिमें भी काउके समान प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न हों।*

---

* यह प्रबन्ध 'विशाल भारत'के मार्च १९३१ के अंकमें सचित्र प्रकाशित हुआ था। छपे हुए चित्रोंके ब्लाक ठीक-ठीक न बन सकनेके कारण इस निबन्ध के साथ यहाँ चित्र नहीं दिये गये।

: २० :

कलाकार राय चौधुरी

श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने भारतीय कलाके पुनरुत्थानका जो अनुष्ठान किया, उसने कलाके कुछ ऐसे पुरोहितोंको उत्पन्न किया है, जो अपनी प्रतिभासे भारतके कला-मण्डपको प्रदीप्त कर रहे हैं। कलाके इन प्रतिभाशाली पुरोहितोंमें श्री देवीप्रसाद राय चौधुरीको एक उच्च स्थान प्राप्त है। वैसे तो प्रत्येक कलाकारका अपना एक पृथक् व्यक्तित्व हुआ करता है, जिसकी आभा उसकी कृतियोंमें दीख पड़ती है; यदि कलाकारमें अपना मौलिक या पृथक् व्यक्तित्व न हो, तो वह कलाकार न होकर केवल नक्काल मात्र रह जाता है; लेकिन श्री देवीप्रसादमें कुछ ऐसी विशेषताएँ मौजूद हैं, जो उन्हें ठाकुर-शैलीके—जिसे लोग बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट भी कहते हैं—अन्यान्य चित्रकारों और कलाकारोंसे एकदम भिन्न और स्वतन्त्र स्थान प्रदान करती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि केवल ठाकुर-शैलीमें ही नहीं, वरन् समूचे भारतवर्ष में राय चौधुरी महाशय ही एक ऐसे कलाकार हैं, जो चित्रकार होनेके साथ-साथ अत्युत्तम मूर्तिकार भी हैं। वे जिस आसानीसे कागजपर कोमल बालोंवाले नाजुक ब्रशको चलाते हैं, उसी आसानीसे वे मिट्टीके लोंदे को सुन्दर सजीव आकार प्रदान कर सकते हैं। आधुनिक मूर्ति-कलामें भी वे भारतके, अद्वितीय कलाकारोंमें हैं।

चित्रकार या मूर्तिकार किसी वास्तविक या काल्पनिक व्यक्तिकी तसवीर या मूर्ति बनाया करते हैं, लेकिन किसी जीवित या मृत व्यक्तिकी तसवीर या मूर्ति बनाकर हूबहू मिलान कर देनेसे ही कोई सफल कलाकार नहीं बन जाता। सफल कलाकार बननेके लिए यह आवश्यक है कि चित्र या मूर्तिमें उस व्यक्ति विशेषके स्वभावकी विशेषताएँ (character) तथा उसके आन्तरिक गुण भी स्पष्ट रूपसे दीख पड़ें। इसी प्रकार काल्पनिक व्यक्तियों के चित्रमें यह आवश्यक है कि जिस भाव-विशेषको लेकर कलाकारने कल्पना की है, वे भाव उसकी कृतिसे प्रत्यक्षतः प्रतिबिम्बित हों। देवी बाबूकी कृतियोंमें यह बात स्वतः ही दीख पड़ती है, इसीलिए वे सफल कलाकार कहे जा सकते हैं।

मानव-हृदयके मनोभाव प्रायः सभी कहीं एकसे होते हैं, फिर भी विभिन्न देशोंके निवासियोंका स्वभाव और प्रकृति विभिन्न हुआ करती है। प्रत्येक देशके निवासियोंको जो उपादान आसानीसे उपलब्ध हुए, उनके सहारे उन्होंने अपने मनोभावोंको कलामें व्यक्त करनेके लिए विभिन्न शैलियाँ (टेकनिक) विकसित की हैं। इसीलिए हमें आज संसारमें राजपूत-शैली, मुगल-शैली, प्राचीन अजन्ता-शैली, यूरोपियन-शैली (जिसमें अनेक भेद-प्रभेद हैं), चीनी शैली, जापानी शैली आदि विभिन्न शैलियाँ दीख पड़ती हैं। इस सम्बन्धमें

देवी बाबूका कथन है कि कलाकार जन्मसे ही स्वतन्त्र होता है। उसे किसी विशेष शैली या टेकनिककी बेड़ीमें जकड़कर रखना उसकी प्रतिभाकी हत्या करना है। कलाकारको इस बातकी पूर्ण स्वाधीनता होनी चाहिये कि जीवनको व्यक्त करनेके लिए अपनी स्वाभाविक या जातीय विशेषताको अक्षुण्ण रखते हुए, वह जिस टेकनिक या उपादानका सहारा लेना चाहे, ले। कालिदासने संस्कृतमें कविता की है, तुलसीदासने हिन्दीमें अपनी प्रतिभा दिखलायी है, रवि बाबूने बँगलाके काव्य-सागरको भरा है, शेक्सपियरने अंग्रेजीमें अमर काव्य रचा है। यदि कोई यह कहे कि तुलसीदासने अंग्रेजीमें, या शेक्सपियरने संस्कृतमें कविता नहीं लिखी, इसलिए वे कवि नहीं कहे जा सकते, तो यह निरी ऊल-जलूल बात होगी। वे कवि अपनी भाषाके कारण नहीं, बल्कि अपने कवित्वमय विचारोंके कारण हैं। इसी प्रकार कलाकारकी कृतिमें यदि वास्तविक कला है, तो यह बात निस्सार है कि वह किस शैलीका अनुसरण करता है, अथवा किस माध्यमका व्यवहार करता है। कविकी कलामें तो भाषाके जानने या न जाननेसे बड़ा अन्तर पड़ जाता है, परन्तु सौभाग्यसे चित्रों या मूर्तियों-की भाषा ऐसी विश्वजनीन भाषा है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी भाषा, देश या जातिका हो, देखते ही समझ सकता है। इसलिए उसमें यह दिक्कत भी नहीं पड़ती। इसीलिए देवी बाबू अपनी कृतियोंमें किसी टेकनिक-विशेषके दास न बनकर स्वतन्त्रतापूर्वक विभिन्न प्रकारके टेकनिक और माध्यम व्यवहार करते हैं। उनके बहुतसे चित्रोंमें यूरोपियन टेकनिक मिलेगी। मगर टेकनिक विदेशी होते हुए भी उनकी कृतियोंकी आत्मा ठेठ हिन्दु-स्तानी होती है, या यों कहिये कि उन्होंने यूरोपियन कलाकी टेकनिकको भारतके जातीय और स्वाभाविक ढाँचेमें ढाल दिया हैं। भारतके कुछ अन्य कलाकारोंने भी यूरोपियन टेकनिकका अनुसरण किया है, लेकिन प्रायः उन सबके प्रयासोंमें भारतीयताका ऐसा लोप हो गया है कि उनकी कृतियाँ अजनबी-सी जान पड़ती हैं। रायचौधरी महाशयके चित्रोंकी शैली यूरोपियन होते हुए भी हमें उनमें एकात्मताका बोध होता है, यही उनकी सबसे बड़ी सफलता है।

ठाकुर-शैली या नवीन बंगाल-स्कूलके सम्बन्धमें रायचौधरी महाशयका कथन है कि इस शैलीमें वे विशेषताएँ मौजूद हैं, जिनसे हम उसे भारतीय शैली कह सकते हैं, यद्यपि इस शैलीके अनेक चित्रोंके गठन तथा अन्य बातोंमें अनेक विभिन्न शैलियोंका प्रभाव मौजूद है। लेकिन अभी इस शैलीको एक वैज्ञानिक आधार मिलना बाकी है। जबतक उसे वैज्ञानिक आधार न मिलेगा, तबतक उसमें स्थायित्व आना कठिन है। यद्यपि कुछ अत्यन्त प्रतिभाशाली कलाकार अपनी प्रतिभाके जोरसे उसे कायम रख सकते हैं, तथापि दृढ़ता और शक्ति प्राप्त करनेके लिए उसे एक वैज्ञानिक नींवकी बहुत जरूरत है।

ठाकुर-शैलीके चित्रकारोंने अपना सारा ध्यान व्यक्तियोंको चित्रित करनेमें ही लगाया है, फलस्वरूप उसमें प्राकृतिक चित्रों (Landscapes) का प्रायः अभाव है। यद्यपि श्री गगनेन्द्रनाथ ठाकुरने तथा एक-आध अन्य चित्रकारोंने प्राकृतिक दृश्योंके कुछ अच्छे चित्र अंकित भी किये हैं, परन्तु साधारण तौरपर यह कहा जा सकता है कि इस शैलीमें

प्राकृतिक दृश्योंके चित्र बहुत कम हैं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इस शैली-को अभीतक वैज्ञानिक आधार नहीं मिला। इस विषयमें भी रायचौधरी महाशय बहुत बढ़े-चढ़े हैं। वास्तवमें उन्हें प्राकृतिक चित्रोंके अंकनमें जो कमाल हासिल है, उसपर कोई भी कलाकार गर्व कर सकता है।

देवीप्रसादजीके चित्रोंकी एक बड़ी खूबी यह है कि उनके अंकित व्यक्तियोंमें भाव-सौन्दर्यके साथ-साथ शारीरिक सौन्दर्य भी प्रचुर मात्रामें रहता है। उनकी अंकित मूर्तियोंके अंग अनुपात और गठनमें उत्कृष्ट होते हैं।

आजकल रायचौधरी महाशय मद्रासमें आर्ट स्कूलके प्रिन्सिपल हैं। उनकी अध्यक्षतामें मद्रासमें कलाका अच्छा प्रचार हो रहा है।

'विशाल भारत'में रायचौधरी महाशयके अनेक रंगीन चित्र—जैसे 'कुमारजीवकी चीन यात्रा', 'सुमात्राके पक्षी', 'बरसातमें' आदि—प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँपर उनके कुछ चित्र प्रकाशित किये जाते हैं। गत वर्ष मद्रासमें जो कला-प्रदर्शिनी हुई थी, उसके सम्बन्ध-में 'हिन्दू' ने लिखा था—'चित्रोंको देखकर मनमें ऐसा विस्मय उत्पन्न हो जाता है कि यह कहना कठिन है कि कौन चित्र अच्छा है, कौन रद्दी। फिर भी यदि सबसे अच्छे चित्रोंके नाम बतानेके लिए मजबूर ही होना पड़े, तो हम 'आँधी-पानीमें' और 'महल और झोंपड़े'—इन दो चित्रोंका नाम उल्लेख करेंगे। इन चित्रोंकी परिकल्पना और प्रकाश और रंगोंमें कुछ ऐसी असाधारण चीज है, जिससे उसे शिल्पकलाके श्रेष्ठ उदाहरणके रूपमें पेश किया जा सकता है।' कहना न होगा कि ये दोनों ही चित्र रायचौधरी महाशयके बनाये हुए हैं। इसी सम्बन्धमें 'मद्रास-मेल'ने लिखा था—'आँधी पानीमें' नामक अपूर्ण वाटर कलर चित्र-से प्रमाणित होता है कि शिल्पीको अपने शिल्प-उपादानोंपर असाधारण अधिकार है। इस चित्रको मामूली चित्रोंकी श्रेणीमें छिपाकर नहीं रखा जा सकता—उसका अपना एक पृथक् विशेषत्व है।'

'गोधूलि' नामक चित्रमें ट्रावनकोरके एक समुद्र तटका दृश्य दिखाया गया है। दिन समाप्त हो चुका है। सीमाहीन समुद्रकी ओरसे अन्धकार बढ़ा आ रहा है। समुद्र-तटवासी एक मलाबारी स्त्री एक चट्टानके समीप खड़ी इस दृश्यको देख रही है। चित्रमें रंगोंका ऐसा अपूर्व सामंजस्य है, मानो स्वयं प्रकृति मूर्तिमती बन गयी हो।

दूसरा चित्र 'नमाज' का है। संध्याके अस्पष्ट प्रकाशमें एक धार्मिक वृद्ध 'मगरिबकी नमाज' पढ़ रहा है। संध्याके कुहासेने पीछेकी ऊँची इमारतोंपर एक झीना, परन्तु अत्यन्त मोहक आवरण चढ़ा रखा है।*

---

* मूलतः इस प्रबन्ध के साथ जो चित्र 'विशाल भारत'में प्रकाशित हुए थे, प्रस्तुत पुस्तकमें वे नहीं दिये गये।

: २१ :

रूसका परराष्ट्र-सचिव चिचेरिन

पिछले दस वर्षोंमें संसारके राजनीतिक रंगमंचपर कितने परिवर्तन कितने उलट-फेर हुए ! गत यूरोपियन युद्धने यूरोपके समस्त देशोंमें उथल-पुथल मचा दी । इंगलैण्डमें, जिसे लड़ाईमें विजयी होनेका अभिमान है, पिछले दस वर्षोंमें छै वार मन्त्रिमण्डल वदला जा चुका है, और सातवीं वार पुनः जनरल निर्वाचनकी अफवाह सुनायी पड़ रही है । फ्रान्स-में भी कुछ कम परिवर्तन नहीं हुए । वहाँका मन्त्रिमण्डल ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलकी अपेक्षा अधिक वार परिवर्तित हुआ होगा । जव विजयी देशोंकी यह दशा है, तव वेचारे हारे हुए देशोंकी जो दशा होगी, उसका वर्णन ही व्यर्थ है । रूसमें क्रान्तिके आरम्भिक दिनोंमें जो भयंकर परिवर्तन हुए, वे वीसवीं शताव्दीके इतिहासमें अमिट रहेंगे । रूसकी राजसत्ता वोल्शेविकोंके हाथमें आनेके वादसे वहाँ कुछ स्थिरता आयी । परन्तु परिवर्तन जारी रहे । वहाँ लेनिनका उदय हुआ और ट्राटस्कीका वोलवाला हुआ । लेनिनकी मृत्युके वाद स्टालिनके हाथमें रूसकी वागडोर आयी, और धीरे-धीरे वेचारे ट्राटस्कीका ऐसा पतन हुआ कि उसे मजवूरन निर्वासित वनना पड़ा ।

परन्तु जव समस्त संसारमें परिवर्तनका चक्र चल रहा था और संसारकी राजनीतिके रंगमंचपर नित्यप्रति नवीन मूर्तियाँ उदय होती और क्षण-मात्रमें अज्ञातमें विलीन हो जाती थीं, उस समय भी रूसके पर-राष्ट्र-विभागकी पतवार पकड़े हुए एक छोटी-सी मूर्ति अचल भावसे वैठी थी । पिछले दस वर्षमें संसारमें जो भयंकर तूफान आये, राजनीतिक समुद्रमें जो उथल-पुथलकारी लहरें पैदा हुईं, उनका उस अचल मूर्तिपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । वह उसी दृढ़ भावसे अपने देशका जहाज अन्तर्राष्ट्रीय समुद्रमें खेता रहा । उस दुवली-पतली मूर्तिका नाम जार्ची वैलेण्टिनोविच चिचेरिन है ।

चिचेरिन पिछले दस-ग्यारह वर्षसे रूसके वैदेशिक विभागका अध्यक्ष है । उसका कद छोटा, शरीर दुवला, स्वभाव विनम्र है और कपड़े ढीले-ढाले होते हैं । मास्को नगरके क्रेमलिन नामक स्थानके एक सीधे-सादे, टीमटाम-विहीन क्वार्टरमें वैठकर वह दस वर्षोंसे इस वातके लिए लगातार अथक परिश्रम कर रहा है कि संसारके अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें उसके वारहवाट देशको एक सम्माननीय स्थान प्राप्त हो । साधारणतः एक राज्यवाले दूसरे राज्यवालोंको जो चिट्ठियाँ लिखा करते हैं, वे वड़ी कुटिलता और मक्कारीपूर्ण भाषामें हुआ करती हैं, परन्तु चिचेरिनके पत्र लिखनेका ढंग एकदम खरा और सीधा है । उसमें लगी-लिपटी वातें नहीं होतीं । फल यह होता है कि रूसके पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके

देशोंके वैदेशिक विभागोंके मेजोंपर चिचेरिनके पत्र बमके गोलेके समान जाकर फूटते हैं।

मालूम होता है कि विधाताने चिचेरिनको वैदेशिक राजनीति (Diplomacy) के लिए बनाया था। या यों कहिये कि वैदेशिक राजनीति चिचेरिनकी पुश्तैनी जायदाद है, क्योंकि जिस समय उसका जन्म हुआ था, उस समय उसका पिता पेरिसके रूसी राजदूतावासमें कौन्सिलर था। उसका जन्म सन् १८७२ में हुआ था। रूसके तमवाव नामक प्रान्तमें उसके पिताकी जागीर थी, वहीं चिचेरिनका वाल्यकाल बीता। उसके पिताकी मृत्यु उसके छोटेपनमें ही हो गयी थी; अतः पिताके बाद वह अपने चाचाकी संरक्षकतामें रहा। उसका चाचा एक उदार विचारोंका दार्शनिक था। इस प्रकार चिचेरिनने एक उदारतापूर्ण और शिक्षित वातावरणमें शिक्षा पायी थी। उसने अपने पिताके ही पेशेकी शिक्षा प्राप्त की थी, और उसी पेशेको उसने ग्रहण भी किया था, परन्तु वैदेशिक राजनीतिकी कुटिलतापूर्ण शिक्षा ग्रहण करते समय भी चिचेरिन संगीत और साहित्यका बड़ा प्रेमी था। आज दिन भी जब उसका स्वास्थ्य खराब रहता है, जब इतने बड़े राज्यके वैदेशिक विभागकी वागडोर उसके हाथमें है, जब समस्त पूँजीवादी देश उसके देशके शत्रु हो रहे हैं और उन सबसे रोजमर्राके दाव-पेंचोंकी चिन्ताका भार उसपर है, तब भी थोड़ा अवकाश पाते ही मन बहलानेके लिए चिचेरिन पुस्तकोंका ही सहारा लेता है। सुप्रसिद्ध जर्मन महाकवि गेटे उसे बहुत प्रिय हैं।

शिक्षा समाप्त करनेके बाद चिचेरिन रूसके वैदेशिक विभागमें नौकर हो गया, परन्तु निरंकुश जारोंकी गुलामी उसकी महत्त्वाकांक्षाओंको पूरा न कर सकी। रूसके शिक्षित-समुदायके हृदयोंमें निरंकुश जारशाहीके विरुद्ध धीरे-धीरे क्रान्तिकी जो आग सुलग रही थी, चिचेरिन उससे अनभिज्ञ न था। वह लोगोंके विचारों, आशाओं और आदर्शोंमें सम्मिलित था। इन्हीं वातोंके कारण थोड़े दिन बाद उसने नौकरीपर लात मार दी, देशको खैरवाद कहा और विदेशका रास्ता लिया। विदेशमें रूसी क्रान्तिकारियोंकी एक संस्था 'रशियन सोशल डिमाक्रेटिक पार्टी'के नामसे थी। चिचेरिन इस संस्थामें सम्मिलित हो गया और क्रान्तिकारी कार्योंमें भाग लेने लगा। सन् १९०२में 'रशियन सोशल डिमाक्रेटिक पार्टी'की कान्फ्रेंसमें एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई। पार्टीमें फूट पड़ गयी। पार्टीके अधिकांश लोग कुछ नम्र विचारोंके थे, परन्तु उसमें एक छोटा-सा दल बड़े उग्र विचारोंका था। यह उग्र विचारोंवाली टुकड़ी अधिकांश (मैनशेविक) दलसे पृथक् हो गयी, और 'वोल्शेविक' या अल्पांशके नामसे प्रसिद्ध हुई। चिचेरिन लेनिनके साथ इसी अल्पांश दलमें था।

सन् १९०३से सन् १९१८ तक रूसके अन्य क्रान्तिकारियोंके साथ चिचेरिन भी अज्ञातके गर्तमें संसारके धक्के खाया किया। ये लोग विदेशोंमें भूख, प्यास, दरिद्रता, निर्वासन, राजदण्ड, मृत्यु आदि संसारकी समस्त कठिनाइयोंका सामना करते हुए लगातार अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उद्योग करते रहे। अन्तमें सन् १९१७में जारशाहीके पापोंका घड़ा फूट गया। रूसके पार्थिव ईश्वरके विरुद्ध क्रान्तिका ज्वालामुखी उवल पड़ा। इस ज्वालामुखीकी लपटें उठतीं देखकर रूसके समस्त निर्वासित पुनः रूसकी ओर चल पड़े। निर्वासित चिचेरिन भी, जो उस समय इंगलैण्डमें था, रूस जा पहुँचा।

केवल कुछ महीनोंके अनेकों परिवर्तनोंके बाद रूसमें लेनिनकी प्रधानता हुई। लेनिन-को सबसे पहली चिन्ता यह हुई कि यूरोपियन महायुद्धसे कैसे छुटकारा पाया जाय। वह जर्मनीके साथ सन्धि करनेको तैयार हो गया। इस सन्धिमें जर्मनीने रूससे अपनी मनमानी शर्तें की थीं, मगर लेनिनकी समझमें रूसका कल्याण इस सन्धिके करनेमें ही था; परन्तु लेनिनके दाहिने हाथ ट्राटस्कीने, जो उस समय परराष्ट्र-सचिव था, इस सन्धिपत्रपर दस्तखत करनेसे साफ इनकार कर दिया। चिचेरिन सन्धिमें जर्मनीकी ज्यादती स्वीकार करते हुए भी सन्धि को माननेके लिए तैयार हो गया, और उसने तीसरी मार्च सन् १९१८ के दिन रूसकी ओरसे इस सन्धिपत्रपर हस्ताक्षर किये। इसके बादसे चिचेरिन लेनिनके साथ प्रत्येक बातमें सहयोग देता रहा।

जिस समय चिचेरिनने परराष्ट्र-विभागका भार ग्रहण किया, उस समय रूसका और बाहरी संसारका सम्बन्ध एकदम गड़बड़ीकी दशामें था। यूरोपके साम्राज्यवादी मित्र-राष्ट्र रूसके साम्राज्यवादियोंको गुप्त सहायता देकर रूसमें पुनः जारशाही करनेकी चेष्टामें थे। ट्राटस्की इन रूसी साम्राज्यवादियोंका सामना करनेके लिए देशकी फौजोंको संगठित कर रहा था। उस समय चिचेरिनने मित्र-राष्ट्रोंके हस्तक्षेपके विरुद्ध प्रतिवाद किया। पहले यह प्रतिवाद नम्रतापूर्ण था, परन्तु उत्तरोत्तर वह अधिक उग्र होता गया। अमेरिका-के प्रेसीडेण्ट विल्सनने रूसी जनताके प्रति खुलमखुल्ला सहानुभूति प्रकट की थी, अतः चिचे-रिनको उनसे कुछ आशा थी, इसलिए उसने विल्सनको इस हस्तक्षेपको रोकनेके लिए बहुत गरमागरम पत्र लिखे थे।

सन् १९१८ में पेरिसमें यूरोपके लड़ाकू राष्ट्रोंकी सन्धि सभा एकत्रित हुई। इस सभामें यूरोपके तमाम हारे हुए राष्ट्रोंके भाग्यका निपटारा और जीतके मालका हिस्सा बाँट आदि हुआ, परन्तु इस कान्फ्रेंसमें भी रूसका प्रश्न हल न हो सका। स्वार्थी मित्र-राष्ट्रोंने रूसकी बोल्शेविक सरकारको रूसका शासक माननेसे इनकार कर दिया। उन्होंने केवल यह स्वीकार किया कि रूसके राजनीतिक क्षेत्रमें कई दल हैं और बोल्शेविक भी उन्हीं दलों-मेंसे एक दल है। उन्होंने रूसके प्रश्नका निपटारा करनेके लिए प्रिन्सेज माइलैण्डमें एक सभा बुलायी, जिसमें बोल्शेविकोंके साथ-साथ अन्य रूसी दलोंको भी निमन्त्रित किया गया था। चिचेरिनने इस बातका पक्का इरादा कर लिया था कि जैसे बने वैसे रूसको अन्तर्रा-ष्ट्रीय मैदानमें लाना ही होगा, अतः उसने इस कान्फ्रेंसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। परन्तु अन्य रूसी दलोंने इस कान्फ्रेंसमें शामिल होनेसे इनकार कर दिया। लिहाजा कान्फ्रेंस विफल हो गयी। इधर मित्र-राष्ट्रोंको बोल्शेविक विचारोंके प्रचारका 'हौआ' खाये जाता था, इसलिए उन्होंने रूसकी समस्त सीमाओंपर ऐसा कड़ा घेरा डाल दिया, जिससे रूसका बाहरी संसारसे किसी तरहका राजनीतिक अथवा आर्थिक सम्बन्ध न हो सके।

अब चिचेरिनको बड़ी दिक्कतका सामना करना पड़ा। उसका सबसे पहला और मुश्किल काम था आर्थिक घेरेको तोड़ना और दूसरा काम था राजनीतिक बायकाटको मिटाना। लेनिनकी नीतिके अनुसार चिचेरिनने संसारका ध्यान रूसके आर्थिक महत्त्वकी ओर दिलाया। उसने संसारके देशोंको रूसके कच्चे माल और उसके बाजारोंका महत्त्व

समझाया। उसने मित्र-राष्ट्रोंसे व्यापारीके रूपमें लिखा-पढ़ी आरम्भ की, और उनसे कहा कि वे लोग केवल व्यापार ही जारी रखें तथा उसके लिए राजनीतिक झगड़ोंको स्थगित कर दें। यूरोपके समस्त राष्ट्र गत महायुद्धकी भयंकर आर्थिक कठिनाइयोंसे सँभलनेकी चेष्टा कर रहे थे, इसलिए उन्हें चिचेरिनका प्रस्ताव उचित जान पड़ा। सन् १९२० में मित्र-राष्ट्रोंने कैनेस नामक स्थानमें यह निश्चय किया कि रूसका व्यापारिक वायकाट हटा लिया जाय। इस निर्णयके वाद ही सभी देशोंमें सोवियट रूससे व्यापारी सन्धियाँ करनेके लिए वातचीत शुरू हो गयी।

मगर सोवियट सरकार केवल व्यापारी वातचीतसे सन्तुष्ट नहीं हुई। वह तो कुछ और ही चाहती थी। उसका मतलव था कि सव देशोंसे उसका साधारण राजनीतिक सम्वन्ध हो जाय, जिससे रूसको माल उधार मिलने लगे। इस समय रूसको साखकी सख्त जरूरत थी। रूसके इन दावोंको प्रकट करनेमें चिचेरिन उसका प्रधान वक्ता था। हर एक स्थानमें वह अपने इस दावेको घोषित किया करता था। लूसेन और जेनोआकी सभाओं (सन् १९२२) में वह रूसका प्रतिनिधि वनकर गया था। वहाँ उसने ऐसा व्यवहार किया, मानों वह किसी महान् शक्तिका प्रतिनिधि हो। चिचेरिनको अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समस्याओंका वड़ा अच्छा ज्ञान है। उसकी राजनीति इस आर्थिक नींवपर स्थिर है, इसी कारण जेनोवा और लूसेनकी सभाओंमें, लार्ड कर्जन और लायड जार्जके समान चतुर प्रतिद्वन्द्वी राजनीतिज्ञोंके मुकाविलेमें भी वह तगड़ा पड़ता था।

चिचेरिनकी सवसे वड़ी विजय सन् १९२२में रूस और जर्मनीके वीचमें सन्धि करनेमें हुई। यह सन्धि रैपाल्लो नामक स्थानमें हुई थी। चिचेरिनके अथक परिश्रम और वुद्धिमत्ताका ही यह नतीजा है कि आज रूसकी वोल्शेविक सरकारको संसारके प्रायः दो दर्जन देशोंने स्वीकार कर लिया है।

इंगलैण्डके अनुदार लोगोंको वोल्शेविकोंका 'हौआ' सवसे अधिक सताता है। उसका नाम सुनकर वे चिढ़ जाते हैं, इसलिए इंगलैण्डने अवतक रूसकी सरकारको स्वीकार नहीं किया था। मि० मैकडानल्डकी पहली मजदूर-सरकारने रूससे सम्वन्ध जोड़नेकी चेष्टा की थी, मगर वह असफल हुई। इस वार मि० मैकडानल्डकी इस दूसरी मजदूर-सरकारने रूससे पुनः राजनीतिक सम्वन्ध स्थापित करनेका श्रीगणेश किया है। देखें, वह कहाँतक सफल होता है।

चिचेरिनकी राहमें सवसे वड़ी कठिनाई कम्यूनिस्ट इण्टरनेशनलकी कार्रवाइयाँ हैं। विदेशोंमें इस इण्टरनेशनलके उद्देश्यों और हरकतोंसे अकसर सोवियट सरकारके हितोंको धक्का पहुँचता है। चिचेरिनने थर्ड इण्टरनेशनलसे उसका कोई सम्वन्ध न होनेकी घोषणा भी की, परन्तु इसमें अवतक वह पूरी तौरसे सफल नहीं हुआ है।

चिचेरिनकी वैदेशिक नीति क्या है, वह भी उसीके शव्दोंमें सुन लीजिये। वह कहता है, कि रूसका उद्देश्य है—'अपनी सीमाओंकी रक्षा करना तथा अपनी उपजका विकास करना।' इस नीतिको सफल करनेके लिए यह आवश्यक है कि रूसमें वाहरी और भीतरी दोनों तरह-

की शान्ति स्थापित रहे। इस प्रकार चिचेरिनके नेतृत्वमें रूस इस समय शान्ति और निरस्त्रीकरणका सबसे बड़ा पोषक है। मित्र-राष्ट्रोंकी निरस्त्रीकरण-कान्फ्रेंसमें रूसने निरस्त्रीकरणका जो प्रस्ताव उपस्थित किया था, उसे देखकर सम्पूर्ण संसारके राजनीतिज्ञ दंग रह गये थे।

गत मास समाचार-पत्रोंमें समाचार निकला था कि बीमारी और अस्वस्थताके कारण चिचेरिनने वैदेशिक सचिवके पदसे इस्तीफा दे दिया है।

: २२ :

बर्मी बर्माकी राजधानी माण्डले

माण्डले जानेके लिए रंगून स्टेशनपर पहुँचनेपर मालूम हुआ कि वर्माके वदकिस्मत वाशिन्दोंको रेलकी दुनियामें भी तीन चीजोंके दर्शन मयस्सर नहीं—एक तो कम्पनीकी रेलवे, क्योंकि समूचे वर्माकी रेलवे लाइन सरकारी है, दूसरे वड़ी लाइन (ब्राड गेज) की गाड़ियाँ, क्योंकि सारे वर्मामें सिर्फ मीटर गेजकी वचकानी लाइन है, तीसरे इण्टर क्लास, क्योंकि वर्माकी रेलोंमें थर्ड और सेकेण्डके वीच यह खच्चर दर्जा नहीं होता।

वर्मी थर्ड क्लासका एक विचित्र दस्तूर पहले ही सुन रखा था, वह यह कि आप पहलेसे पहुँचकर जिस सीटपर विस्तर विछा लें, उसपर आपका पुश्तैनी कब्जा हो जायगा—ठीक वैसे, जैसे हिन्दुस्तानपर अंग्रेजोंका। फिर जवतक आप उसका पिण्ड न छोड़ें, तवतक सीट आपकी। पीछे आनेवाले मुसाफिर न तो आपसे विस्तर समेटनेको कहेंगे, न बैठनेको जगह माँगेंगे। वास्तवमें यह कोई कानूनी नियम नहीं है, लेकिन कभी-कभी यार लोगोंके चलाये दस्तूर भी तो कानूनसे कम कूवत नहीं रखते। गोकि इस दस्तूरसे पहले पहुँचनेवाले मुसाफिरको काफी आराम मिलता है, लेकिन इससे थर्ड क्लासकी यात्राकी सारी चहल-पहल-ही गायव हो जाती है। इस दस्तूरने वर्मी थर्ड क्लासको एक मनहूस चीज वना दिया है। हमारे हिन्दुस्तानमें थर्ड क्लासमें जगह पानेके लिए जो तू-तू, मैं-मैं, खींचा-तानी, गाली-गुफ्ता, धक्का-मुक्की और तरह-तरहकी राग-रागनियाँ दीख और सुन पड़ती हैं, वर्माकी रेलोंमें वे सव दिलचस्पियाँ नदारद रहती हैं। नतीजा यह होता है कि 'रश' होनेपर भी वर्मी थर्ड क्लासमें मुहर्रमी सन्नाटा ही रहता है।

रंगूनसे माण्डले एक्सप्रेस दो वजे दिनको चलती है। जगह पानेके लिए कुछ पहले ही मैं स्टेशनपर पहुँच गया। श्री धर्मचन्द खेमका, श्री पटेश्वरी प्रसाद तथा श्री रामसिंहासन पाण्डे आदि वन्धु स्टेशनतक पहुँचाने आये थे। उन्होंने थर्ड क्लासके एक डब्वेपर वाकायदा हमला करके उस सीटपर दखल जमाया और विस्तरा विछाकर उसपर वाजाव्ता मेरा कब्जा घोषित कर दिया।

थर्ड क्लासकी गाड़ियाँ वाहरसे साफ-सुथरी नजर आती हैं, लेकिन भीतर जाकर जो देखा, तो दीवारें, वेंचें और टाँडें सभी 'काली-कलूटी वैंगन लूटी'-सी वदसूरत, विसूरती नजर आयी। जान पड़ता था कि राजा थीवाके जमानेसे कभी उनपर रंग-रोगन ही नहीं किया गया। पहले तो समझमें न आया कि इन गाड़ियोंको वाहरसे ऐसी लकदक चमाचम और भीतरसे ऐसी काली-कलूटी—'तनकी उजली मनकी मैली'—रखनेमें क्या मसलहत

है, लेकिन माण्डलेमें एक जानकारने वताया कि ये गाड़ियाँ सागौन लकड़ीकी बनी हैं और भीतर उनपर रंगके वजाय मिट्टीका कच्चा तेल (Earth oil), जो काले-काले कीचड़की शक्लका होता है, चुपड़ा जाता है, क्योंकि इससे सागौनकी उम्र वढ़ती है।

सवा दो वजे गाड़ी चली। धीरे-धीरे रंगून शहर और उसके दूरतक फैले हुए उपकूल छूटने लगे। अव मैंने डव्वेके मुसाफिरोंपर नजर दौड़ाकर उनकी जन्मपत्री जो मिलायी, तो देखा कि यहाँ भी वारह मसाले इकट्ठे हैं। मेरे ही डव्वेमें वर्मी, चीनी, पंजावी, तमिल, तेलुगु, हिन्दुस्तानी, नेपाली, गुजराती, कचीन और शान—दस विभिन्न जातियों और भाषाओंके प्रतिनिधि मौजूद हैं। साथ ही यह वात भी दीख पड़ी कि छोटे-से-छोटे और गरीब-से-गरीव वर्मीके कपड़े-लत्ते और वदन उसी हैसियतके हिन्दुस्तानियोंकी बनिस्वत कम-से-कम दस गुना ज्यादा साफ-सुथरे हैं।

छोटी लाइन होनेपर भी गाड़ी काफी तेज चलती है और रंगूनसे माण्डलेतकका ३८६ मीलका फासला १५। घण्टेमें तै कर लेती है। दोनों तरफ धानके खेत फैले हैं। पेड़ तो शायद ही कहीं दीख पड़े। जहाँतक नजर जाती है, डहडहा धानी फर्श बिछा दीखता है। बीच-बीचमें जो दो-चार गाँव दीख पड़ते हैं, उनके पगोडोंकी सुनहरी चोटियाँ धूपमें चमचमा रही थीं। पेगू स्टेशनसे आगे वढ़ते ही सुदूर क्षितिजपर काले वादलोंकी शक्लमें पहाड़ी सिलसिला दिखाई देने लगा। यह पर्वत-श्रेणी लगातार माण्डलेतक चली गयी है। रेल पहाड़की घाटीमें होकर ही दौड़ती है। चिराग जले धानके खेत खत्म हो गये और खूव घना जंगल मिला। वादमें अँधेरा हो जानेसे कुछ दीख न पड़ा।

मैंने यह जाननेकी कोशिश की कि रास्तेमें स्टेशनोंपर खाने-पीनेका भी कुछ सामान मिलता है या नहीं। देखा, हर स्टेशनपर वर्मी भोजन बिक रहा है। वाँसकी बहँगीपर दोनों ओर चावल, गोश्त, मछली, 'नप्पी' आदि चीजें लादे वर्मी पुरुष और उनके आगे उन्हें वेचनेवाली वर्मी स्त्रियाँ—साफ-सुथरी, वनी-ठनी—प्लेटफार्मपर दौड़ रही हैं। वाँसके खूव हरे पत्तोंमें वँधे वर्मी भोजनके पैकेट वहुत विकते दीख पड़े। एक वर्मी औरतसे मैंने इशारेसे पूछा कि इन पैकेटोंमें क्या है? उसने मुँह बनाकर अपनी जबानमें कुछ कहा—जिसका मतलव मैंने यही समझा कि यह तुम्हारे खानेकी चीज नहीं है। हाँ, हर स्टेशनपर तमिल मुसलमान 'कॉफी-कॉफी'की आवाज लगाते दीख पड़े। हिन्दुस्तानी भोजनकी अगर कोई चीज नजर आयी, तो वह थी प्याजू। अधिकांश स्टेशनोंपर मुसलमान खोमचेवाले तेलमें तली हुई वेसन और प्याजकी पकौड़ियोंको 'प्याजू-प्याजू'के चीत्कारके साथ बेचते थे। सिर्फ एक स्टेशनपर एक हिन्दुस्तानी हिन्दू अपनी लड़कीके साथ कुछ पूड़ियाँ और तेलकी वनी हुई जलेबियाँ वेचता नजर आया। हाँ, विस्कुट पावरोटी और सोडा-लैमोनेड कई स्टेशनोंपर दीख पड़ा। मैं अपने साथ भोजन लाया था। उसे एक गिलास कॉफीके सहारे गलेके नीचे उतारकर सोनेकी ठानी। डव्वोंमें पटरियाँ लम्बाईमें न होकर बेड़ी हैं और उनके एक ओर रास्ता है। फलतः वे सिर्फ इतनी ही लम्बी हैं कि उनपर सवा चार फीट कदका आदमी मजेमें लेट सकता है; अगर वदकिस्मतीसे आप इससे लम्बे हुए तो या तो सिर निकला रहेगा या पैर।

नींद तो आयी नहीं। सोते-जागते रात काटी। रास्तेके अनेक कस्वोंमें विजलीकी रोशनी दिखायी दी। भारतके अन्य सब प्रान्तोंकी वनिस्वत वर्माके मुफस्सिलमें विजलीका प्रसार कहीं ज्यादा दीख पड़ा। कस्वों और छोटी वस्तियोंमें पव्लिककी विजली न भी हो, तो उनमें जो वड़े-वड़े पगोडे हैं, वे अपने निजी डायनमों रखकर विजली पैदा करते और जलाते हैं। पगोडोंकी चोटीसे लेकर जड़तक विजलीकी वत्तियोंकी मालाएँ दौड़ी रहती हैं। अमावस्याकी रात और वरसातके वादलोंके घटाटोप अन्धकारमें मीलों दूरसे प्रकाशके ये स्तम्भ वड़े सुहावने नजर आते हैं। पौ फटनेके पहले ही माण्डले जा पहुँचा। स्टेशनपर 'ब्रह्मदेश'के प्रकाशक और सम्पादक श्री रामचन्द्र भारतीय, श्री रामचन्द्र विशारद और श्री रामेश्वर त्रिवेदी मौजूद थे। उनके साथ आर्यसमाजको रवाना हुआ।

पहली ही मोड़पर हमारी घोड़ागाड़ी माण्डलेके किलेके नीचे जा पहुँची। सड़क किलेकी खाईंकी वगलसे होकर दौड़ती है। कुछ ही दूर आगे वढ़े थे कि अचानक सामनेसे कोई तीन-चार सौ वर्मियोंकी एक भीड़ आती दीख पड़ी। पुरुष, स्त्रियाँ, वच्चे सभी थे। स्त्रियोंकी तादाद पुरुषोंसे कम नहीं थी। सभीके कपड़े साफ-सुथरे थे। अधिकांश रेशमी लुंगियाँ पहने थे। कोई आँखें मिचमिचाता आ रहा था, कोई जम्हाई लेता। वहुतोंकी वगलमें दरी या छोटे मखमली कालीन दवे थे। किसी-किसीके हाथमें तकिया लटक रहा था। स्त्रियाँ भी वड़े वेतकल्लुफाना ढंगसे चली आ रही थीं, कोई लुंगी सम्हालती, तो कोई जूड़ा लपेटती, किसीके हाथमें पंखा था, किसीके मुँहमें हाथ-भर लम्वा मोटा-सा 'चुट्टा' (चुरुट) था और कोई अपनी सखी या सखाके साथ चुहल करती, चट्टी सटसटाती हुई आ रही थी। अभी सूरज भी नहीं निकला था। इतने गजरदम इस भीड़को देखकर हैरत हुई। मैंने कौतूहलसे पूछा—'इतने तड़के यह भीड़ कहाँसे छूट पड़ी?' श्री भारतीयजीने वतलाया कि रातमें कहीं नाच था। ये लोग रात-भर नाच देखकर वापस लौट रहे हैं।

वर्मियोंकी रंगीन मिजाजी और ऐशपसन्दीकी यह एक झलक थी। वादमें पूछ-ताछसे मालूम हुआ कि जव नाच होता है, तो नाचके शौकीन अपनी-अपनी हैसियतके मुताविक मखमली कालीन, सूती दरी, वाँसकी चटाई या फटा वोरिया वगलमें दवाकर, जन-वच्चों समेत, आ मौजूद होते हैं। महफिलमें वाकायदा अपना-अपना विछावन विछाकर, उसपर वीवी-वच्चों या यार-दोस्तोंके साथ वैठते-लेटते और आरामसे नाच देखते हैं। 'चरीदन-खुरदन' (खानपान) का इन्तजाम भी रहता है। नाचके वीच-वीचमें दोस्त-अहवाव मिलकर खाते-पीते हैं, कभी-कभी 'वोतलकी परी' के साथ भी गर्मजोशी हो जाती है और 'लपची' (नमकीन वर्मी चाय) के दौर तो मुतवातिर चलते रहते हैं। चूँकि वर्मामें स्त्रियोंको हर वातमें पुरुषोंकी समानता प्राप्त है, वल्कि अक्सर स्त्रियोंकी ही प्रधानता है, इसलिए इन महफिलोंमें औरतें भी उतनी ही आजादी और वरावरीसे भाग लेती हैं। रात-भर इसी तरह आमोद-प्रमोद और नाच-रंगमें मसरूफ रहकर, सवेरे महफिल वरखास्त होनेपर ये भलेमानस और भलीमानसिन जम्हाई लेती, आँखें मिल-मिलाती घरोंको वापस आती हैं।

माण्डले आर्यसमाजकी अधपक्की, अधलकड़ीकी इमारत किले और वड़ा वाजारके

नजदीक है। ऊपरके तल्लेमें पाँच-छै कोठरियाँ हैं, जो मुसाफिरोंके लिए धर्मशालाका काम देती हैं। उन्हींमें एक कोठरीमें मैंने भी अड्डा जमाया।

अब माण्डले घूमने निकला। शहर खूब साफ-सुथरा और फैलारा है। और हो क्यों नहीं? कोई पुराना शहर तो है नहीं। सन् १८५७ में—गदरके साल—वर्मी राजा भिण्डनने इसे वसाकर पुरानी राजधानी अमरापुराको यहाँ स्थानान्तरित किया था। इस प्रकार यह शहर वनकर वसा है, न कि वसकर वना है। इरावदी नदी और मेमियोकी पहाड़ियोंके वीच एक मैदानमें माण्डले आवाद है। कुछ सरकारी इमारतों और नये मकानों-को छोड़कर ज्यादातर मकान लकड़ीके हैं। उन्हें देखकर मालूम हो जाता है कि वर्मा सचमुच सागौन (टीक)का मुल्क है। इसी सागौनकी वदौलत ही वर्माको अपनी आजादी खोनी पड़ी थी।

रंगून वर्माकी राजधानी है, और आजकल शिक्षा तथा व्यापारका केन्द्र भी है। किन्तु रंगूनको वर्मी शहर कहना गलत होगा, क्योंकि उसकी आवादीमें वाहरवाले इतनी काफी तादादमें हैं कि वह एक अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्प्रान्तीय शहर वन गया है। हाँ, माण्डले अलवत्ता वर्मी शहर है। यद्यपि भारतकी भाँति ठेठ वर्मा भी देहातोंमें ही रहता है, फिर भी वर्माकी शहराती संस्कृति, सभ्यता, शिष्टाचार और रहन-सहन माण्डलेमें देखा जा सकता है। सन् १८६०से लेकर १८८६ तक इसे स्वतन्त्र वर्माकी अन्तिम राजधानी होनेका गौरव प्राप्त रहा था।

माण्डलेका किला शहरकी एक खास चीज है। आर्यसमाजके विलकुल नजदीक होनेके कारण मैं उसे देखनेके लिए पैदल ही चल निकला, पर भीतर पहुँचनेपर देखा कि वह डेढ़ मील लम्वा और इतना ही चौड़ा है! किलेके चारों तरफ २०० फीटसे अधिक चौड़ी खाई है, जिसमें कमल फूल रहे थे। कभी-कभी इसमें नावोंकी दौड़ भी होती है। किलेके भीतर पचासों इमारतें हैं, जिनमें किसी जमानेमें वर्मी वादशाहोंके अनुचर और अहलकार रहते थे, मगर अव उनमें सरकार इंग्लिशियाके विभिन्न महकमोंके दफ्तर आवाद हैं। इसी किलेमें वह जेल है, जिसमें बैठकर लोकमान्य तिलकने 'गीता-रहस्य' लिखा था। और इसीमें वह वँगला है, जिसमें लाला लाजपतराय निर्वासित करके रखे गये थे। बीचमें वर्मी राजाओंका महल है। महल दस-पन्द्रह फीट ऊँची कुर्सीपर बना है। फाटकपर दोनों ओर तोपें रखी हैं, जिनमें कभी गोला-वारूद पड़ती होगी, पर आजकल तो उनमें चिड़ियोंके घोंसले और कीड़े-मकोड़ोंके उपनिवेश आवाद हैं। कुर्सीकी सीढ़ियाँ चढ़कर चौड़ा सहन मिलता है, जिसके वाद महल है। महल एकतल्ला होनेपर भी काफी ऊँचा है और नीचेसे ऊपरतक लकड़ीका वना है। लकड़ीपर वढ़िया नक्काशी है और दीवारों, खम्भों, दरवाजों, छतों और कड़ियोंतकपर सोना चढ़ा हुआ है। वर्षोंकी उपेक्षा और धूप-पानीसे सोना जगह-जगह मैला पड़ गया है, लेकिन जिस वक्त यह नया होगा, उस वक्त तो उसपर आँख न ठहरती होगी—उस वक्त तो वह अलादीनके तिलिस्मी चिरागवाले महलोंको मात करता होगा। कहते हैं कि इस महलको राजा मिनने सन् १८४५ में पुरानी राजधानी अमरापुरामें वनवाया था, जहाँसे यह ज्यों-का-त्यों उठाकर यहाँ लाकर रखा

गया था। महलमें एक छोटा संग्रहालय भी है, जिसमें बर्माके अन्तिम राजा, रानियों, मन्त्रियों और ओहदेदारोंकी दरवारी पोशाकें तथा राजाके व्यवहारकी कुछ अन्य चीजें रखी हैं, जो समयके प्रभावसे जर्जर हो रही हैं।

माण्डलेकी सबसे मनोरम जगह है माण्डलेकी पहाड़ी। यद्यपि माण्डले मैदानमें वसा है और पहाड़ी सिलसिला उससे दस-पन्द्रह मील दूर है, किन्तु एक एकाकी पहाड़ी भटककर शहरके ठीक उत्तरी भागमें आ निकली है। दूरतक फैले हुए शहरके सिरेपर ९५४ फीट ऊँची यह पहाड़ी ऐसी जान पड़ती है, मानो इरावदी-तटपर सोये हुए नगरके सिरहाने कोई दैत्य सन्तरी पहरा दे रहा हो। पहाड़ीके ऊपर कई मन्दिर-पगोडे हैं। बर्माके अन्य सभी पगोडोंकी भाँति यहाँ भी ऊपर जानेके लिए पहाड़ीकी चारों दिशाओंमें टीन्से ढकी हुई चार सीढ़ियाँ हैं। मुख्य द्वारके दोनों ओर दो अत्यन्त विशालकाय सिंह-मूर्तियाँ हैं। पहाड़ी-के शिखरतक पहुँचनेके लिए करीव एक हजार सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। श्री रामेश्वर त्रिवेदीके साथ मैंने भी चढ़ाई शुरू की। जैसे-जैसे ऊपर चढ़ने लगा, वैसे-वैसे माण्डलेका सारा शहर नजर आने लगा।

कोई ढाई सौ सीढ़ियाँ चढ़ चुकनेपर एक मन्दिर मिला। यह विलकुल नया वना है। यद्यपि यह पहाड़ी और उसका पगोडा प्राचीन कालसे पवित्र स्थान माना जाता है, किन्तु पिछले कुछ वर्षसे ऊ खांटी नामक एक बौद्ध भिक्षु इसके जीर्णोद्धारके लिए हाथ धोकर पीछे पड़ा है। उसने धीरे-धीरे आठ-दस लाख रुपये एकत्रित करके पहाड़ीके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार किया और चार नये मन्दिर वनवाये हैं। इमारतें वनानेका काम अवतक जारी है। हजार-आठ सौ सीढ़ियोंके ऊपर ईंट, चूना, पत्थर वगैरह पहुँचाकर इमारत बनाना कोई मजाक नहीं है। पानीके लिए ऊ खांटीने ऊपरतक नल लगाकर अपना पम्पिंग इंजन बैठा रखा है। रोशनीके लिए भी उसका निजी डायनेमो है। ऊ खांटी एक विचित्र रचनात्मक प्रतिभावाला व्यक्ति है। अकेले दम इतना वड़ा काम कर डालनेके कारण वर्मी जनतामें उसके बारेमें अनेक करामाती किस्से फैल गये हैं।

हम जिस नये मन्दिरमें पहुँचे, वह भी ऊ खांटी का बनवाया हुआ है। इसमें चारों ओर खम्भोंवाला बहुत चौड़ा दालान है और बीचमें एक कोठरी। कोठरीके भीतर एक ऊँचे सिंहासनपर काँचके डोमके भीतर सोनेके प्यालेमें भगवान् बुद्धकी धातु (अस्थि-खण्ड) रखी है। कोठरीके दरवाजोंमें मोटे-मोटे सीखचोंके एकके वाद एक तीन दरवाजे हैं, ताकि कोई अस्थि-खण्डको चुरा न ले जाय। यह अस्थि-खण्ड वही है, जो पुरातत्व-विभागके डॉ० स्पूनरको पेशावरकी खुदाईमें मिला था और जिसे सन् १९१० में भारत-सरकारने वर्मा-निवासियोंको भेंट कर दिया था। दालानके मोटे-मोटे खम्भे चौकोर हैं, और उनके हर एक पक्खेपर भीतिचित्र (फ्रेस्को) वनाये गये हैं। ये चित्र भी नये हैं और यूरोपियन शैलीमें वने हैं। हाँ, उनके विषय जरूर धार्मिक या स्थानीय हैं। कुछमें जातक-कथाएँ चित्रित की गयी हैं और कुछमें प्राचीन वर्मी राजा-रानियों, मन्त्रियों-सेना-पतियों आदिके किस्से दिखलाये गये हैं। सव मिलाकर ढाई-तीन सौके लगभग चित्र

होंगे । कोठरीके आगे दान-पात्र, पुष्प-पात्र, मोमवत्ती-पात्र, धूपवत्ती-पात्र आदि रखे हैं । दान-पात्रमें पैसा डालनेपर पास बैठा हुआ बुड्ढा वर्मी जल्दी-जल्दी रटा हुआ मन्त्र वड़वड़ाकर आशीर्वाद देता है ।

इस मन्दिरसे थोड़ा ऊपर चढ़नेपर बुद्धकी एक खड़ी प्रतिमा मिली । वर्मियोंको हाहाहूती विशालकाय प्रतिमाएँ वनानेका खब्त है । मूर्तियोंमें कला तो कम दीख पड़ती है, पर उनका विशाल आकार वहुत प्रभावोत्पादक है । यह मूर्ति भी लम्वाईमें कमसे कम ३५ फीट होगी । सोना चढ़ा होनेके कारण यह न जान सका कि मूर्ति वनी किस चीजकी है । वहाँ बैठे हुए वर्मी रक्षकने कहा कि वह लकड़ीके एक ही कुन्देकी है । यदि ऐसा है, तो जिस पेड़से वह तराशी गयी होगी, उसका व्यास १२ फीट और तना ४० फीटसे कम न रहा होगा ।

थोड़ा और ऊपर चढ़नेपर एक और भव्य मन्दिर मिला । यह स्थान सवसे बड़ा और अच्छा है । यहींपर चारों दिशाओंसे आनेवाली सीढ़ियाँ मिलती हैं । सामने ही देखा कि भिक्षु ऊ खांटी बैठे भोजन कर रहे हैं । शक्ल-सूरतसे बड़े गम्भीर और इन्तजामकार दीख पड़े । एक मेजपर कुछ सम्मति-वहियाँ पड़ी थीं । उन्होंने मुझसे इशारेसे उनपर कुछ लिखनेको कहा । मैंने उसके पन्ने जो उल्टे, तो सामने हिन्दी अक्षरोंमें 'भूगोल'के सम्पादक श्री रामनारायण मिश्रके हस्ताक्षर नजर आये ।

वहाँसे और ऊपर चढ़कर हमलोग पहाड़ीकी चोटीपर जा पहुँचे । चोटीपर वीचोबीच एक स्तूप है । स्तूपमें चारों ओर चार आले (ताक) वने हैं, जिनमें बुद्धकी एक-एक बैठी हुई प्रतिमा है । बैठी हुई अवस्थामें भी इन प्रतिमाओंकी उँचाई आदमीके कदसे दुगुनी होगी । इधर-उधर लोहेकी कुछ खर्वाकार मूर्तियाँ रखी हैं, जो बौद्धधर्मके आगमनके पहलेके वर्मी देवताओंकी हैं ।

मन्दिर और मूर्तियोंको छोड़ देनेपर भी यह पहाड़ी एक वड़ा रमणीक स्थान है । जैसे-जैसे ऊपर चढ़ते-जाइये, वैसे-वैसे समूचा माण्डले नगर दीखता जाता है । चोटीपर पहुँचनेपर अजीव दृश्य दिखायी देता है । इतनी उँचाईपर मकान पेड़ोंमें छिप जाते हैं, और समूचा शहर पेड़ोंका एक झुरमुट-सा नजर आता है । एक ओर शहर है, दूसरी ओर दस-वारह मीलतक फैले हुए धानके हरे खेत हैं, तीसरी ओर मेमयोकी पर्वतमाला चली गयी है, जिसकी चोटियोंपर वीच-बीचमें पगोडोंके सुनहरे शिखर धूपमें चमक रहे थे और चौथी ओर पहाड़ीकी तलेटीमें आवाद ओबोकी वस्ती और उसके वाद ही इरावदी नदीका विशाल वक्ष दीख पड़ता है । उन दिनों इरावदीमें बड़ी भारी वाढ़ आयी थी, जिससे मीलोंतक सफेद चाँदीकी चादर फैली दीख पड़ती थी । बाढ़के वीचमें ऊपर उठे हुए वृक्ष या टीले टापुओं-जैसे नजर आते थे ।

पहाड़ीकी तलेटीमें पास ही माण्डलेके सुप्रसिद्ध 'सहस्र पगोडा' हैं । यहाँ एक ही स्थान-पर ७२९ स्तूपोंमें संगमरमरकी शिलाओंपर समूचा त्रिपिटक खुदा हुआ है । चोटीसे 'सहस्र पगोडा' भी वड़े सुन्दर दीख पड़ते थे ।

एक ओरकी सीढ़ीसे चढ़े थे, दूसरी ओरकी सीढ़ीसे उतरना शुरू किया। इस ओर भी बुद्धकी एक विशाल—३०-३५ फीट ऊँची—प्रतिमा मिली। मूर्तिके चारों ओर छत-की कार्निसपर फ्रेस्को चित्रोंकी कई कतारें हैं। एक पंक्तिमें केवल फूल-पत्ते ही अंकित किये गये हैं, जो बड़े सुन्दर हैं। एक ठिकानेपर लकड़ीकी बनी हुई अंजगरोंकी दो विशाल आकृतियाँ रखी हैं।

प्रत्येक पगोडाके शिखरपर चारों ओर घण्टियाँ लटकती रहती हैं। इन घण्टियोंके भीतरके लटकन पीपलके पत्तेके आकारके हैं और घण्टीके बाहर लटकते रहते हैं। हवाके हल्के झोंके भी इन पत्तोंको हिला देते हैं, जिनसे घण्टियाँ अपने-आप बजती रहती हैं। ऊ खांटीके स्थानपर लौटकर देखा कि कुछ यात्री इकट्ठे हैं और दस-बारह वर्षका एक बालक श्रमनेर अपना रटा हुआ पाठ सुना रहा है। नगरके कोलाहलसे दूर इस पहाड़ी-पर वैसे ही निस्तब्धता छायी रहती है, फिर इतनी उँचाईपर चिड़ियाँ भी नहीं आतीं, जो उनका कलरव ही सुन पड़े। इस गम्भीर सन्नाटेमें बालक श्रमनेरकी कनकनाती हुई आवाज मन्दिरकी ढलवाँ छतसे टकराकर एक अजीब समा पैदा कर रही थी। दीपावलीकी रात्रिमें माण्डलेकी पहाड़ीपर चढ़ना-उतरना समाप्त हुआ।

पहाड़ीके नीचे प्रधान प्रवेश-द्वारके सामने एक नया मन्दिर बना है, जिसमें बुद्धकी एक लेटी हुई विशाल प्रतिमा है। इस मन्दिरमें बड़ी-बड़ी मेहराबें हैं, जिनकी बनावट अजन्ताके पुराने चैत्योंके आकारकी है। दिनके वक्त भी भीतर कुछ अँधेरा था। लेकिन समूचे अभ्यन्तरमें बिजलीके तार दौड़े हुए थे और जरा-जरा सी दूरपर बल्ब लटक रहे थे। रातमें जब सारे बल्ब जलते होंगे तब बड़ा अच्छा दीखता होगा। यही एक मन्दिर ऐसा दीख पड़ा, जिसमें दरवाजे हैं, बाकी तो बर्माके अधिकांश मन्दिर चारों ओरसे खुले होते हैं, उनमें फाटक या दरवाजे नहीं होते।

बर्माके निम्न (दक्षिणी) भागपर मेघराजकी मेहरबानी रहती है, और वह खूब तर है, लेकिन ऊपरी भागमें बारिश कम होती है, इसीलिए वह खुश्क है। माण्डले इसी ऊपरी भाग—अपर बर्मा—में है। शहरमें ट्राम, बिजली, टेलीफोन, रेल और स्टीमरके स्टेशन आदि सुविधाएँ हैं। पानीकी किल्लत है। नल हैं, मगर हर मकानमें नहीं। आर्यसमाजमें कुआँ है, जिसमें पास-पड़ोसके बहुत लोग पानी भरने आते हैं।

एक दिन श्री निरंजन गलियाराके साथ मेमियोकी सैर की। माण्डलेमें श्री निरंजनजी-का घर भी एक तीर्थस्थान-सा है, क्योंकि उसमें महात्मा गांधी और लाला लाजपतराय अतिथि रह चुके हैं। जब लोकमान्य तिलक माण्डले जेलमें थे, तब निरंजनजीके पिता अक्सर भारतीय भोजन बनवाकर उन्हें जेलमें भेजा करते थे। निरंजनजी स्वयं बहुत संस्कृत और उच्च विचारोंके नवयुवक हैं। उनकी माताजीने बारदोलीके सत्याग्रहमें बहुत काम किया था। मेमियो बर्माकी पहाड़ी राजधानी है। गर्मीमें बर्माके गवर्नर वहीं रहते हैं। माण्डलेसे मेमियोका फासला ४० मील है। रेल भी जाती है। हमलोग मोटरसे गये थे। शहरसे बारह-चौदह मील निकल जानेपर जंगल और पहाड़ियाँ शुरू हो जाती हैं। आगेका रास्ता साँपकी तरह बल खाता हुआ जाता है। एक तरफ पहाड़, दूसरी तरफ

खड्ड, बीचमें 'ज़िगजैग' सड़क। कोई बीस-बाईस मीलपर निरंजनजीने सहसा मोटर रोककर नीचे उतरनेको कहा। शायद मोटर खराब हो गयी है, यह समझकर मैंने पूछा, क्या हुआ ? निरंजनजीने हाथ थामकर मुझे घुमा दिया और कहा—'इस तरफ देखिये।' देखा, अजीब नज्जारा था। बीस मीलकी दूरीपर माण्डलेका समूचा शहर, इरावदीका पाट, उसके उस पार मिंगूनका प्रसिद्ध घण्टा और सगाईकी पहाड़ियोंपर बने हुए पगोडे—सभी चीजें चित्रमें अंकित-से दीख पड़ते थे। मेमियोकी चढ़ाईमें यह स्थान सबसे ऊँचा है और यहाँसे बीस-पचीस मील दूरतकका दृश्य दीख पड़ता है, इसीलिए इसका नाम 'व्यूप्वाइंट' है। 'व्यूप्वाइंट' नामका एक साइनबोर्ड भी यहाँ लगा हुआ था।

मेमियो बहुत खूबसूरत जगह है। वह समुद्रतलसे ४,००० फीटकी उँचाईपर है। वहाँ फूल खूब उगते हैं। सड़कके दोनों ओरके मकानों—बँगलोंके—अहाते रंग-बिरंगे फूलोंसे लहलहा रहे थे। वर्मी लोग फूलोंके बहुत शौकीन होते हैं। घरोंको सजाने और देवताओंपर चढ़ानेके अतिरिक्त वर्मी स्त्रियाँ अपने बालोंमें फूलोंके गुच्छे खोंसती हैं, इसलिए वर्मामें फूलोंका रोजगार भी काफी है। मेमियोके फूल बिकनेके लिए रोजाना ४०० मील दूर रंगून भेजे जाते हैं। मेमियोमें एक खूबसूरत कृत्रिम झील भी देखी। बतलाया गया कि गत महायुद्धमें गिरफ्तार किये हुए तुर्क सैनिक मेमियो लाकर रखे गये थे, और उन्हींसे यह झील खुदवाई गयी थी। दिन-भर मेमियो घूमकर शामको माण्डले वापस आया।

माण्डलेका अराकान पगोडा बहुत मशहूर है। इस पगोडेतक ट्राम जाती है और रेलका शांजू स्टेशन भी इसके नजदीक है। इस पगोडेके भीतर अच्छा खासा मीना बाजार आवाद है। पटी हुई सीढ़ियोंपर दोनों तरफ फूल और मोमवत्तियोंकी दूकानोंके अलावा, खिलौने, छाते, वर्मी कपड़े, मनिहारी, बाँस और लुकका सामान, गहना, मिठाई, चाय आदि—दुनिया भरकी दूकानें हैं। इन दूकानोंपर सजी-बजी वर्मी स्त्रियाँ सौदा बेंचती हैं। मोल-भाव करने और गाहक पटानेमें वे मर्दोंके कान काटती हैं। यहाँ बाँसकी बनी हुई तश्तरियाँ, प्याले, डिब्बे, पानदान, तश्त वगैरह देखकर वर्मियोंकी कारीगरी और कला-दक्षताकी सराहना करनी पड़ती है।

इस मन्दिरकी प्रधान प्रतिमा, जो 'महामुनि प्रतिमा' कहलाती है, किसी धातुकी बनी हुई है। चेहरा तो साफ सोनेका दीख पड़ता है। कहते हैं कि इस प्रतिमाको सन् १४६ में अराकानके राजा चण्डसूर्यने उस समय ढलवाया था, जब बौद्धधर्म नया-नया अराकानमें पहुँचा था। यह मूर्ति अराकानके एक मन्दिरमें थी। सन् १७८४ में जब वर्मियोंने अराकानपर हमला करके उसे फतह किया, तो वे इस पवित्र मूर्तिको म्रोहांगसे यहाँ उठा लाये। इसलिए इस मूर्तिका बड़ा माहात्म्य है। भक्त लोग इसपर सोना चढ़ाया करते हैं। अपनी अपनी हैसियतके अनुसार भक्तगण सोनेका वरक खरीदकर मूर्तिके शरीरपर चिपका देते हैं। मूर्तिके शरीरपर गोंदकी तरहका कोई चिपकनेवाला तरल पदार्थ लगा रहता है। मुखको छोड़कर आप जहाँ चाहें सोना चिपका दें। नतीजा यह है कि मूर्तिके शरीर-पर कई इंच मोटी सोनेकी तह जम गयी है, जो कहीं ऊँची कहीं नीची है। हिन्दू, मुसलमान,

ईसाई--कोई भी मूर्तिके सिंहासनपर चढ़कर सोना लगा सकता है । सिंहासनमें अनेक नग जड़े हैं । बैठी हुई मूर्तिकी ऊँचाई १२।। फीट, कमरका घेरा ९।। फीट और भुजाओंका घेरा ५ फीट है ।

इस मन्दिरमें काँसेकी बनी हुई आदमियोंकी दो छोटी प्रतिमाएँ, सिंहकी तीन मूर्तियाँ और तीन सिरवाले हाथीकी एक प्रतिमा है । ये सब प्रतिमाएँ खण्डित हैं, परन्तु कलाकी दृष्टिसे ये अत्यन्त उत्कृष्ट हैं । ये भी अराकानकी लूटमें प्राप्त हुई थीं ।

एक सप्ताह माण्डलेकी खूब सैर करके एक दिन बड़े सवेरे मैं इरावदी नदीमें स्टीमरसे पगानके लिए रवाना हो गया ।

: २३ :

रोरिककी शान्ति-पताका

संसारमें सरदारों, राजाओं, सम्राटों और राष्ट्रोंमें आदि कालसे ही युद्ध होते चले आते हैं। इन युद्धोंमें अमानुषिकता, क्रूरता, नृशंसता और ध्वंसके जो भयंकर ताण्डव होते हैं, उन्हें देखकर यह विस्मय होता है कि क्या यह सचमुच 'अशरफुल मखलूकात' हजरते इन्सानकी करतूत है। क्या मनुष्य भी इतना पतित, इतना नीच, इतना सर्वनाशी हो सकता है!

शान्तिकालमें मनीषी, कलाकार, वैज्ञानिक और उदारचेता लोग सर्वसाधारणके कल्याणके लिए, मानव-हृदयके आन्तरिक सौन्दर्यके विकासके लिए और मानव-जातिके ज्ञानवर्द्धनके लिए नाना प्रकारकी उपयोगी वस्तुओं, संस्थाओं और कलाके रत्नोंकी सृष्टि करते हैं। ये वस्तुएँ किसी स्थान-विशेषमें या किसी जाति अथवा व्यक्ति-विशेषके पास होनेपर भी एक प्रकारसे समस्त मानव-जातिकी सम्पत्ति हैं; परन्तु युद्धकालमें विजयमदसे मत्त और घृणासे ज्ञानशून्य होकर मनुष्य उन्हें भी बुरी तरह नष्ट कर देते हैं।

इन सत्यानाशी कार्योंको रोकना, उन्हें बुरा बताना तो दूरकी बात है, उलटे यह कहकर उनका समर्थन किया जाता है कि "Every thing is fair in love and war" अर्थात्—प्रेम और युद्धमें सब कुछ उचित है।

युद्धके इन प्रलयकारी हाथोंसे मानव-जातिका कितना नुकसान हो चुका है, इसका अनुमान भी कठिन है। युद्धके नशेमें चूर होकर सेनापतियोंने सैकड़ों प्रकारकी विद्याओं, कलाओं, कारीगरियों तथा विज्ञानोंको सदाके लिए नष्ट कर दिया। कमसे कम उनकी नष्ट की हुई वस्तुएँ और कलाएँ अबतक पुनर्जीवित न हो सकीं, भविष्यमें कभी होंगी या नहीं, इसमें सन्देह है।

रेखागणितके आविष्कारक यूक्लिडने बारह भागोंमें रेखागणित लिखा था। ये बारहों भाग स्कन्दरियाके बृहत् पुस्तकालयमें थे। एक बर्बर विजेताने इस बृहत् पुस्तकालयको जलाकर राख कर दिया। फल यह हुआ कि रेखागणित पुस्तकके बीचके कुछ भाग सदाके लिए लुप्त हो गये। उन भागोंमें गणितशास्त्रका जो ज्ञान भरा था, वह आजतक ज्ञात न हो सका। इसी प्रकार ममी बनानेकी वह विद्या, जिससे मिस्री लोग शवोंको सहस्रों वर्ष-तक सुरक्षित रखते थे; धातु ढालनेकी वह कारीगरी, जिसके द्वारा दिल्लीका लौह-स्तम्भ या कालोससकी मूर्ति बनायी गयी थी तथा पत्थरपर पालिश करनेकी वह कला, जिससे मौर्यकालीन मूर्तियोंपर वज्रलेप किया गया था, आदि न-जाने कितनी कलाएँ और विद्याएँ

ऐसी नष्ट हुईं कि इस बीसवीं शताब्दीमें भी उनका उद्धार न हो सका। स्थापत्य-कलाके कितने अमूल्य नमूने नष्ट किये गये, इसका कोई हिसाब नहीं। विजयनगर, नालन्दा, पार्सिपोलिस, बैबिलन आदिके सहस्रों भग्नावशेष आज भी अपनी मूक भाषामें युद्धकी क्रूरताका इतिहास गा रहे हैं।

सभ्यताके प्रसार और समयके साथ-साथ मानव-जातिने अनेक दिशाओंमें बड़ी उन्नति की है; परन्तु युद्धके इन ध्वंसकारी कृत्योंमें कोई विशेष कमी नजर नहीं आती। गदरमें विजयी अंग्रेजोंने झाँसीके किलेका एक अत्यन्त मूल्यवान् पुस्तकालय जलाकर खाक कर दिया था। चीनके बाक्सर-युद्धमें यूरोपियन लोगोंने पीकिंगके सुप्रसिद्ध ग्रीष्म प्रासाद और वेधशालाको बुरी तरह लूट-खसोटकर नष्ट कर दिया। गत जर्मन महायुद्धमें भी बेल्जियम और फ्रांसकी अनेक अनमोल इमारतें, गिरजे, पुस्तकालय आदि नष्ट हो गये।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें यूरोपियन जातियोंने मनुष्यताके नामपर युद्धके कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियम बनाये। इन नियमोंको प्रायः सभी राष्ट्रोंने स्वीकार किया। इन नियमोंमें एक नियम यह भी बनाया गया कि लड़नेवाले दल दुश्मनोंके मरीजों और घायलोंकी रक्षा करें। इसके लिए 'रेड-क्रास सोसाइटी'का संगठन किया गया, जिसका काम घायलों और बीमारोंकी सेवा-शुश्रूषा करना है। यह निश्चित हुआ कि अस्पतालों और मरीज ले जानेवाले जहाजोंपर रेड-क्रासका झण्डा फहराया जाय, और घायलोंकी गाड़ियों, डोलियों तथा उनकी शुश्रूषा करनेवाले व्यक्तियोंकी वर्दियोंपर रेड-क्रासका झण्डा फहराता हो, अथवा जिस चीजपर रेड-क्रासका चिह्न बना हो, वह पवित्र मानी जाय और उसपर किसी तरहका हमला या गोलाबारी न की जाय। यद्यपि गत महायुद्धमें अक्सर फौजोंने इस नियमका उल्लंघन करके क्रूरताका परिचय दिया, फिर भी इस नियमसे किसी हदतक घायलों और मरीजोंकी रक्षाका प्रबन्ध हुआ; लेकिन युद्धके क्रूर हाथोंसे मानव-जातिकी कीमती विरासतकी—स्थापत्यके अनूठे नमूने तथा अजायबघर, पुस्तकालय, विज्ञानशाला आदि—जन-उपयोगी संस्थाओंकी—रक्षाका अबतक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ।

पिछले कुछ वर्षसे सुप्रसिद्ध रूसी मनीषी और कलाकार निकोलस रोरिक इन चीजोंकी रक्षाके लिए प्रयत्न कर रहे हैं। रेड-क्रासके झण्डेकी भाँति उन्होंने एक झण्डा बनाया है, जो 'रोरिककी शान्ति-पताका'के नामसे प्रसिद्ध है। उनका कथन है कि यह झण्डा कला और ज्ञानके भण्डारोंपर, धार्मिक और सांस्कृतिक स्मारक-चिह्नोंपर तथा मानव-जातिकी अन्य मूल्यवान् निधियोंपर फहराया जाय। जिन स्थानों या वस्तुओंपर यह शान्ति-पताका लहराती हो, वे स्थान वैसे ही पवित्र और सुरक्षित माने जायँ, जैसे रेड-क्रासके झण्डेवाले स्थान, और उनपर हाथ डालना, या उन्हें नष्ट करना एक अन्तर्राष्ट्रीय अपराध माना जाय। यदि संसारके सम्पूर्ण राष्ट्र भावी युद्धोंमें इस नियमका पालन करें, तो मानव-प्रतिभाके बहुमूल्य रत्नोंकी अनायास ही रक्षा हो सकती है।

आगामी १७ नवम्वरको अमेरिकाकी राजधानी वाशिंगटन नगरमें रोरिककी शान्ति-पताका तथा शान्ति-पैक्टका अखिल विश्व-सम्मेलन होगा ।

रोरिक महाशयने पहले-पहल सन् १९०४ में इस विषयको उठाया था । उनका मुख्य उद्देश्य संसार-भरकी प्राचीन, ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक निधियों तथा भाण्डारोंकी रक्षा करना है । अतः किसी विचारशील आदमीको इसमें आपत्ति नहीं हो सकती, इसीलिए रोरिक महाशयको अपने इस प्रयत्नमें वहुत उत्साहवर्द्धक समर्थन और सहयोग प्राप्त हुआ । अमेरिकाकी ३०,००,००० महिलाओंकी प्रतिनिधि श्रीमती डब्ल्यू० डी० स्पोरवर्गने इस पताकाके समर्थनकी प्रतिज्ञा की । जिन संस्थाओं, समितियों, पुस्तकालयों, अजायवघरों, स्कूलों और राजनीतिज्ञोंने इस पताकाका समर्थन किया, उनकी संख्या वहुत अधिक है । अनेक संस्थाओंने इस शान्ति-पताकाको अपनी इमारतोंपर फहराना भी शुरू कर दिया है । जेनेवाकी लीग ऑफ नेशन्सके म्यूजियम कमीशनने एकमतसे इस प्रयत्नका समर्थन किया है ।

शान्ति-पताकाका पहला सम्मेलन सन् १९३१ में वेल्जियमके व्रजेस (Bruges) नगरमें मिस्टर सी० टुलपिंककी अध्यक्षतामें और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायकी स्थायी अदालतके सभापति मारक्विस अडाचीकी संरक्षतामें हुआ ।

दूसरा सम्मेलन भी सन् १९३२में व्रजेसमें ही हुआ । यह सम्मेलन पहले वर्षकी अपेक्षा वहुत उत्साहपूर्ण और सफल हुआ । शान्ति-पताकाका समस्त संसारमें प्रचार करनेके लिए अनेक योजनाएँ स्वीकार की गयीं । व्रजेस नगरकी ओरसे 'शान्ति, कला, विज्ञान और परिश्रमका रोरिक-संघ'के लिए एक पृथक् भवन भेंट किया गया । इस भवनके संग्रहालयके लिए पेरिस नगरने तथा और वहुतसे सज्जनोंने अनेक मूल्यवान् चीजें भेंट कीं । इस सम्मेलनमें फ्रेञ्च गवर्नमेंटके प्रतिनिधिके रूपमें आनरेविल लियो गेरमोप्रे, पेरिस नगरके प्रतिनिधिके रूपमें कौन्सिलर व्रनेसो, ग्रेट-व्रिटेनके प्रतिनिधि ड्यूक ऑफ अर्गिल और प्रोफेसर मरे तथा अन्य उन्नीस राष्ट्रोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे । बेल्जियमके बादशाहके नामपर सम्मेलनके प्रतिनिधियोंका स्वागत किया गया था । साहनुभूतिके सन्देश भेजनेवालोंमें न्यूयार्कके सेनेटर कोपलैण्ड, वेल्जियमके प्रसिद्ध कवि मारिस मेटारलिंक तथा फ्रांसके मार्शल लियोते आदि थे । भारतवर्षसे डॉक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर जगदीश-चन्द्र बोस, सर सी० वी० रमन, श्री असित हाल्दार तथा महाबोधि सोसायटीने सहानुभूति और सहयोगके पत्र भेजे थे । निकट-भविष्यके लिए अनेक व्यावहारिक प्रस्ताव पास करके यह सम्मेलन समाप्त हुआ था ।

इस वर्ष, इसी १७ नवम्वरको इस शान्ति-पताकाका अखिल विश्व-सम्मेलन वाशिंगटनमें होगा । अमेरिकाके वर्तमान राष्ट्रपति मि० रूजवेल्टकी पत्नी श्रीमती रूजवेल्टने इस सम्बन्धमें लिखा है—'जो लोग यह समझते हैं कि अतीतमें जो कुछ भी अच्छा था, भावी पौधोंके मार्ग-प्रदर्शन और उपयोगके लिए उसकी रक्षा की जाय, ऐसे लोग मेरी समझमें रोरिक-पैक्टके आदर्शोंसे प्रभावित हुए विना नहीं रह सकते ।'

रोरिक महाशय कहते हैं—'अज्ञानका अन्धकार दूर होनेपर मानव-जातिको सभ्यताका प्रकाश दीख पड़ता है, फिर धीरे-धीरे वह शिक्षा प्राप्त करती है। उसके बाद समझ आती है, फिर सुरुचि आती है, और इन सबका सम्मिश्रण उच्च संस्कृतिका द्वार खोलता है। सर्वोच्च आनन्द, सर्वोच्च सौन्दर्य और सर्वोच्च ज्ञानका घनीभूत रूप संस्कृति है। बिना संस्कृतिके इकट्ठा हुए किसी प्रकारका विकास सम्भव नहीं। जहाँ संस्कृति होगी, वहाँ शान्ति होगी, सफलता होगी और जटिल सामाजिक समस्याओंका समाधान होगा। इसलिए अपनी नवीन पौधके लिए हमें पुरानी सांस्कृतिक परम्परा तथा संस्कृतिके प्राचीन भण्डारों और स्मारकोंको सुरक्षित रखना चाहिये।

'हमारे कला और विज्ञानके अनमोल रत्न कितने हैं, और कहाँ-कहाँ हैं, इसकी भी कोई सूची संसारमें मौजूद नहीं है। इस शान्ति-पताकासे इन सार्वभौमिक निधियोंके लिए लोगोंके मनमें श्रद्धा और सम्मान उपजेगा। उनकी रक्षाका विचार उत्पन्न होगा। शान्ति-पताकाका उद्देश्य केवल युद्धकालमे ही इन निधियों और रत्नोंकी रक्षा करना नहीं है, वरन् शान्तिकालमें भी उन्हें बचाना है, क्योंकि शान्तिके समय भी अनेक प्राचीन इमारतों आदिको लोगोंने जान-बूझकर या उपेक्षासे नष्ट कर दिया है।

'वास्तवमें तोड़-फोड़, नाश और विध्वंसके कामोसे मनुष्यता ऊब उठी है। उपयोगी रचनात्मक कार्य मानव-आत्माका एक मौलिक गुण है। जो वस्तु हमारी आत्माको ऊपर उठाती हो, उसे उच्च भावनाओंसे परिपूरित करता हो, उस वस्तुका हमारे जीवनमें प्रधान स्थान होना चाहिये।

'सारा संसार शान्तिके लिए तरस रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी भाषामें और अपनी सामर्थ्य-भर शान्तिके लिए इच्छुक है, क्योंकि शान्ति ही मनुष्यको सम्पूर्णताकी ओर ले जाती है।

'सभी चीजें एक साथ नहीं हो जातीं। अतः शान्ति भी एक साथ स्थापित न हो सके, तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु कम-से-कम शान्तिका आह्वान तो सारे संसारमें गूँज उठे। हम इतना तो करें, जिससे हमारे युगमें रचनात्मक परिश्रम और सच्चे सहयोगकी मोहर लगी हो।

'राष्ट्रोंने घायलों, बीमारों और अस्पतालोंका सम्मान करना सीख लिया है। अब उन्हें कला और ज्ञान-विज्ञानके भण्डारों, धार्मिक स्मारकों और सांस्कृतिक निधियोंका सम्मान करना सीखने दो। इस प्रकार हमलोग नाशकारी बातोंसे हटते हुए शान्तिकी ओर अग्रसर होंगे।

'रेड-क्रासका झण्डा शारीरिक स्वास्थ्यका रक्षक है। भगवान् करे, हमारी शान्ति-पताका मानव-जातिके आध्यात्मिक स्वास्थ्यकी रक्षा करे।'

———

: २४ :

आजादीका सिपाही

भारतवासी बहुत दिनोंसे किश्तीदार टोपी पहनते आते हैं। ये टोपियाँ कीमती रेशम, पश्मीने और मखमलसे लेकर सस्ते-से-सस्ते गजी-गाढ़े और छालटीनतककी बनती थीं। बरेली-रामपुरके अंचलकी ओर इसका अधिक प्रचार था, इसलिए कोई-कोई इसे रामपुरी टोपी भी कहते थे, मगर जबसे महात्मा गांधीने सस्ती समझकर गाढ़ेकी किश्तीदार टोपीका इस्तेमाल शुरू किया, तबसे लोगोंने उसे गांधी-टोपी या 'गांधी-कैप'का लक़ब दे डाला। उसके बाद जबसे गांधीजीने असहयोग-आन्दोलन शुरू किया, तबसे इस टोपीका एक अपना विशाल इतिहास तैयार हो गया है। इस टोपीसे भारतके अंग्रेज शासक ऐसे भड़कते हैं, जैसे लाल कपड़ेसे साँड—बल्कि उससे भी ज्यादा। इस टोपीकी बदौलत अनेक बाबुओंको अपनी नौकरीसे हाथ धोना पड़ा, या टोपी छोड़नी पड़ी। पुलिसके न जाने कितने डण्डे इस टोपीपर बरसे होंगे। मद्रासमें एक अंग्रेज पादरी साहबको भी यह टोपी पहननेके कारण डण्डोंका मजा चखना पड़ा था। बहुतसे अंग्रेज तो उसे राज-द्रोहका चलता-फिरता संस्करण समझते हैं।

अंग्रेजोंको अपने सुविस्तृत साम्राज्यपर गर्व है, अपने साम्राज्यकी राजधानी लन्दन महानगरीपर गर्व है; और अपने महामहिम सम्राट्पर गर्व है। लन्दन महानगरीमें बकिंघम पैलेस नामक विशाल राजप्रासाद है, जिसमें सम्राट् निवास करते हैं।

सन् १९२७में एक दिन लन्दन-निवासियोंने आश्चर्यसे देखा कि इसी सफेद राजद्रोही गांधी टोपीसे ढकी हुई एक सफेद दाढ़ी कुछ अजीब शानसे बकिंघम-पैलेसकी सीढ़ियोंपर चढ़ रही है। इस दाढ़ीने राजमहलमें प्रवेश करके हिज मैजेस्टी किंग जार्ज दि फिफ्थ, किंग ऑफ ग्रेट-ब्रिटेन, आयरलैंड एण्ड डोमीनियन्स बियाण्ड दि सीज ऐण्ड इम्परर ऑफ इण्डियासे भेंट की, और इस बातचीतमें सम्राट् महोदयको बताया कि कांग्रेसकी आवाज समस्त भारतकी आवाज है, अगर ग्रेट-ब्रिटेन भारतसे सद्भाव बनाये रखना चाहता है, तो उसे कांग्रेसको सन्तुष्ट करना चाहिये। राजद्रोही गांधी-टोपीमें सम्राटसे भेंट करने-वाली यह दाढ़ी भारतीय पार्लमेण्ट (लेजिस्लेटिव एसेम्बली)के सभापति स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेलकी थी।

स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेलका सारा जीवन केवल एक शब्दमें बताया जा सकता है। वह है 'संग्राम'। हिन्दुस्तानकी आजादीके इस वीर सिपाहीकी सारी जिन्दगी युद्ध करते बीती। वह लड़ते-लड़ते जिया और लड़ते-लड़ते मरा।

गुजरातकी पेटलाद तहसीलके कमरसद ग्राममें एक कुरमी किसान परिवार रहता था। परिवारकी माली हालत बहुत मामूली थी। उसका धन अपने हल-बैल और अपना बाहुबल था। उन्नीसवीं शताब्दीमें इस परिवारमें एक व्यक्ति जवेरभाई (जवाहिर भाई) पटेल थे। जवेरभाई गुजरातके उन वीर किसानोंमेंसे थे, जो शान्तिकालमें जिस योग्यतासे हल चला सकते थे, तो जरूरत पड़नेपर उसी योग्यतासे तलवार भी चला सकते थे। खेत काटना उनका काम था—चाहे वे अनाजकी फसलोंके हों, या लड़ाइयोंके। बादलोंका गरजना सुनकर उनका मन प्रसन्न हो उठता था, तो युद्धका डंका और कड़खोंकी आवाज उन्हें मस्त कर देती थी। सन् १८५७ के तूफानी दिनोंमें जब बागियोंने आजादीका झण्डा उठाया, तो जवेरभाईने भी हलकी मुठिया छोड़कर तलवारकी मूठ पकड़ी, और तीन वर्षतक घरसे लापता रहे। बादमें पता लगा कि वे झाँसीकी महारानी लक्ष्मीबाईके साथ तथा इधर-उधर युद्ध-क्षेत्रोंमें विचरण करते फिरते थे। इन्हीं जवेरभाईने तीन पुत्रोंको जन्म दिया। इनमेंसे एक पुत्र छोटी अवस्थामें ही परलोकवासी हो गये। बाकी दो पुत्रोंने—विट्ठलभाई पटेल और वल्लभभाई पटेलने जो आम तौरपर प्रेसिडेण्ट पटेल और सरदार पटेलके नामसे प्रसिद्ध हैं—देशके वर्तमान स्वाधीनता-संग्राममें जो भाग लिया है, वह भारतके किन्हीं अन्य दो भाइयोंको नसीब नहीं हुआ।

विट्ठलभाई पटेल पैदायशी सिपाही थे। उनकी रग-रगमें राजनीतिक योद्धा और सेना-पतिके गुण भरे थे। विट्ठलभाई और वल्लभभाई दोनोंने कानूनका अध्ययन करके प्रैक्टिस शुरू की—विट्ठलभाईने बोरसदमें और वल्लभभाईने गोधरामें। वल्लभभाईकी इच्छा बैरिस्टर बननेकी थी, लेकिन घरकी आर्थिक अवस्थाके कारण वे कालेजतक भी न पहुँच सके, और उस समय मुख्तारी पास करके ही उन्हें सन्तोष करना पड़ा। उन्होंने मुख्तारी शुरू की, और वह खूब चली। जब उनके पास कुछ पूँजी जमा हो गयी, तो उन्होंने विलायत जाकर बैरिस्टर बननेकी ठानी। वल्लभभाई कामके आदमी हैं, बातोंके नहीं। वे जो कुछ करना होता है, करते हैं, उसे गाते नहीं फिरते। उनकी विलायत-यात्राके सम्बन्धमें भी यही बात हुई। उन्होंने एक जहाजी कम्पनीसे लिखा-पढ़ी करके जानेका भी ठीक कर लिया; लेकिन बड़े भाई—विट्ठलभाई—तकको इसका पता न था। लेकिन अंग्रेजीमें दोनों भाई वी० जे० पटेल लिखे जाते थे। इससे इत्तफाकसे जहाजी कम्पनीकी एक चिट्ठी वल्लभभाईके बजाय विट्ठलभाईके हाथमें पड़ गयी। इससे उन्हें पूरा हाल मालूम हुआ। उन्होंने वल्लभभाईसे कहा कि मैं बड़ा भाई हूँ, इसलिए पहले मुझे बैरिस्टर बनने दो, बादमें तुम बनना। छोटे भाईने बड़े भाईकी बात मान ली, और पन्द्रह दिनके भीतर ही विट्ठलभाई लन्दनके लिए रवाना हो गये। विट्ठलभाईके बैरिस्टर बनकर लौटनेपर, तीन वर्ष बाद, वल्लभभाई बैरिस्टरीके लिए गये।[1]

विट्ठलभाईकी बैरिस्टरी अच्छी चली। बैरिस्टरीमें हजारों तरहके लोगोंके सम्पर्कमें आने और दुनियाके ऊँच-नीचको देखनेका उन्हें काफी मौका मिला। इससे उन्हें लोगोंका

१. 'वीर वल्लभभाई'—गुजरातीमें—लेखक: श्री महादेव हरभाई देसाई।

अच्छा अनुभव प्राप्त हुआ। ऐसा अवसर देशके हजारों आदमियोंको मिलता है; लेकिन इन अवसरोंका अध्ययन करके उससे अनुभव और ज्ञान कितने आदमी प्राप्त करते हैं?

विट्ठलभाईने 'मार्ले-मिण्टो रिफार्म'के अनुसार वनी हुई वम्वईकी प्रान्तीय कौंसिलमें प्रवेश करके सार्वजनिक जीवनका श्रीगणेश किया। वादमें वे दिल्लीकी इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके मेम्वर चुने गये। सामाजिक सुधारोंके सम्वन्धमें पटेल महाशयने जो अन्तर्जातीय विवाह-विल पेश किया था, उससे एक जमानेमें देशके तमाम रूढ़ि-प्रिय लोगोंमें काश्मीरसे कन्याकुमारीतक आग लग गयी थी। यह विल यद्यपि उस समय पास न हो सका; मगर इससे दो वातें प्रत्यक्ष होती हैं। एक वात तो यह कि विट्ठलभाईका कार्यक्षेत्र सिर्फ राजनीतितक ही परिमित न था, वल्कि जीवनके अनेक क्षेत्रोंमें उनकी शक्ति लगती थी। दूसरी वात यह कि वे अत्यन्त दूरदर्शी थे।

निर्भीकता, तेजस्विता, दृढ़ता, लगन, जिद्दी स्वभाव आदि वातें पटेल वन्धुओंने अपने पितासे पायी हैं, और ये गुण ऐसे हैं, जो नेता वननेके लिए अनिवार्य हैं। स्वर्गीय एनी वेसेन्ट-के होमरूल-आन्दोलनके समय विट्ठलभाईके उग्र राष्ट्रीय विचार पहले-पहल दिखाई दिये। रौलट-विलके सम्बन्धमें विट्ठलभाईने इम्पीरियल कौंसिलमें जो विरोध किया था, वह चिर-स्मरणीय रहेगा। सन् १९१९ के मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारोंपर देशके वहुतसे नरमदलीय नेता सन्तुष्ट हो गये थे। कांग्रेसमें भी वहुतसे लोग सुधारोंके पक्षमें थे; परन्तु इस दूरदर्शी राजनीतिज्ञने यह भलीभाँति समझ लिया था कि ओस चाटनेसे प्यास नहीं वुझती। इन ओछे सुधारोंसे कुछ होना-जाना नहीं, अतः पुरानी इम्पीरियल कौंसिलने माण्टेग्यू-चेम्स-फोर्ड सुधार देनेके लिए जिस समय सरकारके प्रति कृतज्ञताका प्रस्ताव पास किया, जिसका समर्थन बंगालके वेताजके वादशाह स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ वनर्जीतकने किया था, उस समय कौंसिलमें सिर्फ दो ही व्यक्ति ऐसे थे, जिन्होंने सुधारोंकी निस्सारता वताते हुए उस प्रस्ताव-का विरोध किया था। इन दो व्यक्तियोंमें एक विट्ठलभाई थे।

सन् १९१६ की वम्वईकी स्पेशल कांग्रेसके स्वागताध्यक्ष विट्ठलभाई थे। उसके वाद वे कांग्रेसके मन्त्री रहे। वम्वईकी म्यूनिसिपैलिटीके वे कई वर्षतक चेयरमैन भी रहे। अपनी चेयरमैनीके जमानेमें चारों ओरसे विरोध और पार्टीवन्दीके झगड़े होते हुए भी उन्होंने, लोक-निन्दाकी परवा न करके, नगर-शासनमें जो सुधार किये थे, आजतक बम्वई-निवासी उनका आदरसे स्मरण करते हैं।

महात्मा गांधीके असहयोग-आन्दोलनमें विट्ठलभाईने कोई प्रमुख भाग नहीं लिया। यद्यपि वे सदा कांग्रेसके साथ रहे, परन्तु उनकी नीतिपर लोकमान्य तिलकका प्रभाव महात्माजीके प्रभावसे कहीं अधिक था। जव स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू और देशवन्धु दासने स्वराज्य-पार्टीका संगठन शुरू किया, तव विट्ठलभाई फिर क्षेत्रमें आये। वे बम्वई नगरसे एसेम्वलीके सदस्य चुने गये, और स्वराज्य-पार्टीने उन्हें अपना उपनेता वनाया। एसेम्वलीके वाद-विवादमें उनके तीखे व्यंग्यों और आक्रमणोंसे सरकारी पक्षवालोंके छक्के छूट जाते थे। सरकारी पक्षके एक उच्च-पदाधिकारीने उन्हें 'कटुभाषी' और 'वक्‌वक् वोलनेवाला' (Talkative) कहा था।

सन् १९२५में एसेम्बलीके प्रथम गैर-सरकारी सभापतिका चुनाव हुआ। सरकारी पक्षवालोंने श्रीयुत रंगाचारियरको उम्मेदवार बनाया और स्वराज्य-पार्टीने विट्ठलभाईको। यह संघर्ष बड़ा विकट था। दोनों ओरसे सारी शक्ति लग रही थी। अन्तमें केवल दो वोटोंके बहुमतसे विट्ठलभाई सभापति निर्वाचित हुए।

एसेम्बलीके सभापति बनकर विट्ठलभाईने जो इतिहास निर्माण किया, उसपर भारत-को नहीं, सारे संसारके वैधशासनके समर्थकोंको गर्व हो सकता है। एक तो माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारोंके नियम पहलेसे ही ऐसे संकुचित बनाये गये थे, जिसमें आजादीकी बू-तक न थी, दूसरे सरकारी पक्षके सदस्य पग-पगपर रुकावटें और उलझनें पैदा करते थे। ऐसी दशामें चारों ओरसे नियमोंसे जकड़े और विरोधियोंसे घिरे रहकर भी विट्ठलभाईने जिस स्वाधीनता, जिस दबंगी, जिस साहस और जिस योग्यताका परिचय दिया था, वह संसारके इतिहासमें अपना सानी नहीं रखता। सभापतिके अधिकारोंकी रक्षा और व्यवस्थापिका-की स्वाधीनताकी रक्षाका इतना बड़ा हामी संसारकी वर्तमान व्यवस्थापिकाओंमें शायद ही कोई हो। विट्ठलभाई सभापतिके कार्यका परिचालन बिना किसी पक्षपातके करते थे। एसेम्बलीके नियमोंकी उपेक्षा करनेवाला कोई भी व्यक्ति—चाहे वे महामना मालवीयजी हों, या भारतके कमाण्डर-इन-चीफ हों, या भारत-सरकारके होम मेम्बर हों—सभापतिसे डाँट खाये बिना नहीं बचता था।

उस समयकी एसेम्बली भी एक देखने-योग्य चीज थी। एक ओर सरकारने आई० सी०एस० के मेम्बरोंमेंसे चुन-चुनकर सबसे योग्य और वाद-विवादपटु व्यक्तियोंको सरकारी मेम्बर बनाया था, दूसरी ओर गैर-सरकारी सीटोंमें देशके प्रमुख नेता नेहरूजी*, माल-वीयजी, लालाजी, जिन्ना आदि जगमगाते थे। विट्ठलभाईकी अदम्य निर्भीकता और स्वाधीनतासे नौकरशाही मन-ही-मन कुड़मुड़ाकर रह जाती थी। उनकी 'रूलिंग' अकसर सरकारी पक्षवालोंपर बमके धड़ाकेकी तरह उतरती थी। विट्ठलभाई किसी बातका एकाएक निश्चय नहीं करते थे। वे अत्यन्त परिश्रमसे प्रत्येक बातको हरएक पहलूसे देखते, उसे मनन करते, उसमें पूरा वक्त लगाते, फिर उसपर अपनी राय कायम करते थे। साधारण लोगोंको इन बातोंका पता तो न रहता था, इसलिए उनके लिए पटेल साहबकी रूलिंग सहसा आकस्मिक दुर्घटनाके रूपमें उतरती जान पड़ती थी।

सरकारके विरोधपर भी जब विट्ठलभाई एसेम्बलीके सभापति चुन लिये गये, तब सरकार पक्षवालोंने अपने मनमें समझा कि यद्यपि उनका उम्मीदवार सभापति नहीं चुना गया, फिर भी विरोधी पक्षके सबसे कटु-वक्ताका मुँह तो बन्द हो गया, क्योंकि सभापति बनकर विट्ठलभाई किसी विषयपर कुछ कह नहीं सकते थे। मगर जब विट्ठल-भाईने एसेम्बलीका शासन शुरू किया, तब शीघ्र ही सरकारको मालूम हुआ कि कटु-वक्ता पटेलकी अपेक्षा मौन सभापति पटेल कहीं अधिक विकट विरोधी हैं।

एक उच्च अंग्रेज पदाधिकारीने विट्ठलभाईके कठोर शासनसे जलकर कहा था—"He is impartially unfair" अर्थात्—'उनका बर्ताव पक्षपातरहित रूपसे

* पण्डित मोतीलाल नेहरू।

सभीके लिए अन्यायपूर्ण है।' विट्ठलभाईकी निष्पक्षताका इससे बड़ा सबूत नहीं हो सकता। पब्लिक सेफ्टी बिल, एसेम्बली बम-केस रिजर्व-बैंक बिल आदिके सम्बन्धमें विट्ठलभाईकी रूलिंग इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जायगी। पटेल-जैसा महान् व्यक्तित्व न रखनेवाला कोई अन्य सभापति इस प्रकारकी रूलिंग दे सकेगा, इसमें बहुत सन्देह है।

बात यह है कि विट्ठलभाईने संसारके समस्त देशोंके विधानोंका अध्ययन किया था। भारतमें माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारोंमें जो विधान बनाया गया था, उसका उद्देश्य यह था कि बाहरसे देखनेमें भारतका विधान उत्तरदायी लोकतान्त्रिक विधान-सा दीख पड़े; परन्तु वास्तवमें सारी शक्ति नौकरशाहीके हाथमें बनी रहे। लेकिन विधान आखिरकार मनुष्योंका बनाया हुआ होता है और यह असम्भव है कि मनुष्यकी बनायी हुई चीज सर्वांगपूर्ण हो। विचक्षण बुद्धि पटेलने इस शासन-विधानकी सारी कमजोरियोंको अच्छी तरह समझ लिया था, और एक चतुर सेनापतिकी भाँति वे जानते थे कि शत्रुके कमजोर स्थानोंपर ही आक्रमण करना चाहिये। अतः वे इन्हीं कमजोरियोंपर प्रहार करके देशकी स्वाधीनताकी लड़ाई चलाते थे। उनके प्रहार ऐसे नपे-तुले और ऐसे स्थानोंपर होते थे, जहाँ उनकी जीत निश्चित होती थी। उनका कार्य देखकर इंगलैण्डकी कंजरवेटिव पार्टीके नेता और ग्रेट-ब्रिटेनके भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री मि० बाल्डविनको भी यह कहना पड़ा था—"मि० पटेलका एसेम्बलीका शासन देखकर लार्ड डल्सबाटरकी याद आ जाती है।"

विट्ठलभाई सन् १९३० तक एसेम्बलीके सभापति रहे। सन् १९३०में एसेम्बलीसे स्वराजी सदस्योंने इस्तीफा दे दिया। इधर देशमें सत्याग्रह-आन्दोलन जोरसे चलने लगा। अन्तमें विट्ठलभाईने भी एसेम्बलीसे सभापतिके पदसे इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देते समय उन्होंने वायसरायको जो पत्र लिखा था, वह भारतमें नौकरशाही-राज्यके इतिहासकी एक मुख्य चीज होगा।

एसेम्बलीसे इस्तीफा देनेके बाद विट्ठलभाईने पेशावर-जाँच कमेटीके सभापति बनकर पेशावर-काण्डकी जाँच की थी। इस कमेटीकी रिपोर्टको सरकारने जब्त कर लिया। जब कांग्रेसकी वर्किंग कमेटी इस रिपोर्टपर विचार करनेके लिए बैठी, तो समूची वर्किंग कमेटी गिरफ्तार कर ली गयी। उसमें विट्ठलभाई भी गिरफ्तार हुए, और उन्हें भी सजा हुई।

जेलमें रहते समय वे बीमार पड़ गये, और इलाजके लिए पंजाबसे कोयम्बटूर जेलमें भेजे गये। अन्तमें वे बीमारीके कारण मियादसे पहले ही छोड़ दिये गये। उनका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया कि उन्हें इलाजके लिए वीयना जाना पड़ा। वहाँ आपरेशन करानेके बाद स्वास्थ्य कुछ सुधरा; परन्तु वे फिर पूर्ण स्वस्थ न हो सके। इस बीचमें उन्होंने यूरोप और अमेरिकाकी यात्रा करके भारतकी स्वतन्त्रताके लिए बड़ा आन्दोलन किया। इस यात्रामें उनका स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया, और महीनों-तक बीमारीसे युद्ध करके वे गत २२ अक्तूबरको जेनेवामें महाप्रस्थान कर गये। उनकी

अन्तिम इच्छा भारतवर्षमें मरने की थी, जो पूरी न हो सकी; परन्तु उनका शव भारत लाया जा रहा है।

विट्ठलभाईकी मृत्युसे भारतकी आजादीका वीर सिपाही चल बसा। यह पहले ही कहा जा चुका है कि उनका सारा जीवन लड़ते-लड़ते ही बीता। वे सामाजिक कुरीतियोंसे लड़े, देशकी आजादीके विरोधियोंसे लड़े और अन्तमें बीमारीसे कठोर युद्ध करके वीरगति पायी।

हिन्दुस्तानमें विट्ठलभाईका सानी कोई नजर नहीं आता। वे बोलते थे, तो खूब बोलते थे; लेकिन एक चतुर राजनीतिज्ञकी भाँति वे जानते थे कि कब बोलना उचित है और कब चुप रहना अधिक प्रभावोत्पादक है। उनके व्यंग्य इतने तीक्ष्ण होते थे कि उनसे लोग तिलमिला उठते थे। लार्ड इरविनको लोग साधु-स्वभावका धार्मिक ईसाई कहते थे। आर्डिनेन्स ज़ारी करनेके बाद विट्ठलभाईने उनके लिए कहा था—"......that saintly-faced Christian, the Father of eleven ordinances." अर्थात्—"वह सन्त-आकृतिवाला ईसाई, जो ग्यारह आर्डिनेन्सोंका पिता है।"

विलायतमें पार्लमेंटका सभापति (स्पीकर) जब अवकाश ग्रहण करता है, तो उसे लार्डकी पदवी और पेंशन मिलती है। एसेम्बलीके सभापतिके पदसे इस्तीफा देनेके बाद उन्हें सजा हुई, तब उन्होंने कहा था—"मुझे भी पीयरेज (लार्डकी पदवी) और पेंशन मिल गयी।"

आज विट्ठलभाईके लिए सारा देश रो रहा है—

"मरनेवालोंके लिए भाई-बहन रोते हैं,
मौत उसकी है कि सब अहलेवतन रोते हैं।"

———

: २५ :

देवनागरी लाइनोटाइप और उसका आविष्कारक

"आप कहाँ जायँगे ?"

बम्बईसे मार्सेल जानेवाले जहाजपर फर्स्ट क्लास केबिनमें एक यात्रीने अपने साथ फर्स्ट क्लासमें यात्रा करनेवाले नवयुवक भारतीय विद्यार्थीसे पूछा।

'यह तो नहीं जानता कि मैं कहाँ जाऊँगा, हाँ, इतना जानता हूँ कि मार्सेलमें उतरूँगा।'—विद्यार्थीने उत्तर दिया।

'यह अजीब बात है। आप विदेश जा रहे हैं, और स्वयं यह नहीं जानते कि कहाँ जायँगे ?"—यात्रीने आश्चर्यसे पूछा।

"बात यह है,"—विद्यार्थीने उत्तर दिया—"कि मैं अध्ययनके लिए अमेरिका जाना चाहता हूँ, लेकिन जितना पैसा पासमें था, उससे सिर्फ मार्सेलतकका टिकट ही मिल सका। अब फ्रांस पहुँचकर देखें भाग्य कहाँ ले जाता है।"

यात्रीको यह सुनकर और भी अधिक कौतूहल हुआ। उसने विद्यार्थीका पूरा हाल पूछा। विद्यार्थीने बतलाया कि उसका नाम हरिगोविन्द गोविल है। उसके पिता अलीगढ़के रहनेवाले हैं, लेकिन उसका जन्म बीकानेरमें हुआ था। काशी-विश्वविद्यालयमें बी० एस-सी० तक पढ़कर उसने पढ़ना छोड़ दिया। अब अमेरिका जाकर बिजलीकी इंजीनियरिंग पास करनेका विचार है। पासमें पैसा नहीं था। दौड़-धूपकर १०००) रु० का इन्तजाम किया, और बम्बईको रवाना हो गया। सन् १९२०का जमाना था। महायुद्धके बाद तमाम यूरोपियन वर्षों बाद अपने-अपने घर वापस जा रहे थे। जहाजोंमें सेकेण्ड और थर्ड क्लासकी सीटें आगामी डेढ़ वर्षतकके लिए बुक हो चुकी थीं। सेकेण्ड और थर्ड क्लासके टिकटके लिए इतने दिनोंतक इन्तजार करना असह्य था, इसलिए वह ९९०) रु०में मार्सेलतकका टिकट लेकर ही चल पड़ा। आगे जो होगा, देखा जायगा।

विद्यार्थीकी राम कहानी सुनकर यात्री महाशयपर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे बम्बईके एक धनी व्यापारी थे। उन्होंने गोविलजीको लन्दनका टिकट खरीद दिया और राह-खर्चके लिए दो पौंड अलग दिये। लन्दन पहुँचकर गोविलजीने श्री अम्बालाल साराभाईकी कृपासे न्यूयार्कका थर्ड क्लासका टिकट प्राप्त किया। श्री अम्बालाल साराभाईने उन्हें राह-खर्चके लिए भी कुछ पैसा देना चाहा; मगर उन्होंने सधन्यवाद इनकार कर दिया।

जिस समय गोविलजी न्यूयार्कके लिए जहाजपर चढ़े, उस समय उनके पास कुल दो पैनी (दो आने) पूँजी थी। जहाजपर दो भारतीय विद्यार्थी और मिले। वे विद्याध्ययनके लिए अमेरिका जा रहे थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि गोविलजीके पास कौड़ी

भी नहीं है, तो उन्होंने कहा—"तुम्हारे पास ५० डालर नकद न होंगे, तो तुम अमेरिकाकी जमीनपर कदम न रख सकोगे।"

अब गोविलजीको अमेरिकाके इस नियमका ध्यान आया। लेकिन जहाज चल चुका था। अब क्या हो? उन्होंने एक विद्यार्थीसे कहा—"आप कृपा करके मुझे ५० डालर दे दीजिये। मैं इमीग्रेशन आफिसरको दिखाकर जैसे ही बाहर निकलूँगा, आपको लौटा दूँगा।"

उसने कहा—"मैं तुम्हें जानता-पहचानता नहीं। बादमें तुम नट जाओ, तो मैं क्या करूँगा?"

यह सुनकर गोविलजी चुप हो गये। चिन्ताके मारे प्राण सूखने लगे। क्या इतनी दूर आकर भी बैरंग वापस कर दिये जायँगे? क्या इतनी मेहनत अकारथ जायेगी। यह सोचते-विचारते दो-तीन दिन गुजर गये। जहाज न्यूयार्कके बन्दरपर जा लगा। यात्री उतरकर इमीग्रेशन आफिसरके सामने जानेके लिए एक कतारमें खड़े हुए। जब गोविलजीकी बारी आयी, उसी समय वही भारतीय विद्यार्थी दौड़ता हुआ आया और इनको एक लिफाफा देकर बोला—"लो, इसमें ५० पौंड हैं। इमीग्रेशन आफिसरको दिखलाकर वापस कर देना।"

आफिसरने इनका पासपोर्ट आदि देखकर, बिना रुपये देखे ही इन्हें अनुमति दे दी। बाहर निकलकर इन्होंने बन्दका बन्द लिफाफा उस विद्यार्थीको लौटा दिया। गोविलजी का कहना है—'मुझे आजतक यह नहीं मालूम कि उस लिफाफेमें दरअसल रुपये थे या नहीं।'

अमेरिकामें पदार्पण करनेके बाद गोविलके सामने सबसे पहला सवाल था जीविका-का। उन्होंने सब प्रकारकी मेहनत-मजदूरीके काम किये। दिन-भर मेहनत करते थे और शामको कालेज जाते थे। लेकिन थोड़े दिन बाद कालेज छोड़ दिया, और किसी अन्य व्यवसायमें व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण करनेकी ठानी। इसी समय उन्हें एक अप-टू-डेट प्रेसमें काम मिल गया। उन्हें यह काम बहुत पसन्द आया, और उन्होंने सब प्रकारके प्रेसके कामोंको बड़ी दिलचस्पीसे सीखा। लेकिन वे प्रेसमें नौसिखुएकी भाँति काम करते थे, इसलिए वेतनके रूपमें जो कुछ मिलता था, उससे पूरा न पड़ता था। इसलिए उन्होंने शामके वक्त चौराहों और पार्कोंमें लेक्चर देने शुरू किये। उन दिनों महात्मा गांधीके असहयोग-आन्दोलनकी सारे संसारमें चर्चा थी। गोविलजीने भी अमेरिकन श्रोताओंको इसी विषयपर व्याख्यान देने आरम्भ किये। इन व्याख्यानोंकी बदौलत बहुतसे लोगोंसे उनकी जान-पहचान हो गयी। उन्होंने देखा कि बहुतसे अमेरिकन भारतके बारेमें जाननेके लिए इच्छुक हैं। अमेरिकामें कोई ऐसा पत्र नहीं है, जो उनकी इस जिज्ञासाको तृप्त कर सके।

गोविलजीने ३० डालरमें एक टूटा-फूटा पुराना प्रेस खरीदा, अपने हाथों उसकी मरम्मतकी और 'ओरियण्ट' नामक एक मासिक पत्र निकाला। पत्रका कलापूर्ण गेट-अप, सुन्दर छपाई और उत्तम लेखोंकी समस्त अमेरिकन पत्रोंने प्रशंसा की।

सन् १९२४में उन्होंने न्यूयार्कमें 'इण्डिया सोसायटी ऑफ अमेरिका'की स्थापना की। इसका उद्देश्य अमेरिका और भारतके बीच सद्भाव उत्पन्न करना और अमेरिकनोंको भारतीय कला-विद्या और संस्कृतिसे परिचित कराना था। कविवर रवीन्द्रनाथके अमेरिका जानेपर इस सोसायटीके प्रयत्नसे उनका विराट् स्वागत किया गया था। गोविलजीके प्रयत्नसे कवीन्द्रके स्वागतमें अमेरिकाके बड़े-से-बड़े लोग शामिल हुए थे, जिनमें अमेरिकाके वर्तमान राष्ट्रपति रूजवेल्ट भी थे।

सन् १९२६में गोविलजी भारत आये थे, लेकिन थोड़े दिन ठहरकर पुनः अमेरिका लौट गये।

दूसरी राउण्ड-टेबिल कानफ्रेंसमें महात्मा गांधीके लन्दन जानेपर गोविलजी उन्हें अमेरिका आनेका निमन्त्रण देनेके लिए लन्दन पहुँचे। परन्तु महात्माजीके इनकार करनेपर उन्हें निराश होकर अमेरिका लौटना पड़ा।

अमेरिका लौटनेके एक दिन पहले वे लन्दनमें इण्डिया आफिसके स्टेशनरी-विभागमें एक पुस्तक खरीदनेके लिए गये। बाहर निकलनेपर देखा कि पानी बरसने लगा। सोचा कि मेह बन्द हो, तो चलें। सामने, सड़कके दूसरे फुटपाथपर एक बड़ी भारी दूकान थी, जिसमें मोटे-मोटे अक्षरोंमें लिखा था 'लाइनोटाइप।'

गोविलजी उसी दूकानमें घुस गये। मशीनें देखीं, फिर मैनेजरसे मुलाकात करके कहा—'आपलोग देवनागरीका लाइनोटाइप क्यों नहीं बनाते?' मैनेजरने कहा—'यदि देवनागरीका लाइनोटाइप बन सके, तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। हमलोगोंने इसके लिए बड़ी कोशिश भी की। अनेक विशेषज्ञोंसे परामर्श लिया, लेकिन सबने एकमतसे कहा कि देवनागरीका लाइनोटाइप बनना असम्भव है।'

"कौन कहता है असम्भव है।"—गोविलजीने कहा—"मैं बनाकर दिखा सकता हूँ। मेरे पास उसके पूरे नकशे बने तैयार हैं।"

"आप बना सकते हैं?"—मैनेजरने आश्चर्यसे कहा—"आप अपने नकशे लाकर मुझे दिखाइये।"

"खेद है कि मेरे पास समय नहीं है।"—गोविलजीने उत्तर दिया—"मैं कल ही अमेरिका जा रहा हूँ।"

"तब तो और भी अच्छा है।"—मैनेजरने कहा—"अमेरिकामें हमारी कम्पनीका हेड आफिस है। आप वहाँ हमारे मैनेजरको अपनी योजना दिखलाइये। मैं यहाँसे चिट्ठी लिखे देता हूँ।"

अमेरिका पहुँचकर गोविलजीने अपनी योजना और नकशे लाइनोटाइप कम्पनीके मैनेजरको दिखलाये। कम्पनीने उनपर सहसा विश्वास नहीं किया। उसने उन्हें प्रिन्सटन और पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालयोंके दो संस्कृत प्रोफेसरोंके पास राय लेनेके लिए भेजा। जब उन दोनोंने गोविलजीकी योजनाको व्यावहारिक बताया, तब कम्पनीने गोविलजीको मशीन बनानेको कहा, और उन्होंने छः मास दिन-रात परिश्रम करके देवनागरी लाइनोटाइपकी मशीन बनाकर तैयार कर दी।

जब गोविलजी पहली बार अमेरिका जा रहे थे, तब जहाजपर एक महाराष्ट्र यात्रीसे लोकमान्य तिलकके बारेमें बातचीत हुई थी। महाराष्ट्र यात्रीने अन्य बातोंके साथ-साथ यह भी कहा था कि लोकमान्यने देवनागरी लाइनोटाइप बनानेका प्रयत्न भी किया था, लेकिन वह सफल न हो सका। उसी समय गोविलजीके दिमागमें देवनागरी लाइनोटाइप बनानेका विचार उठा। अमेरिकामें प्रेसमें काम करते समय वे बराबर इसी उद्योगमें लगे रहे। सतत उद्योगसे सन् १९२२में उन्होंने वे मूल सिद्धान्त निकाल लिये थे, जिनपर यह मशीन बनी है, किन्तु उन्हें कार्यमें परिणत करनेका अवसर दस वर्ष बाद आया।

जिन पाठकोंको कभी प्रेससे साबका नहीं पड़ा, वे यह न जानते होंगे कि लाइनोटाइप क्या चीज होती है। लाइनोटाइपका अर्थ है टाइपकी एक लाइन। साधारण छपाई इस प्रकार होती है कि कम्पोजीटर प्रत्येक अक्षरका टाइप हाथसे उठाकर, एक-एक करके जोड़ता है, फिर ये टाइप फर्मेमें कसे जाते हैं और छपाई हो चुकनेके बाद उन्हें अलग-अलग —डिस्ट्रीब्यूट—करके पुनः केसके खानोंमें भर दिया जाता है।

लाइनोटाइप एक बिजलीसे चलनेवाली मशीन है। इसमें एक ओर शीशा भरा रहता है और दूसरी ओर टाइपराइटरकी भाँति अक्षरोंकी चाबियाँ रहती हैं। कम्पोजीटर इन चाबियोंको दबाता है, जिससे एक पूरी लाइनका साँचा कम्पोज हो जाता है। मशीन अपने-आप लाइनोंको 'जस्टीफाई' भी कर देती है, और खटका दबाते ही समूची लाइन शीशेकी (जो बिजलीकी गर्मीसे पिघल जाती है) ढलकर अपने ठिकानेपर जा लगती है। छप चुकनेपर यही लाइनें पिघलकर दूसरी ढलाईका काम देती हैं।

इस मशीनमें एक कम्पोजीटर इतना काम कर सकता है, जितना हाथसे कम्पोज करनेवाले आठ-दस कम्पोजीटर। इसमें टाइपकी जरूरत नहीं, केसोंकी आवश्यकता नहीं। इसमें हर बार टाइप ढलनेसे टाइप हमेशा नया रहता है, इसलिए छपाई हमेशा बढ़िया होती है। हाथके टाइपमें कभी-कभी कोई टाइप कम पड़ जाता है तो बड़ी दिक्कत होती है। मगर इस मशीनमें इस तरहकी दिक्कत होना असम्भव है। हाथके टाइपमें कभी-कभी फर्मा बाँधते वक्त टाइप हाथसे छूटकर 'पाई' हो जाता है, और सारी मेहनत बेकार जाती है। इस मशीन द्वारा कम्पोज करनेमें इसका खतरा नहीं; क्योंकि यदि मैटर गिर भी पड़े तो ढली हुई लाइनोंको उठाकर फिर यथास्थान रख दीजिये। इसमें 'लेड', 'क्वाड', 'स्पेस' आदि भी अलगसे नहीं लगाने पड़ते। ये सब भी लाइनके साथ ही ढल जाते हैं। 'डिस्ट्रीब्यूशन'का बखेड़ा तो इसमें है ही नहीं। सबसे बड़ी बात यह है कि देवनागरी लाइनोटाइप मशीनमें अंग्रेजीका काम भी हो सकेगा। यदि आप चाहें, तो एक ही लाइनमें हिन्दी और अंग्रेजी कम्पोज कर सकते हैं।

गोविलजीको इस मशीनके आविष्कारमें किन-किन दिक्कतोंका सामना करना पड़ा होगा, इसका अनुमान भी कठिन है। हाथके टाइपमें अंग्रेजी कम्पोज करनेमें कुल दो सौसे कुछ अधिक चिह्नोंसे काम चल जाता है। जब कि हिन्दीमें सात सौसे अधिक

चिह्न आवश्यक होते हैं। अंग्रेजीमें प्रत्येक अक्षर अलग होता है, परन्तु हिन्दीमें संयुक्ताक्षरों और विभक्तियोंकी भरमार है। इससे हिन्दीकी छपाई बहुत जटिल बन गयी है। कहीं-कहीं एक-एक अक्षरके ऊपर तीन-तीन चिह्न लगाने पड़ते हैं। अंग्रेजी लाइनोटाइपके 'की-बोर्ड'में कुल नव्वे 'कीज' (खूँटियाँ) होती हैं। गोविलजीने नव्वे खूँटियोंकी सहायतासे ही सात सौ चिह्नोंका काम निकाला है।

मर्गन्थालर लाइनोटाइप कम्पनीने गोविलजीसे यह मशीन बनवायी है। कम्पनीके इंजीनियर तथा कारीगरोंने गोविलजीको सब प्रकारकी सहायता दी, लेकिन बड़ी मुसीबतकी बात यह थी कि उन सबके लिए हिन्दीके 'काले अक्षर भैंस बराबर थे।' इन सब दिक्कतोंका सामना करके भी गोविलजीने जो आविष्कार किया है, उससे केवल हिन्दी ही नहीं, वरन् भारतवर्षकी प्रत्येक भाषाकी मुद्रण-प्रणालीमें युगान्तर हो जायगा, क्योंकि अगले कुछ महीनोंहीमें वे गुजराती और बँगलाकी मशीनें भी तैयार कर देंगे।

ये मशीनें भारतमें आ गयी हैं और कलकत्तेमें लाइनोटाइप कम्पनीके दफ्तरमें देखी जा सकती हैं। इन मशीनोंके द्वारा किस प्रकारकी छपाई होगी, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि 'विशाल-भारत'का यह समूचा लेख इसी मशीन द्वारा कम्पोज हुआ है।*

---

* यह निबन्ध 'विशाल भारत'से उद्धृत है।

: २६ :

उरुस्वती-विज्ञान-मन्दिर

पश्चिमकी ओर भारतका उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त है। उत्तरकी ओर काश्मीरके खड़े पहाड़ हैं, जिनके दर्रोंसे न मालूम किस अज्ञात कालसे भारतीय व्यापारी और यात्री चीनी तुर्किस्तानके दुर्गम प्रदेशमें जाते रहे हैं। पूर्वकी ओर, हजार मीलसे अधिकतक, हिमालयकी दुर्भेद्य श्रेणियाँ दौड़ती हैं, और दक्षिणमें हिन्दुस्तानका विशाल मैदान फैला है। इन सबके बीच, कुलूकी फलोंसे लदी हुई घाटीमें, जिसके वक्षस्थलपर व्यास नदी बल खाती हुई बहती है, 'नगर' नामका एक छोटा कस्बा है। इसी पहाड़ी कस्बेमें 'उरुस्वती हिमालय रिसर्च इंस्टीट्यूट'का विज्ञान-मन्दिर है।

'नगर'के दक्षिणकी ओर देवदारु तथा अन्य वृक्षोंसे लदी हुई पहाड़ियोंपर पहाड़ियाँ चली गयी हैं, और उत्तरकी ओर दृष्टिकी सीमातक चमचमाती बर्फसे ढकी हुई चोटियाँ सिर उठाये नक्षत्रोंसे काना-फूसी करती दिखायी देती हैं। नगरतक पहुँचनेका सिलसिला यह है कि अमृतसरसे एन० डब्ल्यू० रेलवेकी शाखा पठानकोटतक जाती है। पठानकोटसे लाइट रेलवे मण्डी-रियासतकी राजधानी जोगेन्द्रनगरतक पहुँचा देती है। जोगेन्द्र-नगरसे कुलूतक मोटर-बस सर्विस है। कुलूकी घाटी अपने फलोंके लिए भारत-भरमें प्रसिद्ध है। कुलूका रास्ता खूबसूरत पहाड़ी रास्ता है, जो व्यासके किनारे-किनारे, पानीकी धारके साथ, घूमता-फिरता, बल खाता हुआ जाता है। मण्डीसे चलकर पतले दर्रेको पार करके जैसे-जैसे कुलूकी घाटी और बर्फीली चोटियोंके पास पहुँचते जाइये, वैसे-वैसे हवा ज्यादा साफ और ठण्डी होती जाती है। कुलूसे नगर पन्द्रह मील और आगे है। इन पन्द्रह मीलोंमें बारह मीलतक तो मोटर जा सकती है, आगेके तीन मील पैदल या घोड़ेपर तै करने पड़ते हैं। वैसे तो नगर भारतका ही एक भाग है; परन्तु वास्तवमें वह हिमालयका एक द्वार है, जिसे पार करके तिब्बत और मध्य-एशियामें पहुँचा जा सकता है।

सन् १९२३में संसार-प्रसिद्ध रूसी कलाकार और मनीषी प्रोफेसर निकोलस दे रोरिक अपने साथ श्रीमती रोरिक, पुरातत्त्ववेत्ता जार्जेज दे रोरिक तथा कुछ अन्य वैज्ञानि-कोंका एक दल लेकर साइबेरिया, मंचूरिया, मंगोलिया, मध्य-एशिया, तिब्बत और हिमालयके दुर्गम प्रदेशोंके अनुसंधानके लिए निकले।[१] यह यात्रा उन्होंने पाँच वर्षमें पूरी की, और इसमें उन्हें बारह हजार मीलका सफर करना पड़ा। बीसवीं सदीके

---

१. रोरिक महाशयके सम्बन्धमें अधिक जाननेके लिए देखिये प्रस्तुत पुस्तकमें प्रकाशित 'निकोलस रोरिक' और 'रोरिककी शान्ति-पताका' नामक निबन्ध।

इस वायुयान, रेल और मोटरके युगमें भी मध्य-एशिया और तिव्वत अत्यन्त अल्पज्ञात देश हैं। संसारको उनका बहुत थोड़ा ज्ञान है। हिमालय तो संसारके लिए एक रहस्य-मय वस्तु है ही। उसकी उच्च दुर्भेद्य श्रेणियोंमें प्रकृतिके क्या-क्या विचित्र भण्डार छिपे पड़े हैं, मनुष्योंको इसका पता नहीं। जमानेकी गर्दिश, सभ्यताकी घुड़दौड़ और राजनीतिक उथल-पुथलने प्रत्येक देश और उसके निवासियोंके रहन-सहन, आचार-विचार, ज्ञान-संस्कृति तथा धर्म इत्यादि वातोंमें इतना अधिक परिवर्तन कर दिया है कि पुराने समयके लोग किस प्रकार रहते थे, उनकी सभ्यता और संस्कृति किस ढंगकी थी आदि वातें आज कल ऐतिहासिक और पुरातत्वकी खोजके विषय वन गये हैं; परन्तु तिव्वत और मध्य-एशियाके कुछ अंचलोंमें समयके इन क्रान्तिकारी और विनाशक परिवर्तनोंका वहुत कम प्रभाव पड़ा है। वहाँके लोगोंका जीवन हजारों वर्षसे प्राय: एक-सी निर्वाध गतिसे चल रहा है, इसलिए इस भू-भागके अध्ययनसे मानव-इतिहासकी वहुत-सी गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं, और संसारका ज्ञान वहुत-कुछ वढ़ सकता है। रोरिक-दल अपनी यात्रामें इन देशोंके इतिहास, कला-कौशल, आचार-विचार आदिकी वहुत-सी सामग्री अपने साथ लाया, जिससे संसारको अपना ज्ञान वढ़ानेमें काफी सहायता मिलेगी।

इससे पहले कुछ अन्य अन्वेषकगण भी इस प्रकारकी यात्रा कर चुके हैं, जिनसे संसारको अनेक नयी वातें ज्ञात हुई थीं। अपनी लम्बी यात्रासे फोफेसर रोरिक इस परिणामपर पहुँचे कि इन अल्पज्ञात अंचलोंका वैज्ञानिक ढंगसे अध्ययन करनेके लिए कोई स्थायी केन्द्र और संस्था होनी चाहिये। इसीके परिणाम-स्वरूप नगरमें जुलाई १९२८में 'उरुस्वती हिमालय रिसर्च इंस्टीट्यूट'का जन्म हुआ। अपनी इस संस्थाका स्थान चुननेमें रोरिक महाशयने काफी बुद्धिमानीसे काम लिया है। पहली वात तो यह है कि नगरकी आवहवा स्वास्थ्यप्रद होनेके साथ ही ऐसी है, जहाँ पूरे वर्ष-भर लोग मजेसे काम कर सकते हैं। नगरका औसत टेम्परेचर वारहों महीने प्राय: न्यूयार्कके टेम्परेचरके समान रहता है। फिर कुलूकी घाटी एक ऐसे स्थानपर स्थित है, जहाँ काश्मीर, लाहूल, तिव्वत और चीनी तुर्किस्तानकी सीमाएँ आकर मिलती हैं। नगरकी भूमि अत्यन्त उपजाऊ तो है ही, साथ ही हिमालयपर होनेके कारण वहाँ ऊँचे पहाड़ोंपर उगने-वाली समस्त जड़ी-बूटियाँ आसानीसे पर्याप्त मात्रामें उपजाई जा सकती हैं। भेषज-शास्त्रके अध्ययनके लिए यह सवसे वड़ी सुविधा है, क्योंकि ओषधियोंके गुणोंका पक्का अध्ययन उनके उत्पत्ति-स्थानमें ही हो सकता है।

इस संस्थाका उद्देश्य मध्य-पूर्वका—भारतवर्ष, तिव्वत, चीनी और रूसी तुर्किस्तान, मध्य-एशिया आदि देशोंका—अध्ययन करना है। प्रकृतिने जो कुछ भी उत्पन्न किया है, और मनुष्यने जो कुछ भी वनाया है, वह सव उरुस्वतीकी अध्ययन-सूचीमें शामिल है। पुरातत्व तथा तत्सम्वन्धी अन्य विज्ञान उरुस्वतीकी अध्ययन-सूचीमें एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। चीनी तुर्किस्तानके जंगलों और वालूके ढेरोंके नीचे प्राचीन कालके

अनेक अज्ञात नगर दबे पड़े हैं। हिमालय तथा उत्तरी भारतमें भी पुरातत्व-सम्बन्धी अपार सामग्री अन्वेषकोंकी बाट जोह रही है। उरुस्वतीके द्वारा, समय-समयपर भिन्न-भिन्न स्थानोंकी यात्रा करके, पृथ्वीके गर्भमें छिपी हुई इस ज्ञान-राशिका पता लगाया जायगा। तिब्वतके कला-कौशल तथा हस्त-लिपियोंका एक बड़ा भण्डार प्रो० रोरिकने न्यूयार्कके 'रोरिक-म्यूजियम'में संग्रह किया है, और दूसरा उरुस्वतीमें संगृहीत है। उरुस्वतीमें तिब्वती पण्डितोंकी सहायतासे तिब्वती भाषाका अध्ययन किया जा रहा है। कुलूकी घाटीमें भी तिब्वती प्रभाव बहुत काफी है, इसलिए उरुस्वती तिब्वतके अध्ययनका एक महान् केन्द्र होगी।

मध्य-एशिया, तिब्वत तथा हिमालय-प्रदेशके लोग एक स्थानपर बहुत दिनतक नहीं रहते; फिर कुलूकी घाटी तो ऐसे स्थानपर स्थित है, जहाँ कई एक सीमान्त आकर मिलते हैं। फलस्वरूप यहाँ जातियों, नस्लों, धर्मों, भाषाओं, पोशाकों और आचार-विचारोंका एक विचित्र संगम है, इसलिए यहाँ जाति-विज्ञानके अध्ययनका भी बड़ा सुभीता है। कुलूमें ठण्डे देशों तथा अल्प गर्म देशोंके सभी फल खूब पैदा होते हैं। परीक्षाके लिए यूरोपके पचासों प्रकारके पौधे मँगाकर लगाये गये। उनमेंसे एक भी ऐसा न निकला, जो कुलूकी जमीनमें मजेमें फला-फूला न हो। कुलूके बगीचोंमें केवल सेब ही प्रायः साठ से अधिक किस्मोंका पैदा होता है। इस प्रकार उरुस्वतीमें वनस्पति-शास्त्रके अध्ययनका काफी मसाला और काफी इन्तजाम है।

हिमालय पर्वत आम तौरपर और कुलूकी घाटी खास तौरपर जड़ी-बूटियोंका भण्डार मानी जाती है। सातवीं शताब्दीमें चीनी यात्री हुएन सांगने भी कुलूकी जड़ी-बूटियोंकी प्रसिद्धिका उल्लेख किया था; परन्तु इन जड़ी-बूटियोंमें बहुतोंके आयुर्वेदिक गुणोंका ज्ञान मनुष्योंको है ही नहीं, और जिनका थोड़ा-बहुत ज्ञान है भी, सो भी कुछ स्थानीय वैद्यों तक ही सीमित है। संसारको उससे कोई लाभ नहीं होता। उरुस्वतीमें अप-टू-डेट वैज्ञानिक तरीकेसे इन जड़ी-बूटियोंकी परीक्षा करके उनके आयुर्वेदिक गुणोंका पता लगाया जाता है। नगरमें इंस्टीट्यूटने अपनी एक उद्भिजशाला बना रखी है, जिसमें लगभग दो हजार भिन्न-भिन्न किस्मोंकी जड़ी-बूटियाँ संगृहीत हैं। इतना ही नहीं, बल्कि इस विषयका ज्ञान बढ़ानेके और अनुसन्धान करनेके लिए उरुस्वती-इंस्टीट्यूटने १५०० किस्मोंके ३७०० पौधे मिशीगन (अमेरिका) यूनिवर्सिटीकी उद्भिजशालामें और १५०० किस्मोंके ३८०० पौधे न्यूयार्कके बोटैनिकल गार्डनकी उद्भिजशालामें भेजे हैं।

तिब्वतमें अत्यन्त प्राचीन कालसे एक विशेष प्रकारकी स्थानीय चिकित्सा-प्रणाली प्रचलित है। कहते हैं कि क्षय रोग और कैंसर फोड़ेकी ओषधि तिब्वती चिकित्सा शास्त्रमें मौजूद है। कम-से-कम यह तो प्रत्यक्ष ही है कि तिब्वत, लाहूल, कुलू आदि अंचल इन भयंकर रोगोंसे प्रायः मुक्त हैं, इसलिए तिब्वती भाषा सीखकर, स्थानीय आयुर्वेदाचार्योंकी सहायतासे, तिब्वतके चिकित्सा तथा भैषज्य शास्त्रके अध्ययनका विशेष प्रबन्ध उरुस्वतीने किया है। तिब्वती आयुर्वेदके दो ग्रन्थोंका अनुवाद भी कराया जा चुका है, जो 'टिबेटिका' ग्रन्थके अंशके रूपमें प्रकाशित होंगे।

उरुस्वती-इंस्टीट्यूटका प्रधान कार्यालय एक सुन्दर दोतल्ले बँगलेमें है, जिसके साथ कई एकड़ भूमि भी संलग्न है। इस बँगले तथा भूमिको प्रोफेसर निकोलस रोरिकने उरुस्वतीको भेंट-स्वरूप दिया था। इसमें आफिस, लाइब्रेरी आदिके अतिरिक्त छँ वैज्ञानिकोंके रहनेका स्थान है। इस बातका प्रवन्ध किया गया है कि प्रत्येक विषयका अध्ययन और खोज उस विषयके अप-टू-डेट वैज्ञानिकोंके द्वारा ही हो। इसके लिए इंस्टीट्यूटने विदेशोंमें भी अनेक वैज्ञानिकों तथा विज्ञानशालाओंका सहयोग प्राप्त किया है।

उरुस्वती-इंस्टीट्यूटकी स्थापना सन् १९२८में हुई थी; परन्तु उसका कार्य सन् १९२९–३०में आरम्भ हुआ। सन् १९२९के अन्तमें रोरिक महाशयने पाण्डिचेरीमें पुरातत्व-सम्वन्धी खुदाई करके प्रस्तर-युगकी वहुत-सी वस्तुएँ निकालीं। जुलाई सन् १९३०में रोथंगके दर्रेसे एक दल डॉक्टर कोइल्जकी अध्यक्षतामें लाहूल प्रदेशमें भेजा गया, जिसने वहाँकी वनस्पतियों और पशु-पक्षियोंका एक मूल्यवान् संग्रह किया। यह दल लाहूल प्रदेशके १३००से अधिक प्रकारकी वनस्पतियोंके १०,००० नमूने, पहाड़ी पक्षियोंके ३०० नमूने तथा एक विशेप जातिके वकरोंके कुछ नमूने अपने साथ लाया था। नगरमें इन सब चीजोंका वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है।

सन् १९३०से इंस्टीट्यूटका कार्य वरावर वढ़ रहा है। सन् १९३२ में उरुस्वतीने लाहूल प्रदेशके भाषातत्व और जाति-विज्ञानका अध्ययन शुरू किया। लाहूली बोलीका विस्तृत अध्ययन किया गया। इंस्टीट्यूट एक तिव्वती-अंग्रेजी कोश निर्माण कर रही है। तिव्वती भाषाके सम्वन्धमें टिवेटिका (Tibetica) नामक एक वृहद् ग्रन्थका प्रकाशन किया जा रहा है जिसका प्रथम खण्ड प्रकाशित हो चुका है। इसमें तिव्वत और उसके समीपवर्ती अंचलोंकी समस्त वोलियोंका समावेश होगा। इस ग्रन्थके निर्माणमें इंस्टीट्यूट-को लामा लोवजाँग मिग्यूर दोर्जेसे वहुत सहायता मिल रही है।

जड़ी-बूटी आदिके अध्ययनके लिए यह आवश्यक है कि नवीनतम औजारों और यन्त्रोंसे सुसज्जित एक प्रयोगशाला हो। इंस्टीट्यूटने अपने हेड क्वार्टरके समीप एक प्रयोगशाला वना ली है। इस प्रयोगशालाका निर्माण आधुनिक वैज्ञानिकोंके मतानुसार ही किया गया है। नगर कांगड़ा जिलेमें है, जहाँ अकसर भूचाल आते हैं, इसलिए यह इमारत 'धज्जी-दीवार' प्रणालीसे वनायी गयी, जिससे भूचाल आनेपर उसे हानि नहीं पहुँच सकती। 'धज्जी-दीवार' प्रणाली यह है कि पहले लकड़ीके बोटोंका ढाँचा बनाकर ऊपरसे चूना-पलस्तर किया जाता है। आजकल वड़े नगरोंकी ऊँची इमारतें भी भीतर लोहेके गर्डरका ढाँचा खड़ा करके वनायी जाती हैं। 'धज्जी-दीवार' प्रणाली भी इसी भाँतिकी है; विशेषता केवल यह है कि लोहेके गर्डर केवल सीधे ही खड़े किये जाते हैं, और 'धज्जी-दीवार'की लकड़ियाँ कर्णरूपमें भी लगायी जाती हैं।

प्रयोगशाला और हेड क्वार्टरमें विजलीका प्रवन्ध किया जा रहा है। इसके लिए नगरके पास एक झरनेसे विजली पैदा की जायगी। यद्यपि भारतवर्षमें देहरादून, कलकत्ता आदि स्थानोंमें वनस्पतियोंकी रासायनिक परीक्षाके लिए कई प्रयोगशालाएँ

हैं; परन्तु एकदम अप्-टू-डेट वैज्ञानिक ढंगकी प्रयोगशाला केवल उरुस्वती-इंस्टीट्यूट ही की है।

उरुस्वती-इंस्टीट्यूट न्यूयार्कके रोरिक-म्यूजियमकी एक शाखा है। रोरिक-म्यूजियम उसके परिचालनका इतना व्यय वहन करता है, जिससे उसका कार्य चालू रहे, बन्द न होने पावे। बाकी व्यय जनसाधारण द्वारा प्राप्त चन्देसे चलता है।

उरुस्वती-इंस्टीट्यूटका सम्बन्ध संसारके अनेक देशोंकी वैज्ञानिक संस्थाओंसे है। अमेरिका और यूरोपके तीन सौके लगभग विश्वविद्यालय और वैज्ञानिक संस्थाएँ उरुस्वतीके साथ अपने प्रकाशित ग्रन्थोंका परिवर्तन करती हैं।

हिन्दुओंकी धारणाके अनुसार हिमालयकी कन्दराएँ सहस्रों महाज्ञानी तत्ववेत्ता ऋषियोंका निवास-स्थान रही हैं। संसारका न-जाने कितना ज्ञान, इन्हीं कन्दराओंसे निकला है। आज फिर एक यूरोपियन मनीषीने उसे विज्ञानका केन्द्र बनाया है, और इस बातकी पूर्ण आशा है कि निकट भविष्यमें लोकोपकारी ज्ञानका एक बड़ा भण्डार उरुस्वतीसे प्रकाशित होगा। प्रोफेसर रोरिकके शब्दोंमें––

"The more we understand origins and development of peoples, the more we understand, ourselves, as individuals and nations, in the present. Thus may archaeology and its attendant sciences pay rich dividends by unearthing for us the guideposts of the past."

अर्थात्––'जातियोंकी उत्पत्ति और उनके विकासका जितना अधिक ज्ञान हमें होगा, उतना ही अधिक हम स्वयं अपनेको––वर्तमान राष्ट्रों और व्यक्तियोंके रूपमें––समझ सकेंगे। इस प्रकार पुरातत्व तथा तत्सम्बन्धी विज्ञान अतीतके पथ-प्रदर्शक चिह्नों-को भूगर्भसे निकालकर हमें गहरा मुनाफा देते हैं।'

——

: २७ :

काया-कल्प

मन्की-ग्लैन्ड-आपरेशन

एक उर्दू शायरने किस व्यथा, किस दुःख और किस हसरतसे कहा है :—

'जो जाके न आये वह जवानी देखी ,
जो आके न जाये वह बुढ़ापा देखा ।'

यौवन जाकर फ़िर कभी वापस नहीं आता और जरा—वृद्धावस्था—एक बार आकर फिर कभी नहीं जाती ।

सृष्टिके आदिसे उर्दू शायरके उपर्युक्त कथनको उलटनेकी कोशिश हो रही है। कहते हैं कि हमारे देवताओंके डॉक्टर धन्वतरि महाराजको वह युक्ति ज्ञात थी, जिससे वृद्धावस्थाको धता बतायी जा सकती थी और धौले बाल और झुलझुल खालवाले बूढ़े लकड़दादाको पुनः हट्टा-कट्टा नौजवान बनाया जा सकता था। हमारे पुराणोंमें इसकी कई कथाएँ हैं, मगर किस युक्तिसे यह काया-कल्प होता था, वह किसीको भी ज्ञात नहीं है। उसका नुस्ख़ा स्वर्गमें धन्वन्तरिहीके पास होगा, और आजकल दुष्यन्त या अर्जुनके समान कोई पुरुष भी नहीं है, जो स्वर्ग जाकर देवताओंके डॉक्टरसे वह नुस्खा पूछ आवे। अतः उसका जिक्र करना ही व्यर्थ है ।

यूरोपके डॉक्टर और वैद्य भी सदासे इस काया-कल्पके नुस्खेकी खोजमें रहे हैं। मध्य-युगमें जब लोगोंको जादूगरी और उसी प्रकारकी बातोंमें विश्वास था, तब वे समझते थे कि पृथ्वीमें कहीं-न-कहीं यौवनदायक झरना अवश्य है, जिसका पानी पीते ही बुढ़ापा दुम दबाकर भाग जाता है और जवानी मौरूसी पट्टा लिखाकर आ बैठती है ।

इसके बाद सन्देहवाद और शरीर-विज्ञान सम्बन्धी खोजका युग आया। हजरते डारविनने अपने पूर्व पुरुषोंको ढूँढ़ निकाला, और विकासवादका सिद्धान्त पैदा हुआ। इस जमानेमें, मनुष्यकी निर्धारित आयुसे अधिक जिन्दा रहनेकी कोशिश करना निरर्थक समझा जाने लगा, फिर भी दो-चार लोगोंने दवाओं और जड़ी-बूटियोंके प्रयोगसे जीवनको लम्बा करनेका प्रयत्न किया, किन्तु वे बेचारे बुरी तरह असफल हुए। लेकिन शरीर-विज्ञान सम्बन्धी खोजसे शरीरके भीतरके प्रत्येक अंग, उनकी बनावट और उनके कर्तव्योंका पूरा-पूरा पता लग गया। इस खोजसे यह मालूम हुआ कि शरीरमें बहुतसे ग्रन्थि-कोष या गिल्टियाँ होती हैं, जिनका शरीरके अवयवोंसे बहुत घना सम्बन्ध है। इन गिल्टियोंमें एक प्रकारका रस छिपा रहता है और इस रसका शरीरके परिचालनसे

निकट सम्वन्ध है। यहाँतक ज्ञात हुआ कि मनुष्यके दिमागमें जो विचार उत्पन्न होते हैं, वे तभीतक नियमित रूपसे उत्पन्न होंगे, जबतक कि गलेकी गिल्टी (घाँटी Thyroid gland)का रासायनिक रस ठीक तौरसे दिमागमें पहुँचता रहेगा। इस रसके पहुँचनेमें यदि गड़वड़ी हुई, तो आदमी झक्की, कम अक्ल और सिड़ी हो जाता है। परीक्षाके द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यदि किसी जानवरके गलेकी यह गिल्टी वचपनहीमें काट ली जाय, तो वह मुश्किलसे वढ़ता है और अपनी आयुवाले अन्य साथियोंकी अपेक्षा वहुत छोटा और कमजोर रह जाता है।

ऐसा भी देखा जाता है कि जव ये गिल्टियाँ साधारण आकारसे अधिक वढ़ जाती हैं, तव भी आदमीके दिमागमें गड़वड़ी और कभी-कभी तो पागलपनतक हो जाता है।

अजी जनाव, छोटीसे छोटी गिल्टी भी गजव ढाती है। किसी जानवरके गलेकी इस गिल्टी (Thyroid gland)के अगल-वगलकी चार नन्हीं-नन्हीं गिल्टियों Parathyroid को निकाल डालिये, फिर देखिये कि परिणाम कैसा भयंकर होता है। जानवरको अत्यधिक सनसनी होगी, उसकी तमाम रगें वुरी तरह सिकुड़ेंगी, वदनमें रह-रहकर भयंकर आन्दोलन (Violent Convulsion) होगा, और वह वहुत थोड़े समयमें मर जायगा।

इस वातका काफी प्रमाण मिल चुका है कि जनन-गिल्टियाँ (Sex glands) मनुष्योंके मानसिक और शारीरिक विकासमें वड़ा प्रभाव रखती हैं। इन गिल्टियोंका असर समस्त शरीरपर पड़ता है।

इन्हीं गिल्टियोंकी कलम लगाकर सुप्रसिद्ध फ्रेंच डॉक्टर वेरोनाफ आजकल काया-कल्पकी परीक्षाएँ कर रहे हैं। जिस प्रकार प्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान् लूथर वरवैंकने फलोंको निर्बीज करनेका वीड़ा उठाया था, उसी प्रकार डॉक्टर वेरोनाफने वुढ़ापेके खिलाफ जेहाद वोल दिया है।

यह वात गत शताब्दीहीमें सिद्ध हो चुकी है कि मनुष्यों और जानवरोंकी गिल्टियोंमें एक ही प्रकारका रस होता है। यह रस जिस प्रकारके शरीरमें प्रवेश करता है, उसी प्रकारका असर दिखलाता है। मनुष्यकी गिल्टीका रस यदि भेड़के शरीरमें पहुँचेगा, तो वह उसके दिमागमें मनुष्य-सुलभ वुद्धि नहीं उत्पन्न कर सकता। इसी प्रकार भेड़की गिल्टीका रस मनुष्यको भेड़के समान वेवकूफ नहीं वना सकता।

डॉक्टर वेरोनाफ आदमियों और जानवरोंके आपरेशन करके नयी गिल्टियाँ लगाते हैं। उनका यह गिल्टी लगानेका तरीका विलकुल वैसा ही है, जैसा पेड़ोंकी कलम लगानेका। डॉक्टर साहव कहते हैं कि जिन आदमियोंके गिल्टी लगायी गयी है, कुछ दिनोंके वाद उन्होंने वतलाया कि उनकी याददाश्त वहुत वढ़ गयी, उनके शरीरमें अधिक शक्ति मालूम पड़ने लगी, उनकी रंगत वदल गयी, आँखोंमें चमक आ गयी, रगोंमें लचक आ गयी और वे हर वातमें विलकुल जवान हो गये।

डॉक्टर वेरोनाफने इस काया-कल्पकी वहुत-सी परीक्षाएँ जानवरोंपर की हैं।

आपका कथन है कि यदि किसी जवान मेढ़ेके एक अतिरिक्त गिल्टी लगा दी जाय, तो उसका ऊन वहुत घना और अधिक होता है।

मेढ़ेकी औसत आयु वारह वर्षसे लेकर चौदह वर्षतक होती है। इससे अधिक आयु-तक मेढ़े या भेड़ें कभी जीवित नहीं रहतीं। डॉक्टर वेरोनाफने एक वुड्ढे मेढ़ेको लिया। उसकी आयु वारह वर्पकी हो चुकी थी। वुढ़ापेके मारे वह विना लड़लखड़ाये हुए चल भी न सकता था। अव न तो वह ऊन उत्पन्न करनेके कामका रह गया था और न वच्चे उत्पन्न करनेके कामका।

डॉक्टर वेरोनाफने एक दो वर्षके मेढ़ेकी गिल्टी निकालकर इस वुड्ढे मेढ़ेके लगा दी। गिल्टी लगानेके तीन मास वाद यह वुढ़ऊ देखनेमें शानदार और चञ्चल तथा आक्रमण-शील वन गये। और आठ मास वाद उनकी साथिनके मेमना भी पैदा हुआ।

डॉक्टर वेरोनाफने इस वुड्ढे मेढ़ेको लगायी हुई गिल्टी फिर निकाल ली, और तीन मासके भीतर वह पुन: वैसा ही मरियल, कमजोर और वुड्ढा हो गया, जैसा पहले था। डॉक्टर साहवने फिर एक नयी गिल्टी लगायी और मेढ़ेराम फिरसे शक्ति और वल प्राप्त करके जवान हो गये।

यह वीस वर्पकी आयुतक जिन्दा रहा, और वरावर प्रत्येक वर्ष अच्छेसे अच्छा ऊन उत्पन्न करता रहा। उसने इस वीचमें कई मेमने भी उत्पन्न किये।

डॉक्टर साहवने तीन मेढ़ोंपर अपना प्रयोग किया। उन्होंने सवसे छोटेको एक अतिरिक्त गिल्टी लगा दी, उस समय यह मेढ़ा तीन महीनेका था और उस समय उसका वजन ३६ पौंड था। दूसरे मेढ़ेका वजन ४६ पौंड था और वह चार मासका था, उसे यों ही छोड़ दिया गया। तीसरा मेढ़ा पाँच मासका था और उसका वजन ६० पौंड था उसी दिन इस मेढ़ेकी जनन-गिल्टियाँ निकाल डाली गयीं। एक वर्षके वाद सवसे छोटा मेढ़ा, जिसके गिल्टी लगायी गयी थी, वढ़कर वजनमें ७२ पौंड हो गया। दूसरा मेढ़ा भी, जो अपनी साधारण हालतमें छोड़ दिया गया था, वढ़कर ७२ पौंड हो गया, और तीसरा, जो आयुमें सवसे वड़ा था, परन्तु जिसकी गिल्टी निकाल डाली गयी थी, कुल ६९ पौंड ही हुआ। इस प्रकार नयी गिल्टीवाले मेढ़ेका वजन साल-भरमें ३६ पौंड वढ़ा, साधारणका २६ पौंड और गिल्टी निकाले हुए का केवल ९ पौंड ही वढ़ा।

डाक्टर वेरोनाफके गिल्टी लगाये हुए मेढ़े २० वर्षकी आयुतक जीवित रहे और उसके वाद एकाएक पाँच दिनके अन्दर मर गये, मगर इन सव वर्षोंमें उनमें जवान मेढ़ोंके सदृश ही वल और शक्ति रही। इस प्रकार मेढ़ोंके वुढ़ापेका काल चार-पाँच वर्षसे घटकर केवल पाँच दिन ही रह गया।

मनुष्योंकी काया-कल्पके लिए डाक्टर साहव वन्दरकी जनन-गिल्टियाँ लगाते हैं। आपका कथन है कि यह गिल्टियाँ एक प्रकारकी वैटरी हैं, जिनसे समस्त शरीरको शक्ति मिलती है। यदि किसी व्यक्तिमें किसी खास चीजकी कमी हो, तो उसके दूसरी गिल्टियाँ भी लगायी जा सकती हैं।

मनुष्योंके लिए अभी अनेक प्रयोगोंकी आवश्यकता है। एक आदमीके जीवन कालमें यह सब प्रयोग हो भी नहीं सकते। उसके लिए कुछ समयतक प्रयोग करने होंगे। आपके कथनानुसार मनुष्यकी आयु प्राय: २५ प्रति सैंकड़ा बढ़ाई जा सकती है। दूसरी सबसे बड़ी बात यह है कि इस इलाजसे मनुष्य मरते दमतक बलवान और शक्तिशाली बना रह सकता है। बहुतसे मनुष्य बुढ़ापेमें केवल इसीलिए मर जाते हैं कि उनमें रोगोंका प्रतिरोध करनेकी शक्ति नहीं रह जाती। इस 'मंकी-ग्लैण्ड-आपरेशन'से उनमें यौवनके समान शक्ति रहती है, जिससे वे सफलतापूर्वक रोगोंका सामना कर सकते हैं।

डाक्टर साहबने कई पुश्तोंतक नयी गिल्टियाँ लगाकर मेढ़ोंकी असाधारण बड़ी नस्ल पैदा कर दी है। आपका कथन है कि इसी प्रकार शायद किसी दिन मनुष्योंकी भी अतिकाय जाति पैदा हो सकेगी।

गत यूरोपियन युद्धके समय डाक्टर वेरोनाफ एक फौजी अस्पतालके इंचार्ज थे। वहाँ आपने कई घायलोंके क्षत अंगोंके स्थानमें वन्दरके अंग लगाकर उन्हें चंगा कर दिया था। एक सैनिककी टखनेकी हड्डी बिलकुल चूर-चूर हो गयी थी, आपने उसके स्थानमें वन्दरका टखना लगाकर उसे एकदम चंगा कर दिया। इसलिए आपका कथन है कि वन्दरका शरीर मनुष्योंके अतिरिक्त अंगों (Spare parts) का गोदाम है। जिस प्रकार जगह-जगहपर मोटरके अतिरिक्त पुरजोंके बिकनेकी दुकाने हैं, उसी प्रकार भविष्यमें स्थान-स्थानपर वन्दरोंके फार्म होंगे, जहाँ मनुष्य-शरीरके अतिरिक्त कल-पुरजे मिलेंगे।

डाक्टर साहब कहते हैं कि वन्दरोंकी रक्षाका कुछ उपाय होना चाहिये, क्योंकि जंगलोंमें उन्हें प्राय: सालमें ६ मासके लिए ही खानेको मिलता है, इसलिए वे सहस्रोंकी संख्यामें भूखसे मरा करते हैं, और कहीं-कहीं शिकारी लोग उन्हें अपनी बन्दूकका निशाना भी बनाया करते हैं। डाक्टर वेरोनाफके प्रयोगोंकी सफलता देखकर फ्रेंच गवर्नमेण्टने अपने समस्त उपनिवेशोंमें वन्दरका शिकार वर्जित कर दिया है। स्पेन और बेल्जियमके राजाओंने भी अपने राज्यमें ऐसा ही करनेकी प्रतिज्ञा की है।

डाक्टर महोदयने अपने मरीजोंके लिए इटलीके रिवेरा प्रान्तमें एक 'मंकी-फार्म' खोल रखा है। यहाँ दूर देशोंसे लाकर वन्दर रखे जाते हैं। यह 'फार्म' मेडीटरेनियन समुद्रके किनारे एक बड़े सुन्दर बागमें है। इस बागमें ग्रिमाल्डीका प्राचीन शानदार प्रासाद है। यहाँ डाक्टर महोदय गर्मियोंमें रहा करते हैं। इसी बागमें वन्दरोंके रहनेका इन्तजाम है। तथा उनके लिए अस्पताल और जच्चाखाना बन रहा है।

यहाँसे मरीजोंके लिए वन्दर पेरिस भेजे जाते हैं। डाक्टर महोदय पेरिसमें भी अपनी प्रयोगशालामें पचास वन्दरोंका स्टाक रखते हैं। कोई-कोई मरीज आपरेशनके पूर्व यहाँ आकर स्वयं अपने लिये वन्दर चुनते हैं।

डाक्टर वेरोनाफने स्त्रियोंका आपरेशन करके उनका भी काया-कल्प किया है, मगर उनका शरीर-यन्त्र पुरुषोंकी अपेक्षा बहुत जटिल है, इसलिए उनका आपरेशन थोड़ा मुश्किल और बड़ा आपरेशन (Major operation) है, इसलिए यह अभीतक अधिक चालू नहीं हुआ है।

जिन लोगोंके एक बार नयी गिल्टी लगा दी जाती है उनके फिर दुवारा भी आपरेशन करके नयी गिल्टी लगायी जा सकती है। अभीतक यह निश्चित नहीं हो सका है कि मनुष्यकी अधिक-से-अधिक आयु कितनी हो सकती है। फ्रान्समें एक आदमी ११० वर्षकी अवस्थामें मरा। अभी हालमें स्काटलैंडमें एक आदमीने १४० वर्षकी आयु पायी। भारतवर्षमें भी सवा सौ वर्षतककी आयुके लोग देखे गये हैं। गिल्टीका इलाज अभी विलकुल नया है, इसलिए विना प्रयोगों और अनुभवोंके यह नहीं कहा जा सकता कि इसके सहारे मनुष्यकी आयु कहाँतक वढ़ायी जा सकती है।

वीयनाके प्रोफेसर यूजेन स्टेनाक (Eugen Stanack) भी इस गिल्टी-इलाजके सम्बन्धमें वहुतसे प्रयोग कर रहे हैं। वे वन्दरकी गिल्टीको मनुष्यकी गिल्टीसे बाँध देते हैं। उनके इलाजसे बूढ़ोंमें भी पुनः यौवन आ जाता है, उनकी झुर्रीदार खाल फिरसे चुस्त हो जाती है, भूख वढ़ती है, मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ फिरसे पूरा काम करने लगती हैं और वजन वढ़ता है। सिरके वाल भी अधिक वढ़ते हैं और उनका रंग गहरा हो जाता है। उनके इलाजका प्रभाव तीन वर्षसे दस वर्षतक रहता है, मगर इसके बाद भी अक्सर इन मरीजोंके, फिर आपरेशन करके नयी गिल्टी बाँधी जा सकती है।

: २८ :

सम्पादकका विवाह

वनारसकी गाड़ी आनेमें कुछ देर थी। गुजराती 'पीयूष'के सम्पादक श्री प्यारेलाल मुंशीने अपनी माँको ले जाकर इण्टर क्लासके वेटिंग रूममें बिठलाया। वेटिंग रूमके मुसाफिरोंमें सहसा उनकी नजर एक कोनेमें जाकर अटक गयी। एक कुर्सीपर एक अत्यन्त सुन्दरी नवयुवती बैठी थी। शरीरपर पारसी ढंगकी साड़ी थी, उम्र सत्रह-अठारह वर्ष, अंग-अंगसे सौन्दर्य और चेहरेसे बुद्धिमानी टपक रही थी। वह 'रिव्यू आफ रिव्यूज' की एक कापी लिये पढ़ रही थी। प्यारेलाल मुंशी पहले तो प्लेटफार्मपर टहलनेके लिए जाना चाहते थे; मगर अव ठिठककर वहीं खड़े रह गये। वे अपनी माँसे बातें करते रहे; परन्तु उनकी दृष्टि रह-रहकर उसी कोनेमें जाकर अटकती थी।

गाड़ी आनेकी घण्टी वजी। कोनेवाली मूर्ति चौंककर खड़ी हो गयी। उसने अपना हैंडवैग सँभाला, कुलीसे असवाव उठवाया और चल दी। मुंशी महाशय भी अपनी माताके साथ उसके पीछे-पीछे चले। अनजान युवती जाकर एक लेडीज इण्टर क्लासमें बैठी। प्यारेलालने अपनी माताको भी ले जाकर उसी जनाने डब्बेमें विठाया तथा स्वयं बगलवाले डब्बेमें जा बैठे। वे प्रत्येक स्टेशनपर अपनी माँके पास आकर उस युवतीके दर्शन कर जाते थे। उन्होंने चुपकेसे अपनी माँसे कहा कि वातचीत करके इस युवतीका परिचय पूछो। मालूम हुआ कि वह वनारस हिन्दू यूनिवर्सिटीके एक प्रोफेसरकी अविवाहिता कन्या है और वहीं इण्टरमीडिएटमें पढ़ती है।

—२—

श्री प्यारेलाल मुंशीकी आयु अव ३५ के लगभग है। अवसे सोलह-सत्रह वर्ष पहले उनका विवाह एक भोली-भाली, हँसमुख स्वभावकी लड़कीसे हुआ था। उस समय चढ़ता यौवन था, हृदयोंमें आकांक्षाओं और आशाओंके स्वर्ण-जाल फैले हुए थे। नवीन परिचयके प्रथम मिलनमें पति-पत्नीमें खूब प्रेम था। जीवन एक सुन्दर स्वप्नके समान जान पड़ता था; परन्तु यह सुखमय स्वप्न अधिक कालतक स्थिर न रह सका। दो-तीन वर्षके वाद ही सहसा एक संक्षिप्त वीमारीमें पत्नीका देहान्त हो गया। प्यारेलाल-पर सहसा वज्र-सा गिरा। उनका सोनेका संसार नष्ट हो गया। उन्हें जीवन निस्सार, रसहीन जान पड़ने लगा। पढ़नेमें जी न लगता था। अन्तमें उन्होंने कालेज जाना भी छोड़ दिया। अव वे साहित्यके अध्ययनहीमें अपना समय विताने लगे।

इस चोटकी पहली कठोरता कुछ कम होनेपर माता-पिताने दूसरे विवाहकी चर्चा चलायी; परन्तु प्यारेलालने साफ-साफ कह दिया कि वे कभी भी दूसरा विवाह नहीं करेंगे। इतना ही नहीं, वल्कि उन्होंने अपनी पत्नीकी स्मृति-रक्षाके लिए उसके नामपर एक पुस्तक सीरीज निकाली और उसके कुछ दिन वाद 'पीयूष'को जन्म दिया। 'पीयूष'ने गुजराती मासिक पत्रोंमें एक नवीनता पैदा कर दी, जिससे शीघ्र ही प्यारेलाल मुंशीका नाम साहित्य-जगत्में मशहूर हो गया, यद्यपि जाननेवाले जानते हैं कि 'पीयूष'के सम्पादनमें वास्तविक हाथ दूसरे ही लोगोंका है।

आठ-दस वर्षतक प्यारेलाल अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहे। परन्तु समय सबसे बड़ा डाक्टर है। वह गहरे-से-गहरे घावोंको पूर देता है। उसने प्यारेलालकी प्रतिज्ञापर भी धीरे-धीरे विस्मृतिकी यवनिका डालनी शुरू की। अव जव वे अपने साहित्य-सेवी मित्रोंको उनकी पढ़ी-लिखी अप-टू-डेट पत्नियोंके साथ देखते हैं, तो उनके हृदयमें कोई सुप्त आकांक्षा सहसा जाग उठती है। नवयुतियों और कुमारियोंसे मिलनेमें उन्हें विशेष आनन्द आने लगा। अव वे जव कभी कांग्रेस, कानफरेन्स अथवा किसी साहित्य-सम्मेलनमें जाते हैं, तो उनका पहला काम होता है स्वयंसेविकाओंकी कैप्टन तथा स्वयं-सेविकाओंसे मिलना। वे अपने पत्रमें भी स्त्रियों और युवतियोंके चित्र बहुतायतसे छापने लगे।

धीरे-धीरे उनके मनमें विवाहकी इच्छा अत्यन्त वलवती हो उठी। उन्होंने इस वातकी अपने इष्ट-मित्रोंमें भी चर्चा की। इधर-उधर लोगोंसे कहा। दो-एक स्थानोंसे कुछ बातचीत भी आयी; परन्तु अव एक नयी अड़चन उठ खड़ी हुई। अव वे जिस किसी भी लड़कीसे विवाह करना नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि उनकी स्त्री अत्यन्त सुन्दरी हो, जिसे साथ लेकर वे अपने 'सभ्य' मित्रोंमें गर्वसे आ-जा सकें। और सभ्य समाजमें आने-जानेके लिए यह भी जरूरी है कि लड़की सुशिक्षिता हो, सुधार-प्रेमी हो, अंग्रेजी भाषापर उसका अधिकार हो, विलायती तौर-तरीकोंसे परिचित हो और नवीन फैशनकी वातोंसे जानकारी रखती हो। प्यारेलालके समाजमें इस प्रकारकी लड़की मिलना असम्भवसे कुछ ही कम है। एक तो प्रकृतिने उनके समाजको सौन्दर्य प्रदान करनेमें कोई उदारता नहीं दिखलायी, दूसरे स्त्री-शिक्षाका अभीतक उनके समाजमें इतना जोर नहीं है कि उन्हें मनचाही पत्नी मिल सके। उनके समाजमें केवल एक ही लड़कीने एण्ट्रेन्स पास किया है, सो भी कुरूपा है। वहुत सोच-विचारकर वे इस वातके लिए तैयार हो गये कि वे जात-पाँतके बन्धन तोड़कर दूसरी जातिकी लड़कीसे भी विवाह कर लेंगे, यदि उसमें अन्य सब गुण मिल सकें। इस प्रकार उन्हें अपनी इच्छा-पूर्तिके साथ-साथ समाज-सुधारकी वाहवाही मुफ्त ही मिल जायगी।

—३—

रेलके परिचयके सहारे प्यारेलालने काशी पहुँचकर दो-तीन बार अपनी माताको प्रोफेसरके घर भिजवाया। और उन्हें पहुँचाने और लिवाने जाकर अपने नेत्रोंको भी

तृप्त किया । काशीसे चलनेके पहले उन्होंने अपनी माताके द्वारा प्रोफेसर साहबसे उनकी लड़कीके साथ विवाहका सन्देश भी भिजवाया । बेचारे प्रोफेसर इस अप्रत्याशित प्रस्तावको सुनकर अवाक् रह गये । उन्होंने यह कहकर अपना पिण्ड छुड़ाया कि उनकी लड़कीका विवाह एक नवयुवक इंजीनियरके साथ होना निश्चित हो चुका है ।

गुजरातीके सुप्रसिद्ध कवि श्रीयुत पाठककी लड़कीने एम० ए० किया था । वह देखनेमें भी सुश्री थी । प्यारेलालने उनके पास भी सन्देश भेजा; परन्तु उन्होंने भी अत्यन्त उपेक्षाके साथ उसे ठुकरा दिया ।

संगमूसाके राजासे मुंशीजीसे मित्रता थी । उन्होंने राजा साहबसे अपनी आकांक्षा प्रकट की तथा बताया कि वे कैसी पत्नी चाहते हैं । उन्होंने कहा—"आप तो जानते ही हैं कि मेरी अभिरुचि कैसी कलापूर्ण है । सौन्दर्यके विषयमें भी मेरी रुचि बड़ी परिमार्जित है ।"

संगमूसाके राजाने थोड़ी देरतक सोचकर कहा—"मेरी नजरमें तो बस आपके योग्य केवल एक ही लड़की दिखायी देती है ।"

मुंशीजीने उत्सुकतासे पूछा—"कौन ?"

राजा बोले—"कुमारी श्यामा बेन ।"

"कौन श्यामा बेन ?"

"सुप्रसिद्ध देश-नेता पं० रतनलालकी बहन ।"

मुंशीने क्षणभर सोचकर कहा—"हाँ, है तो वह अच्छी; लेकिन उसकी गर्दन वैसी सुन्दर सुराहीदार नहीं है । फिर भी वह स्वयं इतनी प्रसिद्ध है तथा इतने प्रसिद्ध देशभक्तकी बहन है, इसलिए यह दोष मार्जित हो जाता है ।"

"बस, तो फिर पंडितजीसे कहिये ।"

"पंडितजीसे आप कह दें ।"—मुंशीजी बोले ।

राजा साहब बोले—"बापरे ! पंडितजीसे मैं नहीं कहनेका । आप ही कहें । अरे यार, आप भी मजाक करते हैं । आपको जैसी पत्नी चाहिये, वैसा एक विज्ञापन निकाल दीजिए, कहीं-न-कहीं मिल ही जायगी । आप तो विज्ञापन-कलाके उस्तादजी हैं ।"

"यह आपने अच्छा बतलाया । इसका अबतक मुझे खयाल ही न था ।"—यह कहकर प्यारेलाल उछल पड़े ।

वे अपने मनमें कहने लगे कि मैं भी कैसा बेवकूफ हूँ, जो अबतक विज्ञापन देनेकी बात ही नहीं सूझी । अपने हाथमें ही इतनी बड़ी शक्ति रहते हुए भी अबतक यह बात क्यों नहीं सूझी ।

वास्तवमें बात यह थी कि प्यारेलाल मुंशी विज्ञापनबाजीकी कलामें पारंगत थे । संसारमें उन्हें जो कुछ सफलता मिली है, वह विज्ञापन-कलाकी ही बदौलत । यहाँतक कि साहित्य-क्षेत्रमें भी उनकी धाक, उनकी ख्याति तथा उनकी पूछ होनेमें भी

उनकी साहित्य योग्यताका इतना हाथ नहीं रहा, जितना विज्ञापनबाजीका। विज्ञापनकी सहायतासे वे चूरन और दालके मसालेसे लेकर कवितातक वेच सकते थे। वे जानते थे कि विज्ञापन वाँचनेवाली दुनियाको कैसे हवाई-महल दिखा-दिखाकर उल्लू बनाया जाता है। बस, वे फौरन ही घर गये और दो घण्टेकी मेहनतके बाद निम्नलिखित विज्ञापन तैयार करके 'पीयूष'में छपनेके लिए दे दिया :

विवाह-विज्ञापन

एक अत्यन्त गुणवान् और योग्य युवकके लिए एक सद्गुणभूषिता और सुन्दरी कन्याकी जरूरत है। वर एक धनी और प्रतिष्ठित परिवारका बहुत उच्च शिक्षा-प्राप्त, सुसंस्कृत और सुरुचिसम्पन्न हिन्दू है। वह स्वस्थ एवं सुन्दर है और भारतसे लेकर लंका-तक प्रख्यात है। विवाहके समय ४०,००० रुपयेकी जायदाद कन्याके नाम लिख दी जायगी और उसे ३०० रुपये मासिक जेवखर्चके लिए मिला करेगा।

लड़की अत्यन्त गुणवती होनी चाहिये। उसमें अन्यान्य गुणोंके साथ निम्नलिखित योग्यता होनी चाहिये :—

(१) वह स्वथ तथा सुन्दरी हो।

(२) वह सुशिक्षिता हो।

(३) उसका स्वभाव और चाल-ढाल हिन्दू स्त्रियोंके सर्वोच्च आदर्श के अनुकूल हो।

(४) उसके हृदयमें विशुद्ध भारतीय संस्कृति और देशभक्तिकी होली जलती हो।

(५) वह किसी बड़े ऊँचे और धनी सुप्रसिद्ध घरानेकी हो।

(६) उसे संगीत, साहित्य और कलासे अगाध प्रेम हो तथा उनमें उसकी गति हो।

(७) उसकी आयु सोलह वर्षसे वाईस वर्षतक हो।

(८) लड़की हिन्दू हो। वह भारतके किसी भी प्रान्त और हिन्दुओंकी किसी भी जाति या उप-जातिकी हो सकती है। सेन्सस कमिश्नरकी परिभाषाके अनुसार जैन, सिख, आर्य, ब्राह्मी, सनातनी, कोल-भील इत्यादि सभी हिन्दू शब्दके अन्तर्गत समझे जायेंगे।

समस्त पत्र-व्यवहार निम्नलिखित पतेपर होना चाहिए—

श्री 'वीर्यवान'
c/o Editor,
The 'Piyush'
Ahmedabad.

—४—

प्यारेलाल मुंशी जानते थे कि संसारमें रुपयेकी बड़ी महिमा है। रुपया देखकर भारतके सैकड़ों माता-पिता अपनी बालिका पुत्रियोंका साठ-साठ, सत्तर-सत्तर वर्षके बूढ़ोंके साथ विवाह कर देते हैं। इसीलिए उन्होंने विज्ञापन में ४०,००० रुपये की जायदाद लिख

देने तथा ३०० रुपये मासिक जेबखर्चके देनेका प्रलोभन लिख दिया था। उनके पास ४०,००० की जायदाद तो थी नहीं, केवल दस-पाँच हजारकी न विक सकनेवाली पुस्तकोंका स्टाक तथा प्रेसकी मशीनें ही थीं। उन्होंने सोचा था कि मौका पड़नेपर मैं 'पीयूष' की 'गुडविल' लिख दूँगा। उसीका दाम ४०,००० रुपये वतला दूँगा; यह 'गुडविल' तो एक ऐसी चीज है, जिसकी कीमत चाहे पाँच लाख वतला दो, चाहे पाँच आने, और जो वास्तवमें देखो, तो वह है पाँच कौड़ीकी भी नहीं।

प्यारेलाल अभीतक खद्दरका कोट-पाजामा पहना करते थे। सिरपर गांधी टोपी लगाते थे; परन्तु अव उन्होंने रंग-ढंग वदल दिया। अव अप-टू-डेट फैशनका कोट-पतलून उनके शरीरकी शोभा वढ़ाता है। रेशमी रूमाल और नेकटाई एक ही कपड़े और एक ही रंगकी होती है। गांधी टोपीको पेन्शन हो गयी। उसके स्थानपर इटैलियन फेल्ट हैट नियुक्त हुआ है। उम्रका भेद खोलनेवाली मूँछें उस्तरेके घाट विदा कर दी गयीं। हेजेलीन स्नो, व्रिलियण्टाइन और पाउडरका खर्च कुछ वढ़ गया है।

विज्ञानपनका उत्तर वड़ी प्रतीक्षासे देखा जाने लगा। सारा महीना गुजर गया; मगर एक भी पत्र इस विषयमें नहीं आया। दूसरे महीने पुनः विज्ञापन छापा गया। इस वार तीन रंगोंमें छपाकर गुजराती और अंग्रेजी दोनों भाषाओंमें विज्ञापन प्रकाशित किया गया, सो भी टाइटिल पृष्ठपर।

इस वार जवाव आया। तीन पत्र आये। एकमें लड़कीकी आयु वाईस वर्षकी थी, और वह स्वयं किसी गर्ल्स स्कूलमें टीचर थी। पिता नहीं थे। मातासे अनवन थी। दूसरेमें लड़की अठारह वर्षकी ही थी, मगर शिक्षामें केवल मिडिलतक पढ़ी थी। कलामें गुलवन्द विनना जानती थी। संगीतमें दादू दयालके भजन गा सकती थी, साहित्यमें उसने सरस्वती चन्द्रका अध्ययन किया था। प्यारेलालको ये दोनों सम्वन्ध ही पसन्द न आये। अन्तमें तीन हफ्ते वाद उन्हें यह पत्र मिला—

"प्रिय महाशय,

'पीयूष'में प्रकाशित आपके विज्ञापनके उत्तरमें निवेदन है कि मेरे एक वन्धुकी साली-के लिए वरकी आवश्यकता है। लड़की स्थानीय लोरेटो हाई स्कूलमें पढ़ती है और इसी मार्चमें मैट्रिकुलेशनकी परीक्षा देगी। वह देखनेमें अनिन्द्य सुन्दरी और स्वस्थ है। अंग्रेजी तथा गुजरातीके ज्ञानके अतिरिक्त वंगाली लड़कियोंके साथ रहनेके कारण वह वँगला भी मजेमें वोल और समझ लेती है। गत वर्ष फोर्ट विलियममें जो लेडीज आर्ट इक्जिविशन हुआ था, उसमें रेशमपर हरद्वारकी जामा मसजिदकी तसवीर वनानेके लिए उसे प्राइज मिला था।

लड़की वायलिन (Violin) वजाना जानती है और आजकल वैंजो वजानेका अभ्यास कर रही है। उसकी उम्र सत्रह वर्ष है। उसके माता-पिता पंजाब-प्रवासी गुजराती हैं।

कृपा करके यह लिखिये कि वर महाशय कहाँ रहते हैं ? वे क्या करते हैं ? उनकी उम्र क्या है ? वे अविवाहित हैं या विधुर ? यदि विधुर हैं, तो कोई सन्तान है ? कृपा करके वरका फोटो भेज दें, क्योंकि यह मामला ऐसा है, जिसमें कन्याकी स्वीकृति अत्यन्त आवश्यक है । आवश्यकता होनेपर कन्याका फोटो भी भेजा जायगा ।

विनीत—
मथुरादास मेहता,
कलकत्ता ।"

यह पत्र पाकर प्यारेलाल फूल गये । फौरन ही उन्होंने उत्तर लिखा—

"माननीय महोदय,

आपका कृपापत्र मिला । लड़कीके वारेमें सब बातें ज्ञात हुईं । वरके विषयमें आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं :

(१) वर गुजरातके एक प्रसिद्ध नगरमें रहते हैं ।

(२) वे कवि, रईस और लेखक हैं और भारतसे लेकर लंकातक प्रसिद्ध हैं ।

(३) उम्र तीस वर्षमें पाँच हफ्ते कम है ।

(४) विवाहके कुछ मास पश्चात् ही स्त्रीके मर जानेपर फिर विवाह नहीं किया । अब समाज-सुधारके लिए जात-पाँत तोड़कर विवाह करना चाहते हैं ।

(५) सन्तान कोई नहीं है ।

नया फोटो तैयार हो रहा है । शीघ्र ही भेजेंगे । आप कन्याका फोटो फौरन भेज दें और यह भी लिखें कि उसके पिता क्या करते हैं ? उत्तर आनेपर वरका भी पूरा परिचय लिख दिया जायगा ।

भवदीय
वीर्यवान ।"

एक सप्ताह बाद चिट्ठीका जवाब आया—

"प्रिय महाशय,

कृपापत्र मिला । उम्मीद है कि समाज-सुधारक होनेके कारण वर महाशय विलायत-यात्राके विरोधी न होंगे, क्योंकि लड़कीके घरवाले विलायत 'रिटर्न्ड' हैं । यदि वर विलायत-यात्राके विरोधी हैं, तो किसी प्रकारका पत्र-व्यवहार करना फिजूल है ।

लड़कीके पिता पंजाबके एक सफल रोजगारी हैं । उनके पास मकान, जमीन, जायदादके अतिरिक्त लाहौरमें एक आयल मिल और भटिण्डामें एक बड़ा फ्लोर मिल है । उनके तीन पुत्र और दो कन्याएँ हैं । वे स्वयं लाहौर मिलका काम देखते हैं । बड़े पुत्र भटिण्डा मिलकी निगरानी करते हैं । दूसरे पुत्र कलकत्तेमें पोर्ट कमिश्नर हैं । उनकी मातहतीमें दर्जनों अंग्रेज और कोड़ियों अधगोरे (ऐंग्लो-इण्डियन) काम करते हैं । सबसे छोटे पुत्र बर्लिनमें रहीनिश जीटंगमें बुड्ढ़ोंके रोगोंके स्पेशलिस्ट हो रहे हैं । लड़कीकी

बड़ी बहन मेरे बन्धुको ब्याही है, जो विलायतमें पढ़े हैं और 'मेण्टल डिजीजेज'के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने सैकड़ों केस अच्छे किये हैं और बड़े-बड़ोंकी अक्ल ठीक की है।

'व्हिटसन टाइड'के उपलक्ष्यमें गर्ल्स स्कूल कुछ दिनके लिए बन्द हो गया है। लड़की आवहवा बदलनेके लिए पोर्ट ब्लेयर गयी है। आते ही फोटो सेवामें भेजा जायगा।

भवदीय—

मथुरादास मेहता।"

प्यारेलालको उनकी विज्ञापनबाजीने यह सिखला दिया था कि बातोंके पकवानमें मोयन (घी) का टोटा न होना चाहिये। जबानी जमाखर्चमें कंजूसी क्यों की जाय? बस, उन्होंने फौरन ही उत्तर लिख दिया—

'प्रिय माननीय महोदय,

आपका कृपापत्र मिला। स्वयं समाज-सुधारक होते हुए वर विलायत-यात्राके विरोधी कैसे हो सकते हैं? लड़कीके घरवाले जिस प्रकार विलायत हो आये हैं, वैसे ही वरके भी कोई १५, २० घरवाले विलायत हो आये हैं। उनके एक मित्रके मौसेरे साले तो विलायतहीमें बस गये हैं। वर महाशय खुद अपनी भावी वधूके साथ आगामी वर्ष विदेश यात्रा करनेका विचार रखते हैं।

रही सोशल पोजीशनकी बात, सो वरके सगे सम्बन्धी मिल-ओनर, जमींदार, एम० एल० ए०, एम० एल० सी०, बैरिस्टर, वकील, शू मेकर्स, आई० सी० एस०, फिश मर्चेण्ट, डाक्टर, आई० एम० एस० इत्यादि हैं। वर अपने परिवारके सबसे तेज व्यक्ति समझे जाते हैं। वे स्कूल और कालेजमें सदा फर्स्टसे भी आगे आते रहे हैं। वे कई प्रसिद्ध संस्थाओंके संस्थापक और मालिक हैं, जिससे उनकी निजी आमदनी दो हजार रुपये मासिक है। परिवारकी आमदनीसे इससे कुछ मतलब नहीं। उनका परिवार भारतसे लेकर अण्डमान नीकोबारतक प्रसिद्ध है। इतनी कम आयुके होते हुए भी वे काफी प्रसिद्ध हैं। इन सब बातोंसे उनके सोशल पोजीशनका अन्दाज लग जायगा।

कन्या सुसंस्कृत परिवारमें पली है, यह जानकर हृदयको बड़ा सन्तोष हुआ। वर महाशय भी ऐसी ही कन्या चाहते हैं, क्योंकि उनका सारा परिवार उच्च शिक्षा-प्राप्त होनेके कारण बहुत सुसंस्कृत रुचिका है।

अनेक नेताओं, राजा-महाराजाओं, अफसरों, विज्ञापनदाताओं, कम्पोजीटरों, लेखकों, दफ्तरियों आदि सभ्य व्यक्तियोंसे वर महाशयकी मित्रता और घनिष्ठता है।

वरके क्वालिफिकेशन यदि आपलोगोंको पसन्द हों, तो कृपया लिखियेगा कि वर और कन्या एक दूसरेको कहाँ देख सकेंगे—बम्बईमें, अहमदाबादमें या कलकत्तेमें? वरके बारेमें और जो-कुछ पूछना हो पूछिये।

भवदीय—

वीर्यवान।"

एक सप्ताह प्रतीक्षामें कटा। सातवें दिन उत्तर आया—

"प्रिय महाशय,

कृपापत्र मिला। वरकी सोशल पोजीशनको जानकर प्रसन्नता हुई। कृपा करके उनके सम्बन्धमें निम्नलिखित बातोंपर प्रकाश डालनेका अनुग्रह करें—

(१) वरकी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता क्या है ?

(२) वे किस चीजका रोजगार करते हैं ?

(३) क्या उनके पास जमीन-जायदाद भी है ?

(४) वे स्वयं भी किसी प्रकारका म्यूजिक जानते हैं ?

(५) क्या उन्हें स्पोर्टस्में भी रुचि है ?

(६) स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता और राजनीतिके सम्बन्धमें उनके विचार क्या हैं ?

लड़कीके माता-पिता धार्मिक बातोंमें बड़े उदार विचारके आदमी हैं। कृपा करके यह भी लिखें कि वर महाशयके धार्मिक विचार कैसे हैं ? वे ज्योतिष इत्यादिमें तो विश्वास-नहीं रखते ?

भवदीय—
मथुरादास मेहता।"

मुंशीजीने फौरन उत्तर दिया—

"प्रिय महाशय,

आपका पत्र मिला। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है :—

(१) वर सदा दर्जेमें फर्स्ट आते रहे हैं। उन्हें कर्जन आदि अनेक स्कालरशिप और कई गोल्ड मेडल मिले हैं। वे बी० ए० तक पढ़े हैं। असहयोगके जमानेमें आगे पढ़ना छोड़-कर, जैसा अन्य लोगोंने किया था, वे साहित्य-सेवामें लग गये और यथेष्ट उन्नति की। उनके पिता उन्हें आई० एम० एस० के लिए तैयार करना चाहते थे, क्योंकि परिवारवाले उन्हें बड़ा अकलमन्द समझते थे। मगर उन्होंने साहित्य-सेवाको ही पसन्द किया। यदि आई० एम० एस० होते, तो कहीं सात-आठ सौ रुपये ही पाते होते।

(२) वे अनेक प्रकारके रोजगार करते हैं। कई प्रसिद्ध संस्थाओंके मालिक हैं। उनके परिवारमें जमीन-जायदाद भी है। मगर अपनी संस्थापित संस्थाओंके वे एकमात्र मालिक हैं, जिससे उनकी मासिक आय २०००) रु० है, जो बराबर बढ़ रही है।

(३) म्यूजिकसे उन्हें स्वयं बहुत रुचि है। कालेज-जीवनमें हारमोनियम और सितार बजाना उन्होंने सीखा था। उनका गाना सुन्दर और स्वर मधुर है। जब वे ऋषभ स्वरमें खम्माचका दादरा गाते हैं, तो दरो-दीवारतक सन्नाटेमें खड़े रह जाते हैं। भारतके अनेक गायकोंसे उनका सम्बन्ध है। चित्रकलाके वे ऐसे शौकीन हैं कि उनकी चित्रशाला भारतसे लेकर टिम्बकटूतक प्रसिद्ध है। ललित कलाओंमें वे कविता बहुत अच्छी करते हैं। कवितापर उन्हें बादशाह पञ्चम जार्जकी मूर्त्ति अंकित कई ताम्र-पदक पुरस्कारमें मिल चुके हैं।

(४) स्त्रियोंकी स्वाधीनताके पूर्ण पक्षपाती हैं।

(५) राजनीतिमें वे स्वराज्यवादी हैं ।

(६) टेनिस, फुटवाल और हाकी वे खेलते रहे हैं । एक वार विना पहियेकी वाइ-सिकिल चलानेपर उन्हें प्राइज मिला था । कसरतका शौक होनेसे वे खूब हृष्ट-पुष्ट हैं ।

(७) धार्मिक विचारोंमें वे पूरे उदार हैं । ज्योतिपमें उन्हें विश्वास नहीं है ।

भवदीय—

वीर्यवान ।"

इस उत्तरको लिखनेके वाद प्यारेलालको ऐसी प्रसन्नता हुई, जैसे किसी चित्रकारको अपना सर्वोत्कृष्ट चित्र वना चुकनेपर होती है, क्योंकि इस चिट्ठीमें उन्होंने अपनी विज्ञापन-कलाकी पराकाष्ठा दिखला दी थी ।

—५—

इस प्रकारके पत्र-व्यवहारके वाद प्यारेलाल स्वयं लड़कीको देखनेके लिए गये । लड़की वास्तवमें वड़ी सुन्दर थी । हाँ, उम्र उसकी निश्चय ही अठारह-उन्नीससे कम न होगी । उन्होंने मनमें सोचा कि मैंने अपनी उम्र पाँच वर्ष कम कर दी है, यदि उसने वरस-दो-वरस कम की, तो कुछ वेजा नहीं है । साथ ही उनके विज्ञापनकी तीसरी शर्त भी पूरी नहीं होती थी । लड़की वीसवीं सदीके अप-टू-डेट फैशनकी थी । उसमें सर्वोच्च हिन्दू-आदर्श—सीता, सावित्रीके स्वभावका आभास भी नहीं था । साथ ही उसके परिवारवालोंका सोशल पोजीशन जैसा ऊँचा उन्हें वताया गया था, वह भी उन्हें नहीं दिखाई दिया । उन्होंने देखा कि इन लोगोंने अतिशयोक्तिपूर्ण वातें लिखकर मुझे फँसानेका प्रयत्न किया है; मगर दूसरे ही क्षण यह सोचकर उनका हृदय गर्वसे फूल उठा कि इस मामलेमें वे इन नवसिखियोंसे कोसों आगे वढ़े हुए हैं । मगर यह सव होते हुए भी लड़की सुन्दरी थी, फैशनेविल थी, टूटी-फूटी अंग्रेजी वोल लेती थी, और सभ्य समाजमें आने-जानेमें अथवा पुरुष मित्रोंसे वातचीत करनेमें उसे झिझक भी न थी । उनके लिए इतना ही काफी था । पहले उन्होंने उसका संगीत सुननेकी इच्छा की; मगर यह सोचकर कि कहीं वह उन्हींसे गानेकी फर्माइश न कर वैठे, उन्होंने यह विचार त्याग दिया ।

प्यारेलाल आर्य समाजके ढंगसे विवाह-संस्कार करना चाहते थे; परन्तु लड़की और उसके सम्वन्धियोंको आर्य समाजसे चिढ़ थी । इसलिए विवाह सरकारी रजिस्ट्रारके सम्मुख 'सिविल मैरिज एक्ट' के अनुसार हुआ और मधुचन्द्र वितानेके लिए नवीन दम्पति सीधे काश्मीरको रवाना हो गये ।

—६—

मधुचन्द्रके तीन सप्ताह वड़े आनन्दसे कटे । प्यारेलालने हाथ खोलकर खर्च किया, और श्रीमती मुंशीने पतिकी आज्ञा मानने, उन्हें प्रसन्न करने और रिझानेमें कोई कसर नहीं उठा रखी । प्यारेलाल मुंशी वास्तवमें वड़े सुखी थे ।

मगर घर लौटनेपर गड़वड़ी शुरू हुई । प्यारेलालका घर देखकर ही मिसेज मुंशीने नाक भौं चढ़ायी । उन्होंने प्यारेलालसे कहा—"डियर ! आप कैसे इस वेसाज-सामानके

घरमें रहते हैं, जहाँ फर्नीचरका एक सेटतक नहीं है । मुझसे तो ऐसे घरमें नहीं रहा जायगा।'

उसी दिन मिसेज मुंशी अकेली गाड़ीमें वैठकर गयीं और एडलजी कम्पनीमें एक बढ़िया ड्राइंगरूम सेट, आईनेदार आलमारी, ड्रेसिंग टेबिल आदिका आर्डर दे आयीं। दूसरे ही दिन सव सामान प्यारेलालके घर और ८७५) रु० का विल उनके आफिसमें जा पहुँचा। विल देखकर मुंशीजी तिलमिला उठे। उन्होंने मिसेज मुंशीसे उसके लिए कुछ कहा, तो उन्होंने लापरवाहीसे उत्तर दिया—'देखिये, मैं ऐसे गँवारू ढंगसे नहीं रह सकती। मुझे कमसे कम इतना फर्नीचर तो जरूर ही चाहिये। यदि आप स्वयं विल न चुकाना चाहें, तो आपने मुझे जो ४०,०००) रु० देनेको कहा था, उसमेंसे विल चुका दें।"

इस प्रकार आये दिन मिसेज मुंशी वाजारसे नेकलेस, अँगूठियाँ, ब्रोचेज, साड़ियाँ आदि मँगा लेतीं और जव प्यारेलाल विल चुकानेमें आना-कानी करते, तभी वह कह देतीं कि मेरे उस ४०,०००) मेंसे काट लो।

अगले महीनेकी पहली तारीखको मिसेज मुंशीने अपने जेव खर्चके ३००) माँगे। प्यारेलालने कहा कि दो-एक दिन बाद ले लेना। आज २९०॥=) इनकम टैक्सके देने हैं।

मिसेज मुंशीने पूछा—'कितने दिनका इनकम-टैक्स वाकी है ?

प्यारेलाल—"एक सालका।"

मिसेज मुंशी—'हूँ' कहकर चुप हो रहीं।

—७—

प्यारेलालके दाम्पत्य जीवनका सुख रुपये-पैसेके कारण कुछ किरकिरा-सा हो रहा था। इतनेमें एक और विघ्न आ उपस्थित हुआ। एक दिन आफिससे लौटकर उन्होंने देखा कि मिसेज मुंशी एक नवयुवकके साथ खिलखिलाकर वातें कर रही हैं। मिसेज मुंशीने यह कहकर—'यह मेरे वचपनके मित्र मि० करंजिया हैं', युवकका परिचय दिया। अब धीरे-धीरे युवकका आवागमन उनके घरपर बढ़ने लगा। शामको मिसेज मुंशी प्यारेलालके आनेके पहले ही करंजियाके साथ घूमने निकल जातीं और अकसर आठ-नौ बजेके बाद लौटतीं।

महीना पन्द्रह दिनतक यही हाल चलता रहा। प्यारेलालको करंजियाका आना विलकुल पसन्द न आया। एक दिन उन्होंने मिसेज मुंशीसे कहा—'मुझे मि० करंजियाका आना और तुम्हारा उसके साथ घूमने जाना अच्छा नहीं मालूम होता।'

मिसेज बोलीं—'आप भी अच्छे आदमी हैं! क्या आप यह खयाल करते हैं कि मैं अपने मित्रों और सहेलियोंको छोड़ दूँ? आप शामको आठ वजेतक प्रूफ देखने और झूठे विज्ञापन लिखनेमें व्यस्त रहते हैं, यदि मैं घण्टा-आध-घण्टा टहल आती हूँ, या सिनेमा देख आती हूँ, तो कुछ अन्धेर हो जाता है?'

उस दिनसे प्यारेलाल पाँच बजे शामको ही घर आ जाने लगे और मिसेज मुंशीको साथ लेकर स्वयं घूमनेके लिए जाने लगे । संध्याको करंजियाका आना बन्द हो गया; मगर प्यारेलालको मालूम हुआ कि अब भी वह आकर मिसेज मुंशीसे मिला करता है ।

एक दिन प्यारेलाल एक जरूरी कागज घरपर ही कहीं रखा भूल गये थे । आफिसमें उसकी जरूरत पड़ी, इसलिए वे दोपहरको दो बजे—बेवक्त घरपर आये । ड्राइंग रूमके पर्देकी ओटसे उनकी नजर जो कमरेके भीतर पड़ी, तो वे सहसा ठिठक गये । देखा कि एडलजी कम्पनीके नये सोफेपर करंजिया बैठा है, मिसेज मुंशी उसकी गोदमें सिर रखे हुए लेटी हैं । उनकी दोनों बाँहें करंजियाकी गर्दनमें पड़ी हुई हैं । साड़ी सिरसे खिसकी हुई है । दोनों एक दूसरेको विचित्र दृष्टिसे देख रहे हैं ।

प्यारेलाल गुस्सेसे काँपते हुए कमरेमें घुसे और थर्राती हुए आवाजमें करंजियासे बोले—'निकल बदमाशके बच्चे मेरे घरसे, पाजी, सूअर ।'

मिसेज मुंशी भड़भड़ाकर उठ बैठीं । उन्होंने लड़खड़ाती हुई जबानसे कहा—'मैं—मैं—मेरे मित्रका अपमान न कीजिये ।'

प्यारेलाल कड़ककर बोले—'चुप चुड़ैल ।'

करंजियाने आस्तीनें चढ़ाते हुए कहा—'बस, जबान सँभालकर—अब अगर गाली निकाली, तो जबान निकालकर रख दूँगा ।'

मिसेज मुंशीने आगे बढ़कर करंजियाका हाथ थाम लिया और यह कहते हुए उसे बाहरकी ओर ले गयीं—'जाने दो । तुम इस गँवारके मुँह न लगो । मैं ही इसकी अक्ल ठिकाने लगानेको काफी हूँ ।'

करंजिया बाहर चला गया ।

मिसेज मुंशीकी इस बातसे प्यारेलालका क्रोध कई गुना बढ़ गया । उन्होंने मिसेज मुंशीकी गर्दन पकड़कर ऐसा धक्का दिया कि वे सोफेपर जा गिरीं । वे बोले—'दुराचारिणी, चुड़ैल, निकल मेरे घरसे ।'

मिसेज मुंशी चोट खायी हुई नागिनकी तरह उठीं और गर्जकर बोलीं—'निकलूँगी और तुझे मिट्टीमें मिलाकर निकलूँगी ।'

प्यारेलाल फिर उनकी ओर झपटे; मगर उन्होंने शयनागारमें घुसकर दरवाजा बन्द कर लिया । चार-छै मिनटके बाद प्यारेलालके होश ठिकाने हुए । उन्होंने कागजोंकी आलमारीसे आवश्यक कागज ढूँढ़ा और उसे वैसे ही खुली छोड़कर लम्बे-लम्बे डेग रखते हुए आफिस चले गये ।

उनके चले जानेके आध घण्टे बाद मिसेज मुंशीने शयनागारका दरवाजा खोला । सामने देखा, कागजोंकी आलमारी खुली पड़ी है । पहले कुछ देरतक वे चुपचाप खड़ी रहीं, फिर सहसा उन्हें कुछ याद आ गया । वे झपटकर आयीं और आलमारीके कागजोंको ढूँढ़ने लगीं । उन्होंने उसमेंसे ढूँढ़कर चिट्ठियोंकी एक फाइल, इनकम टैक्स आफिसकी

रसीद तथा मुंशीजीके मैट्रिकुलेशनका सर्टीफिकेट निकाला । ये चिट्ठियाँ उनके विवाहके सम्वन्धकी थीं, जिन्हें मथुरादास मेहताने 'वीर्यवान'को लिखा था । इन तीनों चीजोंको लेकर उन्होंने वड़ी तेजीसे अपने शयनागारमें घुसकर दरवाजा वन्द कर लिया । वहाँ उन्होंने फुर्तीसे अपना वक्स खोला और अपने सारे गहने निकालकर शरीरपर पहन लिये–गलेमें एकपर दूसरी तीन-तीन नेकलेसें ।

अव वे जल्दीसे वाहर निकलीं और सामने जाती हुई किरायेकी गाड़ीको पुकारकर उसपर वैठकर चली गयीं ।

–८–

जजके सामने विवाह-विच्छेद और धोखा देनेका मुकदमा उपस्थित करते हुए मुद्दई मिसेज मुंशीके वकीलने कहा––

'हुजूर, मुद्दआले प्यारेलालने मेरे मुवक्किलको धोखा देकर उससे विवाह किया है। प्यारेलालने मेरे मुवक्किलसे कहा कि उनकी उम्र तीस वर्षकी है; मगर उनके एण्ट्रेंसके इम्तहानके सर्टीफिकेटके अनुसार उनकी उम्र ३५के पार होती है । उन्होंने अपनी आमदनी २०००) मासिक या २४०००) वार्षिक वतलायी है; मगर इनकम टैक्सकी रसीदके अनुसार उनकी वार्षिक आमदनी कुल ६२००) ही है । अपने देश-प्रेमको सिद्ध करनेके लिए प्यारेलालाने लिखा है कि उन्होंने असहयोगमें पढ़ना छोड़ा; मगर कालेजका रेकर्ड कहता है कि उन्होंने असहयोगके दो वर्ष पहले पढ़ना छोड़ दिया था ।

इंगलैण्डमें यदि पुरुष या स्त्री नकली दाँत, नकली वाल या नकली आँख लगाकर ही––दूसरेको पहलेसे वताये विना––विवाह कर ले, तो यह धोखेवाजी समझी जाती है और विवाह-विच्छेदके साथ पूरा हर्जाना दिलाया जाता है । प्यारेलालने मेरे मुवक्किलको ४०,०००) की जायदाद लिख देनेको कहा था, सो भी नहीं किया । इसलिए मेरे मुवक्किलको विवाह-विच्छेदके साथ हर्जाने स्वरूप ८०,०००) रु० दिलाये जायँ ।"

सवूतमें प्यारेलालके हाथकी लिखी चिट्ठियाँ, इनकम टैक्सकी रसीद और प्यारेलालका मैट्रिकुलेशनका सर्टीफिकेट पेश किया गया ।

प्यारेलालके वकीलने यह कहा कि मिसेज मुंशीने भी अपने क्वालीफिकेशनमें अतिशयोक्ति करके प्यारेलालको ठगा है । मगर वे अपने पक्षके समर्थनमें कोई चिट्ठी या प्रमाण न पेश कर सके ।

जजने विवाह-विच्छेदके साथ २०,०००) हर्जानेकी डिग्री दे दी ।

–९–

'पीयूष' वन्द हो गया, क्योंकि प्यारेलाल मुंशीकी पुस्तक सीरीज तथा प्रेस आदि सव चीजें डिग्रीकी अदायगीमें कुर्क हो गयीं ।

मिसेज मुंशीका पता नहीं ।

———

: २९ :

फलोंका विश्वकर्मा मिचूरिन

'बदमाश ! पाजी ! लुटेरी ! डाकू!'—बुड्ढा मिचूरिन एक हाथसे अपने डण्डेपर भार दिये और दूसरेसे मालियोंवाली कैंचीसे वृक्षोंकी मरी हुई पत्तियाँ काटता हुआ अपने बागमें घूमता फिरता है, और फलोंमें चोंच मारनेवाली चिड़ियोंकी ओर देख-देखकर बड़बड़ाता हुआ बकता जाता है—'कमबख्त, सारे फल काटे डाल रही हैं। घबराओ नहीं, थोड़े ही दिनोंमें ऐसी गर्मी पड़ेगी कि तुम सब झुलसकर रह जाओगी।' थोड़ी देर बाद जब वह भोजन करने जायगा, तब स्वयं इन 'पाजी, लुटेरी' चिड़ियोंके चुगनेके लिए दाना देगा। साठ वर्षसे वह बुड्ढा इसी तरह—जाड़ा, गर्मी, बरसात—अपने बागमें काम कर रहा है, और उसने अपने कार्यसे वनस्पति-जगत्‌के अनेक नियमोंको उलट-पलटकर धर दिया है—प्रकृतिकी पुरानी प्रणालीमें क्रान्ति उपस्थित कर दी है।

मिचूरिन रूसमें काजलोवके छोटे कसबेमें रहता है। शक्ल-सूरतमें रूखा, कपड़े-लत्ते ढीले-ढाले और बाबा आदमके जमानेके, बातचीतमें चिड़चिड़ा और दीन-दुनियाकी खबरसे बेखबर। इसीलिए सारा गाँव उसे साठ वर्षसे सनकी कहता आता है; लेकिन आज इस सनकीका शुमार संसारके महान् विज्ञान-वेत्ताओंमें है।

साइबेरिया और उत्तरी रूसमें बड़ी भयंकर सर्दी पड़ती है। काजलोवमें ही जाड़ेमें थर्मामीटरका पारा शून्य से ४०° डिग्री नीचे जा पहुँचता है। ऐसी सर्दीमें पेड़-पौधे ही नहीं उगते, फिर फल कहाँसे पैदा हो सकते हैं। सिर्फ शाहबलूत, भोजपत्र, 'ऐश' आदि कुछ सख्तजान पेड़ ही वहाँ जिन्दा रह सकते हैं। इसके विपरीत दक्षिणी रूसके क्रीमिया प्रान्तकी आबहवा शीतोष्ण और भूमध्यसागर-जैसी है, और भूमध्यसागरके तटवर्ती स्थान फलोंकी उत्पत्तिके लिए सारे संसारमें प्रसिद्ध हैं। अबसे साठ वर्ष पहले मिचूरिन-को यह धुन सवार हुई कि साइबेरिया और उत्तरी रूसमें भी भूमध्यसागर-जैसे फल पैदा किये जायँ।

मिचूरिनने इस सिद्धान्तपर प्रयोग शुरू किये कि यदि अपेक्षाकृत गर्म स्थानोंके पेड़ोंको धीरे-धीरे सर्द स्थानोंकी आबहवाका आदी बनाया जाय, तो उत्तरी रूसमें भी फल पैदा हो सकते हैं। उसने देश-विदेशसे बीज और कलमें मँगायीं, और उन्हें तरह-तरहकी हिफाजतसे काजलोवमें पैदा करनेकी कोशिश की। वर्षोंके अथक परिश्रमपर भी परिणाम सन्तोषजनक न हो सका। तब उसने दूसरा उपाय करनेकी ठानी।

उसने दक्षिणी फलोंके पौधोंकी कलमें उत्तरके शीत-सहिष्णु पेड़ोंपर लगायीं। उसने

सोचा कि इस मिश्रणसे जो दुनस्ले पौधे पैदा होंगे, उनमें उत्तरी वृक्षोंकी शीतका सामना करनेकी शक्ति और दक्षिणी वृक्षोंका फल देनेका गुण होगा। इस सिद्धान्तपर प्रयोग करते-करते और भी दस वर्ष निकल गये; पर सफलता न मिली।

अभीतक वह फलोंके पौधोंकी कलमें उन्हींसे मिलते-जुलते पेड़ोंपर बाँधता था। अब उसने इन पौधोंकी कलमें धुर उत्तरके ऐसे पौधोंपर बाँधी, जो जातिमें और भौगोलिक स्थितिमें उनसे एकदम भिन्न और दूरके थे। उदाहरणके लिए, वह नाशपातीकी कलम ठेठ उत्तरके 'ऐश' (Ash) वृक्षपर बाँधने लगा। इस प्रकारके हजारों प्रयोग करके अन्तमें उसने सफलता प्राप्त की, और सैकड़ों नये फल देनेवाले वृक्ष पैदा कर दिये।

आइवन मिचूरिनका जन्म मध्य रूसमें १८५४में हुआ था। बापकी मृत्युपर उसे पढ़ना छोड़कर पेटकी चिन्ता करनी पड़ी। वह सन् १८७५में, इक्कीस वर्षकी उम्रमें, काजलोव आया और वहाँ रियाजन-यूराल रेलवेमें साढ़े बारह रूबल (लगभग २५ रु०) महीनेपर क्लर्क हो गया। काजलोव मास्कोसे लगभग ३५० मील दूर एक बहुत छोटा कसबा है। छोटी जगह होनेसे ही इस छोटी तनख्वाहपर किसी तरह गुजर होना मुमकिन हो सका था। काजलोवमें एक बिना पढ़ी-लिखी देहाती लड़कीसे विवाह करके वह बस गया। उसने तीन रुपये महीनेपर जमीनका एक छोटा टुकड़ा भाड़ेपर लिया और उसमें बागवानी करने लगा। दिनका आधा हिस्सा तो वह रेलवे दफ्तरमें हिसाब-किताबके रजिस्टर उलटनेमें व्यय करता और बाकी हिस्सा—दिन छिपेतक—अपने पेड़-पौधोंके साथ काटता था। मुश्किल यह थी कि बागवानी ऐसी चीज है, जो दिन छिपनेके बाद नहीं हो सकती।

कुछ वर्ष बाद इत्तिफाकसे रेलवेका एक इन्स्पेक्टर काजलोव आया। उसे मालूम हुआ कि मिचूरिन शरीफ खानदानका है। उसने कहा कि दफ्तरका काम मिचूरिनके लिए ठीक नहीं है। इसलिए उसने मिचूरिनको घड़ियोंकी मरम्मतका काम दिया। रेलवे-लाइन-भरकी बिगड़ी हुई घड़ियाँ उसके पास मरम्मतके लिए आने लगीं। इस परिवर्तनसे मिचूरिनको बड़ा फायदा हुआ। एक तो उसकी तनख्वाह बढ़ गयी, और दूसरी सबसे बड़ी बात यह हुई कि उसे दफ्तर जानेसे छुट्टी मिल गयी। अब वह सारा दिन अपने बागमें लगाने लगा, क्योंकि घड़ी-मरम्मतका काम तो वह दिन छिपनेके बाद भी कर लेता था।

वह अपने पेड़-पौधोंमें इतना व्यस्त रहता था कि उसे दुनियाकी किसी बातसे मतलब ही न था, इसीलिए गाँववाले उसे सनकी कहा करते थे; लेकिन उसकी सनकसे किसीका कोई नुकसान न था, इसलिए किसीने उससे छेड़-छाड़ भी नहीं की। फिर हर गाँवमें एक-न-एक सनकी तो होता ही है।

सन् १८८८में मिचूरिनने कहीं-न-कहींसे कुछ बन्दोबस्त करके गाँवके छोरपर छै एकड़ जमीन खरीदी और अपने पुराने बागके पेड़-पौधोंको एक-एक करके ऐसी हिफाजतसे ले जाकर, जैसे कोई नाजुक काँचकी चीज ले जाता हो, इस नयी जमीनमें लगाया। यह नयी जमीन अच्छी थी, फिर भी उसके विदेशी पेड़ उसमें न फले-फूले। वह बरस, दो बरस,

चार बरस तक किसी पौधेको पाल-पोसकर बड़ा करता, उसकी आशाएँ उज्ज्वल हो उठतीं; लेकिन सहसा, विना किसी प्रत्यक्ष कारणके, पेड़ मर जाता। मिचूरिन भग्नहृदय होकर उसे उखाड़ फेंकता और उसकी जगह कोई दूसरा पौधा रोप देता। इस तरह वह वर्षों तक असफलतासे लड़ता रहा है।

मिचूरिनने वागवानी और वनस्पति शास्त्रपर जितनी पुस्तकें मिल सकीं, पढ़ डालीं। अव उसने पैसा जोड़ना शुरू किया, और इसके लिए सारे शहरकी घड़ियोंकी मरम्मत कर डाली। कुछ पैसा जमा करके मिचूरिनने एक लम्बी यात्रा की। उसने इस यात्रामें मध्य और उत्तरी रूसके प्रत्येक प्रसिद्ध वागको देखा; लेकिन इस यात्रासे उसे अपने प्रयोगोंमें कोई मदद न मिली। उसे सिर्फ इतना ही मालूम हुआ कि समूचे रूसमें एक भी वाग वैज्ञानिक ढंगसे नहीं चलाया जाता है।

यह यात्रा ही मिचूरिनके जीवनकी पहली और अन्तिम यात्रा थी। इसके वाद वह कभी काजलोवसे वाहर नहीं गया। उसने अपनी स्त्रीकी सहायतासे एक नयी प्रयोग-शाला शुरू की। वह उस रहस्यको ढूंढ़ निकालना चाहता था, जिससे वृक्षोंपर कठोरसे कठोर आवहवाका कोई असर न पड़े। सुवहसे शामतक वागवान अपने झवरीले कुत्तोंसे घिरा वागमें काम किया करता था। कुत्ते उसने इसलिए रख छोड़े थे कि वे लूट-मार करनेवाले लड़कोंसे फलोंकी हिफाजत करें।

मिचूरिनने अपने प्रयोगोंके आधारपर वागवानीपर दो-चार लेख भी लिखे; लेकिन वे सब वापस आये। उसने वागवानीके एक वैज्ञानिक पत्र 'रूसी वगीचे'में छपनेके लिए एक लेख भेजा, तो सम्पादक महोदयने उसपर यह लिखकर लौटा दिया—'हम केवल सच्ची वातें ही छापते हैं।' मतलव यह कि मिचूरिनने जो-कुछ लिखा था, वह सम्पादक महोदयकी समझमें झूठी खुराफात थी!

अव मिचूरिनका धैर्य जाता रहा। वह जानता था कि वह ठीक मार्गपर कार्य कर रहा है, फिर भी शहरवालोंकी दृष्टिमें वह सनकी था और विज्ञानकी दृष्टिमें झूठा।

अन्तमें उसने जारके कृषि-मन्त्रीको एक लम्बी रिपोर्ट लिखी, जिसमें उसने अपने प्रयोगोंका हवाला देकर यह वताया कि यदि उसे सरकारी सहायता मिले, तो वह इन प्रयोगोंके लिए एक वैज्ञानिक वागका संगठन कर सकता है। यह रिपोर्ट उसने सन् १९०५ में भेजी थी; लेकिन जवाव नदारद।

उसने संयुक्त-राज्य अमेरिकाके कृषि-विभागको भी एक पत्र लिखा था; जिसका उसे उत्तर मिला। अमेरिकावालोंने लिखा कि वे उसके तमाम पेड़-पौधे और चीजें खरीदनेको तैयार हैं। यदि मिचूरिन अमेरिका आवे, तो वे लोग उसका स्वागत करेंगे। वे उसे लम्बी तनख्वाह देकर अपने प्रयोग-उद्यानका अध्यक्ष भी बनानेके लिए तैयार हैं।

इस उत्तरपर मिचूरिनको वड़ा हर्ष हुआ। इसलिए नहीं कि वह अमेरिका जाकर नाम और पैसा पैदा करेगा,—क्योंकि काजलोव छोड़नेका विचार ही कभी उसके दिमागमें नहीं आया,—वल्कि इसलिए कि दुनियामें कम-से-कम एकने तो उसके कामकी कद्र की। अफसोस इस वातका था कि उसके कद्रदान उससे कई हजार मील दूर थे।

फिर भी वह जारके कृषि-विभागसे उत्तर पानेकी आशा लगाये रहा। अन्तमें उसे तीन वर्ष बाद उत्तर मिला—वह इस रूपमें कि जारके कृषि-विभागका एक अफसर, बढ़िया वर्दीमें लैस, सेंटकी खुशबूसे मुअत्तर, मिचूरिनके टूटे झोंपड़ेपर आ मौजूद हुआ। मिचूरिनके ढीले-ढाले मैले कपड़े देखकर शाही अफसरने उसपर अपना रोब गाँठना शुरू किया—'तुम अमेरिका जाओगे? मुल्क छोड़ोगे? हम तुम्हें कहीं भी जानेकी मनाही करते हैं।'

इसपर मिचूरिन भी बिगड़ उठा—'मैं कोई मुजरिम नहीं हूँ। मैं तुम्हारी धौंस नहीं सह सकता।'—यह कहकर वह कमरेके बाहर चला गया।

जब अफसर साहबका दिमाग कुछ ठंडा हुआ, तो उन्होंने कहा कि कृषि-मन्त्री मिचूरिन-का बाग लेनेको तैयार हैं; लेकिन उसे कृषि-विभागके कड़े नियन्त्रणमें रहकर काम करना पड़ेगा।

मिचूरिनने किसीके नियन्त्रणमें काम करनेसे इनकार कर दिया। अफसर साहब जैसे आये थे, वैसे ही तशरीफ ले गये। मिचूरिन फिर अपने बागमें थाले गोड़नेमें लग गया।

सन् १९१४का यूरोपियन युद्ध आरम्भ हुआ; लेकिन मिचूरिनको उसकी खोज-खबरकी फुर्सत कहाँ? वह तो गर्म स्थानोंके पौधों और रूसी शीतके युद्धमें उलझा हुआ था।

रूसकी महान् क्रान्ति हुई; मगर मिचूरिनको उसका पता नहीं, क्योंकि वह वनस्पति-जगत्में क्रान्ति पैदा करनेमें लगा था। उसे क्रान्तिका पता तब लगा, जब लोगोंने उससे आकर बताया कि नयी क्रान्तिकारी सरकार उसके बगीचेकी जमीन लेकर उसपर आलू-गोभीके खेत बनाना चाहती है। इसपर मिचूरिनने जल्दी-जल्दी अपना पुराना कोट पहना, हाथमें लकड़ी उठायी और दो कुत्तोंको साथ लेकर क्रान्तिकारी अधिकारियोंसे मिलनेको पहुँचा।

'मैं तुम्हारे साथ काम करनेको तैयार हूँ; लेकिन मेरे बगीचेको आलूका खेत न बनाओ। मेरी जिन्दगी भरकी मेहनत चौपट न करो।'—वह किसी तरहकी दलील सुनता ही न था। आखिरकार अधिकारियोंने दया करके बूढ़े सनकीकी बात मान ली और उसके पेड़ बच गये।

अक्तूबरकी लाल क्रान्तिके बाद रूसका गृह-युद्ध हुआ। जार-पक्षके सेनापतियोंने विदेशियोंकी सहायतासे लेनिनकी फौजसे युद्ध छेड़ दिया। जार-पक्षके सेनापति मैमनटोवने अपनी कज्जाक फौजके साथ काजलोवपर हमला किया। दूरपर बन्दूकों और मशीन-गनोंके चलनेकी आवाज आ रही थी, और मिचूरिन अपने बागमें बेलचा लिये हुए क्यारियाँ सँवारता फिरता था। भला उसे जारकी सफेद या लेनिनकी लाल फौजोंसे क्या मतलब? शामके करीब कज्जाक फौजका एक तोपखाना मिचूरिनके बागके दरवाजेपर आकर रुका। उसे अपनी सारी जिन्दगीकी मेहनत तोपों और फौजी बूटोंसे कुचली जाती नजर आने लगी। उसने दौड़कर फाटक बन्द किया। सिपाही उसे धक्का देकर भीतर घुसना चाहते थे; लेकिन वह फाटकसे जी-जानसे चिपटकर लेट गया और बच्चोंकी तरह

चीख-चीखकर रोने लगे—'मेरी जिन्दगी-भरकी कमाई नष्ट हो जायगी। मर जाऊँगा, पर अपने पेड़ोंको बरबाद न करने दूँगा।'

इतनेमें घोड़ेपर सवार एक अर्दली आ पहुँचा, और उसने कहा कि सेनापतिने शहरमें एक दूसरा स्थान देखा है, जो सैनिक दृष्टिसे ज्यादा सुरक्षित है, तोपखाना वहीं जाकर डेरा डाले। कज्जाक सिपाही धूल उड़ाते हुए चले गये, और मिचूरिनके कीमती भण्डारकी रक्षा हुई।

धीरे-धीरे ट्राट्स्कीकी लाल सेनाने जार-पक्षवालोंको मारकर नेस्तनाबूद कर दिया, और मास्कोके क्रेमलिनमें बोल्शेविक सत्ता जमकर बैठ गयी। अब लेनिनको देशके पुन-र्निर्माणकी फिक्र हुई। सन् १९२१में मास्कोसे एक रूसी वैज्ञानिक वावीलोव अमेरिकामें लूथर वरबैंकके बाग देखने कैलिफोर्निया गया। लूथर वरबैंकके वैज्ञानिक ढंगसे चलाये जानेवाले बागको देखकर वह अत्यन्त प्रभावित हुआ, और उसने जितना समय उन्हें देखनेके लिए निश्चित किया था, उससे कहीं ज्यादा लगाया। जब वह कैलिफोर्नियाके बागका निरीक्षण कर रहा था, तब बागके अध्यक्षने उससे पूछा—'हाँ, यह तो बताइये कि मिचूरिन कैसा है? उसका स्वास्थ्य तो ठीक है? उसके प्रयोग कैसे चल रहे हैं?'

वावीलोव इसका क्या उत्तर दे? उसने कहा—'कौन मिचूरिन?'

'आइवन मिचूरिन'—अध्यक्षने कहा—'वनस्पति शास्त्रका महान् रूसी वैज्ञानिक।'

वावीलोवको कहना पड़ा—'मैंने तो कभी मिचूरिनका नाम भी नहीं सुना।'

'ऐं, मिचूरिनका नाम भी नहीं सुना! फलोंके विश्वकर्मा मिचूरिनका नाम भी नहीं सुना! यह जो सामने पेड़ दीखता है, यह मिचूरिनका ही है। यह रसभरीकी झाड़ी एकदम नयी किस्मकी है, जिसे मिचूरिनने काजलोवमें पैदा किया है। इस जरिस्फको उसने एक जंगली झाड़ीसे विकसित किया है। वह पेड़ खुद मिचूरिनका उगाया हुआ है। आपने मिचूरिनका नाम भी नहीं सुना?'

वावीलोवने मास्कोको रिपोर्ट भेजी। क्रेमलिनमें बैठे हुए लेनिनने काजलोवके बोल्शेविक अधिकारियोंके नाम तारों और हुक्मोंका ताँता बाँध दिया—'मिचूरिन जितनी जमीन चाहे, फौरन दो; मिचूरिन जितना पैसा माँगे, फौरन दो; मिचूरिनको जिन औजा-रोंकी जरूरत हो, फौरन मँगाओ; मिचूरिनको जितने मजदूरोंकी आवश्यकता हो, तुरन्त इकट्ठे करो: मिचूरिनने जो-कुछ भी लिखा हो, उसे प्रकाशित करो।'

इस तरह आखिरकार मिचूरिनको अपने कामकी दाद मिली। लेकिन कब? सैंतालीस वर्षके निरन्तर परिश्रमके बाद। अड़सठ वर्षकी उम्रमें।

लेकिन अब उसे दूसरी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा। अब ढेर-के-ढेर लोग उसके यहाँ आने लगे। कोई उसे सलाम करता, कोई उसे देखकर मुस्कराता और कोई-कोई तो उसके बागमें बैठकर गाना गाता। लोग उससे तरह-तरहके सवाल करते। लेकिन उसका नवयुवक सहकारी यकोवलोव बड़ा चतुर है। वह इन सबसे मिचूरिनकी रक्षा करता रहता है, और मिचूरिन अपने सहकारी यकोवलोवको देखकर कभी-कभी मुस्क-

राता है, क्योंकि थोड़े ही दिन पहले—लड़कपनमें—यही यकोलोव मिचूरिनके बागके फल लूटनेवाले लड़कोंमें सबसे बड़ा डाकू था।

जब मिचूरिन सत्तर वर्षका हुआ, तो बोल्शेविक सरकारकी आज्ञासे उसकी सत्तरवीं जयन्ती बड़े धूम-धामसे मनायी गयी। काजलोवके थियेटरमें जयन्तीउत्सवका प्रबन्ध किया गया। रूस-भरकी वैज्ञानिक संस्थाओंने उसका अभिनन्दन करनेके लिए अपने-अपने डेपूटेशन भेजे। शहर-भर सजाया गया। सारे शहरमें चहल-पहल थी, गाँव-भरका हर आदमी इस उत्सवमें भाग ले रहा था। काजलोवमें सिर्फ एक व्यक्ति ऐसा था, जिसे इस उत्सवकी खबर न थी, और वह था मिचूरिन। उत्सवका दिन मिचूरिनके जीवनमें एक मुसीबतका दिन था।

जब उत्सवका समय आया, तो कुछ कार्यकर्ता उसके पास पहुँचे और कहने लगे—'यहाँके थियेटरमें कुछ किसान इकट्ठे हुए हैं, वे आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं। जरा थियेटरतक चले चलिये।'

मिचूरिनने कहा—'अच्छा।'

इसपर वे बोले—'मोटर बाहर तैयार है।'

मिचूरिन बिगड़ उठा—'भाड़में जाओ तुम और तुम्हारी मोटर। क्या मेरे पैर टूट गये हैं, जो मैं मोटरपर जाऊँ?'

मोटर खाली लौट गयी। मिचूरिन अपना डण्डा उठाकर बड़बड़ाता हुआ चला—'किसान! सवाल पूछेंगे! गधे हैं, गधे!'

जब वह थियेटरके नजदीक पहुँचा, तो देखता है कि वर्दी पहने हुए लाल सेनाके सिपाहियोंकी लम्बी कतार लगी है। जब वह उस कतारसे होकर गुजरने लगा, तो दोनों तरफके सिपाही बड़ी इज्जतसे उसे लगे फौजी सलाम बजाने। अब मिचूरिन परेशान था। समझमें न आया कि बात क्या है, और वह इन सलामोंका जवाब टोप उतारकर दे, या इन्हींकी तरह फौजी सलाम ठोंककर, या इनसे खड़ा होकर बातें करे। खैर, साथवालोंने उसे धकियाते-पिछियाते हुए ले जाकर थियेटरके मंचपर एक मेजके ऊपर जा बैठाया। अब चारों तरफसे तालियाँ बजने लगीं, अभिनन्दन-पत्र पढ़े जाने लगे, उसकी प्रशंसामें कसीदे और स्पीचें होने लगीं। मिचूरिनके होश-हवास गायब हो गये। बेचारा बौखलाया हुआ मेजपर बुत बना रहा। यहाँतक कि जब साम्यवादियोंका इंटरनेशनल गीत गाया जाने लगा, तब भी उसे टोप उतारनेकी सुधि न रही। उत्सव खतम होनेपर उसने इतना ही कहा—'मुझे बड़ा बेहूदा चकमा दिया—यह जयन्ती। देखूँगा, अब दुबारा मुझे कैसे चकमा देते हैं।' और अपने घर लौट आया।

मिचूरिन उत्तरी रूसके बर्फिस्तानमें रसभरी, नाशपाती, अंगूर, मकोय, आड़ू आदि रसीले फल पैदा करता है। इन वृक्षोंकी उत्पत्ति काफी जटिल है। एक ही पेड़की कलम एकके बाद एक करके न-जाने कितने वृक्षोंपर लगानेके बाद इस शीतमें फल देनेके योग्य

बनी है। मिचूरिन अभी तक काजलोवमें नीबू नहीं पैदा कर पाया है। वह कहता है कि अगर वह पचीस वर्ष और जिन्दा रहे, तो काजलोवमें नीबू भी पैदा कर देगा।

उसके बागमें जो खूबानी पैदा होती है, उसके उपजानेमें एक अमेरिकन वैज्ञानिकका हाथ है। यह अमेरिकन वैज्ञानिक अमेरिकासे चलकर धूल-भरे काजलोवमें आता था। लोग आश्चर्य करते कि काजलोवमें कौन-सा ऐसा आकर्षण धरा है, जिसके लिए कोई अमेरिकन यात्री वहाँ आये? वह मिचूरिनके यहाँ जाता और अपनी नोट-बुकोंको तारीखों, संख्याओं और ड्राइंगोंसे भर डालता था। वापस जाते समय उसके सूटकेसमें फल, टहनियाँ, और पत्तियाँ भरी होती थीं। अन्तिम बार वह मंगोलियाकी यात्रा करके काजलोव आया था। उसने मंगोलियाके एक मठमें चीनी खूबानीके कुछ पुराने दरख्त उगे हुए देखे। उसे यह पता था कि मामूली खूबानीके बीजसे काजलोवमें खूबानी नहीं उगायी जा सकी। मठमें इन पेड़ोंको देखकर उसे खयाल आया कि चूँकि यह पेड़ सैकड़ों वर्षसे मंगोलियामें उग रहे हैं, और मंगोलियाकी आबहवा भी कम सर्द नहीं है, अतः ये शीतमें रहनेके आदी हो चुके हैं। यदि ये पेड़ या इनके बीज काजलोव और अन्य सर्द जगहोंमें लगाये जायँ, तो उग सकते हैं। लेकिन ये पेड़ प्राप्त कैसे हों? मठ एक धार्मिक पवित्र स्थान है। उसके पेड़ोंपर हाथ लगानेकी सख्त मुमानियत है। जब अमेरिकनको माँगेसे या दामोंपर वे न मिल सके, तब उसने चाल चली। चीनमें—विशेषकर मंगोलियामें—कई वर्षसे सैनिक सरदारोंका दौरदौरा है ही। अतः अमेरिकनने लम्बी रिश्वत देकर एक चीनी कर्नलको मिलाया। कर्नलने एक दिन अपनी सेनाके साथ मठपर हमला करनेका अभिनय किया। जिस समय चीनी फौजके झूठे हमलेसे घबराकर मठवाले इधर-उधर भाग रहे थे, उसी गड़बड़ीमें अमेरिकनके कज्जाक शरीर-रक्षकोंने मठका बाग लूट लिया। अमेरिकनने उन वृक्षोंके बीज मिचूरिनको भेंट किये। अब काजलोव और साइबेरियामें खूबानी पैदा होने लगी।

मिचूरिनकी बदौलत पश्चिमी साइबेरियामें बादाम पैदा होने लगा। यह उत्तरी अमेरिकन बादाम और मंगोलियन बादामके मिश्रणसे उत्पन्न होता है। उसके 'उत्तरी सौन्दर्य' नामक मीठे और रसीले अंगूर इरकुटस्ककी बर्फमें पैदा होते हैं।

मिचूरिन 'एक्टीनीडिया' नामक फल भी पैदा करता है। यह फल चीनके जंगली हिस्सेमें खुद-रौ होता है; लेकिन ऐसे उजाड़ खण्डमें होता है, जहाँ लोगोंकी पहुँच नहीं, इसीलिए यह बहुत दुर्लभ है, और आजतक कभी किसीने इसे उगाया भी नहीं। बवेरियाका एक बादशाह इसका बड़ा शौकीन था। कहते हैं कि जब कोई दूसरा बादशाह उसके यहाँ आता और वह अपने शाही मेहमानके प्रति बड़ा सम्मान प्रदर्शित करना चाहता, तो वह मेहमानके सामने सोनेकी रकाबीमें एक्टीनीडियाके दो-तीन फल रखकर पेश करता। जहाँ यह फल होता है, वहाँके निवासी उँगुलियोंसे मसलकर इसका रस निचोड़ते हैं और उसे रोटीपर मक्खनकी तरह चुपड़कर खाते हैं। इसकी शक्ल भिंडी-जैसी; खुशबू अनन्नाससे मिलती हुई और स्वाद संसारके सभी फलोंसे निराला—कुछ तीखा और मीठा,

होता है। यह ऐसा रसीला होता है कि जीभके नीचे रखते ही घुल जाता है। मिचूरिन तीस वर्षके अनवरत परिश्रमके बाद इस फलको पैदा करनेमें सफल हुआ। इसके लिए उसे ४०,००० विभिन्न वृक्षोंपर इसकी कलम बाँधकर प्रयोग करने पड़े थे।

अब मिचूरिन बयासी वर्षका हो चुका है। अब उसे कानसे कुछ ऊँचा सुनाई देता है; लेकिन फिर भी उसकी नजर तेज है। किसी पेड़में किसी नयी पत्ती या नये फूलका निकलना फौरन देख लेता है और अपनी नोट-बुकमें लिख लेता है। अब भी वह सुबहसे दोपहरतक बागमें काम करता है। दोपहरको भोजन करके घण्टा-भर आराम करता है, और फिर सूर्यास्ततक बागमें रहता है।

उसका कमरा हमेशा व्यस्त रहता है। मेजपर और अल्मारियोंमें इधर-उधर बीज, पत्तियाँ, टहनियाँ, कलमें आदि बिखरी रहती हैं, और दीवारोंपर तरह-तरहकी घड़ियाँ —जेबी, हाथकी और दीवारकी—टँगी रहती हैं। उसका रहने-सहनेका सारा खर्च बोल्शेविक सरकार करती है, इसलिए मिचूरिनको पैसेके लिए अब घड़ियोंकी मरम्मत नहीं करनी पड़ती। इसलिए अब वह मन बहलावके लिए लोगोंसे माँग-माँगकर उनकी घड़ियोंकी मुफ्ती मरम्मत किया करता है।

मिचूरिनने रूसके बर्फिस्तान और कड़ी जमीनमें भूमध्यसागरके रसीले फल पैदा किये हैं। क्या गंगा-जमनाके उपजाऊ मैदानोंमें चमनके अंगूर, कश्मीरके सेव, ईरानके सरदे और काबुलके बादाम नहीं पैदा हो सकते? कोई कहता है—'हो सकते हैं, हो सकते हैं।' कैसे? 'मिचूरिन-जैसी लगनसे, मिचूरिन-जैसे परिश्रमसे।'

———

: ३० :

'अवध-पंच' और उसका जन्मदाता

उर्दू पत्रकलाका इतिहास सौ वर्षसे कुछ अधिक पुराना है। उर्दूका सबसे पहला अखबार 'जामे जहाँनुमा' सन् १८२२में कलकत्तेसे प्रकाशित हुआ था। यह वह समय था, जब भारतवर्षसे मुसलमानी शासन प्रायः उठ चुका था या उठ रहा था। लेकिन देशमें मुसलमानी प्रभाव पूर्ण मात्रामें वर्तमान था। लोग आपसमें एक दूसरेसे हिन्दी या हिन्दुस्तानीमें ही बातचीत करते थे, परन्तु अदालतों, राज-दरबारों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी लिखने-पढ़नेकी भाषा फारसी थी। फारसीदाँ लोग उर्दू पढ़ने-लिखनेमें अपनी हेठी समझते थे। फल यह हुआ कि 'जामे-जहाँनुमा'को उर्दू-पाठक नसीब न हो सके, और कुछ ही हफ्तोंके बाद उसे मजबूर होकर अपनी भाषा फारसी कर देनी पड़ी।

खैर, कुछ दिन बाद भारतके विभिन्न स्थानोंमें उर्दूके अनेक पत्रोंका जन्म हुआ। लाहौरसे 'अखबार आम' और 'कोहनूर', दिल्लीसे 'अशरफुल अखबार', स्यालकोटसे 'विक्टोरिया रिसाला', बम्बईसे 'कश्फुल अखबार' और मद्राससे 'जरीदह रोजगार' आदि पत्र प्रकाशित हुए; जिनमेंसे अधिकांश थोड़े दिनतक जीवित रहकर चल बसे। आजकल हमलोग 'समाचारपत्र'का जो अर्थ समझा करते हैं, उस दृष्टिसे इन सब अखबारोंको समाचारपत्र कहना कठिन है। कारण यह है कि इन अखबारोंका कोई राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक ध्येय नहीं था, उनकी अपनी कोई निर्धारित नीति नहीं थी, और न कोई पूर्व-निश्चित मार्ग ही था। उनमें या तो सम्पादकीय विचार होते ही नहीं थे, और यदि होते भी थे, तो उनकी कोई पूर्व-निर्दिष्ट नीति न होती थी। उन्हें समाचारपत्र न कहकर खबरों और विज्ञापनोंका 'बुलेटिन' कहना अधिक उपयुक्त है।

उर्दू अखबारोंका यह निरुद्देश संचालन प्रायः पचास वर्षतक कायम रहा। सबसे पहले सन् १८७७ में 'अवध पंच'ने जन्म लेकर उर्दू पत्रकार-कलाके अस्तित्वमें विस्मयजनक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। यूरोपके उच्चकोटिके अखबारोंकी भाँति 'अवध-पंच' एक सुविकसित साहित्यिक मार्ग, एक निर्दिष्ट राजनीतिक ध्येय और एक सुनिश्चित सामाजिक उद्देशको लेकर पैदा हुआ। उसके जन्मने उर्दू-संसारमें एक हलचल मचा दी, और शीघ्र ही उसकी तूती बोलने लगी। 'अवध-पंच'ने तीस-पैंतीस वर्षतक जिस शानके साथ उर्दूके पत्रकार-जगत्में हुकूमत की, वह अबतक किसी अन्य पत्रको नसीब नहीं हुई।

जैसा उसके नामसे प्रकट होता है, 'अवध-पंच' 'पंच' अर्थात् हास्यरसका पत्र था। मगर संसारका कोई भी महत्त्वपूर्ण विषय उसकी सीमाके बाहर नहीं था। राजनीतिक और सामाजिक मामलोंके अतिरिक्त साहित्यिक-क्षेत्रमें भी उर्दू-साहित्य 'अवध-पंच'का

चिर ऋणी रहेगा। आजकल उर्दूका गद्य प्रौढ़ावस्थाको पहुँच चुका है, परन्तु इसके विकासमें 'अवध-पंच'का काफी हाथ है। आजकल भी यदि कोई व्यक्ति उर्दू-भाषा सीखना चाहे, तो 'अवध-पंच'के टूटे खण्डहरोंकी तीर्थयात्रा उसके लिए उत्तम ही नहीं, बल्कि जरूरी है। 'अवध-पंच'की पुरानी फाइलोंके अन्धकारपूर्ण कोनोंमें कलमके ऐसे धनी पड़े हैं, जिनकी लेखनीकी धाक लोगोंके दिलोंमें जलजला पैदा कर देती थी।

'अवध-पंच'के सम्पादक और जन्मदाता सैयद मुहम्मद सज्जाद हुसेनका जन्म सन् १८५६ में लखनऊके पास काकोरीमें हुआ था। उनके पिता मन्सूर अली डिप्टी कलक्टर थे और बादमें पेंशन लेकर हैदराबादमें सिविल जज हो गये थे। उनके मामा नवाब फिदा हुसेन लखनऊके प्रतिष्ठित वकील थे और फिर निजामराज्यमें चीफ जस्टिस रहे थे। मुंशी सज्जाद हुसेनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने मामाकी देख-रेखमें लखनऊमें हुई थी। वहीं उन्होंने सन् १८७३में इण्ट्रेन्स पास करके कैनिंग कालेजमें प्रवेश किया, मगर एफ० ए०की पढ़ाई समाप्त होनेके पहले ही तबीयत उचट गयी और इम्तिहान देनेके पूर्व ही कालेज छोड़कर जीविकाकी चिन्तामें फैजाबाद जा पहुँचे। वहाँ फौजी गोरोंको उर्दू पढ़ानेके लिए 'मुंशी' हो गये। मगर जिन्दादिलीके अवतार सज्जाद हुसेनकी इस काममें भला क्या तबीयत लगती। एक वर्षमें ही उसे छोड़ दिया और लखनऊमें आकर 'अवध-पंच' निकालना प्रारम्भ कर दिया।

एक वर्षके भीतर ही मुंशी सज्जाद हुसेनने 'अवध-पंच'के लिए ऐसे-ऐसे प्रतिभाशाली लेखक ढूंढ़ निकाले, जो उर्दूके साहित्याकाशमें चाँद-सूरज होकर चमके। यह बात निर्विवाद कही जा सकती है कि 'अवध-पंच'को जैसे योग्य, विद्वान्, प्रतिभावान और प्रभावशाली लेखक मिले, वैसे शायद ही किसी अखबारको मुयस्सर हुए होंगे। पण्डित त्रिभुवननाथ 'हिज्र', मिरजा मच्छूबेग 'सितम जरीफ', नवाब मुहम्मद खाँ साहब 'आजाद', सैयद अकबर हुसेन 'अकबर', मुंशी अहमद अली 'शौक', मुंशी ज्वालाप्रसाद 'बर्क' और मुंशी अहमद अली कसमण्डवी आदिकी प्रतिभाशाली लेखनियोंने शीघ्र ही उर्दू-साहित्यका शासन-सूत्र 'अवध-पंच'के हाथमें दे दिया। फिर तो 'अवध-पंच'के कालमोंसे साहित्य और हास्यका जो स्रोत बहा, वह तीस-पैंतीस वर्षतक जारी रहा, और उसने उर्दू-साहित्यके चमनको जैसा हरा-भरा बनाया, वह भुलाया नहीं जा सकता।

उर्दूकी अखबारी दुनियामें हास्य रसकी एक नवीन और मौलिक शैलीके आविष्कर्ता मुंशी सज्जाद हुसेन थे। उनकी जबान लखनऊकी टकसाली जबान थी। वे अपने रंगके 'मास्टर' थे। सज्जाद हुसेनकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि उनमें जातीय द्वेष या मजहबी तअस्सुब छूतक नहीं गया था। उन्होंने मरते दमतक अपने दामनको इस अलीगढ़ी विषसे पाक रखा। स्वतन्त्रता और ईमानदारी उनके विशेष गुणोंमेंसे थे। वे अपनी वजअ-क़तअके ऐसे पक्के थे कि जो वजअ आरम्भमें ग्रहण की, उसे आखिरी दमतक निबाहा। हास्यरस तो शायद उनकी घुट्टीमें शामिल था। वह उनके स्वभाव और अस्तित्वका एक अभिन्न अंश था। कैसी ही मुसीबत क्यों न हो, मगर सज्जाद हुसेनके चेहरेपर हास्यकी रेखा ही दीख पड़ती। सन् १८८७ में वे पहले-पहल कांग्रेसमें

सम्मिलित हुए और मरते दमतक उसके समर्थक रहे। सन् १९०१ में पहली बार लकवा गिरा, मगर कुछ महीने बीमार रहकर अच्छे हो गये। सन् १९०४में लकवेका दूसरा दौरा हुआ, जिससे बातचीत करनेकी शक्ति जाती रही। तबसे उनकी दशा बराबर बिगड़ती रही, जिससे सन् १९१२ में मजबूर होकर 'अवध-पंच' बन्द कर देना पड़ा। अन्तमें सन् १९१५ में हास्यरसके इस सम्राट्ने दुनियासे कूच कर दिया।

राजनीतिमें 'अवध-पंच' सदासे कट्टर राष्ट्रीय विचारोंका और प्रजा-प्रथाका समर्थक था। कांग्रेसकी स्थापनाके बादसे वह कांग्रेसका पक्ष समर्थन करता रहा। उसने कभी साम्प्रदायिकताका राग नहीं अलापा। सामाजिक मामलोंमें वह पक्का 'कन्सर्वेटिव' था यानी पुरानी रोशनी और वज़अ-क़तअ उसे पसन्द थी और वह नयी रोशनी और नयी सामाजिक पद्धतिका घोर विरोधी था। इस प्रकारसे 'अवध-पंच'के राजनीतिक और सामाजिक उद्देशोंमें दो विचित्र विरोधी नीतियोंका सम्मिश्रण था। राजनीतिमें वह आमूल-परिवर्तन करनेको तत्पर था, मगर सामाजिक मामलोंमें एक नुकतेका हेर-फेर भी उसे गवारा नहीं था। नयी रोशनीके नादान दोस्तोंकी मूर्खताओंका भण्डाफोड़ करनेके अतिरिक्त सामाजिक उन्नतिमें 'अवध-पंच'से कोई और लाभ नहीं हुआ। हास्यरसके विचारसे वह अपने ढंगका एक ही पत्र था। 'अवध-पंच'की देखादेखी हास्यरसके और भी कई पत्र, जैसे 'इण्डियन-पंच', 'बम्बई-पंच' और 'बाँकीपुर-पंच' आदि निकले, लेकिन——

शेखने लाख दाढ़ी बढ़ाई सनकी सी,
मगर वह बात कहाँ मौलवी मदनकी सी?

ये सबके सब थोड़े दिनोंमें ही जमानेकी ठोकरें खाकर समाप्त हो गये। पर 'अवध-पंच'का जादू उर्दू भाषापर मुद्दतों चलता रहा। इस लम्बे समयमें 'अवध-पंच'ने साहित्यकी जो सेवाएँ की हैं, उन्हें देखते हुए उसे उर्दूके दरबारमें बहुत सम्माननीय स्थान मिलना चाहिये।

'अवध-पंच'का हास्य बहुत उच्चकोटिका हास्य नहीं है। पवित्र और स्थायी हास्य, सरस हास्य, व्यंग्य, मसखरापन और फब्तियों आदिमें काफी अन्तर होता है। उर्दूका सरस और पवित्र हास्य पाठकोंको 'गालिब'के पत्रोंमें मिलेगा। उनमें न व्यंग्य हैं, न ताने-तिश्ने। उनमें रोजमर्राकी बातें ऐसे सुन्दर ढंगसे कही गयी हैं, जिनमें साहित्यिक छटाके साथ-साथ सरस हास्यका ऐसा मधुर पुट है जिसे पढ़कर पाठकोंका हृदयकमल खिल उठता है और मधुर मुस्कानकी ज्योति उनके चेहरेपर खेलने लगती है। मगर 'अवध-पंच'के हास्यका रंग इससे निराला है। उसके लेखकोंके कलमसे फब्तियाँ इस तरह निकलती हैं जैसे कमानसे तीर। उनका निशाना अचूक है। जो बेचारा उनका शिकार होता है, जार-जार रोता है और देखनेवाले हँसते हैं। उनके वाक्य दिलोंमें मीठी गुदगुदी नहीं पदा करते, बल्कि नश्तरकी तरह तैर जाते हैं। वे गालिबकी तरह मुस्कराते नहीं हैं; हँसते भी नहीं हैं; वे कहकहे लगानेके लिए बरबस मजबूर करते हैं। उन लोगोंकी तबीयतकी तेजी और बेतकल्लुफी कभी-कभी शिष्टताकी सीमा पार कर जाती है, और उनके कलमसे बेतहाशा ऐसे वाक्य निकल जाते हैं, जिन्हें देखकर शिष्टताको आँखें मूँद

लेनी पड़ती हैं। मगर 'अवध-पंच'के हास्यपर विचार करते हुए हमें कई बातोंपर ध्यान रखना चाहिये। पहली बात तो यह है कि 'अवध-पंच' एक साप्ताहिक अखबार था। उसमें सप्ताहभरकी खबरोंके साथ-साथ उन तत्कालीन समस्याओंपर निबन्ध और लेख रहा करते थे, जिनकी ओर जन-साधारणका ध्यान आकृष्ट हो। अतः उसमें जो कुछ हास्यरस लिखा जाता था, वह उसके तात्कालिक प्रभावके विचारसे लिखा जाता था, न कि स्थायी साहित्यके विचारसे। इस बातका निर्णय 'अवध-पंच'के सम्पादक और लेखक ही कर सकते थे कि तत्कालीन परिस्थितिमें किस व्यक्तिको कितनी गहरी या हलकी खूराक देनेकी जरूरत थी। आज जो रिमार्क हमें अशिष्ट मालूम होता है, सम्भव है कि तत्कालीन परिस्थितिमें उपयोगिता और प्रभावकी दृष्टिसे वह अनिवार्य हो। दूसरे, यह वह जमाना था जब हमारे साहित्यिक आदर्श इतने विकसित नहीं थे, जितने आज हैं। 'अवध-पंच'के लेखक उस जमानेकी हवा खाये हुए थे, जब मजाक और बेतकल्लुफीकी सीमाएँ बहुत विस्तृत थीं और बहुत-सी बातें जिन्हें आज हम ऐब समझते हैं, तब दूषणोंमें शुमार नहीं थीं।

'अवध-पंच'के लतीफों और वाक्योंपर जन-साधारण लोट-पोट हो जाते थे। उसमें जो फब्ती निकल जाती, वह दूर-दूरतक मशहूर हो जाती थी और महीनों और वर्षोंतक लोगोंकी जबानपर रहा करती थी। गत वर्ष कलकत्तेमें एक वृद्ध सज्जनके पास बैठे हुए मैंने मुंशी सज्जाद हुसेन और 'अवध-पंच'का जिक्र किया। ये सज्जन लखनऊके रहनेवाले थे, मगर पचास वर्षसे कलकत्ते आ बसे थे। उन्होंने सज्जाद हुसेनकी वक्तकी सूझ और व्यंग्योक्तिका एक मनोरंजक किस्सा सुनाया। उन्होंने कहा कि लखनऊके सुप्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेसके संस्थापक और मालिक मुंशी नवलकिशोर भार्गव दिल्ली-दरबारमें गये थे। वहाँ उन्होंने एक 'लैन्डो' गाड़ी तथा बहुत बढ़िया घोड़ोंकी जोड़ी खरीदी। उस समयतक भारतवर्षमें 'लैन्डो' गाड़ियोंका प्रचार न हुआ था। कहते हैं कि लखनऊमें आनेवाली सबसे पहली 'लैन्डो' मुंशी नवलकिशोरकी ही थी। एक दिन मुंशीजी 'लैन्डो'पर बैठे जा रहे थे, अचानक दुर्घटनावश गाड़ी उलट गयी और मुंशीजीके पैरमें चोट आ गयी। मुंशीजी लखनऊके बड़े प्रतिष्ठित और सम्भ्रान्त व्यक्तियोंमेंसे थे, अतः इस दुर्घटनाकी खबर प्रायः सभी अखबारोंमें प्रकाशित हुई। मुंशी नवलकिशोर रायबहादुर-खिताब धारी थे, वे सरकारके खैरख्वाह और कांग्रेसके विरोधी थे। दूसरी ओर 'अवध-पंच' कांग्रेसका पक्का हिमायती था, इसलिए मुंशीजीसे उसका विरोध स्वाभाविक ही था। वह मुंशीजीके 'अवध-अखबार'को 'बनिया-अखबार' कहा करता था। उसने भी मुंशीजीके पैरमें चोट लगनेकी दुर्घटनाकी खबर प्रकाशित की, लेकिन निम्नलिखित रूपमें :—

अटकन चटकन[१]
दही चटोकन

---

१. संयुक्तप्रदेशकी ओर छोटे-छोटे लड़के जमीनपर पट हाथ रखकर एक खेल खेलते हैं। एक

बत्त फूले बनवारी फूले
बाबाजीकी बारी फूले
बाबा गये दिल्ली
लाये सात कटोरी
एक कटोरी फूटी
'नेवले' की टाँग टूटी !!

कहना न होगा कि अन्तिम लाइन औरोंकी अपेक्षा मोटे अक्षरोंमें थी। इस प्रकारसे 'अवध-पंच'के जुमले और लतीफे लोगोंको पचास-पचास वर्ष बादतक याद रहे। उसपर-से मजेकी बात यह है कि जिन सज्जनने मुझे यह बात बतायी थी, वे स्वयं उर्दू नहीं जानते थे, उन्होंने दूसरोंसे सुनकर उसे पचास वर्षसे अधिक दिनतक याद रखा। लख-नऊकी म्युनिसिपैलिटीके चुनावके अवसरपर एक बार 'पंच'ने 'म्युनिसिपैलिटीकी घुड़दौड़' शीर्षक एक लेख लिखा जिसमें भिन्न-भिन्न मुहल्लेके उम्मेदवारोंको चुनावकी घुड़दौड़में दौड़नेवाला जानवर बताया था। किसीको ताजी, किसीको कुम्मैत और किसीको बैल आदि सुन्दर उपमाएँ दी गयी थीं। एक मुहल्लेसे एक कायस्थ सज्जन खड़े हुए थे, जिनका शरीर भारी और रंग पक्का था। 'अवध-पंच'ने उन्हें 'पड़वा'का खिताब अता किया। यह उपनाम उनके रंग और शरीरके अनुसार ऐसा चुस्त होकर बैठा कि मरते दमतक कायम रहा।

हास्यरसको छोड़कर 'अवध-पंच'की अन्य कृतियोंमें सबसे बड़ी बात यह है कि उसने उर्दू-गद्यके कृत्रिम आभूषणोंको—जिनमें कागजी फूलोंके सिवा कुछ न था—उतार-कर उसे प्राकृतिक फूलोंसे, जिनमें स्वाभाविक सौन्दर्य और मनोहर सुगन्धि थी, सजाया। 'अवध-पंच'के पहले रजब अली सरूरकी गद्य शैली पूजी जाती थी। जन-साधारणकी प्रवृत्ति बनावटकी ओर अधिक झुकी हुई थी। उस समयके उर्दू अखबारोंकी भाषा भी ऐसी होती थी, जिसे हम मुश्किलसे उर्दू कह सकते हैं। आजकल उर्दू-गद्य जिस स्वाभाविक और सरल पथपर जा रहा है, उसके आविष्कारमें 'अवध-पंच'का बड़ा हाथ है। 'अवध-पंच'का लेखक-मण्डल केवल एक नयी शैलीका ही आविष्कारक नहीं है, उसके लेखकों-की भाषामें गजबकी शोखी और चञ्चलता है। बोलचालकी भाषा और मुहाविरोंकी सफाईमें 'अवध-पंच'के अन्य लेखकोंकी अपेक्षा मिरजा मच्छू बेग 'सितम जरीफ'का रंग चोखा रहता था। मुंशी सज्जाद हुसेनकी लेखन शैली सबसे निराली थी। उनके लेख क्या हैं, छोटे-छोटे चुटकुलों और लतीफोंके संग्रह हैं। ऐसा मालूम होता है कि पढ़नेवाला बैठा हुआ लेखकसे बात कर रहा है। हास्यके क्षेत्रमें 'अवध-पंच'के लेखक-मण्डलमें हजरत 'अकबर' सबसे दस कदम आगे हैं। राजनीतिक, धार्मिक और सामा-जिक मसलोंको उन्होंने जैसी सरस हास्यमयी कवितामें उतारा है, वैसी कविता उर्दू ही नहीं, भारतवर्षकी किसी अन्य भाषामें भी कम देखनेको मिलेगी।

लड़का हर एकके हाथपर बारी-बारीसे उँगली रखता जाता है, और इन्हीं शब्दों (अटकन चटकन आदि) को दोहराता जाता है।

'अवध-पंच'के निबन्धोंका क्षेत्र बहुत विस्तृत था। संसारमें कोई भी विषय ऐसा न था, जिसपर 'अवध-पंच'के प्रतिभाशाली लेखक अपने हास्यकी चाशनी न चढ़ा सकें। लखनऊके साधारण जीवनके विभिन्न अंगोंके सरस हास्यपूर्ण चित्रण अक्सर 'अवध-पंच'-के पृष्ठोंपर दिखायी देते थे। इसके अतिरिक्त, ईद, बकरीद, मुहर्रम, चेहल्लुम, शबबरात, होली, दिवाली, वसन्त, मेले-तमाशे, अदालतकी रू-बकारियाँ, मुशायरे, मुर्गबाजी, बटेरबाजीके झगड़े और इलेक्शन आदि ऐसी घटनाएँ थीं, जो 'अवध-पंच'के लेखकोंकी लेखनीके लिए हास्यके नये मसाले एकत्रित किया करती थीं।

इसके अतिरिक्त बिरहे, बारहमासे, दोहे, ठुमरियाँ, गजलें, रूबाइयाँ आदि लिखनेमें भी उसके लेखक सिद्धहस्त थे। मुंशी सज्जाद हुसेन प्रति सप्ताह एक छोटा-सा लेख 'लोकल अली उल रहमत'के शीर्षकसे लिखा करते थे, जिसमें अकसर ऋतुओंके परिवर्तन आदिकी बातें ऐसे हास्यजनक रूपमें लिखी जाती थीं कि पढ़नेवाले हँसते-हँसते लोट जाते थे।

रोजमर्राके छोटे-छोटे चुटकुलोंके अलावा 'अवध-पंच'में अनेक साहित्यिक वाद-विवाद ऐसे प्रकाशित हुए, जो वर्षोंतक चलते रहे और जिन्होंने उर्दूके साहित्य-क्षेत्रमें क्रान्तिकारी हलचल मचा दी। 'अवध-पंच'में इस प्रकारका पहला विवाद पण्डित रतननाथ दर 'सरशार'के 'फिसाना-आजाद'के ऊपर छिड़ा था। 'सरशार' महोदयने लखनऊकी बेगमोंकी जो भाषा लिखी है, वही इस वाद-विवादकी बुनियाद थी। 'अवध-पंच'का एतराज था कि यह भाषा बेगमातकी नहीं, बल्कि दासियों और नौकरानियोंकी है। अर्सेतक इस विषयपर वाद-विवाद चलता रहा।

'अवध-पंच'का दूसरा वार प्रसिद्ध कवि मौलाना अल्ताफ हुसेन 'हाली'पर हुआ। 'हाली' महोदयने अपने 'दीवान'की भूमिकामें उर्दू-कविताके असली उद्देशपर कुछ विचार प्रकट किये थे। इस भूमिकाके प्रकाशित होते ही 'अवध-पंच'की बारूदमें चिनगारी लग गयी। उसने 'हाली' महोदयका विरोध किया। उसका कहना था कि 'हाली' जिसे शायरी समझते हैं, वह शायरी नहीं है—काफियाबन्दी है। वह कवित्वके स्वाभाविक गुणोंसे शून्य है। 'हाली'के विरोधका एक और भी बड़ा भारी कारण था। उन्होंने अपनी भूमिकामें कृत्रिम और अस्वाभाविक शायरीके जितने उदाहरण उद्धृत किये थे, वे सब दुर्भाग्यवश लखनऊके शायरोंके थे। अतः 'अवध-पंच'ने उसका यह अर्थ लगाया कि मौलाना 'हाली'ने जान-बूझकर लखनऊके कवियोंकी अप्रतिष्ठाके लिए ऐसा किया है। लखनऊ और दिल्लीकी भाषाओंकी पुरानी प्रतिद्वन्द्विता उठ पड़ी। बस, फिर क्या था? बेचारे 'हाली'पर आक्षेपोंकी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। उनकी कविताके प्रत्येक शेरमें दूषण दिखाये जाने लगे। मुद्दततक यह सिलसिला जारी रहा। इस विषयमें 'अवध-पंच'के लेखकोंने अक्सर अतिशयोक्ति भी की थी, मगर उनके आक्षेप बिलकुल बे-बुनियाद भी नहीं थे। मौलाना 'हाली' पानीपतके रहनेवाले थे। जिस शीर्षकके अन्तर्गत उनपर आक्षेप प्रकाशित होते थे, उसके सिरेपर यह शेर लिखा रहता था—

"अकबर हमारे हमलोंसे 'हाली'का हाल है,
मैदान पानीपतकी तरह पायमाल है ।"

'अवध-पंच'का तीसरा साहित्यिक हंगामा महाकवि 'दाग'की कविताको लेकर शुरू हुआ । 'पंच'ने कभी 'दाग'की कविताकी श्रेष्ठता स्वीकार नहीं की । इसका सबब एक तो लखनऊ और दिल्लीकी पुरानी प्रतिद्वन्द्विता थी, दूसरे 'दाग'के कुछ शागिर्दोंने अपने उस्तादकी कवितापर तमाम लखनऊको कुरबान कर दिया था । नतीजा यह हुआ कि मूर्ख शागिर्दोंकी अशिष्टताका फल बेचारे उस्तादको भुगतना पड़ा, और 'अवध-पंच'के कालमोंसे बहुत दिनोंतक आक्षेपोंकी चिनगारियाँ उड़ती रहीं । यद्यपि उनसे 'दाग'-की प्रतिष्ठामें कोई अन्तर नहीं पड़ा, मगर हँसने-हँसानेका सिलसिला मुद्दततक जारी रहा ।

'अवध-पंच' अपनी पैदाइशसे ही प्रजा-पक्षका समर्थक था । उसके कालमोंमें राजनीतिक समस्याओंपर भी बड़े मार्केके लेख प्रकाशित हुआ करते थे । उसकी नजरोंमें हिन्दू-मुसलमान बराबर थे । यदि ईदके अवसरपर उसका विशेषांक प्रकाशित होता था, तो होली और वसन्तपर वह लाल और पीला कलेवर धारण किया करता था । यह कहा जा चुका है कि 'अवध-पंच' सामाजिक और धार्मिक मामलोंमें अपरिवर्तनवादी था । दूसरी ओर अलीगढ़के प्रसिद्ध नेता सर सैयद अहमद धार्मिक मामलोंमें उदार विचारके और सुधारवादी व्यक्ति थे । अतः 'अवध-पंच' और सर सैयदमें विरोध होना अनिवार्य था । इसके अलावा एक बात यह भी थी कि 'अवध-पंच' पक्का राष्ट्रीय विचारका पत्र था, दूसरी ओर सर सैयद अहमदने आरम्भसे ही कांग्रेसका घोर विरोध करके मुसलमानोंमें साम्प्रदायिकताका जहर बोया, जिसके कुफल आजतक नहीं मिटे हैं । 'अवध-पंच'ने सैयदके मजहबी सुधार और राजनीतिक विचारोंका विरोध किया । उसने अलीगढ़ कालेजको अधार्मिकताका केन्द्र बताया, और उसके संस्थापकको 'पीर नेचर'की पदवी देकर उनके 'नेचरिया मजहब'का खूब खाका उड़ाया । 'अवध-पंच'के शहसवारोंने सर सैयदपर जैसे-जैसे वार किये, उनका अनुमान सहजमें नहीं हो सकता । हजरत अकबरने उनपर अपनी कलम चलायी—

"होता नफा है यूरोपमें नान पावसे,
मैं खुश हूँ एशियाके खयाली पुलावसे ।
ईमान बेंचने पै हैं अब सब तुले हुए,
लेकिन खरीद हो जो अलीगढ़के भावसे ।"

इसमें अलीगढ़ी ईमानकी बिक्रीपर जो भीतरी चोट है, उसे सहृदय पाठक भली भाँति समझ सकते हैं । एक स्थानपर लिखा है—

"मुसलमानोंकी खुशहालीकी बेशक धुन है सय्यदको
मगर यह काम निकलेगा न लेक्चरसे न चन्दोंसे ।
दुरुस्ती तख्तो-इज्जतकी कहाँ इन कील काँटोंसे
तवक्का शहसवारोंकी न रखो नालबन्दोंसे ।।"

इसी प्रकार गद्य और पद्यकी फुलझड़ियाँ छूटती रहीं। एक महाशयने नजीरकी एक प्रसिद्ध गजलको परिहास (Parody) में परिवर्तित करके सर सैयदपर चस्पां कर दिया। नजीरकी गजल है :—

"नजर पड़ा इक बुते परीवश
निराली सज-धज नई अदाका,
जो उम्र देखो तो दस बरसकी
यह कहर आफत गजब खुदाका।
जो शक्ल देखो तो भोली-भाली
जो बातें सुनिये तो मीठी-मीठी,
पै दिल वह पत्थर कि सर उड़ा दे
जो नाम लीजे कभी वफाका।
जो घरसे निकले तो यह कयामत
कि चलते-चलते कदम-कदमपर
किसीको ठोकर, किसीको थप्पड़,
किसीको गाली, निपट लड़ाका।" इत्यादि

'अवध-पंच'ने इसे 'नेचरिया शायरी'का शीर्षक देकर इस प्रकार प्रकाशित किया था :—

नेचरिया शायरी

"नजर पड़ा एक पीर नेचर
निराली सज-धज, नई अदाका,
जो उम्र देखो तो सौ बरसकी
पै कहर आफत गजब खुदाका।
सफेद दाढ़ी पै काला जूता
औ' उसपै तुर्रा वह सुर्ख टोपी,
बदन पै जाकट गलेमें पट्टे से
आलम उसपर है इक बलाका।
जो देके लेकचर वह माँगे चन्दा
तो अहमकोंकी कतर ले जेबें,
कहे जो स्पीच बेवकूफों पै
जाल फैलाये वह दगाका।
× × ×
बहुत दिनोंतक किये करिश्मे
तरह तरहके दिखाये नखरे,
खुदाके बन्दोंके दीनओ—
दुनियाको खूब लूटा गजब खुदाका।" इत्यादि।

'अवध-पंच'की समस्त उन्नति और शान उसके सम्पादककी प्रतिभापर निर्भर थी। मुंशी सज्जाद हुसैनके समान तवीयतदार और मनचले लोग संसारमें कम होंगे। शारीरिक कष्टों, आर्थिक कठिनाइयों और मानसिक क्लेशोंमें भी हास्यकी विमल ज्योति उनका साथ नहीं छोड़ती थी। लकवा मारनेके वाद वीमारीकी दशामें जो कोई मिजाज पूछता तो कहते थे कि जिन्दगीका रोग है, और अपने कष्टोंका हाल इस तरह वयान करते थे कि सुननेवालेको हँसी आ जाती थी। दवा-इलाजसे विलकुल निराश हो चुके थे, मगर फिर भी दवा जारी रखते थे, और कहते थे कि दवा तो महज इसलिए करता हूँ कि वाजाव्ता (नियमानुकूल) मृत्यु हो। विना दवाकी मृत्युको गैर-कानूनी मौत कहा करते थे। सौभाग्यसे आरम्भहीसे उन्होंने 'अवध-पंच'के लिए ऐसे प्रतिभाशाली लेखक पैदा कर लिये थे, जो किसी भी पत्रके लिए गौरवकी बात हो सकते थे। शायद ही किसी पत्रको एक ही समयमें इतने अधिक और ऐसे प्रतिभाशाली लेखक नसीव हुए हों। ये लेखक केवल 'अवध-पंच'के लेखक ही नहीं थे, वल्कि उसे हृदयसे चाहनेवाले थे। उनमेंसे कई एक 'अवध-पंच'को छोड़कर अन्य किसी पत्रमें लेख लिखना अपनी शानके खिलाफ समझते थे। मगर कुछ दिनोंके वाद परिवर्तनशील समयने पल्टा खाया। दस-पन्द्रह वर्ष वाद 'अवध-पंच'के यौवनकी दोपहरी ढलने लगी। उसके लेखकों-का ज्योतिर्मय मण्डल विखरने लगा। कुछको मृत्युने इस दुनियासे उठा दिया। कुछ सांसारिक झंझटोंके कारण अर्सेतक 'अवध-पंच'का साथ न दे सके। 'अवध-पंच'के पृष्ठ अव पुरानी प्रभासे हीन दिखायी पड़ने लगे और जो कुछ रहा-सहा वाकी था, उसे सम्पादककी वीमारीने समाप्त कर दिया। इधर 'पंच'की आर्थिक दशा भी वरावर विगड़ती चली गयी। फिर भी मुंशी सज्जाद हुसेनके आत्म-सम्मानको यह सह्य नहीं था कि वे अपनी आँखोंके आगे 'पंच'को वन्द होते देखें। वे दस-वारह वर्षतक 'अवध-पंच'को घाटेसे चलाते रहे। जिस समय 'अवध-पंच' इस अर्धजीवित दशामें घसिट रहा था, उस समय 'भारत-मित्र'के यशस्वी सम्पादक स्वर्गीय वावू वालमुकुन्द गुप्तने एक पत्रमें 'पंच'की निर्जीवताकी शिकायत की थी। इस चिट्ठीके उत्तरमें मुंशी सज्जाद हुसेनने जो पत्र लिखा था, उससे प्रत्यक्ष है कि वे 'अवध-पंच'के जीवनको अपना जीवन समझते थे। उन्होंने लिखा था—

"मुकर्रमी, तस्लीम !

खत पहुँचा। वहुत वजा है, 'अवध-पंच' मुर्दा हाथोंसे इसलिए निकलता है कि कोई उठानेवाला नहीं। दो-एक सतरोंके सिवा हाथसे लिख नहीं सकता हूँ, न मुँहसे वोल सकता हूँ। कुछ नौकर हिम्मत करके निकाल देते हैं। दस सालसे फालिज (लकवा) में गिरफ्तार लवे गोर (कब्रके किनारे) हूँ। जव किसी तरफसे इत्मीनान नहीं तो क्या इन्तजाम हो सके ? अखवार सिर्फ इसीलिए निकालता हूँ कि जीते जी मर नहीं सकता। वर्ना इस आरजेके हाथों—

'मुझे क्या वुरा था मरना अगर एक वार होता।'

'अवध-पंच' जिन्दह अखबारोंमें नहीं कि इसका जिक्र हो। हाँ, गुजिश्ता जमानेमें कुछ था।'

मगर यह दशा अधिक दिनोंतक कायम न रह सकी। मृत्युके दो वर्ष पहले बेचारे सम्पादकको स्वयं अपने ही मुर्दा हाथोंसे 'अवध-पंच'का जनाजा उठाना पड़ा। मुंशी सज्जाद हुसेनको जीते जी मरना पड़ा; यद्यपि मृत्युके किनारे होनेपर उनकी यह अन्तिम कामना थी कि—

गो हाथमें जुम्बिश नहीं आँखोंमें तो दम है,
रहने दो अभी सागिरो-मीना मेरे आगे।

'अवध-पंच'का जारी रहना तो दूर रहा, उस समय ऐसी नाजुक हालत थी कि यदि दो-चार मित्र काम न आते तो शायद 'अवध-पंच'के यशस्वी सम्पादक और हास्यरसके इस महारथीको अपने जीवनकी अन्तिम घड़ियोंमें भोजनके लिए मोहताज होना पड़ता।

छत्तीस वर्षतक देश और साहित्यकी सेवा करके 'अवध-पंच' इस संसारसे विदा हुआ। इस समय उर्दूके अनेक अच्छे-अच्छे पत्र निकलते हैं, मगर 'अवध-पंच'का स्थान खाली है और शायद बहुत दिनोंतक खाली रहेगा।[1]

---

१ यह लेख स्वर्गीय पं० ब्रजनारायण चकबस्त लखनवीकी लिखी हुई, 'गुल्दस्तये पंच' नामक पुस्तककी भूमिकाकी मददसे लिखा गया है।

: ३१ :

संसारके भावी नागरिक

'बच्चे प्रत्येक देशकी सच्ची विभूति—असली सम्पत्ति हैं।'

उपर्युक्त कथनमें सभ्यताका, संसारका और मानव-जातिका सबसे बड़ा सत्य वर्णित है। हमारे बालक ही संसारके भावी नागरिक हैं, वे पृथ्वीके भावी अधिपति हैं। भविष्यमें मानव-जातिकी रक्षाका भार इन्हींके कोमल कंधोंपर होगा।

अमेरिकाके राष्ट्रपति प्रेसीडेण्ट हूवर कहते हैं—'यदि हम चाहते हैं कि हमारी सभ्यता आगेको अग्रसर हो, तो यह केवल स्वस्थ बच्चोंके पैरोंके बलपर ही अग्रसर होगी।'

मि० हूवरको बच्चोंसे बड़ा प्रेम है। आज यूरोपके लाखों नवयुवकोंका अस्तित्व केवल मि० हूवर और उनके साथियोंके प्रयत्नके कारण है। गत महायुद्धमें यूरोपमें लाखों स्त्रियाँ और बच्चे अनाथ हो गये थे। यूरोपके खूँख्वार राष्ट्र एक दूसरेका खून करनेमें इतने अधिक व्यस्त थे कि वे अपने इन अनाथोंके भरण-पोषणकी ओर काफी ध्यान न दे सकते थे। उस समय मि० हूवरने उन स्त्री-बच्चोंकी रक्षाके लिए एक संगठन स्थापित किया, और उनकी देख-रेखमें अमेरिकन लोगोंने चन्दा करके २१०,००,००,००० (२१० करोड़) रुपये खर्च करके इन यूरोपियन अनाथोंकी रक्षा की।

यूरोपियन युद्धके अनाथोंकी रक्षाके लिए मि० हूवरने जो संगठन किया था, अब शान्तिके समय वे अमेरिकन बच्चोंकी स्वास्थ्य-रक्षाके लिए उसका उपयोग कर रहे हैं।

हालमें उन्होंने अमेरिकामें एक नया त्यौहार चलाया है। उन्होंने पहली मईको 'शिशु-स्वास्थ्य दिवस' (Child's Health Day) के नामसे घोषित किया है। पहली मई देहाती यूरोपियनोंका पुराना त्यौहार है। थोड़े दिनोंसे संसारके श्रमवादियोंने उसे पूँजीपतियोंके विरुद्ध प्रदर्शन करनेका दिवस बनाया है, परन्तु मि० हूवरने उसे 'शिशु-स्वास्थ्य-दिवस' बनाकर उसे एकदम नया रूप दे दिया है। उनका कथन है कि इस बातकी बड़ी जरूरत है कि राष्ट्रको बच्चोंके स्वास्थ्यका व्यापक महत्त्व समझाया जाय। उन्होंने बच्चोंके अधिकारोंका एक बिल भी बनाया है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि किसी देशके बच्चोंको ये अधिकार प्राप्त हो जायँ, तो वह देश एक ही पीढ़ीमें संसारका सर्वश्रेष्ठ देश हो सकता है। जरा बच्चोंके अधिकारोंको सुनिये—

हमें जिस आदर्शके लिए कोशिश करना है, वह यह होना चाहिये कि अमेरिकामें कोई भी बच्चा ऐसा न हो—

(१) जो उचित दशामें पैदा न हुआ हो,

(२) जो साफ-सुथरे और स्वास्थ्यप्रद स्थानमें न रहता हो,
(३) जो पुष्टिकर भोजनकी कमीसे कष्ट पाता हो,
(४) जिसे शीघ्र और उत्तम डॉक्टरी सहायता न मिलती हो तथा जिसकी डॉक्टरी देख-भाल न की जाती हो,
(५) जिसे स्वास्थ्य और सफाईके आरम्भिक नियमोंकी शिक्षा न मिली हो,
(६) जिसे स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मस्तिष्कका पूरा जन्मसिद्धअधिकार प्राप्त न हो,
(७) जिसे अपनी प्रवृत्तियोंको, जिनमें प्रत्येक व्यक्तिकी अन्तिम पूँजी छिपी रहती है, पूरे पैमानेमें विकसित करनेका प्रोत्साहन न मिला हो।

मि० हूवरने इस बिलपर हस्ताक्षर किये हैं। पहली मईको शिशु-स्वास्थ्य-दिवस घोषित करनेका उनका उद्देश्य यह है कि जिससे यह बिल एक वास्तविकता बन जाय। इसके लिए वे देशके आर्थिक और सामाजिक सभी साधनोंका उपयोग कर रहे हैं। अभी यह आन्दोलन केवल अमेरिकन राष्ट्रतक ही परिमित है, परन्तु किसी दिन यह संसार-व्यापी रूप धारण कर लेगा। संसारका कोई भी आन्दोलन इस आन्दोलनकी व्यापकताको नहीं पहुँच सकता।

संसारके करोड़ों बालक-बालिकाओंका समुचित विकास केवल इसी कारण नहीं हो पाता कि दुर्भाग्यसे वे साधनहीन माता-पिताके घर जन्म लेते हैं। यदि संसारके समस्त बच्चोंको उनके विकासका पूरा सुयोग और पूरी सुविधाएँ दी जायँ, तो हमारी यह पृथ्वी मर्त्यलोक न रहकर काल्पनिक स्वर्गलोक हो जाय। आजकल संसारके राष्ट्र लड़ाईके जहाज़ों, मशीन-गनों और खूँख्वारीके अन्य हथियारोंपर जितना धन खर्च करते हैं, उतना यदि वे देशके बच्चोंके लिए खर्च करें, तो देश न मालूम क्यासे क्या बन जाय।

यूरोपसे लौटकर मि० हूवरने 'अमेरिकन चाइल्ड ऐसोसियेशन'की नींव डाली और वे उसके सभापति हुए। इस ऐसोसियेशनके कार्यका कुछ आभास एक दुर्घटनासे मिल जायगा। सन् १९२७में अमेरिकामें मिसीसिपीकी घाटीमें बड़ी भयंकर बाढ़ आयी। लाखों मनुष्य गृहहीन हो गये। मि० हूवरने तुरन्त ही ढाई लाख गृहहीन बच्चोंके खिलाने-पिलाने और पहनानेका प्रबन्ध किया। उन्होंने उन्हें ऐसी तरहसे रखा कि बाढ़की दशा सुधरनेपर जब वे लौटकर अपने-अपने घर गये, तब वे ऐसी अच्छी दशामें थे, जैसी अच्छी दशा उससे पहले कभी नहीं थी।

इस घटनासे यह प्रत्यक्ष हो गया कि यदि साधारण समयमें देशव्यापी पैमानेपर बच्चोंके स्वास्थ्य और दशाको सुधारनेकी लगातार कोशिश की जाय, तो बहुत उन्नति की जा सकती है।

मि० हूवरने अमेरिकाके राष्ट्रपति होते ही पहला काम जो किया, वह था एक कमेटी बनाना। इस कमेटीमें शिशुमंगल (Child welfare) से सम्बन्ध रखनेवाले सत्ताईस नेता हैं और डॉक्टर रे लाइमैन विलबर इसके मन्त्री हैं।

इस कमेटीका काम यह है कि वह ऐसे आँकड़े और मसाला एकत्रित करे, जिससे अमेरिकन बच्चोंके शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक तैयारी तथा सामाजिक दशाकी पूरी और सच्ची स्थिति मालूम हो सके। कमेटीने अपना प्रोग्राम बना लिया है। वह कोई बीस सब-कमेटियोंका संगठन कर रही है। ये उपसमितियाँ एक-एक विशेष विषयको लेकर उन सबकी जाँच-पड़ताल करेंगी। इन विषयोंमें मेडिकल सर्विस, पब्लिक स्वास्थ्यका शासन, शिक्षा और ट्रेनिंग, अपंग तथा सुविधाहीन बच्चोंकी समस्या आदि हैं। पूर्णवयस्क होनेके पहले बच्चोंकी चार अवस्थाएँ होती हैं—मातृगर्भमें, बचपन, लड़कपन और कुमारावस्था। इन कमेटियोंके बनानेका साधारण उद्देश्य यह है कि उन सब बातों और तथ्योंका पता लग जाय, जो बच्चोंकी उपर्युक्त चारों दशाओंमें प्रभाव डालते हैं।

मेडिकल सर्विसके अन्तर्गत जो कमेटियाँ होंगी, वे गर्भमें बच्चोंकी वृद्धि और विकास, माताकी खबरदारी और बच्चोंकी डॉक्टरी रखवाली आदि विषयोंपर विचार करेंगी। इन सब बातोंके लिए अनेकों विषयों—जैसे धात्रिविद्या, बालचिकित्सा, शरीर-विज्ञान, मानव-तत्त्व, पुष्टिकर भोजन, दन्तचिकित्सा, बाल-मनोविज्ञान, शिक्षा-सम्बन्धी मनोविज्ञान आदिके देशके अच्छेसे अच्छे विशेषज्ञ रखे जायँगे। छूतके रोगोंपर भी विशेष ध्यान दिया जायगा। इसके लिए अच्छेसे अच्छे डॉक्टरों और विशेषज्ञोंकी सेवाओंका उपाय किया जायगा।

दूधके उत्पादन और उसके वितरणकी समस्यापर कमेटी खास तौरसे ध्यान दे रही है, क्योंकि बच्चोंकी पुष्टिके लिए दूध सबसे अधिक आवश्यक चीज है।

यह बात प्रकट हो चुकी है कि बच्चोंकी शिक्षा उनकी बहुत ही छोटी अवस्थामें आरम्भ हो जाती है। शैशव-कालमें बच्चोंको जिस अवस्थामें रहना पड़ता है, वे जिन बातोंको देखते और सुनते हैं, उन सबका बालकके भावी जीवनपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। बच्चोंमें अक्सर माता-पिता तथा अन्य सगे-सम्बन्धियोंसे जो समानता पायी जाती है, उसका कारण यह है कि नवजात बच्चोंमें नकल करनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। वे पैदाइशके बादसे ही अपने चारों ओर रहनेवाले सगे-सम्बन्धियोंकी बोल-चाल, व्यवहार, रहन-सहन, दृष्टिकोण, साधारण शिष्टता और संस्कृति आदि बातोंकी नकल करना आरम्भ कर देते हैं। इस प्रकार एक बड़ी हदतक बच्चोंका समस्त भविष्य ही उस वातावरणपर निर्भर करता है, जिसमें पलकर बच्चा बड़ा होता है। यदि बालक प्रेमसे पाला और सिखाया-पढ़ाया जाय, तो उसके लिए भविष्यमें बहुत-कुछ अवसर हैं, परन्तु इसके विरुद्ध यदि उसका पालन-पोषण डर और गुस्सेके वातावरणमें होगा, तो अधिक सम्भावना इस बातकी है कि वह आगे जाकर भयंकर अपराधी हो जाय या अन्य किसी प्रकारसे समाजके लिए हानिकर हो, इसलिए बच्चोंकी शिक्षाके साथ-साथ बच्चोंके माँ-बापकी भी शिक्षा बहुत आवश्यक है। मि० हूवरकी कमेटी इस बातपर भी काफी ध्यान देगी।

बच्चोंकी शिक्षाकी समस्याके साथ-ही-साथ उनके खेलकी समस्या भी सम्मिलित है। यह बात अब निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि बच्चोंके समुचित विकासके लिए—मानसिक

और शारीरिक दोनों प्रकारके विकासके लिए—खेल-कूद बड़े आवश्यक हैं। पढ़ना और खेल-कूद या मनवहलाव, दोनों वातें, एकके वाद दूसरी होती रहनी चाहिएँ, परन्तु खेल-कूद इस प्रकारका होना चाहिए, जिससे वच्चोंमें नेतृत्वके गुण विकसित हों, उच्चाकांक्षाएँ उत्पन्न हों, साहस और आत्म-विश्वास पैदा हो, नयी वातें प्रारम्भ करनेकी प्रवृत्ति आवे तथा खिलाड़ीपन पैदा हो। वच्चोंकी भलाईके लिए वैज्ञानिक ढंगसे चलाये हुए खेलोंसे जितना लाभ होता है, उतना और किसी वातसे नहीं होता, इसलिए अमेरिकन कमेटीका एक यह भी काम होगा कि वह वच्चोंके खेल-कूदकी समस्याका अध्ययन करे। वह इस वातका पता लगावे कि देहातों और शहरोंमें वच्चोंको खेल-कूदका कहाँतक अवसर मिलता है, उनके खेल-कूद लाभदायक हैं या नहीं, उनमें क्या-क्या उन्नति की जानी चाहिये और खेल-कूद तथा शिक्षण-संस्थाओंका कहाँतक सामंजस्य किया जा सकता है।

शिक्षाके अलावा अपंग वच्चोंकी समस्या भी वड़ी महत्वपूर्ण है। अपंग वच्चोंसे मतलव उन वच्चोंसे है, जिनमें किसी प्रकारकी शारीरिक या नैतिक व्याधि पैदा हो गयी है। शारीरिक व्याधिसे अपंग वच्चे—जैसे अन्धे, लँगड़े, लूले, गूँगे, वहरे आदि—के लिए क्या प्रवन्ध होना चाहिये; उनके जीवनको सरस तथा लाभदायक कैसे बनाया जा सकता है, कमेटी इन सब वातोंपर भी ध्यान देगी।

परन्तु शारीरिक अपंग लड़कोंकी अपेक्षा नैतिक अपंग लड़कोंकी समस्या और भी वेढव है। मुख्यतया हमारे समाजकी स्थितिके दोषोंके कारण उनकी नैतिक नींव कमजोर पड़ जाती है, जिससे उनकी प्रवृत्ति अपराधोंकी ओर वहक जाती है। उनके सुधारके लिए रिफार्मेटरी स्कूल आदि कायम हैं, परन्तु वहुधा यही देखा जाता है कि इन स्कूलोंसे निकलनेवाले लड़के अच्छे खासे अपराधी वनकर निकलते हैं। जिस तरह जेलखाने एक प्रकारके अपराध सिखानेवाले विद्यालय होते हैं, उसी प्रकार इन रिफार्मेटरी स्कूलोंका प्रभाव होता है। इसका कारण लड़कोंके साथ मूर्खतापूर्ण कठोर व्यवहार है। यदि सरकार उनके साथ उदारतापूर्ण प्रेमका व्यवहार करे, तो वे ही लड़के अपराधी बननेके वजाय भले नागरिक वन जायँ। मिस्टर हूवरकी कमेटी इस विषयपर भी अच्छी तरह विचार करेगी।

वच्चोंको उचित शिक्षा देने, उनका उचित विकास करने तथा अपराधी मनोवृत्तिवाले वच्चोंकी समस्याको सफलतापूर्वक सुलझा देनेसे देशकी—नहीं, संसारकी—सबसे बड़ी समस्या अर्थात् अपराधोंकी रोक-थाम अपने ही आप हल हो जाती है।

इसके सिवा एक वात यह भी है कि जनसाधारणमें सफाई, स्वास्थ्य और शिशु-पालनके नियमोंके ज्ञानकी कमी भी वच्चोंके लिए बड़ी घातक होती है। इन विषयोंके अज्ञानके कारण लाखों बच्चे पैदा होनेके सालभरके भीतर ही कालके गालमें समा जाते हैं। अमेरिकामें पैदा होनेवाले प्रत्येक हजार वच्चोंमें पैंसठ एक वर्षके भीतर ही मर जाते हैं। अमेरिकनोंका कथन है कि यदि सर्वसाधारणमें ज्ञानका प्रचार किया जाय, तो यह मृत्यु-संख्या वहुत ज्यादह घटायी जा सकती है। सन् १९१५में यूनाइटेड स्टेट्समें

बच्चोंकी मृत्यु संख्या १०० प्रति हजार थी। उस समय पहले-पहल शिशु-मंगल (Child welfare) की ओर कुछ रियासतोंने थोड़ा-थोड़ा ध्यान देना आरम्भ किया। यद्यपि इसके लिए बड़े पैमानेपर कोई राष्ट्रव्यापी उद्योग नहीं किया गया था, मगर फिर भी बारह वर्षमें—सन् १९२७में—वहाँकी मृत्यु-संख्या १०० प्रति हजारसे, घटकर ६५ प्रति हजार रह गयी और वर्तमान स्कीमके काममें आनेपर, यह और भी कहीं अधिक घट जायगी।

अमेरिकन बच्चोंकी मृत्यु-संख्याके इन आँकड़ोंकी यदि आप भारतवर्षके बच्चोंकी मृत्यु-संख्याके आँकड़ोंसे तुलना करें, तो आपके होश गुम हो जायँगे। वैशाखकी 'माधुरी' में श्री मुकुटबिहारी वर्माके एक लेखसे कुछ आँकड़े यहाँ दिये जाते हैं। उन्हें देखनेसे पाठकोंको भारतकी भयंकर दशाका पता लग जायगा।

देश	सन्	बच्चोंकी मृत्यु प्रति-हजार
न्यूजीलैण्ड	१९१२	५१
यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका	१९२५	६५
	१९१५	१००
स्वीडन	१९११	७२
आस्ट्रेलिया	१९१३	७८
फ्रांस	१९१२	७२
नेदरलैण्ड्स	१९१३	९१
स्विट्जरलैण्ड	१९१२	९४
डेनमार्क	१९१३	९४
आयरलैण्ड	१९१३	९७
इंग्लैण्ड और वेल्स	१९१६	९८
स्कॉटलैण्ड	१९१३	११०
भारतमें :—		
मद्रास	१९०२-११	१९९
बंगाल	"	२७०
बिहार-उड़ीसा	"	३०४
पंजाब	"	३०६
ब्रह्मा	"	३३२
बम्बई	"	३२०
संयुक्त-प्रदेश	"	३५२

भारतवर्षके ये आँकड़े भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके औसत हैं। यदि हम खास-खास शहरोंके आँकड़ोंका विचार करें, तो उनकी भयंकरता देखकर हृदय काँप उठेगा। सन् १९१७में

बम्बई शहरमें वाल-मृत्युओंकी संख्या ४०९.६, कलकत्तेमें २४९ और मद्रासमें २७३.३ प्रतिसहस्र थी, जब कि सन् १९१६में लन्दनमें प्रति सहस्र ८७ बालक ही मरे थे। आजकल भी भारतकी इन संख्याओंमें कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ। यदि हुआ है, तो और अधिक खराबीकी ओर ही हुआ है। सन् १९२८में बंगालके डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक हेल्थ डॉक्टर बेंटलीके हिसाबके अनुसार कलकत्तेमें वाल-मृत्युओंकी संख्या ३४० प्रति-सहस्र थी; जब कि न्यूजीलैण्डके एक हजार बच्चोंमें केवल ३८ और इंग्लैण्डके एक हजार बच्चोंमें केवल ६५ ही मरे। इसका कारण क्या है? डॉक्टर धर्मवीरका कथन है कि 'आब-हवाकी बात तो एक ओर, यदि हमारा देश अपने निवासियोंको शिक्षा, चिकित्सा और अर्थ-सम्बन्धी वैसी ही सुविधाएँ दे सका होता, जैसी कि इंग्लैण्ड अपने निवासियोंको दे रहा है, तो सन् १९२७में हमारे यहाँ २४,५०,००० बालक मृत्युसे बच गये होते।'[1]

हमारे देशमें भी इंग्लैण्डवालोंका ही राज्य है। यहाँकी सरकारने भी स्वास्थ्य-विभाग कायम कर रखा है। उसके शासनकी असफलताका प्रत्यक्ष नमूना उपर्युक्त आँकड़ोंसे प्रकट है। हमारी सरकार इन सब बातोंको देखकर भी धनाभावका बहाना करके टाल देती है। फौजके लिए वह लगभग ६० करोड़ रुपया प्रति वर्ष खर्च कर डालती है, पुलिसमें भी करोड़ों रुपये प्रति वर्ष व्यय होता है। विलायतमें रहनेवाले रिटायर्ड फौजी अफसरोंको केवल पेन्शनके लिए लगभग तीन करोड़ रुपये साल चले जाते हैं। सिविलियन अफसरोंकी पेन्शनमें भी ऐसी ही भारी रकम खर्च हो जाती है। फिर देशके ऊपर अत्यन्त खर्चीला शासन लदा हुआ है। तब यदि धनाभावके कारण भारतीय बच्चोंका मरना नहीं रोका जा सकता, तो आश्चर्य ही क्या है?

हमारे यहाँकी इस भयंकर मृत्यु-संख्याका सबसे बड़ा कारण हमारी दरिद्रता है। सैकड़ों वर्षोंसे विदेशी व्यापारियों और शासकोंकी दोहन-नीतिने देशके आर्थिक स्वास्थ्यको जर्जरित कर दिया, जिससे हमारी दरिद्रता चरम सीमाको पहुँच गयी है। देशके लाखों मनुष्योंको पौष्टिक और रुचिकर भोजन तो दरकिनार, रूखा-सूखा पेट-भराऊ भोजन भी दोनों वक्त प्रतिदिन नसीब नहीं होता। महात्मा गान्धीके अनुसार यहाँकी भयंकर मृत्यु-संख्याके छै कारण हैं:—

(१) आबहवा
(२) खुराक
(३) बाल और बेमेल विवाह
(४) स्वच्छन्दता
(५) आरोग्य-विषयक अज्ञान और
(६) असह्य महँगी।

---

१. उपर्युक्त आँकड़े आदि 'माधुरी'के वैशाख ३०६ तु० सं० के अंकमें प्रकाशित श्री मुकुटबिहारी वर्माके 'जड़में घुन' शीर्षक लेखसे दिये गये हैं।

प्रथम कारणको छोड़कर और वाकी सब कारण दरिद्रता और अज्ञानके अन्तर्गत आ जाते हैं। खुराक और असह्य महँगी—यह दोनों ही वातें दरिद्रताके कारण हैं। जबतक विदेशियोंकी दोहन नीति नहीं वन्द होती, और देशकी आर्थिक नीतिमें देशके लिए स्वास्थ्यप्रद परिवर्तन नहीं होता, तवतक हमारी दरिद्रता आसानीसे दूर नहीं हो सकती। बाकी रहे वेमेल और वाल-विवाह, स्वच्छन्दता और आरोग्य-विषयक अज्ञान—ये तीनों ही कारण ज्ञानके प्रसारसे आसानीसे दूर किये जा सकते हैं, मगर इसके लिए वड़े विस्तृत प्रचार और आयोजनकी आवश्यकता है।

यहाँपर भी अमेरिकाके समान, वल्कि उससे भी वड़े आयोजनकी आवश्यकता है। हमारे देशमें एक ऐसा विस्तृत संगठन होना चाहिये, जो अपने देशमें तथा अन्य देशोंमें एकत्रित बालक-सम्वन्धी समस्त ज्ञानका उपयोग करके उसका प्रचार करे। माता-पिताको उनकी सन्तानके प्रति उनका कर्तव्य समझावे और साधारण आरोग्य-विषयक ज्ञान तथा स्वास्थ्यके नियमोंको घर-घर पहुँचावे। मिस्टर हूवरने अपनी योजनाका निष्कर्ष निकालते हुए कहा है—'हमें इस विषयमें काफी ज्ञान प्राप्त हो चुका है, यदि हम उस ज्ञानको एकत्रित करें, उसे छाँटकर अलग करें और उसमें सामंजस्य स्थापित करें, तो हम यह जान जायँगे कि स्वाभाविक स्वस्थ वच्चे कैसे होने चाहिएँ। इस सवका निष्कर्ष यह है कि इस सम्वन्धमें जितना ज्ञान संचित है, उसे जल्दीसे जल्दी सर्वसाधारणमें प्रकट कर देना चाहिए और उसका प्रचार करके उसे प्रत्येक माता-पितातक पहुँचा देना चाहिये।

'हम वैज्ञानिक संसारसे यह आशा लगाये हुए हैं कि वह हमें ऐसी तरकीब वतावे, जिससे हम—जो वच्चोंकी भलाईकी कोशिशमें लगे हैं—अपने वालक-वालिकाओंको बलिष्ठ और सुयोग्य नागरिक वनाकर अपनी भविष्यकी आशाओंको उन्हें सौंप सकें।'

: ३२ :

चित्रकार विजयवर्गीय

अदालतका दृश्य भी अजीव चीज है, सो भी देशी रियासतोंकी अदालतका। अदालतके भीतर न्यायाधीश महाशय गम्भीर मुद्रा वनाये वैठे हैं। उनके सामने वकील लोग वटेरोंकी तरह वहस-मुवाहसेमें जुटे हैं। पेशकार और अहलकार लिखनेमें मशगूल हैं। गवाह गंगाजली और कुरानशरीफ उठा रहे हैं। वाहर मुवक्किलोंकी भीड़ जमा है। कोई आता है, कोई जाता है। वेचारे मुकदमेवाज अपनी पुकार होनेके इन्तजारमें वेचैन तम्वाकू फाँकते और मूँगफली खाते वक्त काट रहे हैं। वीच-वीचमें अदालतका चपरासी मुकदमेवालोंकी पुकारके लिए अपने वेसुरे गलेसे तीन वार आवाज लगाता है—

"फरियादीराम हाजर है!"

जयपुरी दीवानी अदालतके इस विचित्र दृश्यमें अदालतके वरामदेमें एक कावुली पठान अपने मुकदमेके इन्तजारमें वैठा था। जयपुरकी गर्मीमें वर्फीले अफगानिस्तानकी पहाड़ियोंका रहनेवाला यह जीव कुछ अजीव परेशान-सा हो रहा था। वह पहले वैठा, फिर दीवारके सहारे अधलेटी अवस्थामें एक विचित्र अन्दाजसे उढ़क गया। वहींपर एक नवयुवक हिन्दू भी अपने मुकदमेके इन्तजारमें टहल रहा था। उसने पठानका यह विचित्र दृश्य देखा। धीरेसे जेवसे कापी-पेंसिल निकाली और पठानसे जरा दूर बैठकर कापीपर पेंसिलसे उसका चित्र बनाने लगा। वीच-वीचमें वह आँख उठाकर पठानकी ओर निहार लेता और फिर चित्र वनानेमें तल्लीन हो जाता। वह चित्र वनानेमें इतना निमग्न हो रहा था कि उस समय उसके लिए चारों ओरके संसारका अस्तित्व ही लुप्त हो गया। इस निमग्नताको, इस लगनको, वे लोग ही अनुभव कर सकते हैं, जो कलाकार हैं, जिन्हें भगवान्ने सृजनात्मक शक्ति प्रदान की है, और जो उस शक्तिका आनन्द अनुभव कर चुके हैं।

लगभग एक घण्टेके परिश्रमके बाद जव पठानका चित्र वनकर तैयार हो गया, तव युवकने आनन्दोल्लाससे सिर उठाया और सन्तोषकी साँस ली। अव उसने उठकर अदालतमें पूछ-ताछ की, तो मालूम हुआ कि उसके मुकदमेकी पुकार हो गयी। चपरासीने अपने फटे गलेसे जोर-जोर तीन वार उसका नाम पुकारा था; लेकिन वह हाजिर नहीं हुआ, इसलिए न्यायाधीशने अदम मौजूदगीकी विनापर उसके विरुद्ध फैसला कर दिया।

इसी नवयुवकका नाम है श्री रामगोपाल विजयवर्गीय।

विजयवर्गीय महाशयने अपनी छोटी आयुहीमें अपनी तूलिकाके सहारे हिन्दी-संसारमें

—हिन्दी-संसारमें ही नहीं, वरन् हिन्दी-संसारके बाहर भी—काफी कीर्ति प्राप्त कर ली है, और कला-जगत्‌को उनसे भविष्यमें बड़ी आशाएँ हैं।

बालक रामगोपालका जन्म जयपुर राज्यके एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न वैश्य कुलमें हुआ था। उनके पुरखे केवल वाणिज्य-व्यवहारके ही धनी न थे, तलवारके धनी भी थे। उन्होंने अपनी तलवारके बलपर ही 'विजयवर्गीय' उपाधि प्राप्त की थी, जो अबतक उनकी जातिमें चली आती है। रामगोपालके पिता स्वर्गीय भँवरीलालजीने नौकरी और व्यापारके द्वारा प्रचुर धन पैदा किया और उसे उसी प्रचुरतासे व्यय किया। बालक विजयवर्गीय बचपनसे ही चित्रोंका बड़ा प्रेमी था। वह कपड़ेके थानोंपर चिपकी हुई तसवीरोंके लिए सदा लालायित रहता और उन्हें एकत्रित करके बड़े प्रयत्नसे रखता था। वह घण्टों उन्हीं चित्रोंके साथ खेला करता था। एक दिन बालक रामगोपाल मकानके दरवाजेपर खेल रहा था। एक व्यक्तिने आकर उसे कपड़ेके थानोंकी दो-तीन तसवीरें दिखलायीं। रामगोपाल फौरन उन्हें लेनेके लिए उतावला हो उठा। उस व्यक्तिने कहा—'तुम मुझे अपने गलेकी जंजीर दो, तो मैं तसवीरें दूँ।'

रामगोपालने फौरन अपनी सोनेकी जंजीर उतारकर उसे दे दी और तसवीरें लेकर प्रसन्नतासे घर चला गया।

पुराने दस्तूरके अनुसार पिताने रामगोपालको उर्दू-हिन्दीकी शिक्षा दिलायी थी। संस्कृत रामगोपालने स्वयं अपने प्रेम और प्रयत्नसे पढ़ी। बादमें उसने स्कूलमें आठवें-नवें दर्जेतक अंग्रेजी भी पढ़ी। लेकिन 'एम ए एन = मैन, मैन माने आदमी' रटनेके बजाय वह कागजपर आदमीकी शक्ल बनाना अधिक पसन्द करता था। वह हर वक्त कापीपर पेंसिलसे आदमी, जानवर, कुत्ता, बिल्ली बनानेमें व्यस्त रहता था। माता-पिताको यह बात नापसन्द थी। वे उसे इन बातोंसे रोकते थे; लेकिन वह छिप-छिपकर तसवीरें बनाता था। ऐसी दशामें पढ़ने-लिखनेमें मन क्या लगता! आठवें-नवें दर्जेतक पहुँचते न पहुँचते पढ़ना छोड़ दिया। अब तो दिन-भर अच्छी-बुरी ऊटपटाँग तसवीरें बनाना ही शगल रह गया।

यद्यपि रामगोपाल महाशयको कालेज या विश्वविद्यालयकी शिक्षा पानेका अवसर नहीं मिला; लेकिन दैव संयोगसे उन्हें उस विश्वविद्यालयकी शिक्षा प्राप्त हुई, जो संसारके सारे विश्वविद्यालयोंसे बढ़कर है। वह है सांसारिक अनुभवका विश्वविद्यालय। पिताजीकी शाहखर्चीके कारण रामगोपालजीके जीवनमें कई बार सुख-दुखके ज्वार-भाटे आये और आराम-तकलीफकी धूप-छायाके खेल हुए। उन्होंने पूँजीवादी समाजके चढ़ाव-उतार खूब देखे हैं। छोटेसे जीवनमें ही उन्होंने ऐश्वर्य और विभवके फूलों और कठिनाइयों और मुसीबतोंके काँटोंका अनुभव किया है, और खूब किया है। वे प्रचुरताके उद्देश्यहीन बेफिक्र दिनों और बिभुक्षाकी काली घड़ियोंसे परिचित हैं। जीवनके ये रंग-बिरंगे चित्र-विचित्र अनुभव ही उनके सबसे बड़े शिक्षक हैं। उनके चित्रोंमें मानव-भावोंकी विशेषताका रहस्य शायद उनके इन्हीं अनुभवोंमें निहत है।

कुछ दिन सांसारिक चक्करमें विताकर रामगोपाल जी जयपुरके आर्ट स्कूलमें भर्ती हो गये। वहाँ प्रसिद्ध चित्रकार श्री शैलेन्द्र दे प्रिंसिपल थे, और श्री हिरण्यमय चौधुरी सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। आर्ट स्कूलका कोर्स पाँच-सात वर्षका है; लेकिन रामगोपालजीने इतनी दक्षताका परिचय दिया कि उन्हें केवल पन्द्रह-सोलह महीनोंमें ही सर्वोच्च परीक्षाका सर्टिफिकेट प्राप्त हो गया। भर्ती होनेके कुछ मास वादसे ही वाहरकी प्रदर्शनियोंमें स्कूलकी ओरसे उनके चित्र भेजे जाने लगे थे, और उनकी काफी प्रशंसा होती थी।

आरम्भमें मासिक पत्रोंमें छपे हुए श्री अब्दुर्रहमान चगताई और श्री शारदा उकीलके चित्रोंने विजयवर्गीयके ऊपर विशेष प्रभाव डाला था। मासिक पत्रोंमें विजयवर्गीयके चित्र छापनेवाला सवसे पहला मासिक पत्र 'माडर्न रिव्यू' है। एक वार श्री हरिभाऊ उपाध्याय जयपुर गये थे। उन्होंने विजयवर्गीयके चित्र देखकर प्रसन्नता प्रकट की; परन्तु साथ ही उनसे कहा—"देखो, गन्दे विचार उत्पन्न करनेवाले चित्र वनाकर अपनी कलाको कलंकित मत करना।"

रामगोपालजी आरम्भसे ही धार्मिक विचारोंके हैं। हरिभाऊजीके कथनसे उनकी धार्मिक भावना और भी दृढ़ हो गयी, इसीलिए उनके चित्र कुरुचि उत्पादक भावोंसे एकदम मुक्त होते हैं। विजयवर्गीयजीने संस्कृतका अच्छा अध्ययन किया है। कालिदासकी शकुन्तला, मेघदूत आदि और वाणभट्टकी कादम्बरीने उनपर वहुत अधिक प्रभाव डाला है। इसी कारण उनके चित्रोंमें हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-विचारोंकी वड़ी गहरी छाप दीख पड़ती है। उनके चित्रोंके विषय भी प्रायः गम्भीर या Classic हुआ करते हैं। इससे उनके चित्रोंमें एक प्रकारकी अपनी निजी मर्यादा दीख पड़ती है।

जिस समय विजयवर्गीयजीको चित्र वनानेकी धुन सवार होती है, उस समय उन्हें तवतक चैन नहीं पड़ता, जवतक वे उसे वनाकर पूरा न कर लें। विजयवर्गीयजी वैठे चित्र वना रहे हैं। आकृति वन चुकी है। रंग भरा जा रहा है। सहसा रंग समाप्त हो गया। जयपुरमें रंग मिलता नहीं, कलकत्तेसे मँगाना पड़ेगा; लेकिन कलकत्तेसे रंग आनेतककी ताव किसको? सफेद जूतेपर लगानेकी पालिश रखी है। विजयवर्गीयजीने उसे उठाकर घोला और उसीसे चित्र वनाकर पूरा कर दिया। जूतेकी पालिशका वना हुआ चित्र भारतके एक प्रसिद्ध कला-संग्रहालयमें आदरपूर्वक सुरक्षित है। इसी प्रकार एक दिन फिर रंग समाप्त हो गया। चित्र प्रायः वन चुका था। केवल उसपर रंगका अन्तिम पोत (wash) देना वाकी था। सामने पानदान रखा था। चित्रकारने उसमेंसे कत्थेकी कुल्हिया निकाली और उसीमें ब्रश डालकर चित्रको पूरा कर दिया। इस कत्था-रचित चित्रको विश्वविद्यालयके एक कला-प्रेमी प्रोफेसरने आग्रहसे खरीदा था।

विजयवर्गीयजीके रंग भी प्रायः गम्भीर हुआ करते हैं, जो चित्रोंके गम्भीर विषयोंके वहुत अनुकूल होते हैं; लेकिन किसी-किसी चित्रमें, जिनके विषय कम गम्भीर होते हैं, वे उतने पूरे नहीं उतरते।

यों तो रूसको छोड़कर सारे वर्तमान संसारका सामाजिक गठन पूँजीवादकी नींवपर स्थिर है; लेकिन विजयवर्गीयजीका जन्म और लालन-पालन ऐसे समाजमें हुआ है, जिसमें संसारकी प्रत्येक वस्तु चाँदीके टुकड़ोंसे तोली जाती है। ऐसे समाजमें भाग्यके कटु उलट-फेर देखनेके बाद उनके मनमें 'गाँठमें जमा रहे तो खातिर जमा रहे'के सिद्धान्तके अनुसार यह धारणा उत्पन्न हो गयी है कि प्रत्येक स्वाभिमानी व्यक्तिके लिए जिन्दगीका पहला लक्ष्य होना चाहिये आर्थिक स्वतन्त्रताकी प्राप्ति। पहले आदमी दस-पाँच हजार रुपया एकत्रित करके पेटकी चिन्तासे मुक्त हो जाय, तब वह अपने शौकके किसी भी क्षेत्रमें स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर सकता है।

ललित-कलाओंके प्रति विजयवर्गीयजीको स्वभावतः ही प्रेम है। वे केवल तूलिकासे ही खेलना नहीं जानते, वरन् जब उमंग आती है, तो लेखनीसे भी क्रीड़ा करते हैं। वे हिन्दीमें कविता करते हैं। उनकी कविता स्वान्तःसुखाय लिखी होनेके कारण अबतक लज्ज्जाशीला नव-वधूकी भाँति परदेकी ओटमें ही रही है; लेकिन आशा है कि शीघ्र ही वह छापेकी मोटरपर सवार होकर जनसाधारणके सामने आयेगी।

इसी अंकमें पाठक विजयवर्गीयजीके तीन तिरंगे चित्र देखेंगे।[१] इनमें एक चित्र है 'लक्ष्मण और सूर्पणखा'का। सूर्पणखा यौवनोन्मत्त होकर पहले श्रीरामचन्द्रके पास प्रणय-प्रार्थनाके लिए जाती है, जो उसे लक्ष्मणके पास भेज देते हैं। जब कोई पुरुष किसी स्त्रीको या कोई स्त्री किसी पुरुषको अपने प्रेम-सूत्रमें बाँधना चाहती है, तब वह अपने प्रेमीके सम्मुख अपने सबसे सुन्दर रूपमें उपस्थित होती है, इसीलिए सूर्पणखाने भी श्रृंगार द्वारा अपनी सौन्दर्य-वृद्धिमें कोई बात उठा नहीं रखी है। लेकिन कोई भी स्त्री—चाहे वह निर्लज्ज सूर्पणखा राक्षसी ही क्यों न हो—जब किसी पुरुषके सामने प्रणय-भिक्षा-के लिए उपस्थित होती है, तो उसपर स्त्री-सुलभ लज्जा अपना प्रभाव डाले विना नहीं रहती। पाठक देखेंगे कि चित्रकारने चित्रमें सूर्पणखाके मुखपर प्रणयकी कोमलता, कामनाके जोर और लज्जाके आरक्तिम भावोंकी छाप कैसी सफलता और सुन्दरतासे लगायी है। दूसरी ओर उर्मिलाका वियोगी तपसी पति सूर्पणखाके इस विचित्र प्रस्तावको सुनकर हक्का-बक्का रह जाता है; क्रोधसे उत्तप्त हो उठता है। चित्रमें लक्ष्मणका केवल पृष्ठ भाग ही दीख पड़ता है; लेकिन चित्रकारने केवल उसीसे लक्ष्मणके महान् आश्चर्य, घृणा और क्रोधको भलीभाँति दिखला दिया है।

विजयवर्गीयजीका दूसरा चित्र है 'लंका-दहन'। हनुमानजी लंकामें आग लगाकर गदा फटकारते हुए अग्नि-शिखाओंके जालमें कूदते-फाँदते निकल रहे हैं। बन्दर-जातिका विशेष गुण उसकी चपलता, स्फूर्ति और नटखटपन है। फिर हनुमानजी तो अत्यन्त बलशाली कपिराज हैं। चित्रमें उनकी आकृति मूर्तिमान स्फूर्ति और तीव्रता बनकर

१. विशाल भारतमें इस लेखके साथ विजयवर्गीयजीके जो चित्र छपे थे वे प्रस्तुत पुस्तकमें प्रकाशित नहीं किये जा सके।

दीख पड़ती है। चित्रकारने उनके शरीरकी जो गठन दिखायी है, उससे दर्शकके मनमें उनके वज्रांग होनेमें कोई संशय नहीं रह जाता।

तीसरा चित्र एक ग्वालिनीका है, जो नगरमें गोरस बेचकर अपने ग्रामको लौट रही है। रास्तेके निस्तब्ध प्रान्तरकी निर्जनतामें उसे लज्जाका भान जाता रहा है, इसलिए वह अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रोंकी चिन्ता न करके तेज चालसे बढ़ी चली जा रही है। घर पहुँचनेकी उतावली उसकी गतिसे ही प्रकट हो रही है।

: ३३ :

जीता-जागता तिलिस्म

'विशाल भारत' आफिससे सिर्फ सत्ताईस मकान दूर, ९३, अपर सर्कूलर रोडपर, एक मन्दिर है। संसारके सभी देशोंसे छोटे-बड़े लोग इस मन्दिरके दर्शनके लिए और इसके पुजारीके अचरज-भरे करिश्मे देखनेके लिए आते हैं। नार्वेके प्रिन्स इसे देखनेके लिए आये थे; बेलजियमके बादशाह इसकी जियारत कर चुके हैं; भारतके अनेक वायसराय और गवर्नर, संसारके अगणित विज्ञानवेत्ता, विद्वान् और मनीषी इस स्थानके दर्शनोंके लिए आ चुके हैं और आते रहते हैं।

आप भी आइये; मगर जरा सम्हलकर कदम रखियेगा, नहीं तो यदि घासकी किसी पत्तीपर पैर पड़ गया, तो वह वावैला मचायेगी; पेड़की किसी नाजुक डालपर रगड़ लग गयी, तो वह आपकी शिकायत करने लगेगी; आपके दामनके झटकेसे यदि किसी फूलकी पँखुड़ीको ठेस पहुँची, तो वह आपकी लापरवाहीपर लेक्चर देना शुरू कर देगी।

आप कहेंगे—'क्या घास कहीं वावैला मचाती है, पेड़ कहीं बोलते हैं, या फूल कहीं लेक्चर झाड़ा करते हैं?' जी हाँ, यहाँ पहुँचकर घास भी बोलती है, पेड़ भी बातें करते हैं और फूल भी अपनी कथा कहते हैं। यह वह स्थान है, जहाँ वनस्पति-संसारकी मूकता वाचाल हो उठती है। 'इकबाल'ने कहा है कि खुदाने बेजबान परिन्दोंको तो मधुर-भाषी बनाया है, और गुलको जबान देकर भी खामोश रहनेकी तालीम दी है—

"रंगीं नवा बनाया मुर्गाने-बेजबाँको,
गुलको जबान देकर तालीमे-खामुशी दी।"

लेकिन इस मन्दिरकी चहारदीवारीके भीतर आकर गुल इस खामोशीके सबकको भूल जाता है, और बागवानकी मेहरबानी या गुलचींके जुल्मपर रंजो-खुशीका इजहार करने लगता है।

यह मन्दिर है संसारका सबसे निराला, जीता-जागता जादू—आचार्य जगदीशचन्द्र बोसका 'विज्ञान-मन्दिर'।

× × ×

प्राचीन कालमें भारतीय ऋषियोंने संसारका विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान बढ़ानेमें कुछ कम भाग नहीं लिया था। दर्शनमें यदि भारतीय विद्वान् अन्य सब देशोंसे आगे बढ़े हुए थे, तो अंकगणित, ज्यामिति, ज्योतिष, रसायन और भौतिक विज्ञानमें भी वे दूसरोंसे पीछे नहीं थे। अनेक वैज्ञानिक तथ्योंका आविष्कार इसी भारत-भूमिमें हुआ था; परन्तु बादमें जब देशका अवनति काल आरम्भ हुआ, तो भारतीयोंने विज्ञानकी ओरसे ऐसा मुँह मोड़ा

कि संसारके अनेक लोगोंकी यह धारणा हो गयी कि वैज्ञानिक खोजके लिए भारतीय सर्वथा असमर्थ हैं। जिस समय संसारमें यह भ्रान्ति दृढ़ हो रही थी, उसी समय आचार्य जगदीश-चन्द्र बोसने अन्वेषणकी ज्योति जगाकर विज्ञानके एक नितान्त अज्ञात मार्गपर कदम बढ़ाया, और थोड़े ही दिनोंमें अपने आविष्कारोंसे यह सिद्ध कर दिया कि वैज्ञानिक अनु-सन्धान और आविष्कार केवल यूरोपियनोंकी ही मौरूसी सम्पत्ति नहीं है, भारतवासी भी इस दुर्गम मार्गमें उनसे कन्धा भिड़ाकर चल सकते हैं।

आचार्य जगदीशचन्द्र बोसको आज विज्ञानकी पूजा करते हुए पूरी आधी शताब्दी हो गयी। उनका जन्म सन् १८५८ में ढाका जिलेके राढ़ीखाल नामक ग्राममें हुआ था। कलकत्तेके सेण्ट जैवियर कालेजसे बी० ए० की परीक्षा पास करके वे इंगलैण्ड गये, जहाँ उन्होंने केम्ब्रिजसे बी० ए० (Tripos B.A.) की और लन्दनसे बी० एस-सी० की परीक्षाएँ पास कीं। भारत लौटनेपर वे कलकत्तेके प्रेसीडेन्सी कालेजमें भौतिक विज्ञानके अध्यापक नियुक्त हुए। कालेजमें अध्यापनका कार्य करते हुए ही उन्होंने वैज्ञानिक अनुसन्धान करना आरम्भ किया। पहले उन्होंने विजलीकी अदृश्य किरणोंके विकीरण-सम्बन्धी कुछ ऐसे आविष्कार किये, जिन्होंने समस्त वैज्ञानिक संसारको आश्चर्य-चकित कर दिया। इन नवीन तथ्योंके लिए उन्हें कई यन्त्रोंका आविष्कार भी करना पड़ा था। सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता लार्ड केलविनने बोस महाशयके आविष्कार देखकर कहा था—"वैज्ञानिक अनुसन्धानके इस दुर्गम क्षेत्रमें इतनी बड़ी सफलता देखकर मेरा हृदय सचमुच आश्चर्य और प्रशंसासे भर उठा।"

इन आविष्कारोंमें कई वायरलेस—बेतारके तार—सम्बन्धी भी थे। बोस महाशयके आविष्कारोंसे संसारके विद्युत्-विज्ञानको अग्रसर होनेमें काफी सहायता मिली। इस सम्बन्धमें एक घटनाका वर्णन अप्रासंगिक न होगा :—

सन् १९१४ में यूरोपमें युद्ध आरम्भ हो गया था। स्थलमें जर्मन सेनाएँ अंग्रेजी, फ्रेंच और बेलजियन सेनाओंसे लोहा लेती हुई फ्रांसके भीतरतक पहुँच चुकी थीं। आकाशमें जर्मनीके जेपलिन लन्दन और पेरिसपर बम बरसा रहे थे, और समुद्रमें जर्मन समुद्री सेनापति फन टिरपिज इंगलैण्डपर हमला करनेकी फिक्रमें था। जर्मनीका एक लड़ाकू जहाज, एमडन, चीनसे भागकर बंगालकी खाड़ीमें आ पहुँचा था। उसने यहाँ जैसी कयामत बरपा कर दी थी, उसे हिन्दुस्तानी अच्छी तरह जानते हैं। ऐसी संगीन अवस्थामें यदि जर्मन जहाजी-बेड़ा इंगलैण्डपर आक्रमण कर देता, तो इंगलैण्ड बड़ी कठिनाईमें पड़ जाता। अंग्रेजोंके जंगी जहाजोंमें क्षण-क्षणपर जर्मन जहाजोंके दिये हुए बेतारके तार सुनायी पड़ते थे। ये तार सांकेतिक शब्दोंमें—Code words में—दिये जाते थे। किसी जहाजको कोई तार उत्तर दिशासे आता जान पड़ता था, तो किसीको दक्षिणसे, किसीको पूरबसे तो किसीको पश्चिमसे। उस समय ब्रिटिश समुद्री बेड़ेके सेनापति ऐडमिरल जैकसनने अपने तमाम जहाजों और वायरलेस-स्टेशनोंको हुक्म दिया कि वे शत्रुओंके सारे तार उनके पास भेजें। फिर ऐडमिरल जैकसनने उन तारोंकी दिशाओंको मिलाकर

देखा, तो मालूम हुआ कि ये सारे तार एक ही स्थानसे आ रहे हैं, और वह स्थान है जर्मन बेड़ेका केन्द्र। यह मालूम होते ही ब्रिटिश जंगी जहाजोंके बेड़ेने जाकर जेटलैण्डका मुहाना, जहाँ जर्मन जहाजोंका केन्द्र था, बन्द कर दिया। इसके पूर्व कि जर्मन जहाज खुले समुद्रमें आकर इंगलैण्डपर हमला करें, उन्हें जेटलैण्डमें ही ब्रिटिश बेड़ेका सामना करना पड़ा। इस युद्धमें ब्रिटिश जहाजोंकी विजय हुई और जर्मनीका भयंकर बेड़ा तहस-नहस हो गया।

इस प्रकार जर्मन बेड़ेका भाग्य निर्णय करने और इंगलैण्डको एक भयंकर खतरेसे बचानेमें सबसे बड़ा काम अंग्रेजी जहाजोंके वायरलेसने किया था। कुछ दिन पहले ऐडमिरल जैकसनकी मृत्युपर विलायतके 'नेचर' नामक पत्रमें उनके सम्बन्धमें दो लेख प्रकाशित हुए थे। इन लेखोंमें कहा गया था कि अंग्रेजी जंगी जहाजोंमें वायरलेसका उपयोग करनेका श्रेय ऐडमिरल जैकसनको ही था, और डॉक्टर बोसके द्वारा डिटेक्टर नामक यन्त्रके आविष्कारपर ही उन्हें यह बात सूझी थी। स्वयं ऐडमिरलने भी स्वीकार किया था कि यदि डॉक्टर बोसके डिटेक्टरकी सहायता उन्हें न मिलती, तो वे इस कार्यमें सफल न होते।

× × ×

हमलोग यह जानते हैं कि जब हम बिजलीकी धाराको स्पर्श करते हैं, तो हमें धक्का लगता है। इसके अर्थ यह हुए कि बिजलीकी धारासे हमारे शरीरके अवयवोंमें एक प्रकारकी हरकत होती है, एक प्रकारका प्रत्युत्तर (Response) मिलता है। बोस बाबूने अपने बिजली-सम्बन्धी आविष्कारोंमें यह लक्ष्य किया कि विद्युत्-धाराके प्रति इस प्रकारका प्रत्युत्तर केवल जीवित प्राणियोंहीमें नहीं मिलता, वरन् निर्जीव और जड़ पदार्थोंमें भी मिला करता है। यह देखकर उन्होंने जड़ और चेतनकी एकतापर विचार करना आरम्भ किया। क्या इस संसारमें जड़ और चेतनका कोई नियम काम करता है, या यहाँ केवल गड़बड़घोटाला ही है। इस पृथिवीपर जीवनका आविर्भाव कैसे हुआ? जिस समय पृथिवी अत्यन्त गर्म—अधपिघली दशामें—थी, उस समय उसपर किसी भी प्रकारका जीवन असम्भव था। कुछ लोग कहते हैं कि ब्रह्माण्डके अन्य नक्षत्रोंसे धूलके कण इस पृथिवीपर आये, जिनमें जीवनका बीज मौजूद था, और उन्हींसे इस पृथिवीपर जीवनका प्रादुर्भाव हुआ। इस धारणासे जीवनकी पहेली और भी दुरूह होकर दूसरे ही लोकमें पहुँच जाती है।

बोस महोदयने जड़ और चेतनकी पहेलीका अध्ययन शुरू किया। उन्होंने देखा कि जड़ पदार्थमें भी बाहरसे उत्तेजना दी जानेपर प्रत्युत्तर (Response) मिलता है। अत्यधिक उत्तेजना पाकर वह थक जाता है और कुछ कालतक विश्राम करनेके बाद पुनः ज्यों-का-त्यों हो जाता है। कुछ विशेष उत्तेजक ओषधियों (stimulating agents) के द्वारा प्रत्युत्तरकी यह शक्ति बहुत बढ़ जाती है, तथा इसके विपरीत कुछ जहरीली ओषधियाँ देनेपर प्रत्युत्तर एकदम बन्द हो जाता है—ठीक उसी प्रकार, जैसे मरे हुए जीवोंमें। इस प्रकार यह ज्ञात हुआ कि जड़ और चेतनमें होनेवाली प्रतिक्रियामें

विपरीतता कम और सादृश्य अधिक है। अतः इस पृथिवीके कणोंमें—जिन्हें हम निर्जीव या जड़ कहते हैं—शायद सुप्त (Latent) जीवनी शक्ति व्याप्त है। पृथिवीके किसी बाल-युगमें, विशेष परिस्थितियोंके एकत्र हो जानेके कारण, इन्हीं जड़ परमाणुओंमें छिपी हुई वह जीवनी शक्ति विकसित होकर चेतन रूपमें प्रस्फुटित हुई होगी।

आचार्य बोसने देखा कि लोहा, मिट्टी, पत्थर आदि जड़ पदार्थों और जलचर, थलचर, नभचर आदि चेतन प्राणियोंके बीचमें है उद्भिज संसार। वनस्पति उगते हैं, हिलते-डुलते हैं, फलते-फूलते हैं, अतः वे पत्थर, मिट्टी आदि जड़ पदार्थोंसे भिन्न हैं। लेकिन हिलने-डुलनेपर भी वे अचल हैं; जीवोंकी भाँति वे चलते-फिरते, कूदते-फाँदते नहीं और न उनके अंग-प्रत्यंगोंमें जन्तुओंकी तरह स्पन्दन ही दीख पड़ता है। आचार्य बोसने उद्भिज संसारका अध्ययन करके पता लगाया कि चारों ओरकी परिस्थितिका परिवर्तन जन्तुओंपर जो प्रभाव डालता है, वही प्रभाव वृक्षोंपर भी डालता है। मान लीजिये कि यदि किसी जन्तुके शरीरमें चाकू घुसेड़ दिया जाय, तो वह पीड़ासे छटपटाने लगेगा। ठीक इसी प्रकार किसी पेड़में चाकू भोंकनेसे उसे भी पीड़ा और छटपटाहट होती है। हम उसे इसीलिए नहीं जान पाते कि पेड़के भीतरी भागमें क्या हो रहा है, हम यह देखनेमें असमर्थ हैं।

इस अनुसन्धानमें वैज्ञानिकोंके लिए अनेक कठिनाइयाँ थीं, जिनमें मुख्य यह थीं—

(१) ऐसे उपायोंकी कमी, जिनसे वृक्ष अपनी भीतरी बातें प्रकट करनेके लिए वाध्य हों।

(२) ऐसे सूक्ष्म यन्त्रोंकी कमी, जो वृक्षोंकी भीतरी क्रियाएँ ज्ञात कर सकें।

(३) जीवित प्राणियोंके अंगोंके—कर्मेन्द्रियोंके—वाह्य आकारको जरूरतसे ज्यादा महत्त्व देना, पर उनके कार्योंकी उपेक्षा करना।

इन कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए बोस महोदयने पहले तो इस बातकी चेष्टा की कि वृक्ष स्वयं अपना जीवन-वृत्तान्त प्रकट कर सकें। उन्होंने वृक्षोंको लगातार एक-सी शक्तिके कुछ दहलानेवाले धक्के पहुँचाये, साथ ही उनमें ऐसे यन्त्र लगा दिये, जो उनमें उत्पन्न होनेवाली उत्तेजनाको अंकित कर सकें। इस प्रकार यह देखा गया कि जब उन्हें कोई उत्तेजक ओषधि देकर धक्का पहुँचाया जाता है, तब उनका प्रत्युत्तर (Response) वहुत स्पष्ट होता है, और जब शिथिल अवस्थामें धक्का पहुँचता है, तो प्रत्युत्तर इतना स्पष्ट नहीं होता।

दूसरी कठिनाईको दूर करनेके लिए बोस महाशयने कुछ ऐसे यन्त्रोंका आविष्कार किया, जो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातों तकको ग्रहण कर सकें। खुर्दबीन सूक्ष्म वस्तुको बड़ा बनाकर दिखाती है। सबसे ताकतवर खुर्दबीन किसी वस्तुको उसके वास्तविक आकारसे करीब ३,००० गुनासे अधिक नहीं बढ़ा सकती; किन्तु वृक्षोंका स्पन्दन देखनेमें खुर्दबीनको भी असमर्थ पाकर बोस महाशयने मैगनेटिक क्रेस्कोग्राफ नामक यन्त्रका आविष्कार किया। यह यन्त्र किसी भी हरकतको १,००,००,००० गुनासे भी अधिक बढ़ाकर दिखला सकता है! जब बोस बाबूने अपने इस यन्त्रको वैज्ञानिकोंके सामने रखा, तो उन्हें उसकी इस

विराट शक्तिपर विश्वास ही नहीं हुआ। लन्दनकी रायल सोसाइटीने लार्ड रेले, सर विलियम बैग, प्रोफेसर बेल्लिस, प्रोफेसर डोनन तथा अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंकी एक कमेटी बिठाकर इस यन्त्रकी परीक्षा करायी। कमेटीने जाँच करके बतलाया—"यह यन्त्र १,००,००,००० गुना बढ़ाकर वृक्षोंके अवयवोंकी वृद्धि, तथा उत्तेजक ओषधि देनेपर वृक्षोंमें होनेवाली हरकतको एकदम ठीक-ठीक प्रकट करता है।"

इसी प्रकार डॉक्टर बोसके विज्ञान-मन्दिरमें अनेक सूक्ष्म-बोध यन्त्र बनाये गये हैं। रेजोनेण्ट रेकर्डर नामक यन्त्र एक सेकेण्डके हजारवें हिस्सेतकको अपने-आप अंकित कर देता है। इसके द्वारा वृक्षोंके तन्तुओंमें दौड़नेवाली उत्तेजनाकी गति नापी जा सकती है। मोटे दृष्टान्तके रूपमें यों समझिये कि मान लीजिये, आपका पैर किसी काँटेपर पड़ा। काँटा गड़ते ही फौरन आपने पैर हटा लिया। जैसे ही आपके पैरमें काँटा गड़ता है, वैसे ही तलुवा इस खतरेकी खबर देता है। यह खबर शरीरके तन्तुओंमें दौड़ती हुई दिमागमें पहुँचती है। दिमाग फौरन ही पैरको हटनेका हुक्म भेजता है, और आप पैर हटा लेते हैं। ये सब क्रियाएँ इतनी शीघ्रतासे होती हैं कि आपको पता ही नहीं चल पाता। इस यन्त्रके द्वारा यह जाना जा सकता है कि पैरसे दिमागतक खबर जाने अथवा दिमागसे पैरतक हटनेका हुक्म पहुँचनेमें कितनी देर लगती है और खबर किस गतिसे चलती है। डॉक्टर बोस इस यन्त्रको पौदोंमें लगाकर देखते हैं, तो जान पड़ता है कि अनुभूतिकी यह क्रिया जैसी जन्तुओंमें होती है, वैसी ही वृक्षोंमें भी होती है। इसी प्रकार Phytograph यन्त्र द्वारा पेड़ोंमें रसके चढ़नेकी नाप-जोख होती है। इस प्रकारके और भी अनेक यन्त्र बोस महाशयने बनाये हैं। इन यन्त्रोंकी विशेषता यह है कि पेड़ोंमें लगा देनेपर ये सब-के-सब अपनी-अपनी नाप-जोखको स्वयं ही अंकित करते रहते हैं। यद्यपि ये यन्त्र संसारके सबसे अधिक सूक्ष्म-बोध (Sensitive) यन्त्रोंमें हैं, लेकिन ये सब भारतीय वस्तुओंसे, भारतमें ही—बोस महोदयके विज्ञान-मन्दिरमें—निर्मित हुए हैं।

तीसरी कठिनाई, जिसने वृक्षोंका जीवन समझनेमें सबसे अधिक झमेला उत्पन्न कर रखा है, प्राणियोंके बाह्य अंगोंके आकारको अत्यधिक महत्त्व देना है। जिस समय हम कहते हैं कि वृक्षोंमें भी जन्तुओंके समान ही जीवन है, उस समय हम फौरन ही यह पूछने लग जाते हैं कि यदि वृक्ष जानदार हैं, तो उनका मुँह कहाँ है, आँखें कैसी हैं, कान कौनसे हैं और हाथ-पैर किधर हैं। हम इस बातपर ध्यान नहीं देते कि इन विभिन्न अंगों—इन्द्रियों—का काम क्या है, और क्या वृक्ष किसी दूसरे ढंगसे भी इन इन्द्रियोंकी जरूरत रफा कर लेते हैं या नहीं। प्रत्येक अंग या इन्द्रिय समूचे शरीरकी भलाईके लिए कोई कर्तव्य-विशेष किया करती है। शरीर-विज्ञानके अध्ययनमें इन इन्द्रियोंके बाह्य आकारपर नहीं, बल्कि उनके कार्योंपर ध्यान देना चाहिये। मुँहका कार्य शरीरके भीतर भोजन पहुँचाना है। शरीरके भीतर पाचक-यन्त्र इस भोजनको गिल्टियोंसे निकले हुए रसकी सहायतासे घोलता है, और उसका सार ग्रहण करके निस्सार अंशको मलरूपमें बाहर कर देता है। भिन्न-भिन्न जन्तुओंके पाचक-यन्त्रोंका आकार जुदा होनेपर भी सबका कर्तव्य एक ही

होता है। वनस्पति-शास्त्रके ज्ञाता जानते हैं कि कुछ वृक्ष मांस-भक्षी होते हैं। Sundew नामक एक वृक्ष होता है, जो छोटे-छोटे कीड़ोंको पकड़कर खाया करता है। उसकी पत्तियोंसे एक प्रकारका तेजावी रस निकलता है। जैसे ही कोई कीड़ा उसकी पत्तीपर वैठता है, वैसे ही वह उस रसमें फँस जाता है। जव वह छूटनेकी चेष्टा करता है, तव पत्तियोंके अड़ोस-पड़ोसके रोयें आकर उसे और भी जकड़ देते हैं। फिर वह घुलता और हजम हो जाता है। बादमें कीड़ेका ढाँचर, जो घुल नहीं सकता, गिर पड़ता है। इसी प्रकर मक्खी खानेवाले वृक्ष Venus' Fly-trap के हरएक पत्तेके दो भाग होते हैं, जो मक्खी फँसानेके लिए पिंजड़ेका काम करते हैं। जैसे ही मक्खी पत्तेपर वैठती है, वैसे ही पत्तेके दोनों भाग बन्द होकर उसे कैद कर लेते हैं—ठीक उसी तरह जैसे कोई जानवर अपना शिकार पाकर गपसे मुँह वन्द कर लेता है। बादमें मक्खी इसी कैदखानेमें घुल-घुलाकर हजम हो जाती है, और उसका ढाँचर गिर पड़ता है। जानवरोंके पेटके भीतर जो पाचक-यन्त्र होते हैं, वे वहुत जटिल हैं, उनके विपरीत इन वृक्षोंके पाचक-यन्त्र बड़े सरल हैं; किन्तु दोनोंके कार्योंमें बड़ी समता है। इन दोनों वृक्षोंके पाचक-यन्त्र हमें चर्म-चक्षुओंसे बाहर ही दीख पड़ते हैं। अन्य वृक्ष भोजन और पाचनका कार्य अपने भीतरी अवयवोंसे दूसरे ढंगसे लेते हैं, अतः उनकी यह क्रिया हमें दीख नहीं पड़ती।

वृक्षों और जन्तुओंके जीवनकी समताको समझनेके लिए हमें पहले यह समझ लेना चाहिये कि जन्तुओंके शरीरमें कौन-कौनसे ऐसे गुण होते हैं, जिनके द्वारा हम उन्हें जीवित कह सकते हैं। जन्तुओंके स्नायुओंमें निम्न बातें दीख पड़ती हैं—

(१) संकुचन और प्रसरण (Contractibility), जिसके द्वारा उत्तेजक ओषधि दी जानेपर हरकत होती है।

(२) संचालनशीलता (Conductivity)—वह शक्ति, जिसके द्वारा उत्तेजनाका आवेग—अनुभूति—शरीरमें संचारित होता है। उदाहरणके लिए, यदि आप किसी जीवके एक अंगमें चुपकेसे चुटकी नोचें, तो इस शक्तिके द्वारा दूरके अंगोंको उसका अनुभव हो जाता है।

(३) स्पन्दनशीलता।

(४) रक्त-संचार—जिसके द्वारा शरीरको जीवित रखनेवाला रस दौड़ता है।

ये चार प्रधान गुण हैं, जो प्रत्येक जीवित जन्तुमें पाये जाते हैं। अब देखना यह है कि ये सब बातें वृक्षोंके तन्तुओंमें भी मिलती हैं या नहीं ?

मोटे हिसाबसे हमें वृक्षोंमें दो भेद दिखायी देते हैं। एक तो साधारण वृक्ष और दूसरे संवेदनशील (Sensitive) वृक्ष। वृक्षोंकी बहुत बड़ी संख्या प्रथम प्रकारकी है। दूसरे प्रकारके वृक्षोंमें लज्जावतीकी—छुईमुईकी—जातिके कुछ पौदे हैं। जैसे ही आप लज्जावतीकी एक पत्तीको छूते हैं, वैसे ही समूचे वृक्षकी पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं। यह संकुचन-कार्य ठीक उसी प्रकारका है, जैसा जानवरोंकी शिराओंमें होता है। लज्जावतीकी जातिके पौदोंको छोड़कर अन्य प्रकारके अधिकांश वृक्ष इस प्रकारकी संवेदनासे शून्य समझे जाते हैं। किन्तु किसीके अंग-प्रत्यंगोंकी संवेदनशीलताका पता केवल बाहरकी यान्त्रिक

क्रिया (Mechanical responsive movement) से ही नहीं होता। उदाहरणके लिए, यों समझ लीजिये कि सहसा जोरकी चोट लग जानेसे हम चिल्ला पड़ते हैं, या चीख उठते हैं। लेकिन गूंगे व्यक्तिके चोट लगनेसे वह चिल्लाता नहीं। इसके यह अर्थ नहीं होते कि गूँगेको चोटकी अनुभूति नहीं होती। इसी प्रकार यह समझना भी भूल है है कि जो वृक्ष लज्जावतीकी भाँति संवेदनशील नहीं दीख पड़ते, उनमें अनुभूति होती ही नहीं। बोस महोदयने यह दिखला दिया है कि वृक्षोंके अवयवोंमें बिजलीकी उत्तेजनासे ठीक उसी प्रकारकी प्रतिक्रिया होती है, जैसी जन्तुओंके स्नायुओंमें। बिजलीकी यह पहचान बड़ी विश्वसनीय है। जीवित अवस्थामें जन्तुओंके शरीरपर इसका प्रभाव पड़ता है; किन्तु किसी जन्तुके मृत शरीरपर इसका कोई प्रभाव नहीं दीख पड़ता।

बोस बाबूके Infinitesimal Contraction Recorder नामक यन्त्रसे यह प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि वृक्षोंके कोषाणुओंमें---Cells---में उसी प्रकार संकुचन होता है, जैसा मानव-शरीरके कोषाणुओंमें।

जन्तुओंके शरीरके विभिन्न अंगोंमें अनुभूतिका संचालन होता है स्नायु अर्थात् ज्ञान-तन्तुओं (Nerves) के द्वारा। पहले वैज्ञानिक यह समझते थे कि वृक्षोंमें अनुभूतिके ढंगकी कोई वस्तु नहीं होती। इस प्रश्नके समाधानमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि इस प्रकारका कोई यन्त्र नहीं था, जो इस संचालनकी गतिको नाप सके। डॉक्टर बोसने अपने 'रोजेनेन्ट रेकर्डर' नामक यन्त्रका आविष्कार करके यह कठिनाई दूर कर दी। वृक्षोंमें अनुभूतिका संचालन (Conduction of Impulse) ठीक उसी प्रकार होता है, जैसे अन्य जीवित प्राणियोंमें। किसी मनुष्यके पैरमें चुटकी नोचनेसे उसकी खबर दूर स्थित दिमागको फौरन हो जाती है। इसी प्रकार वृक्षके किसी एक भागमें पीड़ा पहुँचनेसे उसकी खबर दूसरे भागको हो जाती है। डॉक्टर बोसके उपर्युक्त यन्त्रसे यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है। हम जानते हैं कि आजकल डॉक्टर लोग आपरेशन करते समय, जिस अंगमें आपरेशन करना होता है, उसके समीप एक प्रकारकी कोकेनका इंजेक्शन दे देते हैं। इससे वह अंग-विशेष सुन्न-सा पड़ जाता है---कुछ समयके लिए उसका सम्बन्ध अन्य अंगोंसे टूट जाता है--- और आपरेशनकी पीड़ा नहीं बोध होती। शरीरके अंगोंमें इस प्रकारके सम्बन्ध-विच्छेदको शरीर-विज्ञानमें Physiological Block कहते हैं। इसी प्रकार अत्यधिक शीतसे भी अंग सुन्न पड़ जाते हैं। डॉक्टर बोसने वृक्षोंमें भी यही बात पायी है। अत्यधिक शीतसे या क्लोरोफार्म सरीखी ओषधि या विषके प्रयोगसे वृक्षोंमें भी अनुभूतिका संचालन रुक जाता है।

जीवित और निर्जीवमें सबसे विचित्र भेद जो दीख पड़ता है, वह है नाड़ियोंका स्पन्दन होना, या न होना। यद्यपि यह बात केवल जानवरोंमें ही दीख पड़ती है, लेकिन डॉक्टर बोसने ऑसिलेटिंग रेकर्डर (Oscillating Recorder) नामक यन्त्र बनाकर यह सिद्ध कर दिखाया है कि वृक्षोंमें भी ऐसा ही स्पन्दन होता है। प्राणियोंके शरीरका तापमान बढ़ जानेसे---जैसे बुखारमें---नाड़ीकी गति तेज हो जाती है और तापमान घट जानेसे धीमी हो जाती है। ठीक यही बात वृक्षोंमें होती है।

वृक्षोंके रस खींचनेकी क्रियाके सम्बन्धमें भी वैज्ञानिकोंमें बड़ी भ्रान्ति फैली थी। कुछ कहते थे कि पत्तियोंके ऊपरसे भाप बनकर (Transpiration) उड़नेसे, वे नीचेसे रस खींचती हैं, और नीचेसे जड़ोंका दवाव (Pressure) रसको ऊपरकी ओरको ठेलता है। किन्तु इस धारणासे सारी शंकाओंका समाधान नहीं होता था। यूकेलेपटसका पेड़ साढ़े चार सौ फीट ऊँचा होता है। इतनी ऊँचाईतक केवल जड़के दवावसे रसका चढ़ना असम्भव है। डॉक्टर बोसने यह सिद्ध कर दिया कि रसका चढ़ना वृक्षोंके जीवनकी एक क्रिया है। यह देखा जाता है कि जिस समयतक रस चढ़ता रहता है, उस समयतक वृक्षकी पत्तियाँ तनी हुई रहती हैं, और जव रसका चढ़ना वन्द हो जाता है, तव वे शिथिल होकर नीचे लटक जाती हैं। डॉक्टर बोस पत्तियोंके इस उठने-बैठनेको नियमित रूपसे अंकित करनेका साधन व्यवहार करके अपना कथन सिद्ध कर दिखाते हैं। वे (Lupin) वृक्षकी, ऐसी टहनी लेते हैं, जिसकी पत्तियाँ किसी कदर सूखनेसे शिथिल होकर लटक चुकी हों। फिर वे उनपर वेसलीन लगाते हैं, ताकि पत्तीकी सतहपरसे भाप न उठ सके। अव इस पत्तीसे न तो भाप ही उठती है, जो रसको ऊपर खींचे, और न उसका सम्वन्ध जड़से ही है, जो रसको नीचेसे ऊपर ठेल सके। फिर भी जव वे पत्तीके डण्ठलको उत्तेजनाजनक ओषधिके घोलमें डालते हैं, तो पत्ती बड़ी तेजीसे तनकर ऊपर उठ जाती है। पहले वैज्ञानिक यह समझते थे कि पत्तीके डण्ठलमें महीन छेद होते हैं। दवावके कारण पानी या रस इन्हीं छेदोंसे ऊपर चढ़ जाता है, जिससे पत्तियाँ तन जाती हैं। यदि यह वात ठीक होती, तो किसी भी तरहके रस या घोलसे पत्तियाँ तन जातीं। लेकिन डॉक्टर बोसने यह दिखलाया कि यदि इन तनी हुई पत्तियोंका डण्ठल किसी जहरीले घोलमें डुवा दिया जाता है, तो पत्तियाँ फौरन ही एकदम शिथिल होकर लटक जाती हैं। इससे प्रकट होता है कि रसका चढ़ना पेड़ोंके जीवनमें प्रायः वैसा ही स्थान रखता है, जैसा जन्तुओंके शरीरमें रक्तका संचार।

वृक्षोंकी वृद्धिकी गति इतनी सूक्ष्म है कि उसका पता चलना मुश्किल है। यह गति औसतमें $\frac{१}{१००००००}$ इञ्च प्रति सेकेण्ड है। लेकिन डॉ० बोसके क्रेस्कोग्राफ (Crescograph) नामक यन्त्रसे इसका पता भी बड़ी आसानीसे लग जाता है।

डॉक्टर बोसके इन आविष्कारोंने वृक्षोंके शरीर-विज्ञानके ज्ञानमें क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये हैं। प्रोफेसर एस० एच० वाइन्स, प्रोफेसर टिमिरिजेफ, प्रोफेसर नेमेक (Nemec), मि० एल्फविंग आदि वृक्ष-विज्ञानके दिग्गज विद्वानोंने बोस महोदयके आविष्कारों और खोजोंकी मुक्तकंठसे सराहना की है। बेलजियमके बादशाह कलकत्तेमें डॉक्टर बोसके विज्ञानमन्दिरकी करामातें देखकर इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने वोस महोदयको बेलजियममें निमन्त्रित करके उनके व्याख्यान कराये और उन्हें 'आफिसर आफ दी आर्डर आफ लियोपोल्ड'की उपाधि दी। ब्रिटिश सरकारने भी उन्हें 'सर'की उपाधि दी है। लन्दनकी रायल सोसाइटीने उन्हें अपना सदस्य बनाया है।

आचार्य जगदीशचन्द्र बोसने अपनी सारी सम्पत्ति देकर बोस-विज्ञान-मन्दिरकी स्थापना की है, जिसका उद्देश मानव-ज्ञानको अग्रसर करना है। इस मन्दिरके द्वारपर

पहुँचते ही मालूम हो जाता है कि यहाँ विज्ञानकी देवी निवास करती है। पत्थरकी चहार-दीवारीमें, जिसमें सुन्दर कमलके फूल खुदे हुए हैं, बहुत बढ़िया खुदाईके कामका लकड़ीका फाटक है। फाटकके दोनों ओरके खम्भोंकी चोटियोंपर एक-एक सुईवाली दो घड़ियाँ लगी दीख पड़ती हैं। वास्तवमें ये दोनों घड़ियाँ नहीं हैं, वरन् एक थर्मामीटर और दूसरा बैरोमीटर है। भीतरका लेक्चर हॉल खास तौरसे ऐसे वैज्ञानिक ढंगका बनाया गया है कि उसके मंचपर खड़े होकर आप जितने धीमें या जोरसे बोलेंगे, हॉलके सुदूर कोनेमें भी उतने ही धीमे या जोरसे सुनाई देगा। इस हॉलकी छतपर अजन्ताकी गुफाओं-जैसी अपूर्व चित्र-कारी की गयी है।

इस विज्ञान-मन्दिरमें आकर और यहाँ वृक्षोंके जीवनकी जादूभरी बातें देखकर वीयना-विश्वविद्यालयके वृक्ष-ज्ञानके भूतपूर्व डायरेक्टर प्रोफेसर मोलिस कह उठे थे—'यह तो परियोंकी कहानियोंके तिलिस्मसे भी अधिक आश्चर्यजनक है।' वास्तवमें बोस-विज्ञान-मन्दिर संसारका सबसे विचित्र जीता-जागता तिलिस्मखाना है।

——

: ३४ :

आर एकटू घोर

तीन वर्ष पहले पं० पद्मसिहजी शर्मा 'पद्मपराग' छपानेके लिए कलकत्ते आये थे, और कई महीने यहाँ रहे थे, उस समय उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। 'विशाल भारत' आफिसमें वे प्रायः हर दूसरे, तीसरे रोज आया करते थे। 'मार्डन रिव्यू'के सम्पादकीय विभागमें कुछ सज्जन चाय पिया करते हैं। इसके लिए 'मार्डन रिव्यू'का बैरा आफिसमें दो वार चाय तैयार किया करता है। मैं भी इस 'प्यालोंकी मजलिस' में दीक्षित हो चुका था। शर्माजीके आगमनपर वे भी इसमें सम्मिलित हुए, वे पुराने चाय पीनेवाले थे, उन्हें कड़ी चाय पसन्द थी। एक दिन जब बंगाली बैरा चायको पूछनेके लिए आया, तब शर्माजीने उससे कहा कि जरा कड़ी चाय बनाओ। बेचारा बंगाली बैरा यह कड़ी हिन्दी न समझ सका। वह 'की वल्लेन, बुझिलाम ना' (क्या कहा, समझा नहीं) कहकर बुत-सा खड़ा हो गया। शर्माजीने श्रीधन्यकुमारजीसे पूछा—जैनजी, बतलाइये 'कड़ी'के लिए बँगलामें क्या कहेंगे। धन्यकुमारजीने जवाब दिया—'आर एकटू घोर'। बस उस दिनसे जब कभी बैरा पूछने आता "बाबू चा चाइ" तभी शर्माजी बड़े पुरलुत्फ़ ढंगसे, बँगला उच्चारणकी नकल करते हुए, हँसकर कहते 'एकटू घोर'। शर्माजीका नाम आते ही उस 'एकटू घोर'का दृश्य आँखोंमें फिर जाता है।

शर्माजीके उस कलकत्ता प्रवासमें मुझे उन्हें नजदीकसे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। शर्माजीमें सहृदयता और सरसता जितनी मात्रामें थी, सहिष्णुता और विशाल-हृदयता भी उससे कम मात्रामें नहीं थी। कलकत्तेमें खत्री–सारस्वतोंकी 'सारस्वत खत्री सेवक संघ' नामक एक संस्था है। प्रतिवर्ष दशहरेके दिन संघका विजयोत्सव मनाया जाता है। उस वर्ष भी विजयोत्सव मनाया जानेवाला था, सभापतिके लिए कलकत्ता कार्पोरेशनके एक प्रतिष्ठित खत्री सदस्य मनोनीत किये गये थे मगर ऐन उत्सवके समय मालूम हुआ कि मनोनीत सभापति महोदय किसी कारण से नहीं आ सकेंगे। अब क्या हो? संघके मन्त्री श्री चुन्नीलाल मेहरा बड़े पशोपेशमें पड़े।

सहसा उन्हें पं० पद्मसिहजीका नाम सुझाया गया। शर्माजी प्रसिद्ध आर्य-समाजी थे। उनकी सारी उम्र आर्य-समाजकी सेवामें, प्रचारक, सम्पादक, अध्यापक आदि रूपोंमें बीती थी। इधर विजयोत्सवका सबसे पहला कार्य ही भगवती शक्तिका पूजन था। इसलिए उनसे सभापतिका आसन ग्रहण करनेकी प्रार्थना करते हुए भी जरा धुकपुकाहट होती थी। मगर, खैर उनसे प्रार्थना की गयी। पहले तो उन्होंने इनकार किया मगर जब चारों ओरसे लोगोंने घेरकर उन्हें दबाया तब उन्हें मानना ही पड़ा। सभापति बनकर

उन्होंने जिस भक्तिके साथ और जैसे विधिपूर्वक भगवती शक्तिका पूजन किया था, कोई श्रद्धावान् कट्टर सनातनी हिन्दू भी वैसा करेगा, इसमें सन्देह है। उस दिन हमलोगोंको मालूम हुआ कि वे कितने विशाल हृदयके थे। कलकत्तेके सारस्वत खत्री समाजके अनेक सज्जन जो उस उत्सवमें उपस्थित थे, आजतक शर्माजीकी उदारता और सहृदयताकी प्रशंसा करते हैं।

मैं अक्सर शामको शर्माजीके डेरेपर जाया करता था। शर्माजी जिस प्रकार किसीकी भी अच्छी कृतिकी प्रशंसा करनेमें बड़े उदार थे, उसी प्रकार उन्हें दम्भ और झूठसे भी बड़ी चिढ़ थी। वे चन्दाजीवी पेशेवर लीडरोंके बहुत खिलाफ थे। असहयोग आन्दोलनसे हमारे सार्वजनिक जीवनमें बहुतसे अवांछनीय व्यक्तियोंका प्रवेश हो गया था। निस्सन्देह कांग्रेसने देशमें राजनीतिक जीवन संचार करनेमें बड़ा भारी काम किया है। कांग्रेसके कार्यकर्ताओंमें अनेक सच्चरित्र, सच्चे और त्यागी महानुभाव हैं। मगर साथ ही यह भी कहना पड़ेगा कि यदि उसमें ये चन्दाखोर और अवांछनीय लोग न आये होते तो कांग्रेसका प्रभाव आज कहीं ज्यादा होता। युक्त प्रदेशके इस प्रकारके पेशेवर लीडरोंमें एक देवीजी भी थीं, कुछ दिनोंतक उनका नाम खूब मशहूर हुआ। वे प्रान्तभरमें घूमतीं और लेक्चर झाड़ा करती थीं। लेक्चरोंमें पुरुषोंको फटकारकर कहतीं "तुम लोग मर्द हो, मूँछें रखते हो, तुम्हें शर्म आनी चाहिये, देशके लिए त्याग करो, मुझे देखो मैं अबला होकर इधर-उधर फिर रही हूँ, मेरे लिए एक खद्दरकी साड़ी और एक मुट्ठी चना बहुत हैं।" कहनेको देवीजी इस प्रकारकी बातें बघारा करती थीं, मगर उनके कहने और करनेमें जमीन-आसमानका फर्क होता था। जहाँ कहीं वे जातीं वहाँ उनके एक-दो दिनके खाने और मोटरकी सैरका बिल ही पचासोंसे ऊपरका हो जाता था, और यह सब होता था कांग्रेसके मत्थे। गुड़के पीछे चीटियोंकी भाँति देवीजीके साथ नवयुवक वालंटियरोंका भी एक दल देवीजीका जयजयकार करता चलता था। देवीजी देहरादून कांग्रेसके जल्सेमें गयी थीं। शर्माजी वहीं थे। उन्हें मालूम हुआ कि देहरादूनकी सैरके लिए देवीजीने सिर्फ मोटर किरायेके नामसे कांग्रेससे पचास या बावन रुपये वसूल किये और खाने-पीनेका दस-पन्द्रह रुपयेका बिल अलग था। पब्लिकके पैसेका यह दुरुपयोग उनसे देखा न गया, उन्होंने 'भारतोदय'में इसके विरुद्ध एक जोरदार लेख लिखा और इस लेखकी एक कटिंग जवाहरलाल नेहरूके पास भेज दी। जवाहरलालजी इस मामलेमें काफी सख्त हैं। सुना है, उन्होंने फौरन प्रान्त भरकी कांग्रेस कमेटियोंसे जहाँ-जहाँ देवीजी गयी थीं, देवीजीके आगमनका हिसाब तलब किया। हिसाब आनेपर मालूम हुआ कि लेखमें शर्माजीने जो कुछ लिखा था, वह बिलकुल सच है। श्री जवाहरलालजीने फौरन आज्ञा निकाल दी कि आगेसे कोई भी कांग्रेस कमेटी देवीजीको अपने यहाँ निमन्त्रित न करे। बस उसी दिनसे देवीजीकी लीडरी समाप्त हो गयी।

शर्माजीके समान वाचक हिन्दीमें कम होंगे। वे जिस चीजको पढ़ते थे। कोई भी अधूरी बात या गलती उनकी नजरसे छूट नहीं पाती थी। जहाँ कहीं कोई अच्छी सूक्ति, शेर या कहावत किसी भी भाषाकी सुनते, नोट कर लेते थे। एक बार मैंने बातचीतके

सिलसिलेमें 'कायम' चाँदपुरीका एक शेर पढ़ा जो शर्माजीको पसन्द आ गया, उन्होंने फौरन नोटबुक निकालकर उसे नोट कर लिया। एक दिन श्री बनारसीदास चतुर्वेदी श्रीमान् गांगेयजीके मकानपर बैठे अपने एक मित्र हिन्दी लेखकका जिक्र कर ही रहे थे कि वे महाशय वहाँ आ ही पहुँचे, चौबेजीने कहा—"Think of the devil and he is there" (शैतानका खयाल किया नहीं कि वह वहाँ मौजूद है)। शर्माजीने इसके मानी पूछे, मानी जानकर बहुत हँसे और उसे भी नोट कर लिया।

शर्माजीके हृदयमें हिन्दीके लिए कैसे उच्च भाव थे, वे उसका कितना अधिक खयाल रखते थे, यह बात निम्नलिखित[1]

(अपूर्ण)

---

१. यह अधूरा लेख शर्माजीने सन् १९३२ में विशाल भारतके 'पद्मसिंह अङ्क' के लिए लिखा था। खेद है कि वे इसे समाप्त नहीं कर सके और स्थानाभावके कारण यह 'विशाल भारत' में छप भी नहीं सका।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

: ३५ :

उर्दू-शायर और शेखजी

उर्दू-काव्य-साहित्यमें—और शायद संसारके साहित्यमें—सबसे निरीह, सबसे असहाय, सबसे गरीब, सबसे लांछित और सबसे अधिक उत्पीड़ित यदि कोई व्यक्ति है, तो वह बेचारा 'शेख' है। उर्दू-शायर उस गरीबपर वक्त-बेवक्त, जा-बेजा, उचित-अनुचित और अन्धाधुन्ध हमले किया करते हैं। शेख या उनका कोई अन्य रूप—जैसे वायज, नासेह, जाहिद आदि—उर्दू कवियोंकी जिन्दादिलीके लिए 'गेंद-बल्ले'के मैदान हैं, मजाकके तख्तए मश्क हैं। यदि आप उर्दू-शायर हैं और किसीकी भी खिल्ली उड़ाना चाहते हैं तो 'जनाबे शेख' मौजूद हैं; किसीको खरी-खोटी सुनानेके इच्छुक हैं तो 'नासेह'को आड़े हाथों लीजिये; यदि किसीको उल्लू बनानेके लिए तबीयत मचल रही है तो 'हजरते जाहिद' पर हाथ साफ कीजिये। 'सरशार' कहते हैं—"बदमस्त हो पीके एक चुल्लू, जाहिदको बनायें खूब उल्लू!" गरज यह कि उर्दू-शायर अपने व्यंग्योंकी अनी और कटाक्षोंकी छुरियाँ उसी बेचारेपर पैनाते हैं। उसका मजाक उड़ाना, उसपर फब्तियाँ कसना मानों शायरोंका पुश्तैनी हक है। केवल कुछ ऐरे-गैरे टुटपुँजिये शायरोंने ही शेखजीकी पवित्र शानमें यह धृष्टता दिखलायी हो, सो बात नहीं। उर्दूके दिग्गज महारथियों—सौदा-से उस्ताद, मीर-से रुदनशील, गालिब-से गूढ़ और दार्शनिक, जौक-से राजगुरु, आतिश और नासिख-सरीखे सर्वमान्य, हाली-से सदाचारी, अकबर-से जिन्दादिल और इकबाल-सरीखे प्रकृति-प्रेमीसे लेकर दो मिसरोंकी चूल बैठा लेनेवाले तुक्कड़, नाई-हज्जाम और लौंडी-दासियोंतकने बेचारे शेखकी पगड़ी उतारनेमें रत्तीभर हिचक या दया नहीं दिखलायी है। इसीपर मौलवी मुहम्मद इस्माइलने जलकर उर्दू-शायरोंको शीतला-वाहन बनाते हुए लिखा है—"गरीब शेखपर हरदम दुलत्तियाँ झाड़ें, करें मसजिदो काबासे दुम दबाकर फरार।" ऐसी हालतमें स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि आखिर यह शेख या जाहिद है कौन? किस देशका रहनेवाला है? किस तरहका जीव है? क्या करता है? उससे उर्दू-शायरोंका इतना द्वेष—यह जन्मजात घृणा—क्यों है? इस 'बुग्जलिल्लाही'का कारण क्या है? शेखने किस शायरकी लुटिया चुरायी है, या किस शायरका बाप मारा है जो सबके सब उसपर टूटे पड़ते हैं?

'शेख' अरबी भाषामें बुजुर्ग, सम्भ्रान्त और बड़े विद्वान्को कहते हैं। 'जाहिद'का अर्थ ईश्वर-भक्त और तपस्वी है। 'वायज' और 'नासेह' धार्मिक उपदेश देनेवाले और नसीहत करनेवालेको कहते हैं। परन्तु उर्दू-शायरीमें यह सब शब्द रूढ़ बनकर एक-दूसरेके पर्यायवाची बन गये हैं। शेख, जाहिद, वायज और नासेह शब्दोंसे, मोटे अर्थमें, ऐसे व्यक्तिका

बोध होता है जो भावुकता-हीन, कट्टर, संकीर्ण धार्मिक विचारोंका हो और स्वच्छन्द प्रकृति-वाले तथा धर्मके बँधे ढर्रेपर न चलनेवाले व्यक्तियोंको सदा उपदेश, लेक्चरवाजी, डाँट-डपट और समझा-बुझाकर कट्टर पंथकी ओर ले जानेकी चेष्टा करता हो। अधिकांश शेख 'पर उपदेश कुशल' माने जाते हैं। शेख यद्यपि धार्मिकताका दम भरता है तथापि वह धर्मकी गम्भीरता, उदारता और आन्तरिक तत्वसे सर्वथा अनभिज्ञ होता है, और केवल धर्मके वाह्याचारोंपर ही जान देता नजर आता है। 'चकवस्त' कहते हैं—"जनावे शेख-को यह मश्क है यादे इलाहीकी, खबर होती नहीं दिलको जवाँसे याद करते हैं।" अर्थात् शेख़जीको ईश्वरकी यादका इतना अभ्यास है कि मुँहसे तो वे वरावर खुदाको याद करते रहते हैं मगर उनके दिलको खवर भी नहीं होती कि वे क्या रटते हैं!

इस्लामके धर्म-याजकोंके विरुद्ध उर्दू-शायरोंका इतना द्वेष, इतना लांछन आश्चर्यकी वात होनी चाहिये, जब हम यह देखते हैं कि लगभग नव्वे फीसदी उर्दू-शायर स्वयं भी इस्लामके अनुयायी हैं। वास्तवमें यदि देखा जाय तो उर्दू-शायरोंको शेखसे इस कदर खार खानेका कोई उचित कारण नहीं है। यह उनका सरासर अन्याय है, और है अन्धाधुन्ध नकलका परिणाम। उर्दूके कवि नक्कालीके फनमें अपना सानी नहीं रखते। उर्दूकी कविता—कमसे कम उसका वहुत वड़ा भाग—फारसी कविताकी नकल है, वास्तविकता-हीन प्रतिविम्व है। उर्दू-शायरीका विकास फारसी-शायरीके ढंगपर—उसी साँचेमें ढलकर—हुआ है। उर्दू-शायरोंने अपनी कल्पनाके दर्पणमें फारसी कविताकी शैली, गठन, सजावट, मुहावरे, गुण-दोष, अच्छाई-वुराई प्रत्येक वस्तुका हू-बहू अक्स उतार-कर धर दिया है। कहीं-कहीं यह अक्स इतना चटक हो गया है कि उसके सामने असली मूल भी फीका जँचने लगता है। फारसी कवितामें हजरते शेखपर जा-वजा फव्तियाँ चुस्त की गयी हैं। वस, उर्दूके नक्काल शायर इसी बातको ले उड़े और बेचारे शेखपर वह-वह हाथ जमाये कि खुदाकी पनाह!

फारसी कवितामें शेख साहवकी लेन-देन क्यों की गयी है, इसका उत्तर ढूँढ़नेके लिए हमें ईरानके इतिहासपर एक दृष्टि डालनी पड़ेगी। ईरानी लोग आर्य जातिके हैं, और उनकी सभ्यता भारतीय सभ्यताके समान ही पुरानी है। जिस प्रकार भारतमें बसनेवाले आर्योंके धर्म और सभ्यताने विकसित होकर वैदिक धर्म और वैदिक सभ्यताका रूप ग्रहण किया, उसी प्रकार ईरानी आर्योंके विकासने पारसी धर्म और ईरानी सभ्यताका आकार ग्रहण किया। किसी समय समस्त पश्चिमी एशियामें ईरानी साम्राज्य और ईरानी सभ्यता-का बोलबाला था। ईरानियोंने वलूचिस्तानसे लेकर यूनानतक अपना राज्य स्थापित किया था। उनकी विजय-वाहिनीने कई रोमन सम्राटोंके दाँत खट्टे करके यूरोपमें डैन्यूव और वाल्गा नदियोंतक अपना झण्डा फहराया था। पार्सिपोलिस, वक्स-ए-शापुर और नक्स-ए-रुस्तमके वचे-खुचे भग्नावशेष आज भी अपनी मूक वाणीमें उस महान् ईरानी सभ्यताके भूले हुए अस्पष्ट गान गा रहे हैं। जिस प्रकार कुछ फलोंके पूर्ण परिपक्व हो जानेपर उनमें कीड़े लगकर उन्हें नष्ट कर देते हैं, इसी प्रकार प्रत्येक सभ्यताके चर्मोत्कर्ष-पर पहुँचते ही उसमें विलासिताके कीटाणु घुसकर उसका नाश कर देते हैं। ईरानमें भी

१५

यही हुआ। जिस समय अरबमें इसलामका जन्म हुआ, उस समय ये कीटाणु ईरानी सभ्यता-में दूरतक प्रवेश कर चुके थे। तत्कालीन शाशानीय शासक विलासितामें इतने डूबे थे कि उन्हें प्रजाके सुख-दुःखका कुछ ध्यान न था। प्रजा दुखी थी। फल यह हुआ कि नये धार्मिक जोशसे भरे हुए अरबोंके पहले ही हमलेमें कादसियाके युद्ध (सन् ६३७ ई०) में ईरानी साम्राज्यका पतन हो गया, और जिस प्रकार अंग्रेजोंने विना अधिक प्रयासके भारत-वर्षके एकके वाद दूसरे प्रान्तपर अधिकार जमाया, उसी प्रकार ईरानके विभिन्न प्रान्त भी—एकके वाद एक—वढ़ते हुए अरवोंके आगे झुकते गये।

अरबोंकी राजनीतिक विजयके साथ-ही-साथ ईरानमें इसलाम धर्मका प्रचार भी होता गया। कहते हैं कि इसलाम तलवारके जोर और पाशविक बलके बूतेपर फैला, मगर ईरानके सम्बन्धमें यह कथन ठीक नहीं है। वहाँके लोगोंने तलवारके डरके मारे इसलाम ग्रहण नहीं किया, बल्कि एक दूसरी मारके डरसे, जो तलवारसे कहीं अधिक भयंकर थी—इसलामको अपनाया। वह मार थी आर्थिक मार, पेटकी ज्वाला! विजयी अरवोंने मुसलमानोंको सब प्रकारके टैक्सोंसे मुक्त रखा और गैर-मुस्लिमोंपर 'जजिया कर' लगा दिया। हरएक आदमीको चार दीनार (दस रुपये) प्रतिवर्ष 'जजिया'के देने पड़ते थे। यदि किसी परिवारमें छः व्यक्ति हुए तो उसे साठ रुपये सालानाका दण्ड लग गया! यह पहले ही कहा जा चुका है कि तत्कालीन शाशानीय शासकोंकी विलासिताके कारण ईरानी प्रजा दुखी और गरीब थी, अतः वह इस भारी-भरकम टैक्सका भार न उठा सकी। देशमें ऐसी कोई शक्ति न थी, जो उन्हें इस भयंकर 'कर'से बचाती; मजबूर होकर वे मुसलमान हो गये! थोड़े-से व्यक्ति—जो इस 'कर'से तथा विदेशी शासकोंकी अन्य कठोरताओंसे बचना भी चाहते थे, साथ ही अपना धर्म भी नहीं छोड़ना चाहते थे—अपनी मातृभूमिसे सदाके लिए विदा होकर भारत-माताकी शरण आये। भारतके मौजूदा पारसी उन्हीं प्रवासी ईरानियोंकी सन्तान हैं।

यद्यपि अरवोंको ईरानपर आधिपत्य जमाने और इसलामको जरथुष्ट्र धर्मपर विजय प्राप्त करनेमें बहुत अधिक प्रयास और लड़ाई-झगड़ेकी आवश्यकता नहीं पड़ी थी—दोनों ही बातें आसानीसे हो गयी थीं, तथापि वास्तविक संघर्ष इन दोनों प्रकारकी विजयोंके बाद आरम्भ हुआ, और किसी हदतक आज भी जारी है। यह संघर्ष तिहरा संघर्ष था—राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और धार्मिक। यद्यपि अरबोंने ईरानपर राजनीतिक विजय पायी, तथापि वे ईरानियोंकी राष्ट्रीय भावनाओंको न कुचल सके। ईरानी राष्ट्रीयता रह-रहकर अरबोंके विरुद्ध विद्रोह करती रही, और ईरानियोंकी राष्ट्रीय भावनाकी बदौलत ही उम्मायद खलीफोंका पतन हुआ। आज भी ईरानी राष्ट्रीयता अरबोंके विरुद्ध विद्रोह कर रही है जिसके फलस्वरूप नयी पौधके ईरानी अरबी अक्षरोंका बहिष्कार कर रहे हैं। और अरबी नामोंके बदले इसलामके आगमनके पहलेके ईरानी नामोंको अपना रहे हैं। ईरानके मौजूदा शासक रजा शाहकी 'पहलवी' उपाधि इसका प्रमाण है।

अरबोंकी अपनी कोई प्राचीन, उन्नत और गर्व करने योग्य संस्कृति न थी। इसके विरुद्ध ईरानी संस्कृति इतनी प्राचीन और आगे बढ़ी हुई थी, जिसपर कोई भी देश गर्व कर

सकता था, फल यह हुआ कि विजेता अरवोंकी रेगिस्तानी संस्कृति और विजित ईरानियों-की प्राचीन परिमार्जित संस्कृतिमें संघर्ष आरम्भ हुआ। यद्यपि सुदीर्घकालीन राजनीतिक शक्ति और धार्मिक प्रभावके कारण ईरानी संस्कृतिमें अनेक परिवर्तन हुए—उसे वहुतसे समझौते करने पड़े, तथापि अन्तमें विजय ईरानी संस्कृतिकी ही हुई। चूँकि अधिकांश ईरानियोंने आन्तरिक विश्वासके कारण नहीं, वरन् 'जजिया'से वचनेके लिए ही अरवोंका धर्म ग्रहण किया था, इसलिए उनका इसलाम नाम-मात्रका इसलाम था, वे उसका अक्षरशः पालन न करते थे। कादसियाकी हारके वाद हजरत अलीके पुत्र हजरत हुसैनने, चन्द्रगुप्त मौर्यकी भाँति, हारे हुए ईरानी सम्राट् 'यज्दगर्द'की लड़कीसे विवाह कर लिया। एक तो हजरत अली पैगम्वरके दामाद थे, दूसरे इस वैवाहिक सम्वन्धसे ईरानियोंकी राष्ट्रीय भावनाने उनके वंशधरोंके साथ अधिक आत्मीयताका अनुभव किया। फलस्वरूप ईरानियों-ने 'सहावा'के स्वत्वोंसे इनकार करके अली और उनके वंशधरोंका समर्थन किया, और अरवी मुसलमानोंसे पृथक्, अपना एक नया फिरका वनाया। आज भी जव संसारके अन्य भागोंके मुसलमान 'सुन्नी' हैं, ईरानी मुसलमान 'शिया' सम्प्रदायके हैं।

अरवी विजेताओंने इन तीनों प्रकारके—राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और धार्मिक—प्रति-रोधोंको कावूमें लानेके लिए, नाम-मात्रके मुसलमानोंको पक्का कट्टर मुसलमान वनानेके लिए प्रचार तथा उपदेश और नसीहतसे काम लिया। प्रारम्भमें इसलामी शासक और उपदेशक प्रायः सभी अरव थे, जो वंश-परम्परा, उपाधि अथवा सम्मानके लिए 'शेख' कहलाते थे। ईरानी उनके विरोधी थे, वस शेखके प्रति द्वेषके कीटाणु यहींसे पैदा हुए।

इस सम्वन्धमें ईरानकी प्राकृतिक अवस्थाको भी ध्यानमें रखना आवश्यक है। ईरान-का एक काफी वड़ा भाग ऊसर, पेड़-पत्तीसे हीन और निचाट वियावान है। वहाँ आवादी भी कम है। इसके विपरीत अन्य भाग, विशेषकर पहाड़ों और नदियोंकी घाटियाँ खूव हरी-भरी, सरसब्ज और लहलही हैं। वहाँ अनेक प्रकारके फूल फूलते हैं। गुलाव इतनी इफरातसे शायद ही कहीं होता हो। वाग-वगीचोंकी भरमार है। फलोंके उत्पन्न करनेमें प्रकृतिने दरियादिलीसे काम लिया है। सेव, नासपाती, अनार, आड़ू, सरदा, खूवानी आदिके साथ अंगूर भी वहुतायतसे होता है। जव अंगूर वहुतायतसे हो तव भला यह कैसे सम्भव है कि अंगूरकी वेटी (दुख्तरे-रज) मदिरा न हो! ईरानमें वोतलकी परीका दौर अतीत कालसे चला आता था, और आज भी चलता है। शीराजकी "शीराजी" तो संसार-प्रसिद्ध है। धनी तथा मध्य श्रेणीके ईरानी सदासे अंगूरकी दुहिता (मदिरा) के प्रेमी रहे हैं। इसलाममें शराव हराम है। मुसलमान प्रचारकोंने अपने उपदेशोंमें मदिरा-प्रेमियोंकी खवर ली, फारसी कवियोंमें भी मदिरा-प्रेमियोंकी कमी न होगी। बस, विरोधके लिए एक काफी वड़ा अखाड़ा मिल गया और मद्यपानका विषय लेकर इसलाम धर्मयाजकों—शेखों—पर कवियोंकी लेखनीके भाले चलने लगे।

प्रत्येक धर्मके संस्थापक अत्यन्त उदार, दूरदर्शी और महान् व्यक्ति होनेके साथ-साथ वड़े व्यावहारिक हुआ करते हैं। वे अपने अनुयायियोंकी भौतिक, आध्यात्मिक, नैतिक तथा मानसिक योग्यता और आवश्यकताको देखकर नित्य-प्रतिके जीवन-सम्बन्धी आचार-

व्यवहार बनाते हैं, और समय-समयपर उनमें आवश्यक परिवर्तन भी करते रहते हैं। इसलामके संस्थापक हज़रत मुहम्मदमें भी ये गुण प्रचुर मात्रामें मौजूद थे। इस दूरदर्शी महापुरुषको मद्यपानकी हानियाँ ज्ञात हो गयी थीं; इसीलिए उन्होंने अपने धर्ममें शराव-को हराम बनाया। मगर उन्हें काम पड़ा रेगिस्तानके खानावदोश, जाहिल, अर्ध-सभ्य अरबों और बद्दुओंसे—जिनकी अपनी कोई परिमार्जित संस्कृति या सभ्यता न थी। अतः उन्हें अपनी बातोंको ऐसा जामा पहनाना पड़ा जो उन अशिक्षित अरबोंको आसानीसे अपील करें। उन्होंने बताया कि सत्कर्म करनेवालोंको जन्नत मिलेगी जहाँ दूध, शहद और शराबकी नदियाँ बहती हैं, प्रत्येक व्यक्तिको हूरें (अप्सराएँ) मिलेंगी। प्यासे रेगिस्तानके भूखे जंगली अरबोंके लिए इससे अधिक मधुर कल्पना और क्या हो सकती थी! जन्नतका यह आकर्षण तथा जहन्नुमकी यन्त्रणाओंका डर अशिक्षित अरबोंको सत्पथपर रखनेके लिए पर्याप्त था। मगर ईरानियों-जैसी सुसभ्य जातिके लिए कुछ अधिक युक्ति और बुद्धि-संगत दलीलोंकी आवश्यकता थी। यह निश्चय है कि यदि हजरत मुहम्मद ईरानमें पैदा होते अथवा उनके सामने ही ईरानमें इसलामका प्रचार होता, तो उनकी युक्तियाँ और दलीलें बिलकुल ही दूसरे प्रकार की होतीं। मगर ईरानमें इसलाम पहुँचा हजरत उमरकी खिलाफतमें। हजरत उमर स्वयं बड़े बुद्धिमान् और दूरदर्शी थे, लेकिन उनकी खिलाफत बहुत थोड़े ही समयमें समाप्त हो गयी। प्रत्येक धर्मके संस्थापकके बाद उसके जो अनुयायी उत्तराधिकारी होते हैं वे अपने संस्थापकके समान उच्च, दूरदर्शी, उदार और व्यावहारिक न होकर प्रायः कट्टर, तअस्सुबी और संकीर्ण विचारोंके हुआ करते हैं। ईसाई, बौद्ध, हिन्दू, सभी धर्मोंमें यह बात दिखलायी देती है। इसलाममें भी यही हुआ। इसलामी प्रचारकोंने पैगम्बरके धर्मकी अन्तरात्माको न लेकर उसके शाब्दिक अर्थकी दुहाई देनी शुरू की। जिन दलीलोंसे उन्होंने अपढ़ अरबोंको समझाया था, उन्हीं दलीलोंसे वे सुसभ्य ईरानियोंको हाँकने लगे। अतः पढ़े-लिखे ईरानियोंने उनका मजाक उड़ाना आरम्भ किया। मद्य-पान निषेधके लिए मद्यसे होनेवाली शारीरिक हानियों और नैतिक अधःपतनपर जोर न देकर बहिश्तका लालच और जहन्नुमका डर दिखाया जाने लगा। मद्य-प्रेमियोंकी तीव्र भर्त्सना की गयी। कवि स्वभावसे ही स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं, अतः उनकी आत्मा विद्रोही हो उठी और उन्होंने शेखजीको उन्हींके सिक्कोंमें बदला देना अपना हक बना लिया। दुर्भाग्यवश धर्मोपदेशकोंमें दो-चार ऐसे भी लोग आ गये थे जो बाहर तो धर्मका उपदेश करते थे, परन्तु भीतर-भीतर अनेक धर्म-वर्जित कार्य किया करते थे जैसे खलीफा उस्मानके मुताही भाई वालिद। ऐसे रँगे महात्माओंको पाकर कवियोंको शेखपर फब्तियाँ कसनेका और भी अनमोल मौका मिल गया, और उसमें उन्होंने कोई कसर भी न उठा रखी। शेखके विरुद्ध व्यंग्योक्तियोंमें कवियोंने केवल बेचारे शेखजीतक ही सन्तोष न किया, बल्कि उनकी लपेटमें उनके धार्मिक उपदेश, कर्मकाण्ड और नसीहतोंसे लेकर जन्नत और फरिश्तोंतककी खबर ली है, और खूब खबर ली है। अच्छा, अब जरा यह देखिये कि उर्दू-शायरोंने शेखजी और उनके विश्वासों तथा उपदेशोंपर क्या-क्या कहा है—

"फिरे है शेख यह कहता कि मैं दुनियासे मुँह मोड़ा,
इलाही इसने दाढ़ीके सिवा किस चीजको छोड़ा ?" (सौदा)

शेख अपने त्यागकी डींग हाँकता हुआ कहता फिरता है कि उसने संसारसे मुख मोड़ लिया है। सौदा कहते हैं, या खुदा ! इसने दाढ़ीके सिवा कौन-सी चीज छोड़ी है ?

"होते हैं मैकदेके जवाँ शेखजी बुरे,
फिर दर गुजर ये करते नहीं गो कि पीर हो।" (मीर)

शेखजी मैकदे (शराब खाने)में जाकर मद्य-प्रेमियोंको कुछ बुरा-भला कहने लगे। मीर साहब उन्हें सावधान करके कहते हैं—अजी शेखजी, शराब खानेके जवान बड़े बेढब होते हैं, जब यह बिगड़ते हैं तब बुजुर्गोंको भी नहीं बख्शते। इसलिए जरा सँभलकर !

जन्नत पानेके लिए शेखजीका उपदेश है कि शराब मत पियो, पाँच वक्त नमाज पढ़ो, रमजान-भर रोजा रखो; यह करो, वह करो। मीर साहब इन प्रतिबन्धोंसे ऊबकर फरमाते हैं—

"जाय है जी नजातके गममें, ऐसी जन्नत गयी जहन्नुममें।" (मीर)

मुक्ति-प्राप्तिकी—जन्नतमें जानेकी—चिन्तामें जी निकलता है, ऐसी जन्नत जहन्नुममें जाय ! हम उससे दर गुजरे।

कविके सिवा शायद अल्लाह मियाँ भी जन्नतको जहन्नुममें भेजनेकी शक्ति न रखते होंगे !

"तरदामिनी पर शेख हमारी न जाइयो,
दामन निचोड़ दूँ तो फरिश्ते वजू करें।" (मीरदर्द)

शेखजीने कविके दामनको शराबसे तर देखकर नाक-भौंह सिकोड़ी, इसपर कवि कहता है—शेखजी ! मेरे भीगे दामनपर नाक-भौंह न चढ़ाइये, यदि मैं अपना दामन निचोड़ दूँ तो स्वर्गके देवदूत भी इस पवित्र रससे वजू—नमाजके पूर्वका प्रक्षालन—करनेके लिए लालायित होंगे।

"मजलिसे-वाज तो तादेर रहेगी 'कायम',
यह है मैखाना, अभी पीके चले आते हैं।" (कायम)

शेखजी मद्य प्रेमीको समझा-बुझाकर एक उपदेशकी सभामें ले गये। सोचा था कि उपदेश सुनकर यह मद्यपान छोड़ देगा, तोबा कर लेगा। मद्यप्रेमी थोड़ी देरतक तो उपदेश सुनता रहा, फिर शेखजीसे बोला—आपकी-उपदेश-सभा तो देरतक कायम रहेगी, (हाथके इशारेसे) यह पासहीमें शराब-खाना है, थोड़ी-सी पीकर अभी आता हूँ।

शेरमें कविने अपने उपनामका प्रयोग किस सुन्दरतासे किया है ?

"कब हक़-परस्त जाहिदे जन्नत-परस्त है !
हूरों पै मर रहा है यह शहवत-परस्त है।"

यह तो जन्नतका इच्छुक है, जन्नतका पुजारी है। जन्नतमें हूरें मिलती हैं। यह उन्हीं हूरोंपर मर रहा है। अतः यह तो इन्द्रिय-लोलुप है—वासनाका पुजारी है !

"ज़ाहिद ! शराब पीनेसे काफिर वना मैं क्यों ?
क्या डेढ़ चुल्लू पानीमें ईमान वह गया ?" (जौक)

इसलाममें शराव हराम और शराबी काफिर—धर्मद्रोही—है। ज़ौक़ साहव फरमाते हैं—

"हजरते जाहिद ! शराव पीनेसे मैं काफिर कैसे वन गया ? क्या ईमान (धर्म) ऐसी चीज है जो सिर्फ डेढ़ चुल्लू पानीमें वह जाये ?

"जनावे शेख ! वस अपनी तो इतनी वादह नोशी है ,
नशीली अँखड़ियोंको देखना मखमूर हो जाना ।" (अज्ञात)

किसीको मस्तीसे झूमता-झामता देखकर शेखजीने समझा कि यह शरावमें चूर है, अत: लगे उसकी लानत-मलामत करने । उसने उत्तरमें कहा—जनावे शेख ! यह न समझिये कि मैं शरावके नशेमें चूर हूँ । मेरा मद्यपान तो केवल इतना ही है कि नशीली अँखड़ियोंको देखा और मस्त हो गया—खुमार छा गया !

"ये कहाँ की दोस्ती है कि वने हैं दोस्त नासह ,
कोई चारह साज होता कोई गम गुसार होता ।" (गालिव)

किसी प्रेम-पीड़ा या विरह-वेदनासे व्यथित व्यक्तिके पास हजरते नासह, सहानुभूति प्रदर्शित करने और समझाने-वुझानेके लिए पहुँचे । वह कहता है—यह कहाँकी दोस्ती है जो नीरस धार्मिक उपदेश देनेवाले उपदेशक महाशय दोस्त वने हैं । दोस्तीके लिए कोई तदबीर करनेवाला हमदर्द होता, कोई गम वटानेवाला होता, न कि हृदय-हीन सूखा उपदेशक ।

"वायज, न खुद पियो न किसीको पिला सको ,
क्या वात है तुम्हारी शरावे तहूर की !" (गालिव)

शेखजी लोगोंको समझाते हैं कि यहाँ शराव न पियो तो तुम्हें जन्नतमें स्वर्गीय शराव 'तहूरा' मिलेगी । इसपर कवि ताना देकर कहता है—जनावे वायज ! न तो तुम स्वयं पीते हो और न किसीको पिला सकते हो, वल्लाह ! तुम्हारी शरावे तहूरकी भी क्या वात है !

"हिर्ससे जाहिद यह कहता है जो गिर जायेंगे दाँत ,
क्या कुशादह वहके रिज्क अपना दहाँ हो जायगा ! (नासिख)

लोलुप जाहिद कहता है—यदि दाँत गिर जायेंगे तो पेट-पूजाके लिए भोजनका मार्ग कैसा प्रशस्त हो जायगा ! सब कुछ हड़पनेके लिए कोई रुकावट ही न रहेगी !

"मसजिदमें वुलाता है हमें जाहिदे नाफह्म ,
होता अगर कुछ होश तो मैखाने न जाते !" (अमीर)

वुद्धिहीन जाहिद हमें मसजिदमें वुलाता है ? भला उससे पूछो कि यदि हमें कहीं जाने-आनेका ही होश होता तो हम शराव-खाने न जाते !

"लुत्फ मैं तुझसे क्या कहूँ जाहिद, हाय कम्वख्त, तूने पी ही नहीं !" (दाग)

जाहिद ! मैं तुझसे मधुपानका आनन्द क्या कहूँ, हाय रे अभागे ! तूने पी ही नहीं !

उर्दू-शायरोंका काल्पनिक शेख लम्वी दाढ़ीवाला हुआ करता है, और अक्सर खिजाव लगाया करता है। कवियोंने उसकी दाढ़ीपर भी जा-वजा फब्तियाँ कसी हैं—

"वाकी है दिलमें शेखके हसरत गुनाहकी,
काला करेगा मुँह भी जो दाढ़ी सियाह की।" (जौक)

अभी शेखके हृदयमें पाप करनेकी लालसा वाकी है। उन्होंने जो अपनी दाढ़ी काली की है तो मुँह भी काला करेंगे!

"हर दिनकी वाँध-वूँधसे वायज, नजात हो,
हरताल आप क्यों न मिला लें खिजावमें!" (सरपट वदायूनी)

हजरते वायज! आप अक्सर खिजाव लगानेमें दाढ़ी वाँधा करते हैं। इस आये दिनकी वाँधा-वूँधीसे छुट्टी पानेके लिए खिजावमें थोड़ी-सी हरताल क्यों नहीं मिला लेते?

क्या नायाव नुस्खा है! हरताल वाल-सफा होती है।

शायर लोग शेखजीकी काल्पनिक लड़ाईमें सिर्फ तू-तू मैं-मैं पर ही नहीं रुकते, वल्कि हाथापाईपर भी उतर आते हैं—

"ये शेख, जो वताए मए-इश्कको हराम,
ऐसेको दो लगाएँ भिगोकर शरावमें।" (दाग)

ये शेखजी, जो प्रेम-मदिराको हराम वतायें, ऐसे व्यक्तिको तो शरावमें भिगोकर दो (!!) रसीद करना चाहिये।

'इक टीप मारी जोरसे जाहिदके ऐ 'रियाज';
अव हाथ मल रहे हैं कि अच्छी पड़ी नहीं।' (रियाज)

रियाज साहवने हजरते जाहिदके सिर-मुवारकपर पहले तो एक जोरकी चपत लगायी, फिर हाथ मलकर पछताने लगे कि अफसोस, अच्छी नहीं पड़ी!

"कल कस्द है जो नासह तशरीफ आवरीका,
पिसवाके थोड़ी हल्दी रख आइयेगा घरमें।" (अहमक फफूंदी)

नासह साहव! कल आप जो हमलोगोंमें तशरीफ लानेका विचार रखते हैं, तो घरमें थोड़ी-सी हल्दी पिसवाकर रख आइयेगा (क्योंकि यहाँपर आपकी ऐसी करारी खातिर की जायेंगी कि घर लौटकर चोटपर हल्दी-चूना चढ़ानेकी जरूरत होगी!!)

"उतर गयी सरे वाजार शेखकी पगड़ी,
गिरहमें दाम न होंगे उधार पी होगी।" (रियाज)

वीच वाजारमें शेखजीकी पगड़ी उतर गयी! मालूम होता है, उधार पी होगी, इसी कारण कलवारने पैसे वसूलनेके लिए उनकी खवर ली है!

"समझा कि सरपर रखके मेरा चाक ले चले,
दौड़ा कुम्हार शेखकी दस्तार देखकर।" (अज्ञात)

शेखजीकी लम्बी-चौड़ी पगड़ीको दूरसे देखकर कुम्हारने समझा कि मेरा चाक चुराये लिए जाता है, अतः वह उनके पीछे लपका!

आजकल नये जमानेमें शायरोंको व्यंग्योक्तियोंके लिए एक नयी चीज मिल गयी है— हर बातमें यूरोपियोंकी नकल करनेवाले फैशनेबिल हिन्दोस्तानी ! अतः अब शेखजी व्यंग्य तथा कटूक्तियोंके पात्र न होकर दयाके पात्र बनते जान पड़ते हैं—

"साथ उनके मेरा शेख तो चल ही नहीं सकता ,
बन्दरकी तरह ऊँट उछल ही नहीं सकता ।" (अकबर)

नये फैशनके बन्दरोंके साथ पुरानी चालके ऊँटोंके लिए उछलना-कूदना दरअसल असम्भव है ।

"शेख साहब चल बसे, कालिजके लोग उभरे हैं अब,
ऊँट रुखसत हो गये पोलोके, घोड़े रह गये ।" (अकबर)

आज-कल शेखजीकी प्रधानताका जमाना चला गया, अब तो कालेजवाले (नयी अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए) उभर रहे हैं, उन्हींका दौर-दौरा है । ऊँट बेचारे चल बसे, अब तो पोलोके घोड़े ही बाकी हैं ।

—

: ३६ :

रंगमंच और स्त्रियाँ

गत कार्तिक मासकी 'माधुरी'में कुमारी सत्यवती, कन्या गुरुकुल, मुकाम हरपुरवान, जिला सारनने "रंगमंचपर स्त्रियोंका स्थान" शीर्षक एक लेख लिखा है। इस लेखमें लेखिका महोदयाने भारतीय महिलाओंसे रंगमंचपर उतरनेकी अपील की है। और उसके समर्थनमें दलीलें पेश की हैं। मेरी समझमें कुमारीजीकी बातें वास्तविकतासे काफी दूर हैं। इसलिए मैं इस सम्बन्धमें कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

मुझे कुमारी सत्यवतीजीसे परिचय करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं है। परन्तु उनके लेखको पढ़कर मेरा यह अनुमान होता है कि उन्हें नाटच-जगत्का कुछ भी अनुभव नहीं है। न तो उन्हें कभी रंगमंचपर जानेका ही अवसर हुआ होगा और न कभी नाटकोंके अभिनेता-अभिनेत्रियोंके घनिष्ठ सम्पर्कमें आनेका ही मौका पड़ा होगा।

अतः उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह व्यावहारिक जीवनसे कोसों दूर है। सम्भव है कि मेरा उपर्युक्त अनुमान गलत हो, इसीलिए मैं कुमारीजीसे पहलेसे ही क्षमा माँगे लेता हूँ।

कुमारीजीने लिखा है—

"मूँछ-दाढ़ी मुड़ाये स्त्री वेषमें पुरुषोंका रंगभूमिमें आना अत्यन्त हास्यास्पद तथा कलाकी दृष्टिसे अपमानजनक है। पुरुषके लिए यह बात सर्वथा अस्वाभाविक होनेके कारण ऐसा एकदम असम्भव भी है कि वह सफलतापूर्वक स्त्रीका पार्ट कर सके और वास्तविक भावोंको लोगोंके हृदयोंपर अंकित कर सके।···पुरुष किसी बातको उसी तरह महसूस नहीं कर सकता, जिस तरह स्त्री, और जब हृदय ही किसी भावनाके आवेगसे प्रकम्पित न हो रहा हो, तब यह कैसे सम्भव होगा कि हम किसी दूसरेके मनपर प्रभाव डालनेमें समर्थ हो सकें? यह कला नहीं कलाका उपहास है।···इसलिए कलाकी दृष्टिसे स्त्रीका रंगमंचपर आना आवश्यक है। वहाँ आकर वे बता सकती हैं कि वास्तवमें कलामें कितना सौन्दर्य है।" "पुरुषके लिए स्त्रियोंके चरित्रका अभिनय करना कदापि हितकर नहीं हो सकता। यह कार्य धीरे-धीरे उसकी पुरुषोचित भावनाओंको कुचलकर अन्तमें उसके पुरुषत्वपर आघात करता उसे पुंसत्वहीन कर डालता है।"

मैं मानता हूँ कि स्त्रीका पार्ट स्त्री ही अच्छी तरह अदा कर सकती है और करती है। किसी भी समझदार आदमीको यह बात माननेमें इनकार नहीं हो सकता। परन्तु समझमें नहीं आता कि कुमारीजीने स्त्रियोंकी ओरसे यह वकालत करनेका कष्ट क्यों उठाया, क्योंकि यह एकदम बेकार है। इससे उनकी अजानकारी ही प्रकट होती है। भारतवर्षमें स्थायी नाटचशालाएँ मुख्य करके कलकत्ता, बम्बई और मद्रासमें हैं। फिल्म बनाने-

के रोजगारके प्रधान केन्द्र भी यही नगर हैं। इन सब नगरोंकी नाटयशालाओंमें कहीं भी स्त्रियोंके लिए 'No Admission' नहीं है। कुमारीजीको ज्ञात होना चाहिये कि इन स्थानोंके नाटकों और फिल्मोंमें स्त्रियोंके सभी पार्ट प्रायः स्त्रियाँ ही किया करतीं हैं। इतना ही नहीं, उन्हें यह जानकर और भी प्रसन्नता होगी कि इन स्थानोंमें मरदोंके अनेक पार्ट भी स्त्रियाँ करती हैं। पता नहीं कि वे कुमारीजीके सिद्धान्तके अनुसार पुंसत्वको प्राप्त कर रही हैं या नहीं! कलकत्तेके थियेटरों और सिनेमाओंमें गठरियों ऐंग्लो-इण्डियन लड़कियाँ पार्ट किया करती हैं। भारतीयोंकी सुन्दर मुखाकृति और यूरोपियनों-के सफेद चमड़ेके मिश्रणने नाटक और फिल्मोंकी ऐंग्लो-इण्डियन लड़कियोंकी माँग पैदा कर दी है। और यही कारण है कि आज सैकड़ों मिस जोन्स, मिस हाग और मिस जैक्सन इत्यादि अधगोरी मिसें, 'मिस सुलोचना','मिस सीता','मिस मीनाक्षी' आदि बन गयी हैं। कुमारी सत्यवतीजीकी बातें अबसे २५ वर्ष पहलेके लिए उपयुक्त थीं। आज भारतमें रंगमंचपर स्त्रियोंको स्थान दिलानेकी अपील करना और उसके लिए दलीलें पेश करना केवल व्यर्थ ही नहीं, बल्कि अपनेको हास्यास्पद बनाना है। रंगमंचपर स्त्रियोंको स्थान दिलानेकी अपेक्षा यह प्रश्न कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है कि क्या रंगमंचपर भले घरकी भारतीय ललनाओंका उतरना वांछनीय है? कलाकी दृष्टिसे मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ कि स्त्रीका पार्ट स्त्रीके द्वारा किया जाना वांछनीय है। परन्तु क्या सदाचार, नैतिकता और चरित्र-गठन आदिकी दृष्टिसे हमारी लड़कियोंका नाटकशालामें अभिनय करना वांछनीय और उचित है? मुझे खेद है कि कुमारी सत्यवतीजीने इस प्रश्नपर भी वास्त-विकतासे दूर रहकर कोरी कल्पनाकी ही उड़ान भरी है। वे कहतीं हैं—

"भारतीय कविताका झुकाव प्रकृति वर्णनकी अपेक्षा ईश्वर-गुणानुवादकी ओर अधिक है। उसकी दृष्टिमें संसार माया है, नाटक है। भारतीय नाटकका उद्देश्य है—इन्द्रिय-लोलुपताके पंकमें डूबे मानवोंको जाग्रत करना और उन्हें परमानन्दका मार्ग दिखाना। ऐसी दशामें क्या स्त्रीके लिए रंगभूमिपर आकर अपना सन्देश सुनाना अनैतिक है—सदाचारके विपरीत है?"

देखनेमें उपर्युक्त वाक्य बड़ा सुन्दर है। मगर कागजी आदर्श और कठोर वास्तविकता-में बड़ा अन्तर है। सम्भव है कि भारतीय नाटकोंका कभी यह उद्देश्य रहा हो; परन्तु आजकलके नाटक जिस 'परमानन्दका मार्ग दिखाते' हैं, उस 'परमानन्द' (!) से अलग रहना ही ज्यादा कल्याणकारी होगा।

मुझे स्वयं नाटक-जीवियोंके घनिष्ठ सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। फिर भी उन्हें किसी कदर नजदीकसे निरीक्षण करनेका अवसर मिला है, और मिलता रहता है। मैं यह बात निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि नाटकोंका वातावरण नैतिकता और सदाचारके लिए अत्यन्त हानिकर है। स्वयं कुमारीजीने भी स्वीकार किया है कि—"वर्तमान समयके नाटक अपने उच्चतम उद्देश्यसे गिरकर भद्दी लालसाओंकी पूर्तिके साधन बन गये हैं।"

कुमारीजी कहती हैं—

"सदाचारकी रक्षा ज्ञानजनित नैतिक दृढ़तामें ही हो सकती है। स्वाधीन महिलामें ही सदाचार पालनकी क्षमता हो सकती है।"

कुमारीजीको शायद यह वात स्वीकार करनेमें दिक्कत न होगी कि ज्ञानके प्रसारमें हमारा देश यूरोपियन देशोंसे कहीं अधिक पिछड़ा हुआ है। हमारे स्त्री-समाजकी अपेक्षा वहाँका स्त्री-समाज कहीं अधिक सुशिक्षित तथा कहीं अधिक स्वाधीन है। साथ ही वहाँके जीवनका 'स्टैंडर्ड' भी हमारे 'स्टैंडर्ड'से ऊँचा है। वहाँके नाटक भी हमारे यहाँके गन्दे नाटकोंसे कोसों आगे वढ़े हुए हैं। इतना सव होते हुए भी क्या वहाँके नाट्य-जगत्का वातावरण सदाचारको आश्रय देनेवाला है? क्या यह नैतिकताके लिए स्वास्थ्यप्रद है? मैं कहूँगा नहीं।

मुझसे इस विषयपर 'कलकत्ता विजिलेंस एसोसिएशन'की सेक्रेटरी मिस शेखरसे कई वार काफी वातचीत हुई। विलायतमें 'एसोसिएशन फॉर सोशल एण्ड मारल हाइजीन' नामकी एक वड़ी और प्रभावशाली संस्था है, जो नैतिक और सामाजिक सदाचार सम्वन्धी कार्य करती है। मिस शेफर्ड इसी संस्थाकी कार्यकर्त्री हैं। उन्हें इस विषयकी वाकायदा ट्रेनिंग मिली है। 'कलकत्ता विजिलेंस एसोसिएशन'ने विलायतके उपर्युक्त एसोसिएशनसे इस वातकी प्रार्थना की थी कि वह कलकत्तेमें सदाचार-सम्वन्धी कार्य करनेके लिए अपने यहाँसे किसी अनुभवी कार्यकर्ताको भेजे। इसपर विलायती एसोसिएशनने 'कलकत्ता विजिलेंस एसोसिएशन'को कुछ वर्षोंके लिए मिस शेफर्डकी सेवाएँ उधार दीं। इस प्रकार मिस शेफर्डको इस क्षेत्रमें विलायतका अनेक वर्षोंका और कलकत्तेका तीन वर्षोंका व्यावहारिक अनुभव है। उनका कथन है—"यहाँ और विलायतमें प्रायः सभी कहीं नाटकोंका वातावरण सदाचारके लिए अत्यन्त दूषित है। उसमें नैतिकताका वृक्ष वहुत मुश्किलसे पनपता है। वह चरित्रके विकास और दृढ़ताके लिए स्वास्थ्यप्रद कम होता है।" यह एक ऐसे व्यक्तिकी राय है, जो कल्पनामें नहीं उड़ता, वल्कि जिसे कठोर वास्तविकताका ज्ञान है। अतः यह कह डालना कि रंगभूमि ईश्वर-लीलाके लिए है, वहाँका वातावरण कभी अधार्मिक नहीं हो सकता, अनुभवहीनताकी ही वात है।

वास्तवमें नाटकोंमें अभिनय करनेवालोंका जीवन बड़ा खतरनाक है। उसमें पग-पगपर प्रलोभनोंका सामना करना पड़ता है। नाटकोंके अभिनेता और अभिनेत्रियोंको दिन-रात कृत्रिम भावव्यंजना करनी पड़ती है। वनावटी वातें करनी पड़ती हैं। अतः उनके चारों ओर एक अत्यन्त दूषित और अस्वाभाविक वायुमण्डल उत्पन्न हो जाता है। उस वायुमण्डलमें रहकर सत्पथपर दृढ़ रहना कठिन है। मैं यह कदापि नहीं कहता कि नाटकोंमें काम करनेवाले सभी लोग असदाचारी हैं, मगर यह जरूर कहूँगा कि इतने प्रलोभनों और इस वायुमण्डलके वीच रहकर सन्मार्गस्थ होना हर एकका काम नहीं। यह वात केवल भारतके लिए ही नहीं है, वरन् संसारके सव उन्नत देशों और सर्वोच्च समाजमें भी नाटकीय वायुमण्डल कुछ इससे अधिक भिन्न नहीं होता। यूरोप अमेरिकामें भी कितने

भले घरोंकी लड़कियाँ नाटकोंमें काम करती हैं। थियेटरोंमें लम्बी तनख्वाहें मिलनेपर भी वहाँके शरीफ खानदानोंके कितने माता-पिता खुशी-खुशी अपनी लड़कियोंको थियेटरोंमें भर्ती होने देते हैं।

फिर रंगमंचपर काम करनेवाली स्त्रियाँ वयस्क या वृद्धा नहीं हुआ करतीं। उनमें अधिकतर कम उम्रकी अनुभवहीन लड़कियाँ हुआ करती हैं। इन कमसिन लड़कियोंको रंगमंचपर उतारकर सदाचार पालनका उपदेश देना कुछ इसी प्रकार है जैसा कि फारसी कविने कहा है—

दरमियाने कार दरिया तख्ता वंदम कर दयी।
बाद मी गोयम कि दामन तर मुकुन हुशियारवाश।।

अर्थात्—"एक तख्तेपर बिठालकर मुझे वीच समुद्रमें छोड़ दिया और वादमें कहते हैं होशियार रहना—ख़वरदार दामन न भीगने पावे।"

इस समय नाटकोंका वातावरण ऐसा ही है और निकट भविष्यमें उसमें महान् परिवर्तनकी सम्भावना नहीं।

मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है, वह 'सदाचार और नैतिकता'का अर्थ समझकर लिखा है, जो आजकल मोटे हिसावसे संसारमें प्रचलित है। हाँ, यदि लेखिका महोदय इन शब्दोंकी कोई अन्य परिभाषा करती हों तो मैं निश्चय ही अपनी सारी वातें वापस ले लूंगा और उस परिभाषाके अनुयायियोंको नाटकके द्वारा 'परमानन्द' लूटनेकी सिफारिश भी करूँगा।

कुमारी सत्यवतीजी यह मानतीं हैं कि आजकलके नाटक "मनुष्योंकी नीच प्रवृत्तियोंको भड़काते हैं। लोगोंके मनमें यद्यपि भद्दे दृश्यों, वेहूदा मजाकोंसे गुदगुदी पैदा होती है तथापि वे इसे खराब समझते हैं; इसलिए वे स्त्रियोंको दर्शक या अभिनेत्री किसी रूपमें भी वहाँ नहीं जाने देना चाहते हैं।" यह मानते हुए भी वह यह कहती हैं—लेकिन स्त्रियोंको ऐसा वन्द रखनेका परिणाम क्या हो रहा है? उनकी शक्तियाँ अविकसित होकर नष्ट हो रही हैं। राष्ट्रीयताकी दृष्टिमें उनका अपव्यय हो रहा है।"

मैं स्त्री-पुरुषकी समानताका पक्षपाती हूँ। मैं स्त्रियोंके नाटक देखने जानेका विरोधी नहीं हूँ। किन्तु क्या मैं कुमारी सत्यवतीजीसे यह कहनेकी धृष्टता कर सकता हूँ कि क्या रंगमंचपर न थिरकनेसे हमारी देवियोंकी शक्तियाँ अविकसित होकर नष्ट हो रही हैं? क्या जीवनके अन्य करोड़ों मार्गों द्वारा महिलाओंकी शक्ति विकसित नहीं हो सकती? क्या थियेटरोंमें नाचकर ही स्त्रियोंकी शक्तिका अपव्यय रोका जा सकता है? संसारकी कितनी स्त्रियोंने नाटक अभिनय करके अपना विकास किया है?

मैं स्त्रियोंके नाटकमें भाग लेनेका विरोधी नहीं हूँ। वे अभी भी भाग लेती हैं। वे सब कैसी होती हैं, यह सभी जाननेवाले जानते हैं।

रंगभूमिको शुद्ध वनानेका मैं भी बड़ा पक्षपाती हूँ। इसके लिए अवश्य प्रयत्न होना चाहिये। अनवरत प्रयत्न करनेपर भी इस काममें वहुत समय लगेगा, और सब कुछ करने-

पर भी मुझे सन्देह है कि रंगभूमि कभी भी पूर्ण रूपसे पवित्र हो सकेगी या नहीं। अभीतक तो वह पूर्ण पवित्र नहीं हुई है। आगे राम जानें।

अतः कुमारी सत्यवतीजीके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए मैं यही निवेदन करूँगा कि भले घरकी लड़कियोंको आजकल टीका-टिप्पणीकी परवा किये विना रंगमंचपर कूदना खतरेसे खाली नहीं है।

: ३७ :

उर्दू कवितामें इस्लाह

उम्रके ख्यालसे शायद उर्दू-भाषा भारतवर्षकी सबसे कम उम्र जबान है। 'आबे हयात'के रचयिता स्वर्गीय आजाद महोदय उसे 'शाहजहानी बाजारका बच्चा' बतलाते हैं। कुछ लोग इसकी पैदाइशका जमाना चौदहवीं शताब्दी बतलाते हैं और सबूतमें अमीर खुसरोकी सनद पेश करते हैं। कुछ अन्य सज्जन उसका, एक अलग जबान होनेका, दावा ही गलत बतलाते हैं। उनका कहना है कि उर्दू कोई पृथक् भाषा नहीं है, फारसी शब्दोंसे मिली हुई हिन्दीको ही जबर्दस्ती 'उर्दू'का लकब दे डाला गया है। निःसन्देह उनके इस कथनमें सत्यका बहुत बड़ा अंश है। उर्दू दरअसल हिन्दी-भाषाका एक रूपान्तर-मात्र है। परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि मौजूदा हिन्दी और उर्दूमें काफी अन्तर हो गया है। बात यह है कि मुसलमानी हिन्दीको उर्दूका नाम मिलनेके बाद उसका विकास ऐसे निराले ढंगसे हुआ कि केवल दो सौ वर्षके छोटे समयहीमें वह एक चहचहाती हुई लतीफ जबान बन गयी।

यदि उर्दू ढाई-तीन सौ वर्षकी पुरानी है, तो हिन्दी हजार वर्षसे अधिककी प्राचीन है। परन्तु हम देखते हैं कि उर्दू-भाषामें—खासकर कविताकी भाषामें—मुहाविरोंका प्रयोग जिस बहुतायत और खूबीसे होता है, वैसा हमारी सहस्र वर्षकी प्रौढ़ा हिन्दीमें कम मिलेगा। उर्दू-कविताका विकास फारसी-कविताके ढंगपर हुआ है। उर्दू-शायरीने साफ-सुथरी और मँजी हुई जबानके लिए कमाल कर दिखाया है। उर्दू-कविताका विकास फारसी-कविताके ढंगपर हुआ है। उसका रंग-ढंग विदेशी है। उसके भावोंमें अप्राकृतिक काम-वासनाका काला रंग चढ़ा हुआ है। उर्दू-कवियोंका माशूक खूँरेजीके फनमें यकता—पूरा जल्लाद है और आशिक बेचारे कटे-छटे, लोहूलुहान, बिस्मिल और नीम-मुर्दा नजर आते हैं। यह सब होते हुए भी मानना पड़ेगा कि उर्दू-शायरोंकी भाषामें एक खास रंग और पुख्तगी है। उसमें एक अनोखा प्रवाह, एक निराला बाँकपन है। उर्दू-कविताकी लोकप्रियताका यह भी एक मुख्य कारण है।

अब इस बातपर विचार कीजिये कि उर्दूके इस साफ-सुथरेपन, इस निखार और बनाव-चुनावका क्या कारण है? उसने इतने अल्प कालमें यह पुख्तगी कैसे हासिल कर ली? उसकी खूबसूरतीका राज क्या है?

यह कहना गलत न होगा कि उर्दू-भाषाका जन्म दिल्लीमें हुआ था यानी मुसलमानी हिन्दीको 'उर्दू'की उपाधि दिल्लीसे ही मिली थी। उसका विकास दिल्ली और उसके आस-पासके स्थानोंमें ही हुआ था। अस्तु, उर्दूके पण्डितों और जन्मदाताओंने दिल्ली और

उसके करीबकी बोलचालकी भाषाको ही प्रामाणिक करार दे दिया। उन्होंने इस बातका खास ख्याल रखा कि केवल दिल्लीकी बोलचालकी भाषा और मुहाविरे ही उर्दूमें स्थान पा सकें। अन्य प्रान्तोंके मुहाविरों और कहावतोंके लिए उन्होंने उर्दूके दरवाजेपर 'नो एडमिशन' (No Admission) लिख दिया। फिर भी दक्षिण-देशका संसर्ग होनेके कारण बहुतसे 'दक्खिनी' शब्द और मुहाविरे भी जबर्दस्ती उर्दूके घरमें घुस आये। मगर उर्दू-कवियोंने धीरे-धीरे इन मदाखलत-बेजा करनेवाले बिना लैसंसके शब्दोंको उर्दूके अहातेसे निकाल बाहर किया। उन्होंने दिल्लीकी जबानको इतनी अधिक प्रधानता दी, जिसका हिसाब नहीं।

दो-चार बिगड़े-दिमाग शायरोंने तो यह समझ रखा था कि उर्दू दिल्ली निवासियोंको छोड़कर और किसीको आ ही नहीं सकती। 'आबे हयात'में मीरतकी 'मीर'के बयानमें लिखा है कि एक बार कमरुद्दीन खाँ 'मिन्नत' 'मीर'के पास कुछ कविता इस्लाहके लिए ले गये। 'मीर' साहबने उनका वतन पूछा। उन्होंने 'सोनीपत' बताया। यह 'सोनीपत' दिल्लीके करीब—पानीपतके पास एक स्थान है। इसपर 'मीर' साहबने फरमाया—"जनाब, उर्दू खास दिल्लीकी जबान है। आप उसमें तकलीफ न कीजिये, अपनी फारसी-बारसी कह लिया कीजिये।"

इस किस्सेसे यह बात मालूम हो जायगी कि उर्दूवालोंने अपनी जबानको विशुद्ध रखनेके लिए कितनी कड़ाईसे काम लिया है। उर्दूके बागबाँ समय-समयपर उर्दूके चमनकी काँट-छाँट और तराश करके उसे परिष्कृत करते रहे हैं। 'सौदा' और 'मीर'के उस्ताद 'खान आरजू'के बयानमें लिखा है कि उन्होंने उर्दूके मुहाविरे दुरुस्त किये, नये मुहाविरोंको दाखिल किया और पुराने मुहाविरोंकी, जो कम प्रचलित हो गये थे, काँट-छाँट की। इस प्रकार उर्दू उत्तरोत्तर परिमार्जित होती रही।

यह जमाना दिल्लीके जवालका जमाना था। सल्तनत-मुगलिया अपने जीवनकी अन्तिम साँसें भर रही थी, दिल्लीकी पुरानी शान-शौकत, सुख-समृद्धि विलीन हो रही थी और वह खूब उजड़ रही थी। जब दिल्लीके कवियों और साहित्यिकोंको वहाँ आश्रय और जीविका मिलनी मुश्किल हुई तो उन्होंने लखनऊकी तरफ रुख किया।

यह जमाना लखनऊकी तरक्कीका था! उस जमानेमें लखनऊ धन-सम्पत्तिसे भरा-पूरा था। वहाँ दिल्लीके कवियोंका स्वागत हुआ, उन्हें शरण मिली। इस प्रकार उर्दूके विकासका दूसरा केन्द्र लखनऊ कायम हुआ। लखनऊवालोंने उर्दूको अपना एक जुदा ही रंग दिया। यद्यपि देहलवी उर्दूमें और लखनवी उर्दूमें कोई बड़ा अन्तर नहीं है—अगर लखनऊवाले 'कानगोशी' करते थे, तो दिल्लीवाले 'गोशमाली'कर देते थे—फिर भी दिल्लीवालोंने उसका विरोध किया। इस विरोधका फल यह हुआ कि कि लखनऊ और दिल्लीकी जबानोंमें जोरकी प्रतियोगिता उत्पन्न हो गयी। इस प्रतियोगिताने उर्दूको चमकानेमें बहुत मदद दी। लखनऊवालोंने जबानको रंगीन बनाने और सजाने-सवाँरनेमें बहुत तकल्लुफसे काम लिया। इससे लखनवी उर्दूमें सरलताका अभाव हो गया, मगर उसमें एक खास किस्मकी बनावटी नजाकत पैदा हो गयी। इस प्रकार उर्दूके दो अलग-अलग

अखाड़े कायम हो गये। उस समयसे अवतक उर्दूके जितने लेखक या शायर हुए हैं, वे सब इन्हीं दो स्कूलोंमेंसे किसी-न-किसीका दम भरते रहे। परन्तु समयकी गतिने आजकल इस अन्तरको भी प्राय: दूर कर दिया। इसलिए उर्दू—चाहे वह हैदरावादकी हो या लाहौरकी, कलकत्तेकी हो या भूपालकी—प्राय: एकहीसी है। उसमें प्रान्तीयताकी वू नहीं है, लोकल शब्दोंका प्रवेश नहीं है। यह तो हुई आम उर्दूकी वात। अव उर्दू-कविताकी वात सुनिये।

यह कहा जा चुका है कि उर्दू-शायरीकी जवानका निखार वहुत साफ है। उसमें जवान-की रवानी, वन्दिशोंकी चुस्ती और मुहाविरोंका जड़ाव देखने योग्य है। इन सवका एक प्रधान कारण है उर्दू-शायरीकी उस्ताद-शागिर्दकी प्रथा। उर्दू-कविताके आदिसे ही उसका विकास गुरु-शिष्यकी परम्परा-प्रणालीपर हुआ है। यह तो प्राय: सभी जानते हैं कि कवि स्वयं पैदा होते हैं, कोई उन्हें कवि वना नहीं सकता। काव्य-प्रतिभा ईश्वर-प्रदत्त गुण है। जिन लोगोंके मनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति कविताकी ओर होती है, जिनकी तवीयत खास-तौरपर इसके लिए मौजूं होती है, वे ही—और केवल वे ही—कवि हो सकते हैं। परन्तु इसके साथ-ही-साथ यह भी मानना पड़ेगा कि जिन पुरुषोंमें यह दैवी गुण मौजूद है, उनकी इस प्रतिभाको थोड़ीसी ट्रेनिंग, थोड़ेसे संशोधन और इस्लाहसे कई गुना उज्वल बनाया जा सकता है।

उर्दू-शायरीके विकासमें इस 'इस्लाह'ने वहुत वड़ा भाग लिया है। उर्दूके कवि जब कुछ शुद-वुद करने लगते हैं तव किसी अभ्यस्त कविको अपना काव्य-गुरु वनाते हैं। वे अपनी समस्त रचनाओंको उस्तादके सामने पेश करते हैं और उस्ताद उनमें उचित संशोधन कर देते हैं। शागिर्द लोग उस्तादकी इस्लाहों—उनके वताये हुए दोषों और उन्हें दूर करनेके उपायों—को वरावर मनन करते रहते हैं। इस प्रकार उनके कलाममें पुख्तगी आती, भाषा परिमार्जित होती, वन्दिशोंमें चुस्ती, खयालातमें परवाज और शैलीमें वाँकपन आता है।

यह उस्ताद-शागिर्दकी प्रथा और इस्लाहका रवाज इतना प्रचलित हुआ कि वह एक नियमसा वन गया। इसमें सन्देह नहीं कि गालिवके समान अनेक प्रतिभाशाली कवि किसीके शागिर्द नहीं थे, फिर भी सौदा, मीर, जौक आदि वड़े-वड़े शायरोंने उस्तादोंसे तरक्की पायी थी।

मुशायरोंमें उस्तादोंको छोड़कर नवीन कवियोंकी जितनी रचनाएँ पढ़ी जाती थीं, उनपर प्राय: किसी-न-किसी उस्तादकी इस्लाहकी मुहर होती थी। इस नियमके प्रभावका अन्दाज आपको दिल्ली-सम्राट्के काव्य-गुरु महाकवि जौकके जीवनकी एक घटनासे लग जायगा। जौकने आरम्भमें शाह नसीरको अपना उस्ताद वनाया था। मगर शाह साहवके पुत्र भी कविता करते थे। इसलिए शाह साहव अपने पुत्रको वढ़ानेके लिए जौककी उपेक्षाकर उन्हें निरुत्साहित करने लगे। इसपर जौकने उनके पास जाना छोड़ दिया। एक दिन एक जगह मुशायरा था, जौकने भी गजल कही थी। पर विना इस्लाहकी गजलको मुशायरेमें पढ़नेका साहस उन्हें न होता था। वे वेचैन होकर घरसे निकले। शाम होते-

होते जामामस्जिद जा पहुँचे। इत्तफाकसे वहीं मीर कल्लू 'हकीर' बैठे हुए मिले। उन्होंने देखते ही पूछा—"क्यों भई, उदास क्यों हो? खैरियत तो है?" जौकने अपनी बात कह सुनायी। मीर साहबने कहा—"जरा अपनी गजल मुझे भी सुनाओ।"

जौकने गजल कही। 'हकीर'ने गजलको पसन्द करके कहा—"जाओ बेखतर होकर मुशायरेमें गजल पढ़ो। कोई एतराज करेगा, तो मैं निपट लूँगा!"

जौकने मुशायरेमें गजल पढ़ी, जिसकी बड़ी तारीफ हुई।

इस घटनासे दो बातें प्रकट होती हैं—एक तो यह कि उर्दूकी कवितामें इस्लाहका कितना महत्त्व है, दूसरी यह कि उस समय अर्थहीन, ऊल-जलूल कवितापर लोग मुशायरेमें ही एतराज कर बैठते थे। इन सबका फल आपको उर्दू-कविताकी भाषाकी सफाई, मुहाविरोंके इस्तेमाल और साफ-सुथरेपनमें मिलेगा।

इस गुरु-शिष्य-प्रणालीसे बहुतसे बड़े-बड़े कवियोंके काव्य-वंश स्थापित हो गये। आज आपको उर्दूके बीसों शायर ऐसे मिल जायेंगे, जिनकी गुरु-परम्पराका सिलसिला मीर, सौदा, खान, आरजू आदितक पहुँचता है। मामूली शायरोंके लिए किसी बड़े उस्तादकी शागिर्दीकी सनद, किसी 'सार्टीफिकेट आफ आनर'से कम नहीं समझी जाती। साथ ही बहुतसे उस्ताद भी ऐसे खुशकिस्मत हैं, जिनके शागिर्दोंने अपनी प्रतिभासे अपने नामके साथ-साथ उस्तादके नामको भी रोशन किया है।

उर्दू-उस्तादोंके शागिर्द केवल उनका नाम ही कायम न रखते थे, बल्कि कुछ अंशोंमें उनकी कविताका रंग भी कायम रखते थे, क्योंकि वर्षोंतक उस्तादसे इस्लाह लेते रहनेसे उनकी कवितामें उस्तादके कलामका काफी रंग चढ़ जाता था, उनके व्यक्तित्वकी छाप लग जाती थी।

खेद है कि हमारे हिन्दी-काव्य-जगत्में इस गुरु-शिष्य-प्रणालीका सर्वथा अभाव रहा है। उर्दूके छोटे-मोटे उस्ताद भी मृत्युके समय सैकड़ों शागिर्द छोड़ जाते हैं, जो सदा उनका दम भरते हैं। मगर हिन्दीके बड़े-से-बड़े कवियोंकी मृत्युके पीछे कोई उनका नामलेवा भी नहीं रह जाता! पुराने जमानेकी बात जाने दीजिये, अभी हालहीमें पण्डित श्रीधर पाठक और पण्डित सत्यनारायण कविरत्नके समान प्रकाशमान नक्षत्र हमारे काव्य-गगनसे विलीन हो गये। मगर अफसोस कि उनका नाम जीवित रखनेवाला उनका एक भी शिष्य नहीं है। उनकी कविताका रंग सदाके लिए लुप्त हो गया।

हिन्दीमें इस गुरु-शिष्य-प्रणालीके अभावसे हमारी कविताकी भाषामें यथेष्ट स्वच्छता भी न आ सकी। प्रायः हरएक अपनी मनचाही भाषा और शब्दोंका प्रयोग करता है। आजकलकी कविताकी भाषा खड़ी बोली हो गयी है। मगर इस खड़ी बोलीमें भी लबड़-धोंधोंका ऐसा बाजार गर्म है, जिसका कुछ ठिकाना नहीं। अनेक स्वयंभू कवि अपनी-अपनी मनमानी कर रहे हैं। कोई संस्कृतके बम्वास्टिक शब्दोंको इकट्ठा कर देनेका नाम ही कविता समझ रहा है, तो कोई दो काफियोंकी चूल बिठलाकर कवि-सम्राट् बन रहा है। कोई तुक मिलानेका दर्द-सर न उठाकर 'बेतुकी' अलाप रहा है और कोई छन्दोंको ताकपर रखकर 'खड़छन्द' और 'केंचुआछन्दों'में बेपरकी उड़ाता है। काव्य-जगत्के इस हड़बोंगसे

भाषाकी सफाई तो क्या हो, उसकी मिट्टी जरूर पलीद होती है। भाषा बेचारी 'नीरव-स्वर'से 'मूक-भाषा'में बहुतेरा रोती-चिल्लाती है, मगर उसपर कोई ध्यान नहीं देता। कुछ लोग हिन्दीके सीधे-सादे पुल्लिंग शब्दोंको जनाना बनानेमें और स्त्रीलिंग शब्दोंको मूंछ-दाढ़ीवाला बनानेमें व्यस्त हैं।

किसी प्रकारका नियन्त्रण न रहनेसे आजकल तुकहीन और छन्दहीन कविताके साथ-साथ अर्थहीन क्लिष्ट काव्यका भी कुछ चलन-सा चल गया है। कुछ लोग कोरे शब्दोंसे भरी हुई अर्थहीन कविताको ही कलाकी पराकाष्ठा समझते हैं। कवि-सम्मेलनोंमें भी ऐसी रचनाएँ पढ़ी जाती हैं। कहते हैं कि एक बार एक मुशायरेमें उर्दूके महाकवि गालिबकी मुश्किलसे समझमें आनेवाली कवितापर हकीम आगाजानने यह क़िता पढ़ा था—

अगर अपना कहा तुम आप ही समझे, तो क्या समझे,
मजा कहनेका तब है इक कहे, और दूसरा समझे।
कलामे 'मीर' समझे और जबाने 'मीरजा' समझे,
मगर इनका कहा यह आप समझें, या खुदा समझे॥"

कहते हैं कि इसके बाद गालिबने अपनी कविता सरल कर दी थी। परन्तु आजकल हमारे हिन्दी-काव्य-जगत्‌में अनेकों ऐसी रचनाएँ मिलेंगी, जिनके लेखक महोदय साभिमान कह सकते हैं :—

"भला वह भी कोई कविता है, जिसको सुन लिया, समझे ;
नहीं है 'आर्ट' कुछ उसमें, जिसे हर बेपढ़ा समझे।
वही कविता कलामय है, जिसे आलिम तो क्या समझे!
अगर सौ बार सर मारे, तो मुश्किलसे खुदा समझे।"[१]

इस नये जमानेके हिन्दी-संसारमें 'इस्लाह' और गुरु-शिष्य-प्रणालीकी बात कौन उठा सकता है? जब यार लोग तुलसीदासकी गलतियाँ निकाल रहे हैं, केशवदासको किसी भावमें भी कवियोंकी श्रेणीमें बिठलानेके लिए राजी नहीं हैं, और पिसनहारीके गीतोंके आगे बाबा वाल्मीकि और कालिदासको चैलेंज देते घूमते हैं (और फिर मजा यह कि हज़रत न वाल्मीकिको समझते हैं न कालिदासको!!), तब भला भूमण्डलपर ऐसा कौनसा व्यक्ति जन्मा है जिसे वे गुरुरूपमें स्वीकार कर सकें! यहाँ तो हरएक पिदड़ीका यही दावा है :—

---

१. वर्माजीके इस क़ितेकी अन्तिम पंक्ति, पूज्य आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीकी इस्लाह के अनुसार इस प्रकार होनी चाहिये—

"अगर सौ बार सर मारे, तो शायद ही ख़ुदा समझे!"

आचार्य द्विवेदीजीने 'माधुरी' में प्रकाशित इस निबन्धको पढ़कर वर्माजीकी योग्यताकी प्रशंसा करते हुए एक पत्र पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीको लिखा था, जिसमें उन्होंने उक्त इस्लाह दी थी।

—श्यामसुन्दर खत्री

इक तिफ्ले-दविस्ताँ हैं फलातूँ मेरे आगे,
क्या मुँह है अरस्तू जो करे चूँ मेरे आगे?

वल्कि इससे भी एक हाथ वढ़कर।

फिर भला भाषामें सफाई कहाँसे आवे, प्रवाह कैसे पैदा हो, मुहाविरोंके नगीने कैसे जड़ें? फल यह है कि भिन्न-भिन्न लोगोंकी हिन्दीमें सामंजस्य नहीं है। हमारे वड़े लेखकोंने साहित्य-संसारमें प्रवेश करते समय भाषाकी जो भूलें की थीं, आज वीस-पच्चीस वर्षके अभ्यासके वाद भी उनकी—

वही रफ्तार वेढंगी जो पहले थी सो अव भी है।

खैर, यह तो हिन्दी संसारका रोना है, अव उर्दू-शायरीकी इस्लाहको लीजिये।

इस्लाहका काम पालिश करना है। नया कवि सुन्दर-सुन्दर आभूषण तैयार करके उन्हें उस्तादके सामने पेश करता है। उस्ताद इस्लाहके कलमसे उसपर ऐसा जिला कर देता है कि जिसे देखकर आँखें चौंधिया जायँ! उस्तादका यह काम नहीं है कि वह दूसरा शेर कह दे—उस आभूषणकी जगह दूसरा आभूषण गढ़े। वह केवल शेरको चिकनाकर उसपर पालिश कर देता है।

हजरत 'अजीज' लखनवीका कथन है कि इस्लाहकी खूवी यह है कि जव उस्ताद कोई शेर वना दे, तो फिर शेरमें शाब्दिक या आर्थिक किसी तरहकी उन्नतिकी कमी न रहने पावे। जो शब्द रख दे, वह एक तराशा हुआ हीरेका नगीना हो। ख्वाजा आतिश ने कहा भी है—

बन्दिशे अल्फाज जड़नेसे नगोंके कम नहीं,
शायरी भी काम है आतिश मुरस्सा-साज का।

हजरत 'अजीज'के कथनानुसार इस्लाह इन सिद्धान्तोंपर देनी चाहिये—

१. शागिर्दको पहले शेरकी आवश्यकताएँ वतलानी चाहिये।

२. शेरमें सिर्फ शब्दोंका परिवर्तन करना चाहिये, भाव वदलनेकी जरूरत नहीं। यदि अर्थकी दृष्टिसे शेर दूषित हो तो उसे काट देना चाहिये।

३. यदि पूरे शेर या पूरे मिसरेको वदलना आवश्यक हो, तो शागिर्दको आदेश देना चाहिये कि वह खुद कोशिश करे। इससे उसकी काव्य-शक्ति वढ़ेगी।

४. जव शेरमें कोई परिवर्तन किया जाय, तो उसका कारण शागिर्दको समझा देना चाहिये, जिससे भविष्यमें वह उस गलतीसे वचे।

५. शेरको तमाम दोषोंसे मुक्त करके ऐसे शब्द रखने चाहियें जिनसे अच्छे और न हो सकें।

६. खुद शेर कहकर शागिर्दको न देना चाहिये। इससे काव्य-चिन्तामें उसकी हिम्मत कम होती है और उसे उस्तादपर भरोसा रखनेकी आदत पड़ती है।

७. 'रदीफ'की प्रौढ़ताका इतना ध्यान रखना चाहिये कि अगर 'रदीफ' निकाल दी जाय, तो पूरा शेर बेमानी हो जाय। इसी तरह काफिया केवल तुक मिलानेके लिए न

हो, उससे मजमून पैदा होना चाहिये। कोई-कोई कवि मजमून सोचनेके बाद काफिया तलाश करते हैं, इससे शेर सुस्त हो जाता है।

८. गजल, कसीदा, मसनवी—इन सबकी जमीनें भिन्न-भिन्न होती हैं। इस्लाहमें यह बात भी मद्दे-नजर रखनी चाहिये।

हजरत सफदर मिर्जापुरीके कथनानुसार—"इस्लाहके वक्त फसाहत (माधुर्य), बलागत (प्रसंगानुकूलता), जबानकी तासीर, मुहाविरा, तरकीबबंदिश, चुस्ती, नफ़ाशत, अल्फाज (शब्दोंका जड़ाव), रवानी, सलासत (प्रवाह), मौजूनियत और अन्यान्य भीतरी तथा बाहरी बुराई और भलाई आदि सभी बातें देखी जाती हैं।"

खेद है कि पुराने शायरोंकी इस्लाहोंका कोई संग्रह नहीं किया गया। हालमें कुछ शायरोंकी थोड़ी बहुत इलाहें हजरत सफदरने संग्रह की हैं। मौजूदा उस्तादोंकी दी इस्लाहें कभी-कभी 'उर्दू', 'उर्दूये मुअल्ला' आदि सामयिक पत्रोंमें प्रकाशित हुई हैं। इन इस्लाहोंके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

ख्वाजा आतिशका शेर है—

सख्तिये अय्याम है मेरे लिए सामाने ऐश,
संगे-दर को भी समझता हूँ मैं जानू हूर का।

अर्थात् जमानेकी सख्ती भी मेरे लिए ऐशका सामान है। दरवाजेके पत्थरको भी मैं हूर (अप्सरा) का जानू समझता हूँ।

इसपर उस्ताद मुस्हफीने इस्लाह दी—

सख्तिये अय्याम है मेरे लिए सामाने ऐश,
खिश्त-बालीं को समझता हूँ मैं जानू हूर का।

'संगे-दर' (दरवाजेका पत्थर)की जगह 'खिश्त-बालीं' कब्रके तकियेकी जगह (सरहाने) का पत्थर बना दिया; क्योंकि 'संगे-दर'की 'हूरके जानू'से तुलना ठीक नहीं थी, 'खिश्त-बालीं'की उपमा बड़ी सुन्दर बैठती है।

स्वर्गीय मीर वजीरअली सबा, ख्वाजा आतिशसे इस्लाह लेने आते थे। ख्वाजा साहबका दस्तूर था कि शागिर्द शेर पढ़ता जाता था और आप सुनकर 'हूँ' करते जाते थे। जिस शेरमें कुछ परिवर्तन करना या कहना होता था, उसपर ठहर जाते थे। एक दिन सबाने 'जल्लाद कभी' 'बेदाद कभी' इस तरहपर गजल कहकर उस्तादको सुनायी। जब उन्होंने यह शेर पढ़ा—

फस्ल-गुल में मुझे कहता है कि गुल्शन से निकल,
ऐसी बेपर की उड़ाता न था सय्याद कभी।

और ख्वाजा साहबने इसपर भी 'हूँ' कहकर टालना चाहा, तब तो मीर साहबसे न रहा गया। उन्होंने कहा—"हजरत! यह शेर मैंने खूने-जिगर खाकर कहा है।" मतलब यह कि दाद दीजिये, क्योंकि कविके शब्दोंमें—

सरस कविन के हृदय को, सालत है द्वै कौन ?
असमझवार सराहिवो, समझवार को मौन ।।

ख्वाजा साहबने कहा कि फरमाइये । सवाने फिर शेर पढ़ा, तो उन्होंने कहा—इसे यों बना दीजिये—

पर कतरकर मुझे कहता है कि गुल्लनसे निकल ,
ऐसी बेपरकी उड़ाता न था सैय्याद कभी ।

कैसी सुन्दर इस्लाह है ! सवाके मिसरेमें 'वेपरकी उड़ाने'का सबूत न था । अब दो शब्दोंके बदल जानेसे शेरमें कैसा सौन्दर्य पैदा हो गया है !

रिन्दका शेर है—

फिर ले चला है दिल मुझे बुतखानेकी तरफ ,
अब साकिनाने – कावा ! हमारा सलाम है ।

इसपर ख्वाजा आतिशने यह इस्लाह दी—

फिर खींचती है उल्फते-बुत दैरकी तरफ ,
लो साकिनाने – कावा हमारा सलाम है ।

कवि कहता है कि मेरा दिल मुझे फिर बुतखाने—मूर्तिके मन्दिरकी ओर लिये जाता है । अब हे कावा निवासियों (मस्जिद निवासियों) हमारा सलाम है । दिल बुतखानेकी ओर क्यों लिये जाता है इसका कोई कारण स्पष्ट नहीं है । उस्तादने इस्लाहमें 'खींचती है उल्फते-बुत दैरकी तरफ' (अर्थात् बुत यानी मूर्तिका प्रेम मन्दिरकी ओर खींचता है) बनाकर कारण स्पष्ट कर दिया है । इससे शेर चमक उठा । दूसरे मिसरेमें 'अब'के स्थानमें 'लो' बनाकर 'सलाम है'के मुहाविरेको पूरा कर दिया, जिससे बयानमें खूबसूरती आ गयी ।

एक दिन फतहउद्दौला 'बर्क' उस्ताद नासिखकी खिदमतमें हाजिर हुए । उस समय बर्क साहब इस्लाहसे बरी हो चुके थे । उस्तादने पूछा—कहो भई, कोई नयी गजल कही है ? बर्कने कहा—'जी हाँ-'बहारमें मजारमें' इस तरहमें एक गजल कही है जिसके एक शेरपर मुशायरेमें बड़ी दाद मिली । उस्तादने कहा हमें भी सुनाओ । बर्कने बड़े फख्रके साथ सुनाया—

उस गुलने एक रात जो पहना तो बस गया ;
बूये-गुलाब आती है मोतीके हारमें ।

उस्ताद सुनकर चुप हो गये । बर्कका दिल फड़क उठा, कहने लगे—हजरत इसमें कोई नुक्स है जो आप खामोश हो गये ? उस्तादने कहा—'भई यही सोच रहा था । अव्वल तो कोषके अनुसार 'गुलाब'के मानी अर्क गुल (गुलाबजल) है, दूसरे गुलाबके फूलोंका माला सिवा उन लोगोंके जो किसी मन्दिर या मठके पुजारी हों—कोई और नहीं पहनता । मैंने तो किसी शरीफ आदमीको गुलाबके फूलोंका हार पहनते नहीं देखा, इन एतराजोंके बाद बोले—इसे इस तरह बना दीजिये—

उस गुलने एक रात जो पहना तो बस गया,
बू मोतियेकी आती है मोतीके हारसे।

कैसी सुन्दर इस्लाह है ! मोतिये (वेले)की कलियों और मोतियोंकी समता कैसी मौजूं है ! यद्यपि पहला शेर भी बहुत उत्कृष्ट है।

एक बार शेख इब्राहीम "जौक"ने एक मुशायरेमें निम्नलिखित शेर पढ़ा—

नरगिसके फूल भेजे हैं बटुएमें डालके,
ईमा यह है कि भेज दें आँखें निकालके।

जौकके उस्ताद शाह नसीर भी मुशायरेमें उपस्थित थे। उन्होंने फ़रमाया—"मियाँ इब्राहीम, फूल बटुएमें नहीं होते। यों कहो, 'नरगिसके फूल भेजे हैं दोनेमें डालके।' जौककी तबीयतकी तेजी बहुत बढ़ी हुई थी, बोले—"हजरत, गुस्ताखी मुआफ़, 'दोने'में 'रखना' होता है 'डालना' नहीं होता। ज्यादा मुनासिब तो यह होगा—

बादाम दो जो भेजे हैं बटुएमें डालके,
ईमा यह है कि भेज दें आँखे निकालके।

रामपुरके स्वर्गीय नवाब यूसुफ अलीखाँ 'नाजिम'का शेर है—

गर नहीं तेरी करामत तो यह क्या है साकी,
हमने सागिरको तेरे बज्ममें चलते देखा।

यानी—ऐ साकी ! यदि यह तेरी करामात नहीं है, तो क्या है ? क्योंकि हमने तेरी महफ़िल में (निर्जीव) प्यालेको चलते देखा। इसपर गालिबने इस्लाह दी—

है यह साकीकी करामत कि नहीं जामके पाँव,
और फिर सबने उसे बज्ममें चलते देखा।

वाह-वाह क्या सुन्दर इस्लाह है ! साकीकी करामातका कैसा सुन्दर सबूत पेश कर दिया। जामके पाँव नहीं हैं, फिर भी बिना पाँवके निर्जीव पदार्थको बज्ममें सबने चलते हुए देखा !

मौलाना हालीका शेर है—

उम्र शायद न करे आज वफा,
सामना है शबे तनहाईका।

हजरत गालिबने इस्लाह दी—

उम्र शायद न करे आज वफा,
काटना है शबे तनहाईका।

देखिये, सिर्फ एक शब्द 'सामना'के बजाय 'काटना' कर देनेसे शेर कैसा ऊँचा हो गया। विरहकी रात्रिका काटना ही ज्यादा मुश्किल है।

मीर नवाब मूनिसने एक मर्सिया बड़ी मेहनतसे लिखकर सुप्रसिद्ध मर्सियागो 'अनीस'-को दिखलाया। जब उन्होंने प्रातःकालका यह वर्णन पढ़ा—

वह फूलना शफ़क़का, वह मीनाये-लाज वर्द,
मखमल-सी वह गयाह, वह गुल सब्ज, सुर्ख, जर्द।

रखती थी देखकर कदम, अपना हवाये-सर्द,
यह खौफ था कि दामने गुलपर पड़े न गर्द।

अर्थात्—उषाका प्रफुल्लित होना और यह नीलवर्ण आकाशरूपी प्याला। मखमल-सी धरती, जिसपर हरे, लाल, पीले फूल खिले थे। शीतल वायु देख-देखकर पैर रखती थी, उसे डर था कि कहीं फूलोंके आँचलपर गर्द न पड़ जाय।

तो अनीसने कहा—"जरा ठहर जाइये।" वे चुप हो गये तो कहा—"इन चारो मिसरोंमें अगर कोई नुक्स हो, तो तीन घण्टेका वक्त दिया जाता है, दुरुस्त कर लीजिये।" मूनिस साहबने पूरे तीन घण्टे गौर किया, पर उन्हें उसमें कोई दोष न दिखाई दिया। अन्तमें जब वे हार गये, तो अनीसने फरमाया—"तीसरे मिसरेमें आप कह गये हैं—'रखती थी देखकर कदम अपना हवाये-सर्द।' हवाके आँखें नहीं होतीं, फिर वह क्या 'देखकर' कदम रख सकती है? इसको यों बना दीजिये—

रखती थी फूँककर कदम अपना हवाये-सर्द,
यह खौफ था कि दामने गुलपर पड़े न गर्द।

देखिये, सिर्फ एक शब्द 'देख' के स्थानपर 'फूँक' रख देनेसे शेर जमीनसे उठकर आसमानपर पहुँच गया। 'फूँकना' हवाके ही द्वारा होता है और 'कदम फूँककर रखना' मुहाविरा है।

"शैदा" लखनवीका शेर है—

देख लेंगे वह किसी तरह सरे बज्म मुझे,
उनकी आँखोंमें जो तिलभर भी मुरव्वत होगी।

इसपर मीर बादशाह अली 'वका'ने इस्लाह दी—

देख लेंगे वह कनखियोंहीसे महफिलमें मुझे,
उनकी आँखोंमें जो तिल भर भी मुरव्वत होगी।

'कनखियों'से देखनेमें एक खास अदा है। भरी महफिलमें और 'किसी तरह देखने'में भेद खुल जानेका डर है।

हजरत 'जाहिद' सहारनपुरीका शेर है—

गया जो वक्त उसे समझो गया, फिरकर नहीं आता,
न पाओगे, न पाओगे, कहीं देखो, कहीं ढूँढ़ो।

इसपर स्वर्गीय अमीर मीनाईने इस्लाह दी—

गया जो वक्त वह फिरकर नहीं आता, नहीं आता,
न पाओगे, न पाओगे, कहीं देखो, कहीं ढूँढ़ो।

दूसरे मिसरेमें 'न पाओगे' दोहराया गया है, अतः पहले मिसरेमें 'नहीं आता' दोहराना बहुत ही सुन्दर और उचित हुआ।

हजरत 'जाहिद'का दूसरा शेर है—

साकिया लाख पिला जाम पसे जाम शराब,
न मिटेगी, न मिटेगी हविसे जाम शराब।

इसे अमीर साहबने यों बनाया—

साक़िया लाख पिला जाम पसे जाम शराब,
न मिटी है, न मिटेगी हविसे जाम शराब ।

'न मिटेगी' से केवल भविष्यत् काल प्रकट होता है, परन्तु अब भूत और भविष्यत्, दोनों-ही की बात साफ हो जाती है ।

हजरत 'बरहम'का शेर है—

बहुत करीब मगर है बहारका मौसम,
कली-कली मेरे दामनकी मुस्कराती है ।

हजरत अमीरने केवल एक शब्दके हेर-फेरसे इस शेरमें बहुत खूबी पैदा कर दी, जो बयानसे बाहर है—

बहुत करीब है शायद बहारका मौसम,
कली-कली मेरे दामनकी मुस्कराती है ।

'महवी' लखनवीका शेर है—

कयामत है दिले मजलूमकी आह,
गुजर जाती है जालिम आस्माँसे ।

अर्थात्—अत्याचारपीड़ितके दिलकी आह एकदम कयामतके समान होती है, वह जालिम आह आसमानसे गुजर जाती है । इसपर मुंशी अहमद अली 'शौक'ने इस्लाह दी—

कयामत है दिले मजलूमकी आह,
कहाँ पहुँची गुजर कर आस्माँसे ।

'कहाँ पहुँची'ने शेरका अर्थ अनन्त कर दिया । दीन-दुखीकी आहके पहुँचनेकी कोई सीमा नहीं रखी । बड़ी सुन्दर इस्लाह है ।

हैदराबाद—दक्षिणके स्वर्गीय निजामका 'मतला' है—

चेहरेसे उनके रंग जो टपका अतावका,
क्या हो चला है रंग गुलाबी नकाबका ।

यानी किसी माशूकके चेहरेसे अताब-गुस्सेका जो रंग टपका, उससे उसकी नकाबका रंग गुलाबी होने लगा ! इसपर स्वर्गीय 'दाग'की इस्लाह सुनिये—

छिपता नहीं छिपायेसे चेहरा अतावका,
होता चला है रंग गुलाबी नकाबका ।

कैसी उस्तादाना इस्लाह है ! इसने मतलेकी खूबीको सैकड़ों गुना बढ़ा दिया । क्रोधका चेहरा छिपाये नहीं छिपता, उसका सबूत यह मौजूद है कि नकाबका रंग गुलाबी हो चला है ! क्या बारीकी पैदा कर दी !

'मदाह' फफूंदवीका शेर है—

छेड़ तो देखो अगर होता हूँ मैं सायल कभी,
वो यह कहते हैं कि कोई दूसरा घर देखिये ।

प्रेमी कहता है कि उसकी छेड़खानी तो देखिये, जब मैं प्रार्थी होता हूँ, तो कहता है कि कोई

दूसरा घर देखो ! इसपर ख्वाजा निजाम कादरीकी इस्लाह है—

छेड़ तो देखो अगर होता हूँ मैं सायल कभी,
हँसके फरमाते हैं कोई दूसरा घर देखिये।

'हँसके फरमाने' ने क्या शोखी पैदा कर दी है, और 'छेड़'के साथ शोखीका होना बहुत जरूरी है।

'आगा शायर' देहलवीका शेर है—

इस रंगसे हो कुफ्र-परस्ती तो खूब है,
जुन्नार डालिये तेरे फूलोंके हारका।

यानी यदि इस प्रकारसे कुफ्रपरस्ती (पाखंडपूजा) हो, तो खूब है कि तेरे फूलोंके हारका जनेऊ डालें। इसपर हजरत 'नशतर' जलंधरीकी इस्लाह है—

इस रंगसे हो कुफ्रपरस्ती तो गुल खिलें,
जुन्नार हाथ आये किसी गुलके हारका।

इस्लाहमें मजमून वही बना रहा, मगर शब्दोंने कैसा चमत्कारक सौन्दर्य पैदा कर दिया। 'गुल खिलें' ने सचमुच गुल खिला दिये।

'गनी' इलाहाबादीका शेर है—

फस्ल-गुल आने तो दो फस्ले-बहार आने तो दो,
खुद बखुद खुल जायँगी कड़ियाँ मेरी जंजीरकी।

इसपर नाखुदाये सखुन 'नूह' नारवीने इस्लाह दी—

फस्ल-गुल आने तो दो फस्ले-खिजाँ जाने तो दो,
खुद बखुद खुल जायँगी कड़ियाँ मेरी जंजीरकी।

'गनी' साहबके शेरमें 'फस्ल-गुल' और 'फस्ले-बहार'—एक ही चीजका दो बार जिक्र है, इसलिए 'फस्ले-खिजाँ जाने तो दो' बना दिया। साथ ही 'आने'के लिए 'जाने'की भी जरूरत पूरी हो गयी। बड़ी अच्छी इस्लाह है।

श्री सुखदेवप्रसाद सिनहा 'बिस्मिल' इलाहाबादीका शेर है—

वह शमअ न थी वह बज्म न थी, वह रौनके अहले बज्म न थे,
इक याद दिलानेकी खातिर, अंबार परे-परवाना था।

इसपर हजरत नूहने इस्लाह दी—

वह शमअ न थी वह बज्म न थी, सुबह को अहले बज्म न थे,
बस याद दिलाने की खातिर अंबार परे-परवाना था।

दोनों मिसरोंमें परिवर्तन करनेसे शेर निराशाका चित्र बन गया है। 'बिस्मिल' साहब कहते हैं—वह मोमबत्ती न थी, वह महफिल न थी, महफिलकी रौनक बढ़ानेवाले वे साथी न थे, इक याद दिलानेके लिए पतिंगोंके परोंका ढेर था। 'नूह' साहबने 'सुबह'को बिठलाकर रातके जमघटोंका अवसान प्रत्यक्ष कर दिया। और 'इक'के स्थानमें 'बस' रख देनेसे तो गजब ही कर दिया। उस्तादाना इस्लाह इसीका नाम है।

बिस्मिलका दूसरा शेर है—

समझका फेर है इसको कजा कहने लगी दुनिया,
गिरह जब खुल गयी तरकीब अजमाये परीशाँकी।

अर्थात्—समझका फेर है कि संसार इसे मृत्यु कहने लगा, जब तरकीबसे बँधे हुए शरीरके परमाणुओंकी गाँठ खुल गयी। इसपर 'नूह' साहबकी इस्लाह है—

समझका फेर था इसको कजा कहने लगी दुनिया,
गिरह जब खुल गयी तरकीब अजमाये परीशाँकी।

'कहने लगी' भूतकाल है, इसलिए 'समझका फेर है'के स्थानमें 'समझका फेर था' कर दिया। निःसन्देह बिस्मिल साहबका यह शेर बड़े ऊँचे दर्जेका है, मगर है यह स्वर्गीय चकबस्तके निम्नलिखित सुप्रसिद्ध शेरका भावापहरण, रूपान्तर मात्र—

जिंदगी क्या है, अनासिरमें जहूरे तरतीब,
मौत क्या है, इन्हीं अजजाका परीशाँ होना।

अर्थात्—जीवन क्या है, शरीरके परमाणुओंमें सुश्रृंखलताका प्रकट होना और मृत्यु क्या है, इन्हींका विश्रृंखल होना!

बिस्मिल साहबका एक शेर और है—

सय्यादसे यह कहती है उकताके अन्दलीब,
कर दे कफसमें बन्द हवाए-बहारको।

अर्थात्—बुलबुल सैयादसे उकताकर कहती है कि पिंजड़ेमें बसन्ती वायुका आना बन्द कर दे। इसपर इस्लाह दी गयी—

सय्यादसे यह कहती है घबराके अन्दलीब,
कर दे कफसमें बन्द हवाए-बहारको।

इस स्थानपर 'उकताना' ठीक नहीं था 'घबराना' ही बहुत चुस्त होता है।

बाबू प्यारेमोहन 'आजिज'का शेर है—

क्यों करें गम अबस किसीके लिए,
मौत है एक दिन सभीके लिए।

इसपर शाहिद अली फानी सब्जपोशकी इस्लाह है—

कहते हैं रोयें क्यों किसीके लिए,
मौत है एक दिन सभीके लिए।

इस इस्लाहसे शेरमें रवानी पैदा हो गयी।

उपर्युक्त इस्लाहोंसे पाठकोंको इस बातका कुछ पता चल जायगा कि इस्लाहसे कवितामें कितना सौन्दर्य पैदा हो सकता है, भाषामें कितनी प्रौढ़ता आ सकती है, मुहाविरोंके नगीने कैसे जड़े जा सकते हैं और जबानमें कैसी रवानी और सफाई पैदा की जा सकती है।*

---

* 'माधुरी', वर्ष ९, खण्ड २, संख्या ३, अप्रैल १९३१।

बड़ोंकी हँसी

मनुष्य जानवरोंसे कहीं अधिक विकसित और उच्च कोटिका जीव है, क्योंकि उसे हँसना आता है । जानवर हँसना नहीं जानते । जो व्यक्ति कभी न हँसता हो, उसे किसी घोड़ा-डाक्टर (Veterinary Surgeon) से अपना इलाज कराना चाहिये, अथवा किसी चिड़ियाखाने या पिंजरापोलमें विश्राम करना चाहिये ! वह मनुष्य समाजमें रहनेके योग्य नहीं है ।

हमलोगोंके जीवनमें सैकड़ों हास्यप्रद घटनाएँ रोज ही हुआ करती हैं । यदि जीवनमें हास्य न होता, तो इस दु:खमय संसारमें एक दिन भी रहना दुस्तर हो जाता । बड़े-से-बड़े विद्वानों, फिलासफरों और दिन-रात गम्भीर विषयोंमें निरत रहनेवालोंके जीवनमें भी हास्यकी वातें हुआ करती हैं । वास्तवमें उन्मुक्त हास्य एक दवा है, जो दिमागपर लदे हुए भारी बोझको हलका करने और नयी स्फूर्ति प्रदान करनेमें वहुत लाभदायक सिद्ध होता है । हमारे नेताओं, राजनीतिज्ञों और लेखकोंमें भी हास्यकी कमी नहीं है । महात्मा गांधीका उन्मुक्त हास्य तो चेचक और प्लेगकी भाँति संक्रामक है ! घोर-से-घोर संकटमें, मृत्युका सामना होनेपर भी, उनके हास्यमें कमी नहीं होती । जेलमें रहकर और उपवासके महान् संकटमें भी उनके हास्यके वजटमें एक कौड़ीका भी retrenchment (घटाव) नहीं हुआ !

महात्मा गांधीके हास्यकी बातोंसे सारा संसार अच्छी तरह परिचित है । इसलिए इस लेखमें मैं कुछ अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियोंकी हँसीके कुछ उदाहरण उपस्थित करूँगा ।

मीठा गान

नेपालके वर्तमान मन्त्री-वंशके संस्थापक राणा जंगवहादुर सन् १८५०में इंगलैण्ड गये थे । वे पढ़े-लिखे नाममात्रको ही थे, अंग्रेजीका तो एक शब्द भी न जानते थे । जिस समय वे इंगलैण्ड पहुँचे, उस समय महारानी विक्टोरियाके पुत्र (वर्तमान ड्यूक ऑफ केनाट) उत्पन्न हुआ था । जब वे सूतिकागृहसे निकलीं, तब उन्होंने राणाके सम्मानमें एक राजसी नृत्योत्सव (Royal Ball-dance) किया था, जिसमें वे स्वयं नाची थीं । नेपाली राणा यूरोपियन तहजीब-कायदे और नाचना क्या जानें ! वे एक ओर अपने मुसाहवों और दुभाषिये (Interpeter) के साथ बैठे तमाशा देखते थे और महारानी विक्टोरिया तथा अन्य पचासों लार्ड और लेडियाँ जोड़े बना-बनाकर नाचती और गाती थीं ।

एक बार नाचका चक्कर समाप्त होनेपर महारानी आकर राणाके पास बैठ गयीं और उन्होंने दुभाषियेसे कहा,—"राणासे पूछो, उन्हें हमलोगोंका नाच-गान कैसा लगा ?"

राणाने उत्तर दिया,—"कह दो वहुत अच्छा, वहुत ही मीठा।" महारानीने हँसकर दुभाषियेके द्वारा कहलाया,—जनाव, आप हमारी वोलीका एक शव्द भी नहीं समझते, फिर भी कहते हैं कि गाना वहुत मीठा है !"

राणाने उत्तर दिया,—"महारानीसे कह दो कि चिड़ियोंकी वोली भी कोई नहीं समझता, लेकिन यह सभी कह सकते हैं कि कौन चिड़िया मीठी वोलती है, कौन नहीं !"

मौलाना मुहम्मदअलीकी पोशाक

जव कभी मौलाना मुहम्मदअलीका 'पैन इस्लामिज्म' जोर पकड़ता, तो वे अरवी पोशाक—जुव्वा और दस्तार आदि—पहना करते थे। एक दिन वे इसी पोशाकमें अपने अखवार 'कामरेड'के रिपोर्टरकी हैसियतसे दिल्लीकी लेजिस्लेटिव एसेम्वलीमें गये और प्रेस गैलरीमें जा वैठे। भोजनके समय वैठक स्थगित होनेपर, उनके एक परिचित सदस्य उनके पास आये और उनकी वुर्कानुमा पोशाकपर चुटकी लेते हुए बोले—

"अक्खाह ! मौलाना मुहम्मदअली साहव हैं ? मैंने तो इस वुर्केको देखकर यही समझा था, कि वेगम साहवा भूपाल आ गयीं !"

मौलानाने फौरन ही उत्तर दिया,—"आपकी समझकी वलिहारी है। आपको पहले ही सोच लेना चाहिये कि वेगम साहवा भूपाल एक वड़ी साहसी और शेर-दिल औरत हैं, वे भला इस जनानी मजलिसमें क्यों आने लगीं !"

वड़े हैं

जव पण्डित मोतीलाल नेहरूकी स्वराज पार्टीके विरुद्ध पण्डित मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपत रायने अपनी इंडिपेण्डेण्ट पार्टी संगठित की और कौंसिलों और असेम्बलीमें स्वराजिस्टोंके विरुद्ध अपने उम्मीदवार (candidates) खड़े किये, तव वेचारे वोटर वड़ी द्विविधामें पड़े। वे किसे वोट दें, मालवीयजीके उम्मीदवारको या नेहरूजीके उम्मीदवारको ?

इसी इलेक्शनके दिनोंमें नेहरूजी दिल्ली जाते हुए कानपुर होकर गुजरे। कानपुर स्टेशनपर नगरके कुछ सज्जन स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीके साथ नेहरूजीसे निर्वाचनके सम्वन्धमें वातचीत करनेके लिए गये। वातचीतमें मालवीय-नेहरू-प्रतिस्पर्धाकी चर्चा भी हुई।

कानपुरके एक सज्जनने नेहरूजीकी वृद्धावस्थाको लक्ष्य करते हुए पूछा,—"आप तो मालवीयजीसे वड़े हैं ?"

पण्डित मोतीलालने वहुत गम्भीरतासे उत्तर दिया—"जी हाँ, उम्रमें भी, अक्लमें भी !"

गौहरजानकी तारीफ

किसी जमानेमें कलकत्तेकी गायिका और नर्तकी मिस गौहरजानका नाम भारत-वर्ष भरमें प्रसिद्ध था। उसके पास रूप था, यौवन था, नाचने-गानेकी कला थी, और धन था। सन् १९१० में वह इलाहाबादकी प्रदर्शनीमें गयी थी, जहाँ मनचले शौकीन साठ-साठ रुपयेका टिकट खरीदकर उसका नाच-गान देखते और अपनी आँखों और कानोंकी हविस मिटाते थे।

गौहरजान गायिका होनेके साथ-साथ उर्दूकी गजलें भी बना लेती थी और अपनी समझ-में उर्दू शायरीमें दखल रखती थी। उर्दूके सुप्रसिद्ध शायर अकबर इलाहाबादीका नाम उसने सुन रखा था। इलाहाबादमें रहते समय उसे अकबर साहबसे मिलनेका शौक चर्राया और वह एक दिन मोटरमें बैठकर धड़धड़ाती हुई अकबर साहबके निवास-स्थान 'इशरत मंजिल'में जा पहुँची।

हजरत अकबर अपने समयके उर्दूके सबसे बड़े शायर थे। वे अत्यन्त हास्य-प्रिय और जिन्दा-दिल आदमी थे। बीसवीं शताब्दीमें उनके समान हास्य लिखनेवाला कवि उर्दूमें ही नहीं, वरन् भारतवर्षकी किसी भी अन्य भाषामें नहीं हुआ।

जिस समय गौहर उनके यहाँ पहुँची, अकबर साहब अन्दर थे। नौकरने खबर दी। इस विचित्र आगन्तुक (strange visitor)का आगमन सुनकर अकबर साहब आश्चर्य करते और चकराते हुए बाहर निकले और उन्होंने गौहरजानकी प्रशंसामें यह शेर पढ़ा—

"जहाँमें कौन मुकाबिल है आज गौहरके ?
दिया खुदाने है सब कुछ सिवाय शौहरके !"

कब्जकी दवा

'विशाल भारत'—सम्पादक पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी चार वर्षतक साबरमती आश्रममें रहे थे। वहाँ रहते समय उन्हें प्रायः कब्जकी शिकायत रहा करती थी, इसलिए वे प्रतिदिन सवेरे टहलनेके लिए चले जाते थे और महात्माजीकी प्रार्थनामें सम्मिलित न हो पाते थे। जब कोई उनसे पूछता,—"चतुर्वेदीजी ! आप प्रार्थनामें दिखाई नहीं देते ?" तो वे उत्तरमें प्रश्नकर्तासे पूछते,—"कब्ज दूर करनेके लिए कौन चीज अधिक लाभदायक है, प्रार्थना करना या टहलना ?"

चतुर्वेदीजीका यह प्रश्न पेटेण्ट हो गया था। एक दिन श्री देवदास गांधीकी उपस्थितिमें फिर किसीने उनसे प्रार्थनामें सम्मिलित न होनेका कारण पूछा। चतुर्वेदीजीने आदतके अनुसार वही बँधा हुआ उत्तर दिया,—"कब्ज दूर करनेके लिए क्या अधिक आवश्यक है, प्रार्थना करना या टहलना ?"

श्री देवदास गांधीने फौरन हँसकर उत्तर दिया,—"आपको जैसा कब्ज हो। शारीरिक कब्जके लिए टहलना; मानसिक कब्जके लिए प्रार्थना करना!"

उस दिनसे चतुर्वेदीजीने उक्त प्रश्न पूछना छोड़ दिया।

किसको सलाम

कलकत्ता हाई-कोर्टके जज और भारतके प्रकाण्ड विद्वान् स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जी आव-हवा वदलनेके लिए मधुपुर गये थे। उस समय वे हाई-कोर्टके स्थानापन्न चीफ़ जस्टिस थे। मधुपुरसे लौटते समय वे शामको ट्रेन आनेके घण्टाभर पहले ही स्टेशनपर पहुँच गये और कुछ बंगाली मित्रोंके साथ प्लेटफार्मपर टहलने लगे। इतनेमें मधुपुरका एक यूरोपियन सब-डिवीजनल मैजिस्ट्रेट आया। उसने वेटिंग रूमसे एक आरामचौकी निकलवायी और प्लेटफार्मपर उसपर टाँग फैलाकर लेटकर हाथ भर लम्बा चुरुट पीने लगा।

सर आशुतोष वड़े सरल स्वभावके थे, वे हमेशा बहुत सादे कपड़े (मामूली कुर्ता-धोती) पहनते थे। टहलते हुए कई वार यूरोपियन मैजिस्ट्रेटके पाससे निकले, परन्तु वह उसी तरह वेअदवीसे चुरुट पीता रहा।

आध घण्टे वाद सर आशुतोषका अर्दली, उनका असवाव लेकर आया। अर्दलीकी लाल वनातकी वर्दी और जरीकी चपरास देखकर मैजिस्ट्रेटको कौतूहल हुआ। उसने अर्दलीसे पूछा कि यह किसका असवाव है? जब उसे मालूम हुआ कि असबाव कलकत्ता हाई कोर्टके चीफ जस्टिसका है और टहलनेवाले सज्जन स्वयं चीफ जस्टिस हैं, तव जल्दीसे चुरुट फेंककर उठ खड़ा हुआ और सर आशुतोषके सामने जाकर लम्बा सलाम ठोंका।

मुकर्जी महाशयने उदासीन भावसे सलामका जवाव दिया और उससे बात किये विना उसी प्रकार टहलते रहे। मैजिस्ट्रेट हटकर एक ओर बहुत अदवसे खड़ा हो गया।

मुकर्जी महाशयने अपने साथियोंसे कहा,—"जानते हैं, इसने किसे सलाम किया? यह मेरा सम्मान नहीं है, यह मेरे अर्दलीका सम्मान है!"

हिसाव-किताव बरावर

लगभग चालीस वर्ष पहले एक अमेरिकन विद्वान् डॉक्टर घूमते-फिरते लखनऊ आये और वहाँ उन्होंने एक व्याख्यानमाला (Series of Lectures) दी। जिस दिन उनका अन्तिम व्याख्यान था, उसदिन सभापतिका आसन लखनऊके बिशपने ग्रहण किया था।

डॉक्टर महोदयका हिन्दुस्तानका ज्ञान बहुत थोड़ा था और हिन्दुस्तानी धर्मोंके विषयमें उनके विचार ठीक मिस मेयोकी भाँति थे। अपने अन्तिम व्याख्यानमें वे अपनी इस नीच भावनाको न दवा सके और श्रोताओंको धन्यवाद देते हुए उन्होंने कहा,—

"Gentlemen, you have given me a kind and patient hearing, so I don't want to say anything against your dirty, filthy and abominable religion."

अर्थात्—"सज्जनो ! आपने कृपा करके धैर्यपूर्वक मेरी बातें सुनी हैं, इसलिए मैं आपके गन्दे, कुत्सित, जघन्य धर्मके विरुद्ध कुछ नहीं कहना चाहता।"

कलकत्ता कांग्रेसके सभापति स्वर्गीय पण्डित विष्णुनारायण दरको अमेरिकन डॉक्टरके ये विषैले उद्‌गार वहुत वुरे लगे, और उन्होंने डॉक्टरको श्रोताओंकी ओरसे धन्यवाद देते हुए कहा :—

"Though the Doctor belongs to that dirty, filthy and abominable Christianity, still we are grateful for his learned discourses."

अर्थात्—"यद्यपि डॉक्टर महोदय गन्दे, कुत्सित और जघन्य ईसाई मतके अनुयायी हैं, फिर भी हमलोग उनके विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानोंके लिए कृतज्ञ हैं।"

सभापति विशप महोदयने अपनी अन्तिम वक्तृता (closing remarks) में कहा,—

"Though as a Christian I should have taken objection to certain words of the previous speaker, I find that the accounts are squared to the very fraction of a pie. So there remains nothing to be shown in the balance-sheet."

अर्थात्—"यद्यपि ईसाई होनेके नाते मुझे पूर्व वक्ता (पण्डित विष्णुनारायण दर) के कुछ शव्दोंपर आपत्ति करनी चाहिये; परन्तु मैं देखता हूँ कि दोनों ओरसे पाई-पाईका हिसाव-किताव बरावर हो गया है, इसलिए चिट्ठे (balance-sheet) में दिखलानेके लिए कुछ रोकड़ वाकी रह ही नहीं जाती !"

अच्छा उदाहरण

दीनवन्धु सी०एफ० एण्ड्रूजने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर लोक-सेवाका व्रत ले रखा है। महात्माजी और उनके परिवारसे एण्ड्रूज साहवका कितना प्रेम है, यह सभी जानते हैं। एक दिन उन्होंने गांधीजीके पुत्र श्री रामदास गांधीसे हँसकर कहा—

"Ramdas, now you should marry." (रामदास अव तुम्हें विवाह करना चाहिये।")

रामदासने उत्तर दिया—"Mr. Andrews, but you don't set a good example !" (मि० एड्रूज, परन्तु आप अच्छा उदाहरण तो उपस्थित नहीं करते !)

यह तो हुआ भारतके बड़े आदमियोंका हास्य। अब कुछ विदेशी प्रसिद्ध पुरुषोंकी हँसीकी बानगी देखिये :—

चोखा जवाब

भूतपूर्व भारत-मन्त्री स्वर्गीय लार्ड वर्केनहेड बड़े चलते-पुर्जे और हाजिर-जवाब आदमी थे। वे कभी इस बातका मौका नहीं देते थे कि कोई उन्हें चुभता हुआ जवाब दे जाय। लेकिन एक बार एक बहुत मामूली आदमीने उन्हें भी नीचा दिखाया।

उस जमानेमें वे लार्ड नहीं हुए थे। तब वे एफ० ई० स्मिथ ही थे। वे वकालत करते थे। गवाह उनकी कड़ी जिरहसे घबरा गया था।

उन्होंने गवाहसे पूछा,—"तुमने कभी शादी की है ?"

"जी हाँ, एक बार," गवाहने उत्तर दिया।

"तुमने किसके साथ शादी की थी ?"—वकील साहबने तेजीसे सवाल किया।

"ऐं-ऐं-ऐं—एक औरतके साथ"—गवाहने घबराते हुए कहा।

वकीलने बिगड़ते हुए गरजकर कहा,—"हाँ, हाँ, औरतहीके साथ शादी की होगी, तुमने कभी किसीको मर्दके साथ शादी करते हुए भी सुना है ?"

"जी हाँ, मेरी बहनने एक मर्दके साथ शादी की है!"—गवाहने शान्त भावसे उत्तर दिया।

चन्दा

इंगलैण्डके सुप्रसिद्ध लेखक, नाटककार और फिलासफर जार्ज बर्नार्ड शाका हास्य सारे संसारमें प्रसिद्ध है। उसकी कोई भी बात मजाकसे खाली नहीं होती।

वह किस तरहकी बातें करता है, उसकी एक बानगी सुनिये! इंडिपेंडेंट लेबर पार्टीने एक आर्ट्स गिल्ड खोला था, जिसके सदस्य होनेका वार्षिक चन्दा अढ़ाई (२॥) शिलिंग था। गिल्डको आर्थिक सहायताकी आवश्यकता थी, इसपर बर्नार्ड शाने २५ पौंड सहायता भेजते हुए लिखा—

"२५ पौंड भेजता हूँ, कृपा करके मेरा दो सौ वर्षका अग्रिम चन्दा जमा कर लीजिये।"

मिस्टर माइल्स मैलेसनने शाके चन्देकी पहुँच स्वीकार करते हुए लिखा,—"मैंने आपका चन्दा जमा करके तारीख नोट कर ली है, जिस दिन आपका चन्दा समाप्त होगा, आपको सूचना दूँगा!"

सोनेका समय

सन् १९१९ में यूरोपियन महायुद्धकी समाप्तिपर वार्साईमें जो सन्धि-कान्फ्रेन्स हुई थी, उसमें सभी यूरोपियन राष्ट्रों तथा अमेरिकाके प्रतिनिधि मौजूद थे। फ्रान्सके

प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मोशियो क्लेमेंशो सभापति थे । क्लेमेंशो साहव ठीक वारह वजे दोपहरको भोजन करते थे । इसलिए उन्होंने वारह वजे कान्फ्रेंसकी वैठक स्थगित करते हुए कहा,—

"अव प्रश्न यह है कि भोजनके वाद सभा फिर कै वजे एकत्रित हो ?"

इटलीके प्रतिनिधि सिगनर ओरलैण्डोने कहा,—"भोजनके वाद वहुत जल्द ही वैठक शुरू न होनी चाहिये क्योंकि भोजनके वाद मैं कुछ देर आराम करना चाहता हूँ ।"

अमेरिकाके प्रतिनिधि मिस्टर लैनसिंग वोले,—"भोजनके वहुत देर वाद सभा शुरू न होनी चाहिये, क्योंकि मैं चाहता हूँ, कि रातके भोजनके पहले कुछ आराम करनेका समय मिले ।"

क्लेमेंशो साहवने अपनी कुर्सीपर पीठ टेकते हुए कहा,—"सज्जनो, सभा फिर तीन वजे आरम्भ होगी, इस प्रकार सिगनर ओरलैण्डोको भोजनके वाद सोनेका समय मिल जायगा, मिस्टर लैनसिंगको रातके भोजनके पहले सोनेका समय मिल जायगा और लार्ड वालफोर (व्रिटिश प्रतिनिधि) और मुझे सभाके वीचमें सोनेका समय मिल जायगा ।

पुराना परिचय

इंगलैण्डके लोग शिक्षित हैं । उनमें अखवारोंका वड़ा प्रचार है । वहाँ प्रत्येक व्यक्ति —अमीर, गरीव, मजदूर, कुली-कवाड़ीतक—राजनीतिमें दिलचस्पी रखता है और अपने देशकी राजनीतिक प्रगतिसे पूर्ण परिचित होता है । फिर भी वहाँ कैसे-कैसे लोग मिल जाते हैं, यह वात इस किस्सेसे प्रकट होगी ।

कंसर्वेटिव दलके नेता मिस्टर स्टैनली वाल्डविन जव इंगलैण्डके प्रधान मन्त्री थे, तव एक व्यक्तिसे उनकी मुलाकात हुई । उस व्यक्तिने उन्हें गौरसे देखकर कहा,—

"तुम्हारा चेहरा मुझे परिचित मालूम पड़ता है ।"

"जी, मेरा नाम स्टैनली वाल्डविन है ।"

"हाँ, हाँ, अव मुझे याद आ गया । अच्छा, क्यों जी, आजकल तुम करते क्या हो ?"

———

: ३८ :

वर्माजीकी कविताएँ

पहाड़ी नदीसे

(डॉ० चतुष्पाद डी० एम० आई०)

नदिया मत डोले इतराती,
भरी गर्वसे छलक छलककर क्यों चलती मदमाती?

गिरि पथ है औ' नयी जवानी ;
आवदार है अवतक पानी ;
खाती है ठोकर मनमानी ;
शर्म न तुझको आती,
नदिया मत डोले इतराती ।

कितनोंको तू पकड़ डुबाती ;
कितनोंको पथभ्रष्ट बनाती ;
कितनोंको सँग ले बह जाती ;
फिर भी नहीं अघाती ;
नदिया मत डोले इतराती ।

अरी सँभल जा अभी सवेरा ;
कुछ कुछ दामन साफ है तेरा ;
है रस्तेमें विघ्न घनेरा ;
घरमें बैठ लजाती ;
नदिया मत डोले इतराती ।

जब नाले पकड़ेंगे दामन ;
गदला हो जावेगा यह तन ;
फिर न रहेगा जोर न यौवन ;
होगी कीचड़ खाती ।

मत रख तू वर्षाकी आशा ;
दो दिनका यह खेल तमाशा ;
(बूंद पड़ी औ' घुला बताशा) ;
कड़ी धूप पलटेगी पासा ,
घूमेगी बिललाती ,
नदिया मत डोले इतराती ।

आगा-पीछा बिना विचारे ;
पतन-मार्गके चली सहारे ;
यदि तू पहुँची जलधि-किनारे ,
नहीं लौट फिर पाती ;
नदिया मत डोले इतराती ।

नदियोंका वह लोलुप नागर ,
तुझे अंकमें भरकर सागर ,
चूर्ण करेगा सब मद मत्सर ;
रह जाये पछताती ;
नदिया मत डोले मदमाती ।

खूब समझ रख तज नादानी ;
वह मेटेगा नाम निशानी ;
सिर्फ बचेगा खारा पानी ;
क्यों निज नाम डुबाती ;
नदिया मत डोले मदमाती ।

सर जिम बुखार आ रहे हैं आज डाकसे

अल्ला मियाँने तार यह भेजा तपाकसे,
सर[१] जिम[२] बुखार आ रहे हैं आज डाकसे।

हो बाल-बाल थे खड़े रोओंके सन्तरी,
मुद्दतमें आ रहे हैं हुजूर इत्तिफाकसे।

नथुनोंके गेट[३] का रहे ट्राफिक[४] एक्रास[५] बन्द,
बागी सुड़क न जायँ उन्हें अपनी नाकसे।

रग-रगका पुलिस करती रहे धूमसे परेड[६],
हों हाथ-पैर ठंडे डरे खौफ़नाकसे।

लेफटेण्ट[७] ब्लड[८] दिमागका करते रहें पैट्रोल[९],
औसान रहें घूमते मानिन्द चाकसे।

हजरतकी आवरीने तहलका मचा दिया,
आहे फुगाँ निकलने लगी मुँह व नाकसे।

मैंने जो स्मगल[१०] किया हर्रो सनाहको,
सत्ते गिलोकी शीशी उठायी जो ताकसे;

वाया[११] डिरेन[१२] भागे वह इस धूमधामसे,
तशरीफ यहाँ लाये मियाँ जिस तपाकसे॥

---

१. Sir, २. Jim, ३. Gate, ४. Traffic, ५. Across, ६. Parade, ७. Lieutenant, ८. Blood, ९. Patrol, १०. Smuggle, ११. Via, १२. Drain.

वर्माजीकी छींटाकशी

सर्दी

कट कट कट कट दांत बोलते
थर-थर कंपता सारा तन,
ऐसी सर्दी में खलता है,
मित्रो, एकाकी जीवन।

बेकारों का कौन ठिकाना क्या पाये क्या खायेगा?
कोई निठुर भला क्या जाने कहाँ शाम को जायेगा?

दवा

नदियों के ताज़े पानी में
डुबकी अगर लगाओ नित्य,
सर्दी जाय, रंज भागेगा,
मन हो जायेगा कृतकृत्य।

श्री व्रजमोहन वर्मा छींटाकशीमें न अपनेको बख्शते थे, न गैरको। उपर्युक्त 'सर्दी' शीर्षक पदमें उन्होंने अपने एकाकी जीवनपर व्यंग किया है। परवर्ती दोनों पदोंमें उन्होंने व्यंगका निशाना साधा है पं० बनारसीदास चतुर्वेदीपर।

वर्माजीका एक पद्यानुवाद

भारत माता

महात्मा गांधीने दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रह संग्रामका श्रीगणेश करते हुए ट्रान्सवाल-की ओर जो ऐतिहासिक कूच किया था, उसमें दो बालक मर गये थे।

इन बच्चोंकी मृत्युपर दीनबन्धु श्री सी० एफ० ऐण्ड्रूजने अंग्रेजीमें एक हृदय-द्रावक कविता सन् १९१४के माडर्न रिव्यूमें प्रकाशित की थी। मूल अंग्रेजी कविता-सहित श्री व्रजमोहन वर्मा कृत पद्यानुवाद यहाँ प्रकाशित है।

BHARAT MATA	भारत माता
Slowly as shadows lengthened	मन्द चाल, अस्ताचल वेला,
Women and tender child,	माता औ' बालक सुकुमार
Sharing with men each hardship	पुरुषोंके सँग कष्ट झेलते
Struggled accross the wild.	करते हैं जंगलको पार।
Weary and worn, at night fall	निशिमें क्लान्त शिथिल हो लेटे,
On the hard ground they lay.	शय्याको थी कड़ी जमीन।
But two were cold and lifeless	किन्तु भोरसे पहले ही दो
Before the dawn of day.	हुए ठिठुरकर प्राण-विहीन।
Two children, mute with anguish	मूक वेदनासे माताने
Their mothers saw them die,	देखा निज बच्चोंका अन्त,
While all the stars in silence	टुकुर टुकुर निस्तब्ध देखते
Watched from the silent sky.	थे नभसे नक्षत्र अनन्त।
But the mother, the great mother,	पर प्यारी माताने उनको
She took them to her breast.	हृदय लगाकर किया दुलार;
She kissed their young heads gently	मृदुल भावसे नन्हा मस्तक
And folded them to rest.	चूम सुलाया अन्तिम बार।
Dear unknown Indian children,	भारतके अज्ञात बालको,
Mothers so brave so true,	वीर जननि हे अम्ब महान्,
All we who love the mother,	हम सब जिनमें मातृ प्रेम है
We love and worship you.	देते तुम्हें भक्ति सम्मान।

परिशिष्ट—१

वर्माजीके कुछ पत्र

यह पत्र पं० वनारसीदास चतुर्वेदीजीके अनुज श्री रामनारायण चतुर्वेदीको लिखा गया था —

१७-१०-३५

प्रिय पटेजी

प्रणाम,

आपको पत्र लिखने बैठनेपर कविताके गुण अनायास ही आने लगते हैं। देखिये न 'प्रिय पटेजी, प्रणाम'में ही अनुप्रास कैसे आ कूदा।

मौलाना अब्दुल हक पण्डितजीसे मिलनेके लिए वहुत उत्सुक हैं। उनका पत्र साथ भेजता हूँ। पण्डितजीके आते ही उन्हें दे दीजियेगा। जहाँतक हो सके वे मौलाना साहबसे दिल्ली या हापड़में मिल लें। वाकी सब ठीक है। आपको शायद मालूम ही होगा कि मैं ११ अगस्तसे १८ सितम्बरतक छुट्टीपर था। इस बीचमें बर्माकी सैर कर डाली। रंगून, पेगू, मांडले, मेम्यो, पगान आदि जगहें देख डालीं। डेक यात्राका वृत्तान्त आपको अक्तूवरके 'विशाल भारत'में 'खुदाईका मास्टर पीस' लेख मिल जायगा।

वर्मा जाते वक्त चतुर्वेदीजी तथा अन्य मित्र सब मेरी यात्राके उद्देशपर शक करते थे। सब कहते थे कि अकेले जा रहे हो, दुकेले होकर लौटोगे।

संक्षेपमें :—

"सबके मन सन्देहका बहता यही प्रवाह,
वर्माजी बरमा चले, वरमालाकी चाह।"

लेकिन मैं अकेला ही गया था और अकेला ही लौट आया। अब यार लोग बर्मा निवासियोंकी मूर्खतापर कहते हैं :—

"वर्माजी वरमातक भटके, पर न मिली वरमाला;
बरमी सब बुद्धू ही निकले बना न कोई साला।"

खैर, मेरी बात तो जैसी-तैसी रही, मगर रंगूनमें मुझसे कई आदमियोंने बताया कि हमारे पुराने दोस्त लाला पंडित मुंशीलाल दुलारे भार्गव गत वर्ष बड़े जोर शोरसे रंगून जानेवाले थे, किन्तु बेचारे देवपुरस्कारके चक्करमें पड़कर न जा सके। यह पूछनेपर कि बरमाको तो ब्रिटिश सरकारने सन् १८८७ में ही फतह कर लिया था, अब भार्गवजीके वर्मा अभियान

(Expedition) का उद्देश क्या है, मालूम हुआ कि रंगूनके एक पंजावी आर्य-समाजी सज्जनकी अविवाहिता पुत्रीको देखनेके लिए भार्गवजी पधारनेवाले थे।

आपको मानना पड़ेगा कि मेरी 'दुलारी'ने भार्गवजीके मनमें पंजाविनका जो taste create किया है, वह अभीतक मरा नहीं है !

आशा है आप अच्छी तरह होंगे।

विनीत
व्रजमोहन वर्मा

पण्डित वनारसीदास चतुर्वेदीजीके अनुज श्री रामनायाण चतुर्वेदीको[1] लिखा गया दूसरा पत्र—

विशाल भारत कार्यालय — १२०।८ अपर सरकूलर रोड
कलकत्ता ३–११–३५

प्रिय पटेजी,

प्रणाम,

चतुर्वेदीजी अपनी laziness में ऐसी वुरी तरह फँस गये हैं कि अनेक वार कहने-पर भी उन्होंने कामताप्रसादजीकी मृत्युकी खवर अवतक रेलवेको नहीं भेजी। रेलवेवालोंने अव पुलिसके जरिये इटावेसे उनकी खवर दर्याफ्त की है। आप कृपा करके रामो वहिनकी ओरसे एक दरखास्त District Traffic Superintendent, E. B. Ry, Sealdah के नाम फौरन भेज दीजिये जिसमें लिख दीजिये कि कामताप्रसादजीकी मृत्यु हो गयी। उनके Provident fund का वैलन्स दे दिया जाय। देर होनेसे पैसा मिलनेमें दिक्कत होगी।

विनीत
व्रजमोहन वर्मा

अर्जीमें यह भी लिख दीजिये कि आफिसमें कामताप्रसादजी worked too hard and as a result of hard work developed Kalazar which caused his death, so he is entitled to gratuity, he has got children who are to be supported.

कामताप्रसादजीके वक्स आदि देखिये रेलवेकी कोआपरेटिव सोसाइटीके कई शेयर उनके पास थे। वे वापस हो सकते हैं और उनका रुपया मिल सकता है अथवा उनका डिविडेंड मिल सकता है।

---

१. श्री रामनारायण चतुर्वेदी वहुत ही विनम्र, सुशिक्षित और प्रतिभासम्पन्न नवयुवक थे। स्वल्प वयमें ही वे प्रोफेसर हो गये थे। साहित्यके लिए उन्होंने अपनी प्रतिभाके जौहरका खजाना खोला ही था कि दैव-दुर्विपाकसे अकस्मात् उनका स्वर्गवास हो गया।

—श्यामसुन्दर खत्री

श्री हरिजी गोविलके नाम पत्र—

विशाल भारत, कलकत्ता

प्रिय गोविलजी,

२४–३–३७

प्रणाम,

जिबराल्टरसे आपका कार्ड मिला। कृतज्ञ हूँ। विजयवर्गीयजीने लिखा है कि मामूली तस्वीरोंका दाम २०) (या आठ-नौ डालर) और अच्छी तस्वीरोंका दाम ३०-३५) या बारह, चौदह डालर होना चाहिये। यह उनकी Net price है। इसके ऊपर बेचने-वाले अपना कमीशन जोड़ लें। विजयवर्गीयको इतना मिलना चाहिये।

आपका लेख विशाल भारतमें नहीं निकल सका। चूँकि आपके टाइपमें इई, उऊ, एऐ आदि अक्षरोंका काम सिर्फ अ से लिया गया है, इसलिए एक पेज कम्पोज करनेमें ही सारे अ अक्षर लग गये। 'अ' की कमीसे पूरा लेख कम्पोज न हो सका। अब मैं सिर्फ एक पेजका लेख लिखकर उसे ही उस टाइपमें कम्पोज कराऊँगा।

आशा है आप अच्छी तरह पहुँच गये होंगे। श्रीमती गोविलको मेरा प्रणाम कहियेगा।

आपका

व्रजमोहन वर्मा

श्री हरिजी गोविलके नाम—

256 Central Avenue
Calcutta 25/10/37

श्रीयुत गोविलजी,

प्रणाम,

आपका पत्र आया था, जिसका उत्तर आज तीन महीने बाद दे रहा हूँ, सो भी मुरदा कमजोर हाथोंसे। आपका पत्र आनेके बाद आठ-दस दिनके बाद ही मुझे Typhoid हो गया और आज ढाई महीनेंसे उसीमें चारपाईपर लेटा हूँ। पिछले बृहस्पतिवारको ६३ वें दिन बुखार उतरा। लेकिन इतना कमजोर हूँ कि डेढ़ महीनेंसे कममें काम करनेके लायक न हूँगा। मुझे बड़ा खेद है कि मैं इस बीमारीके कारण आपकी कोई सेवा न कर सका।

26/10/37

आपका काम खतम हो गया या नहीं? आप कबतक आवेंगे? क्या आपने इस बीचमें लाला पद्मपतिजी सिंहानियासे पत्र व्यवहार किया है? पद्मपतिजीके पिता लाला कमलापतिका जो आपके सामने बहुत बीमार थे स्वर्गवास हो गया। पिताकी मृत्युपर पद्मपतिने अन्य दानोंके साथ ७५०००) Non-Hindi provinces में हिन्दी-प्रचारके लिए दान दिये हैं। आपने यदि उनके साथ पत्र व्यवहार न रखा हो, तो अब फौरन जारी कर दीजिये।

२७–१०–३७

यह चिट्ठी मैं Sick-bed से आज तीन दिनसे लिख रहा हूँ। आज इसे पूरा कर दूंगा। मुझे दो चीजें चाहियें, क्या आप अपने साथ ला सकेंगे ? एक तो मैं कोई बहुत बढ़िया-सा Shaving set चाहता हूँ, जिसमें सेफ्टीरेजर, शीशा, ब्रुश, सेविंगस्टिक, नेल कटर छोटी कैंची वगैरह शेविंगका सारा सामान हो। बर्लिन या वीयनासे इस तरहके बहुत बढ़िया set पन्द्रह-बीस शिलिंगमें आ जाते हैं। दूसरे मैं एक Writing box या Writing case चाहता हूँ। Writing Box या case से मेरा मतलब यह है कि कोई ऐसा बक्स या केस जिसमें कलम, दवात, स्याही, पेंसिल, निब, गोंदकी शीशी, पिन, लेटर पेपर, लिफाफे, कार्ड, विजिटिंग कार्ड, स्टैम्प, स्टैम्प भिगोनेवाला रोलर, कैंची, चाकू वगैरह हों तथा foolscap size तकके कागज आ सकें। यानी पढ़ने-लिखनेकी जरूरतका सारा सामान उसमें हो।

आप जब आवें तो ये दोनों चीजें अपने साथ लेते आवें। बहुत अनुगृहीत हूँगा। आशा है आप अच्छी तरह होंगे।

My respectful Namaskar to Mrs Govil.

आपका
व्रजमोहन वर्मा

P. S. मैंने शेविंग सेट और Writing case के लिए आपको लानेको लिख तो दिया, लेकिन बादमें एक खयाल आया। ये चीजें बर्लिन या आस्ट्रियामें एकसे एक उम्दा और सस्ती मिला करती हैं। जान पहिचानके कई व्यक्ति लाये हैं। मालूम नहीं अमेरिका-में इनके दाम कैसे हैं। अगर यूरोपके मुकाबिलेमें वहाँ ये चीजें बहुत महँगी हों, तो न लाइ-येगा, और यदि दामोंमें ज़्यादा फर्क न हो तो जरूर लानेकी कृपा करें।

पत्रका जवाब घरके पतेसे (256 Central Avenue, Calcutta) दें।

आपका
व्रजमोहन वर्मा

वर्माजीके अन्तिम पत्रका ब्लाक––

256 Central Avenue
Calcutta 21.10.[illegible]

श्रीयुत पंडितजी
प्रणाम्

६-७ दिन बाद मेरा बुखार उतरा। लेकिन पेट की शिकायतें अभी तक बनी हैं। उन्हें दूर होने में अभी [illegible] लगेगा। परसों पथ्य मिला है। कमजोरी इतनी है कि शायद [illegible] तक मैं कुछ चलने फिरने काबिल होऊँ। यदि २० नवम्बर तक [illegible] कि सीढ़ियाँ उतर सकूँ तो किसी को साथ लेकर एक महीने के लिए change को जाऊँगा। अभी मेरे लिए change बहुत जरूरी बता[illegible]। ऐसी हालत में मैं २० दिसम्बर से पहले office join नहीं कर सकता। आपको दिसम्बर के [illegible] तक आना ही है। कृपा करके [illegible] १५ नवम्बर तक यहाँ आ जाएँ, और १५ दिन का [illegible] दिसम्बर के अंक का [illegible] दें। जनवरी का [illegible] लूँगा। आपके आये बिना [illegible] न होगा। कृपा करके विशाल भारत [illegible] इतनी कृपा जरूर करें। जनवरी का नम्बर [illegible] इसलिए यह चाहता हूँ कि दिसम्बर का अंक अच्छा निकले। [illegible]

आपका
ब्रजमोहन [illegible]

श्री ब्रजमोहन वर्माका यह अन्तिम पत्र था जिसे उन्होंने अत्यन्त कमजोरीकी अवस्थामें काँपते हाथसे पं० बनारसीदास चतुर्वेदीको, जो उस समय टीकमगढ़में थे, लिखा था। पत्रसे स्पष्ट है कि उस नाजुक हालतमें भी उनकी चिन्ताधारा प्रवल प्रवाह विशाल भारतकी ओर ही था।

वर्माजीके प्रति कुछ श्रद्धांजलियाँ

व्रजमोहन वर्माकी स्मृतिमें

जा छिपे किस ठौर विसरा प्रियजनोंके शोकको तुम ,
हे विनोदी, हास्य-मुखरित कर रहे किस लोकको तुम !
याद कर-करके तुम्हें हम रुधिरके आँसू वहाते ,
क्यों न आकरके हमें तुम आज हो धीरज वँधाते ?
हाय ! वर्माजी ! न जीवनमें कभी जितना हँसाया ,
आज मर करके कहीं उससे अधिक तुमने रुलाया !

मातृभाषाका भरा भंडार सतत सयत्न तुमने ,
भारतीके चरणपर अनमोल रखे रत्न तुमने ।
क्षीण तनुकी स्वल्पता ले काम जो तुमने किया है ,
दैव-पीड़ित मनुजताका शीष ऊँचा कर दिया है ।
कौन है सहृदय नहीं जो मुग्ध प्रतिभापर तुम्हारी ,
पायगी साहित्यकी वेदी कहाँ ऐसा पुजारी !

देहका वैभव रहा कुछ अस्थिपंजर मात्र दुर्वह ,
निवल टाँगोंपर पड़ा था कठिन जीवन भार दुस्सह ,
अमित रोगोंके निरन्तर युद्धसे था जर्जरित तन ,
देख करुणा भी जिसे होती रही व्याकुल, विकल-मन ,
किन्तु निज दारुण दशापर ध्यान कव तुमने दिया था ,
हास्यका पीयूष ही तुमने पिलाया औ' पिया था ।

मूर्तिमान विनोद थे, आनन्दके अवतार थे तुम ,
प्राण मित्रोंके तथा सहृदयजनोंके हार थे तुम ।
आपदा क्या-क्या न आयी पर न माथेपर पड़ा वल ,
कुसुम-से खिलते रहे वे अधर हास्य-प्रफुल्ल-चंचल ।
मृत्यु आयी देखकर भी मुदित मुद्रा थी सुमुखकी
सीख ले कोई तुम्हींसे दुःखमें अनुभूति सुखकी ।

इस अकिंचनपर तुम्हें जो स्नेह था किससे वताऊँ,
जानता उसको हृदय, मैं चीरकर कैसे दिखाऊँ?
उऋण हो सकता नहीं तुमसे कभी मैं हे सुहृद्वर!
अर्चना तव मूर्तिकी करती रहेगी स्मृति निरन्तर।
शक्ति थी कैसी विलक्षण, जो तुम्हारे पास आया—
तुम हुए उसके, उसे तत्काल ही अपना वनाया।

मृत्यु, तेरा राज्य इस संसारमें सर्वत्र छाया,
जव जिसे चाहा, उसे असमय-समय धरकर दवाया।
हाय! वर्माजी विचारेपर दया किस भाँति आती!
विश्वके सन्तापसे तेरी फटी कव क्रूर छाती?
सफल यद्यपि है मिटानेमें उन्हें जग-निलयसे तू,
पर मिटा सकती नहीं उनको हमारे हृदयसे तू।

—श्यामसुन्दर खत्री

× × ×

वर्माजीकी प्रिय स्मृतिमें

स्वर्गीय पण्डित वालदत्त पाण्डेय, कलकत्ता

स्वतन्त्रताके हेतु प्राणोत्सर्ग करनेवाले वीर वुन्देलोंके यशःशाली वुन्देलखण्डके अन्तर्गत एवं उन्हीं हुतात्माओंकी युद्ध-क्रीड़ास्थली खरस्रोता वेत्रवतीके किनारे, महिमामयी महारानी लक्ष्मीवाईकी अन्तिम संगिनी पुण्यश्लोका कालपी नगरी अवस्थित है। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके समयमें वहाँका खजाना एक खत्री परिवारके हाथमें था, जिसके वंशज वहाँ आज भी वसे हुए हैं। इसी परिवारमें हिन्दी-साहित्यके मनीषी स्वर्गीय वावू कृष्ण वलदेव वर्माने जन्म लिया था।

कृष्ण वलदेवजीके घरके कुछ लड़के व्यापारार्थ कलकत्ते आये और उनका व्यापार खूव चमका। कृष्ण वलदेवजी भी दार्शनिकप्रवर वावू भगवान्दासके सभापतित्वमें होनेवाले हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके अधिवेशनके समय कलकत्ते आ गये। वे स्वागत-समितिके प्रधान मन्त्री वनाये गये। सम्मेलनके अधिकारियोंकी इच्छा थी कि आचार्य द्विवेदीजी सभापति वनाये जायँ। लोगोंकी यहाँतक भी इच्छा थी कि आवश्यकता पड़े तो, दौलतपुरतक इस निमित्त यात्रा की जाय। इसी सम्वन्धमें पूज्य वर्माजीसे इन पंक्तियोंके लेखकको मिलनेका सौभाग्य मिला। फिर तो वह वर्माजीका पूर्ण कृपापात्र

बन गया। वर्माजी बड़े ही सहृदय एवं सरस हृदय महानुभाव थे। उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। उनमें प्रतिभा थी। काव्य और इतिहासमें अच्छी गति थी। काव्य-चर्चा उनका व्यसन था। कविताके तो वे खजाने थे। चन्दसे लेकर मैथिलीशरण-जीतकके एक नहीं, अनेक छन्द उन्हें कण्ठस्थ थे।

सुकिया स्ट्रीटवाला वह मकान, जिसमें वे अपने परिवारवर्गके साथ रहा करते थे और जिसे उनके लड़कोंने अपने विभवसे वैभवशाली बना रखा था, साहित्य-सुधी-जनोंकी क्रियाशीलताका केन्द्रस्थल भी बन रहा था। हमलोग जाते; घण्टों साहित्यालाप होता; कब आये, कितना समय बीता; कितनी रात गत हुई, इसका कुछ ध्यान ही न रहता! वर्माजी एकके बाद एक छन्दोंकी झड़ी-सी लगा देते। हमलोग मूर्तिवत् बैठे कविता-रस-पान किया करते।

हमलोग जहाँ बैठा करते थे, उसीसे मिले हुए एक दूसरे कक्षमें एक नवयुवक, जिसने यौवनकी प्रथम सीढ़ीपर ही पैर रखा था, रोग-शय्यापर पड़ा रहता था। यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ, कि उसका निम्नांग निष्प्राण-सा हो गया है और उत्तम-से-उत्तम औषधोपचार होते हुए भी कोई लाभ नहीं हो रहा है। यह वर्माजीका अग्रज-पुत्र था। उसमें प्रतिभा थी, बुद्धि थी; परिवार भरापुरा था। भाइयोंपर लक्ष्मीका वरद हस्त था। वृद्ध पिता भी जीवित थे, पर भाग्य उसके प्रतिकूल दिखायी देता था।

इस बातको बहुत दिन हो गये! कृष्ण बलदेवजी कालपी चले गये। हमलोग भी उस रोग-शय्यागत युवकको भूल चुके थे। ऐसे ही समय भारतमित्रका सम्पादन छोड़कर पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्देने श्रीकृष्ण-सन्देश निकाला। उसमें हँसी-मजाकके लिए भी एक स्तम्भ था। उसमें डाक्टर चतुष्पादके नामसे बड़े ही मार्मिक और विनोद-पूर्ण चुटकुले निकलने लगे। इससे साहित्य-संसारमें हलचल मच गयी। लोग पूछने लगे, आखिर यह डाक्टर चतुष्पाद हैं कौन? हमने भी अपने मित्र कवि श्यामसुन्दरजीसे पूछा—भाई क्या तुम डाक्टर चतुष्पादको जानते हो? उन्होंने अपनी स्वाभाविक गम्भीर अथच स्मित हास्य मुद्रासे कहा,—"तुम उन्हें नहीं जानते? वे हमलोगोंके बाब कृष्ण बलदेवजीके भतीजे व्रजमोहनजी वर्मा हैं। यह वही हैं, जिन्हें हमलोगोंने महीनों रोग-शय्यापर पड़े देखा था। इनका नीचेका अंग बिलकुल बेकाम है। अतः बैसाखीके सहारे चलते हैं और इसीलिए अपना छद्म नाम डाक्टर चतुष्पाद रखा है। अच्छी प्रतिभा है, मानों सारे शरीरकी शक्ति सिमटकर मस्तिष्कमें आ बैठी है।"

मित्रवर व्रजमोहन वर्माका, जिन्हें स्वर्गीय लिखते जी सिहर उठता है,—यह साहित्य-क्षेत्रमें प्रथम पदार्पण था। फिर पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदीके सम्पादकत्वमें विशाल-भारतका जन्म हुआ। चतुर्वेदीजीमें अनेक गुण हैं, पर उनका सबसे बड़ा गुण है उनकी अभिमान-शून्य सहृदयता। वे वास्तविक महानुभाव हैं। सच्चे रत्न-पारखी हैं। वर्माजी-से उनका साक्षात्कार हुआ। गुणीको गुण-ग्राहक मिला। वर्माजी विशाल भारतमें आ गये। उन्हें अपनी प्रतिभाके प्रदर्शनका विस्तृत क्षेत्र मिला और उन्होंने उससे पूर्ण

लाभ भी उठाया। हमलोगोंने देखा कि उनकी प्रतिभा उत्तरोत्तर वढ़ती ही गयी, पर उनके सरलतापूर्ण व्यवहारमें कुछ भी अन्तर न पड़ा। वे वैसे ही हँसमुख, वैसे ही सरल एवं वैसे ही निरभिमानी रहे। उनकी मन्द मुसकानमें जादू था। वे अजातशत्रु थे। वे कृष्ण वलदेवजीके योग्यतम साहित्यिक उत्तराधिकारी थे। उनकी आत्माका प्रतिविम्व व्रजमोहनजीमें जाज्वल्यमान भावसे प्रभासित होता था।

व्रजमोहनजीकी मित्रवर वावू श्यामसुन्दर खत्रीसे अत्यन्त आत्मीयता थी, उनसे घनिष्ठ स्नेह था। वे श्यामसुन्दरजीकी कुटीरपर प्रायः आते। विशाल भारतमें पहुँचकर एवं अत्यन्त व्यस्त जीवन व्यतीत करनेपर भी, उनका यह क्रम वैसा ही वना रहा। वे स्वयं आते, अपने अन्य साहित्यिक वन्धुओंको घसीट लाते और घण्टों वैठकर अपनी विनोदपूर्ण उक्तियोंसे सवको हँसाया करते।

वर्माजीमें सर्वतोमुखी प्रतिभा थी। वे कवि थे, कविता-प्रेमी थे। लेखक थे, समालोचक थे। उपन्यासकार थे और वैज्ञानिक विषयोंपर भी अधिकार रखते थे। चित्रकला भी उनका प्रिय विषय था। इसके वे प्रेमी ही नहीं, वरंच सूक्ष्म एवं पारदर्शी विद्वान् थे। उनके पास हस्त-खचित चित्रोंका वड़ा सुन्दर संग्रह था। चित्रकार रोरिकके वड़े प्रशंसक थे। वे जीते-जागते "इनसाइक्लोपीडिया" थे। वे ग्रन्थकार भी थे। यद्यपि उन्होंने कोई मौलिक ग्रन्थ नहीं लिखा; पर जिन ग्रन्थोंके अनुवाद उन्होंने प्रकाशित किये हैं, उन्हें उन्होंने पहले भली-भाँति अध्ययन कर लेखकके मनोभावोंको हृदयंगम कर अनुवादमें हाथ लगाया। इसीलिए उन्हें पढ़नेसे मौलिक ग्रन्थका ही आनन्द मिलता है। इसका प्रमाण रूसी कहानियोंका अनुवाद "पिस्तौलका निशाना" एवं विद्वद्वर्य श्री नित्यनारायण वनर्जीके अंग्रेजी ग्रन्थका अनुवाद "आजका रूस" है।

हिन्दी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओंपर भी उनका अधिकार था। उर्दू कवितापर उन्होंने एक समालोचनात्मक प्रवन्ध लिखा था, जिसने श्री द्विवेदी महाराजतकको दाद देनेके लिए वाध्य किया था। भूकम्पपर अत्यन्त गवेषणापूर्ण प्रवन्ध लिखकर आपने अपनी अत्यन्त अध्ययनशीलताका परिचय भी दिया था।

चतुर्वेदीजीके नेतृत्वमें विशाल भारतको उच्चाति-उच्च मासिक पत्र वनानेमें उनका विशेष भाग था। चतुर्वेदीजीका आपपर अचल विश्वास था। उन्होंने सम्पादनमें वर्माजीको पूर्ण स्वाधीनता दे रखी थी। विशाल भारतकी नीतिपर इन दोनों सम्पादकोंमें कभी कोई मत-भेद नहीं हुआ। इसे वे और भी उन्नत वनानेके अभिलाषी थे। पर उनकी यह अभिलाषा कराल कालने पूरी न होने दी।

आह! चतुर्वेदीजीकी यह इच्छा, कि वे वर्माजीकी अधीनतामें रहकर कुछ दिन विशाल भारतका सम्पादन करें, पूर्ण न हो सकी! कमल-कलिका असमयमें ही कुम्हला गयी! "हा! हन्त हन्त! नलिनी गज उज्जहार!"

× × ×

व्रजमोहन वर्माके प्रति

मधुर कूजनसे तुम्हारे मुदित था जो वायुमण्डल,
मच रही है आँसुओंकी आज उसमें विषम हलचल ;
उड़ गये किस देशको तुम ओ विहग साहित्य-वनके ?

पवन-काँटोंने किये सुकुमार जिसके अंग घायल,
कन्तु अन्तिम साँसतक बाँटा किया जो मुग्ध परिमल,
आपदाजित सरल मधुमय हास थे तुम उस सुमनके ।

मेघमालाकी कमी क्या ? नित्य ही छाती गगनपर,
भाग्यसे ही किन्तु जो टुकड़ा कभी आता दया कर,
रसिक चातकके लिए तुम दान थे उस स्वाति-घनके ।

शून्यताकी व्याप्ति ही प्रत्यक्ष है वैराग्य जिसका,
एक ही नक्षत्र पाकर चमक उठता भाग्य जिसका,
तुम छिपे आनन्द थे उस शान्तिमय सन्ध्या-गगनके ।

पंकमय आमूल औ' आकण्ठ वारि विमग्न रहकर,
फूल उठता विलग जलसे तपन-कर सर-निकर सहकर,
तुम तपोवल थे अलौकिक व्रत-निरत उस कंज-वनके ।

हर्ष पुलकित हो उठी थीं चावसे धारण जिसे कर,,
आज जिसके लोपसे है मलिनता छायी वदनपर,
तुम वही थे रत्न वीणापाणिके कण्ठाभरणके ।

विस्मयावह थी तुम्हारी वह विमल प्रतिभा अपरिमित,
वुधजनोंके हृदयपर निःसीम जिसके चित्र अंकित,
शब्द फिर कैसे मिलें उपयुक्त तव गुणगण-कथनके ।

शून्यसे संगीत हो ज्यों, गहन तमसे ज्योति हो ज्यों,
दैवकी प्रतिकूलतामें धन्य तुम विकसित हुए त्यों ;
शाप हो आये जगतमें औ' गये वरदान बनके ।

—श्यामसुन्दर खत्री

× × ×

स्व० ब्रजमोहन वर्माके कुछ संस्मरण

(श्री श्रीपति पाण्डेय)

का दिन था । १०॥ वजे आफिस पहुँचा । देखा एक कुवड़ा आदमी कुर्सीपर बैठा है और वगलमें वैसाखियाँ खड़ी हैं । सोचा कोई होगा, पण्डितजीसे मिलने आया होगा । मैं अपनी कुर्सीपर जा बैठा। इसी वीचमें पं० वनारसीदास आये, और उन्होंने परिचय कराया, आप 'विशाल भारत'के सहकारी सम्पादक होकर आये हैं । इस समाचारसे दिलमें धक्का-सा लगा और लगा कि यह 'लँगड़ा' 'चतुष्पाद'—क्या सम्पादनका काम करेगा ! यह 'लँगड़ा'—'चतुष्पाद' थे 'विशाल भारत'के प्राण और उसके सम्पादन-कार्यके तीन–चौथाईके सम्पादक श्री ब्रजमोहनलाल वर्मा ।

सवलोग अपना-अपना काम करने लगे । वर्माजीने कुछ लिखा और कापी धीरेसे मेरी ओर वढ़ा दी । वर्माजीके द्वारा लिखी हुई कापी पढ़कर मेरे हृदयमें उनके प्रति जो पहले विरोध पैदा हुआ था, वह काफूर हो गया, और विरोध और घृणाका भाव करुणा और श्रद्धामें वदल गया । इस प्रकार एक ही घण्टेके अन्दर उनके प्रति मेरे हृदयमें क्यासे क्या भाव हो गया, और वह ऐसा स्थायी हुआ कि आज भी ज्योंका त्यों है ।

× × ×

वर्माजीको हमलोग मजाकमें 'विशाल भारत'की वड़ी वहू कहा करते थे पर मजाकमें भी जवर्दस्त तथ्य था । यह नाम इसलिए दिया गया था कि विशाल भारतके सारे कार्योंकी, क्या सम्पादकीय क्या मैनेजिंग, जवावदेही वर्माजीके ऊपर थी । जितनी देर वर्माजी आफिसमें होते हमलोग निश्चिन्त रहते कि वर्माजी तो हैं ही, और खासकर मैं तो जैसे वेफिक्र रहता । मैंने जरा प्रूफ देखनेमें आना-कानी की कि झट आप प्रूफ लेकर बैठ गये और एक वार प्यारभरी फटकार सुना गये । मैं कहता आप घवराते क्यों हैं वर्माजी, अभी आपको फर्स्ट क्लास जर्दके साथ पान खिलाता हूँ, और वर्माजी मुस्करा पड़ते । अक्सर मैं अपने कार्योंकी जिम्मेवारी वर्माजीपर फेंक दिया करता । यदि मैंने किसी लेखमें कुछ काट दिया और पण्डितजीने पूछा, इसे क्यों काटा, तो झट कह देता, वर्माजीने काटा है और वर्माजी मुस्कराकर रह जाते ।

वर्माजी आफिसमें एक क्षण भी बैठनेवाले न थे। उनका दिमाग नित्य प्रति कोई-न-कोई वात सोचा करता । आप मुसोलिनीकी जीवनी (जो आधी छपी पड़ी है) लिख रहे थे। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा पाण्डेयजी, मुसोलिनीका एक वढ़िया-सा फोटो चाहिये किताबमें देनेके लिए । अनायास ही मेरे मुँहसे निकल गया, आप मुसोलिनीको ही लिखिये कि वह अपना एक सुन्दर-सा फोटो भेज दें । मैंने तो यों ही कह दिया था, और मुझे स्वप्नमें भी उम्मेद न थी कि वे सचमुच फोटोके लिए मुसोलिनीको लिखेंगे ही । पर वर्माजीने उसे लिखा ही और मुसोलिनीके दस्तखतका एक फोटो मँगा ही लिया । ऐसी ही एक-न-एक वात दिन-रात सोचा करते ।

वर्माजी कला-पारखी थे। यद्यपि उन्होंने ललित कलाकी बाकायदा शिक्षा नहीं पायी थी, फिर भी अपने सहज प्रकृत कलाज्ञानसे एक जबर्दस्त कला-पारखी हो गये थे। चित्रोंकी बारीकियोंको वे इस खूबीसे समझाते कि शायद स्वयं उस चित्रका निर्माता न समझ पाता। आप बैठे-बैठे कभी-कभी चित्र भी बनाते।

'विशाल भारत' आफिसमें 'वर्माजीका विवाह' विनोदका एक खासा मसाला था। कोई ऐसा दिन नहीं जाता, जब पण्डितजी आते ही वर्माजीके विवाहको लेकर कोई-न-कोई मजाक न करते और वे एक मधुर मुस्कानके साथ उसका विरोध करते। एक दिन वर्माजीने कहा 'आपलोग मेरे विवाहको लेकर मुझे तंग करते हैं, तो देखिये अभी मैं विवाहके लिए बर्मा जाता हूँ। यदि हिन्दी-भाषियोंमें कोई ऐसा लायक नहीं निकला, जो मेरा विवाह करा दे, तो बर्मामें कोई-न-कोई अवश्य निकल आयेगा।' बात यह थी कि उन्हीं दिनों वर्माजी भिक्षु उत्तमके साथ बर्मा भ्रमणके लिए जानेवाले थे।

वर्माजी जब रंगूनसे लौटे, तो हमलोगोंने पूछा—"कहिये वर्माजी, आपका मनोरथ सिद्ध हुआ?"

वर्माजीने कहा—"कम्बख्त बर्मियोंको क्या कहा जाय, जो उनकी भी बुद्धि हिन्दी-वालों जैसी ही हो गयी। और झट एक विनोदपूर्ण कविता बना दी।

वरमा जी वरमा तक दौड़े
पर न मिली वरमाला;
बर्मी सब बुद्धू ही निकले
बना न कोई साला।

'विशाल भारत' कार्यालयमें आप एक घण्टेके लिए बैठिये और हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाइये। हास्य तो मानो वर्माजीकी नस-नसमें भरा पड़ा था। एक दिन मैंने पूछा—"वर्माजी आपको चलने आदिमें इतना कष्ट होता होगा फिर भी आपमें इतना हास्यका माद्दा है।" वर्माजीने कहा—"जिसका सारा अंग ही विकृत हो, सारी आशाएँ यों ही पड़ी हों, उसके कष्टका क्या ठिकाना। पर शायद आप मेरा उसूल नहीं जानते।

रहिमन निज मनकी बिथा मन ही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥

रही हास्यकी बात, तो हँसू नहीं, तो सारा जीवन ही दूभर हो जाय।

अंग्रेजीकी एक कविता है—

Laugh, laugh, the world will laugh with you.
Weep, weep, you will weep alone.
हँसो हँसो सारी दुनिया तुम्हारे साथ हँसेगी।
रोओ, रोओ, दुनिया तुम्हारे साथ रोने नहीं आयेगी॥

यही कारण था वर्माजीने अपने जीवनको हास्यमय बना लिया था। 'विशाल भारत' में 'चायचक्रम' नामक एक शीर्षक खोला गया। चायचक्रमके लिखनेका भार पूर्णतया वर्माजी-

को ही दिया गया। चायचक्रममें सभी लोगोंका नामकरण हुआ। वर्माजीने मेरा नाम रखा 'नटखट पाण्डे'। "जिस दिन यह नामकरण हुआ, सभी लोग हंसते-हँसते लोट-पोट हो गये। उस नामको जव कभी स्मरण करता, हँसी आ जाती; पर अव वह हँसी हँसी नहीं रह गयी, कलेजेकी हूक हो गयी।

वर्माजी सम्पादकके असली अर्थमें सम्पादक थे। उनके जैसा दुनियाके प्रत्येक विषयकी जानकारी रखनेवाला शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति मिलेगा। वर्माजीके जितने लेख निकले, उनकी काफी चर्चा रही। अभी पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीने अपने एक पत्रमें लिखा है—"विशाल भारतके जिन लेखोंकी लोगोंने मुझसे चर्चा की, वे सबके सब वर्माजी द्वारा लिखे गये, और जो नहीं भी लिखे गये थे उनमें भी उनका जवर्दस्त हाथ था।"

वर्माजीकी मिलनसारीका क्या कहना। एक वार जो उनके सामने आया, उनसे वातें कीं, वह उन्हींका होकर रह गया। वाद-विवादसे वर्माजी वहुत घवराते थे। कहते, "व्यर्थका वाद-विवाद करना भूतोंका काम है। जितनी देरमें वाद-विवाद करेंगे, उतनी देरमें कोई दूसरा काम कर लेंगे। ऐसे वाद-विवादोंमें कोई निर्णय तो होता नहीं, व्यर्थकी अपनी शक्ति नष्ट होती है।" वात ठीक है क्योंकि आजकल Table talk करनेवालोंकी संख्या ज्यादा है।

———

स्वर्गीय ब्रजमोहन वर्मा

(श्री रामधन राम)

विशाल भारत आफिसमें दूरसे आये हुए एक सज्जनको साथ लेकर श्री जयकृष्ण सेठसे मिलने होमियोपैथिक कालेज गया था। वे आये नहीं थे, इसलिए जगदीशजी वगैरह अन्य विद्यार्थियोंसे मैं गप लड़ा रहा था। इतनेमें वे आये। मैंने उनसे पूछा कि कोई पत्र वर्माजीका आया है? उन्होंने उसका जवाव ऐसा दिया, मानो विजली गिरी। उन विद्यार्थियोंके समूहमें अपनेपर काबू करना मुश्किल हो गया। मैं शीघ्र ही वहाँसे चल दिया। आखिर रास्तेमें वरबस आँसू गिरने ही लगे। कलकत्तेकी इस कोलाहलमय दुनियामें भी मकान, पेड़, पौधे सारे वातावरणमें उस दिन, एक अजीब तरहकी शून्यता प्रकट होती थी। मेरे लिए सब कुछ शून्य हो गया था। मनुष्य कितना कृतघ्न होता है! धीरे-धीरे सब कुछ भूलता जाता है। फिर वही अपने स्वार्थ और प्रपंचके झमेलेमें पड़ जाता है। अपने पिताजीकी मृत्युके बाद मैं मुख्यतया पूज्य वर्माजीके ही आश्रयमें रहा। पूज्य वर्माजीकी मुझ अकिंचनपर जो कृपा थी, वह मेरा हृदय ही जानता है। वर्माजी मेरे सब कुछ थे—पथ-प्रदर्शक, दु:ख-सुखमें धैर्य बँधानेवाले और सच्चे शुभचिन्तक।

मुझे वे दिन याद हैं, जब मैं विशाल भारतके सहकारी सम्पादक श्री धन्यकुमारजीसे मनोमालिन्य हो जानेके कारण पण्डितजी (श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदीजी) से छुट्टी लेकर घर जा रहा था, और फिर कलकत्ता लौटकर आनेकी इच्छा नहीं थी। जब मैं जाते वक्त वर्माजीसे मिलने उनके घरपर गया था और लौटकर न आनेकी इच्छा प्रकट की थी, तो उन्होंने किस तरह प्रेमपूर्वक फटकारा था! लगातार दो घण्टेतक समझाते रहे। उस समय उन्होंने मेरे साथ कितना अपनापन प्रकट किया था, कितनी मेरे साथ सहानुभूति थी! उन्होंने कहा था—"तुम यह न समझो, तुम्हारे साथ दु:ख-सुखमें सहानुभूति रखनेवाला, तुम्हारा हित चाहनेवाला, कोई नहीं है। यह बात तुम अपने मनसे निकाल दो, इत्यादि।" वे सब बातें अब भी याद हैं। अगर उन्होंने समझाया न होता, तो मस्तिष्क-विकृतिके कारण मैं अपनेको बुरी आपत्तिमें फँसा लेता, जो मेरे ही लिए नहीं, बल्कि मेरे घरवालोंको भी कष्टकर होती। उनसे मुझे रुपये-पैसे सब तरहसे मदद मिलती थी। कोई भी ऐसा दिन याद नहीं, जिस दिन कि उनके द्वारा मुझे कुछ भी कष्ट पहुँचा हो।

वर्माजीका कभी भी मेरे साथ नौकरका-सा व्यवहार नहीं रहा, बल्कि धृष्ट पुत्रके समान मैं उनसे खेलता-कूदता रहा। अब वे दिन नहीं आनेके। जब मैं घर गया था, तो

वर्माजीने एक पत्र लिखा था जो शायद अब भी मेरे घरपर पड़ा होगा। उसमें उन्होंने मुझे—"प्रिय भाई रामधन" के सम्बोधनसे पत्र लिखा था। उनमें कितनी विनम्रता और उदारता थी। कौन आदमी नौकरके साथ इस तरहकी सहानुभूति और अपनापन रखेगा ?

३१ दिसम्बर १९३४ की बात है—वर्माजीने एक टाइप किये हुए कागजपर सही करनेके लिए कहा। मैंने पूछा, यह कैसा कागज है ? उन्होंने हँसते हुए कहा पहले हस्ताक्षर करो, पीछे बतलाता हूँ। जब मैंने हस्ताक्षर कर दिया, तो बोले कि इसे पण्डितजीके पास ले जाओ, तुम्हारा वेतन बढ़ानेकी दरख्वास्त है। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई। इस प्रकार मुझे १५ रुपयेकी बजाय १८ रुपये मिलने लगे।

वर्माजी प्रायः कागजके छोटे-छोटे टुकड़ोंपर कविता आदि लिखकर मजाक किया करते थे। आज उनकी कविताके दो टुकड़े मेरी पुस्तकोंमें पड़े हुए मिले हैं, जिन्हें मैं नीचे दे रहा हूँ। वर्माजी तीन वक्त चाय पीते थे—एक प्याला प्रातःकाल, दूसरा बारह बजे और तीसरा ढाई बजे। चायकी प्रशंसामें जो श्लोक बनाया था और उसी एक श्लोकके बलपर महाभारत रोकने और सात सौ श्लोकोंकी गीताको निरर्थक सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी। उस लेखको पढ़कर सुदर्शनजीने लिखा था—"मैंने कभी चाय न पी है, न पीना चाहता हूँ। मगर चौबेजीकी चाय पीकर जी खुश हो गया। अब जी चाहता है, 'विशाल भारत' दैनिक हो जाय। रोज चाय तो मिलेगी।" उसी मूल-चायके लिए वर्माजी एक दिन व्याकुल थे। बात यह थी कि परशुरामने न मालूम किस कारणसे ढाई बजे चाय नहीं बनायी। मैं किसी कामसे बाहर चला गया था। बरसातका मौसम था। जब लौटकर आफिसमें आया तो वर्माजीने एक कागजका टुकड़ा दिया। देखा, तो उसमें लिखा था—

"रिमझिम बरसत कारी बदरिया चाय पिलाइ दे मोय,
चम-चम बिजली चमकत, बदरा गुड़ुम-गुड़ुम गुड़ होय।
टप-टप-टप-टप बुँदियाँ चुअति हैं जैसे बिरहिन रोय,
रोम-रोममें सिहर उठति है, धीरज सिगरो खोय,
एक पियाला पै जीवन है, चाय पिलाइ दे मोय,
चाय पिलाइ दे तेरी उमिरिया लाख बरसकी होय।
रिमझिम बरसत कारी बदरिया, चाय पिलाइ दे मोय।"

एक बार मुझे भी कविता करनेका शौक चर्राया। मैंने "प्रेम-मोह-विवेचन" शीर्षक एक तुकबन्दी वर्माजीको देखनेके लिए दी और विनीत भावसे कहा—"वर्माजी, इसका संशोधन कर दीजिये। मैं अखबारमें छपाना चाहता हूँ।" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि कविता बिलकुल अशुद्ध थी। उसका एक अंश यहाँ दिया जाता है—

"विश्वके सुन्दर कणसे,
यह कठिन प्रीत जुड़ आयी।

जीवनमें उषा लायी या,
पथ भ्रष्ट बनाने आयी ?
मेरे हियके मन्थनका,
मक्खन है क्या यह चिकना ?
या सुन्दर बाग समझकर,
काँटोंमें है जा फँसना।"

वर्माजीने आव देखा न ताव, झट जेबसे फाउण्टेनपेन निकालकर मेरी उस कविताके पुर्जेपर लिख दिया—

"कवि जगके सब हैं मूरख,
मत उनकी चाल गहो तुम।
बस सीधे सादे ढँगसे,
निज मनकी बात कहो तुम।
है कविता एक बहाना,
हम जान गये सब बातें।
इच्छा विवाहकी उपजी,
क्यों करते हो ये घातें!"

एक बार फिर वही मूर्खता की। एक तुकबन्दी लिखकर उन्हें देकर यह उम्मीद की कि वह छपने योग्य अवश्य होगी—

"ऐसा यह बन्धन घनघोर,
जिसमें बँधे हमीं सब लोग।
कैसे ये वृक्ष स्वतन्त्र खड़े हैं,
डाल पात सब तनें तने हैं।
चिड़ियाँ इधर उधर फुदकतीं,
डाल पातपर गायन करतीं।
लेकिन बँधे हमीं सब लोग,
ऐसा यह बन्धन घनघोर।"

वर्माजीने उसी क्षण उस कागजपर लिख दिया—

"कैसा यह बन्धन घनघोर?
जिसका मिलता ओर न छोर?
वृक्ष खड़े स्वच्छन्द झूमते,
पशु-पक्षी स्वच्छन्द विचरते।
कोयलके जब मनमें आता,
करती कुहू-कुहूका शोर।

सभी प्रकृति निर्बन्ध दीखती,
शुक, पिक, चातक मोर।
तब तुम ही क्यों बँधुआ चोर,
कैसा यह बन्धन घनघोर?"

इसपर मैंने हँसते-हँसते कहा—"वर्माजी, आप हमारी एक भी कविता दुरुस्त नहीं करेंगे और न छपने देंगे।" उन्होंने कहा—"अरे भाई जाओ, तुम्हें महाकविकी उपाधि प्रदान की। आजसे अपने नामके स्थानपर—'महाकवि रामधन' लिखना।" बहुत दिनों-तक महाकवि रामधन कहकर वे मुझे शर्मिन्दा भी करते रहे।

'योगी' प्रेस पटनाके श्री राजेन्द्र शर्माका 'योगी'में शिशुपालनपर एक लेख छपा था। लेखके साथ उनका फोटो भी था, जिसमें डाक्टरके समान नेकटाई वगैरह बाँधे थे। पूज्य वर्माजीने उसे देखते ही झट एक कागजका टुकड़ा उठाया और निम्न लिखित पद्य लिख डाला :—

बच्चेको नहीं दूध पिलाया,
रातों जाग न उसे सुलाया;
है अचरज यह महिमा देख,
शिशु-पालनपर लिखते लेख!
आप छपे, तस्वीर छपी है,
मूछें टाई तुली नपी हैं,
लेकिन है गायब इक कान,
कहाँ बेच आये श्रीमान?
अखबारोंमें छपना भाई,
बड़ी बात है, बहुत बधाई,
इसी खुशीमें मिस्टर शर्मा,
भेजें शर्बत, पीवें वर्मा,

शर्माजी उन दिनों मारवाड़ी रिलीफ-सोसाइटीमें काम करते थे। मैं एक दिन घूमते-फिरते उनके पास पहुँचा और वर्माजीकी लिखी हुई वह कविता दिखलायी, तो वे उसको पढ़कर बहुत देरतक टेबुल पीट-पीटकर हँसते रहे। पीछे गुलाब व खसका एक-एक बोतल शर्बत दिया, जिसे हम सभी लोगोंने पिया। यदि मैंने ऐसे चुटकुलों और कविताओंका संग्रह किया होता, तो आज सैकड़ों टुकड़े मेरे पास होते लेकिन मैं ऐसा लापरवाह निकला कि मैंने उन सबोंका संग्रह नहीं किया।

वर्माजी जब बर्मासे लौटकर आये तो लोग उनसे समाचार पूछते, तो वे निम्न-लिखित पद्य सुनाते :—

"वर्माजी बर्मातक दौड़े, पर न मिली वरमाला।
बर्मी सब बुद्धू ही निकले, बना न कोई साला!"

एक वार जव पूजनीय महात्माजी हरिजन-सेवाके सिलसिलेमें कलकत्ता आये थे, तो पण्डितजीने हमलोगोंको महात्माजीसे मिलाया था। महात्माजीसे वर्माजीका परिचय देते वक्त पण्डितजीने कहा था, "ये हमारे 'विशाल भारत'के सहकारी-सम्पादक हैं। वैसाखीके वलसे चलते हैं। मेरी अनुपस्थितिमें ये 'विशाल भारत'का सारा काम सम्हाल लेते हैं।" ये वातें सुनकर पूजनीय वापूजी खूव प्रसन्न हुए थे।

श्री नित्यानन्द पन्त नामक एक सज्जन मारवाड़ी रिलीफ-सोसाइटीमें काम करते थे। मारवाड़ी रिलीफ-सोसाइटीमें काम करनेके पहले वे वहुत ही पतले-दुवले थे। इसीलिए मजाकमें उनके दोस्त उन्हें नारी-देह कहा करते थे। एक दिन वे मारवाड़ी रिलीफ़-सोसाइटीका पंचांग छपानेके लिए 'विशाल भारत' कार्यालयमें आये। वर्माजीने उनको मोटे-ताजे देखकर पूछा :—

"कहो पन्तजी, काहे मोट—
धनकी फिकिर कि ऋणकी चोट?"

पूज्य वर्माजी 'विशाल भारत'के साहित्यांकका मसाला इकट्ठा करनेके लिए लेखकोंके पास चिट्ठियाँ लिख रहे थे। एक चिट्ठी उन्होंने एक पंजावी लेखकको लिखी थी जिसका कुछ अंश मुझे याद है, और वह इस प्रकार है—"जनाव, आजकल आप 'विशाल भारत' के लिए लेख क्यों नहीं भेजते, उसका पता हमें लग गया है। सुननेमें आया है कि आजकल आप स्टेशनोंमें पान-वीड़ी-सिगरेटकी फेरी लगाते हैं!"

गोरखपुरके 'कल्याण'का प्रत्येक विशेपांक 'विशाल भारत' आफिसमें आता था। उसे 'विशाल भारत'के फोरमैन श्री राजकिशोर मिश्र माँगकर ले जाते थे। वर्माजी उन्हें सहर्ष दे भी देते थे। एक वार विशेषांक नहीं आया। मिश्रजीने वर्माजीसे एक दिन पूछा —"इस वारका विशेषांक आपने नहीं दिया? वर्माजी, मैं ब्राह्मण हूँ। आप मुझे ग्रन्थ-दान दिया कीजिये, ये सभी ग्रन्थ आपको स्वर्गमें मिलेंगे।" तव वर्माजीने कहा—"भाई, हम लँगड़े आदमी हैं। स्वर्गमें उन्हें कहाँतक ढोते फिरेंगे?"

एक दिन एक सज्जनने वर्माजीसे पूछा—"वर्माजी आप अपना विवाह करेंगे या नहीं?" वर्माजीने कहा—"विवाह तो मेरा वैसाखीके साथ हो ही गया है, अव दूसरा क्या करूँगा? स्त्रीको अर्धाङ्गिनी कहा जाता है, वैसाखी भी मेरी अर्धाङ्गिनी है।"

नव-वर्षके उत्सवपर आठ-दस हिन्दी-साहित्य-सेवियोंका एक दल शान्तिनिकेतन गया था। पूज्य पण्डितजीके साथ शान्तिनिकेतन देखनेके लिए मैं भी गया था। जव हमलोग घूम-घूमकर वहाँके स्थान देख रहे थे, तो वर्माजी हम सभी आदमियोंसे आगे चलते थे। मैंने कहा—"आपलोग वर्माजीको देखिये, डंडी-यात्रामें जिस तरह महात्माजी स्वयंसेवकोंसे दो कदम आगे रहते थे, उसी तरह ये भी हमलोगोंसे दो कदम आगे-ही-आगे चलते हैं।" पूज्य वर्माजीने जल्दीसे जवाव दिया—"चार पैर होकर भी पीछे कैसे रहूँ?"

शामके वक्त जव प्रार्थनामें शरीक होनेके लिए हमलोग जानेवाले थे, तो मुझे एक शरारत सूझी। मैंने वर्माजीकी वैसाखी, जव कि वे लेटे थे, चुपकेसे उठाकर छिपा दी।

जब प्रार्थनाकी घण्टी वजी, सभी लोग जानेकी तैयारी करने लगे, तो वर्माजी वैसाखी ढूंढ़ने लगे। जब उन्होंने मुझसे पूछा, तब मैंने कह दिया कि हमें नहीं मालूम। लेकिन गलती यह हुई कि मैंने जरा मुसकराते हुए कहा था, जिससे वे ताड़ गये। दो-तीन बार उन्होंने लानेके लिए कहा, मैं बराबर नकारात्मक जवाव देता रहा, तब उन्होंने हँसते हुए कहा—"क्यों, डाक्टर चतुष्पादकी उपाधिकी इच्छा है? अरे भाई, यह उपाधि सहज ही नहीं मिलती।"

जिस समय उनके शरीरान्तका हृदयविदारक समाचार मिला था और 'विशाल भारत'में इस दु:सह संवादके साथ छापनेके लिए मुन्नीलालजी कम्पोजिटरने जब उनके ब्लाकके लिए मुझसे चर्चा की, तो ब्लाककी कौन कहे, कोई तसवीर नहीं मिलती थी। अकस्मात् उनका वह शेर याद आ गया, जिसे उन्होंने 'सैनिक' कार्यालयको फोटोके साथ लेखकी माँगके जवावमें लिखा था :—

"देखकर कोई माहलका हो जाय सौदाई नहीं।
इसलिए तस्वीर मैंने अपनी खिंचवायी नहीं॥"

सचमुच ही उनका कोई फोटो नहीं है। कुशल है कि एक चित्रकारने उनकी एक तस्वीर खींच दी थी, वही उपलब्ध हुई और दूसरा शवका फोटो, जो अन्तिम वक्तमें लिया गया था। इन्हीं दो चित्रोंके ब्लाक वनवाये गये थे।

पूज्य वर्माजी अत्यधिक परिश्रमी थे। लेख, प्रूफ, सम्पादकीय नोट इत्यादि लिखते-देखते हुए, पैरके कमजोर होनेपर भी घण्टों खड़े होकर परशुरामसे ब्लाक ढुँढ़वाते-निकलवाते थे। प्राय: वे ही कार्यालयमें निश्चित वक्तपर पहुँचते और सारा दिन काम-काज कर छुट्टी होनेके वाद जाते थे। यहाँसे घर जानेपर भी वे विश्राम नहीं करते थे। मैं जब-जब उनके घर गया, मैंने उन्हें बराबर लिखते या पढ़ते ही पाया।

वर्माजी खूब विनोदी थे। हँसना और हँसाना दोनों ही जानते थे। उनका और पण्डितजीका मजाक ही तो हमलोगोंका जीवन था। कुछ महसूस नहीं होता था कि कार्य करते हैं। सारी थकावट और चिन्ताओंका मरहम उनका यह हास्य ही था।

मशीनमैन या दफ्तरी किसीको किसी वातके लिए दरख्वास्त लिखवाना होता, तो वह उन्हींके पास पहुँचता, क्योंकि वे लोग उनके नेक स्वभावसे परिचित थे। वे बड़े प्रेमसे लिखकर, टाइपकर अगर किसी वातकी गड़बड़ी भी होती, तो उसको समझा देते थे। इस तरह उनका प्रेस-कर्मचारियोंके साथ अच्छा व्यवहार था। ऐसा कोई भी कर्मचारी नहीं, जो वर्माजीके देहान्तसे दु:खित न हुआ हो। सभीके मुँहसे यही निकलता था कि वर्माजी कितने भले आदमी थे! वर्माजी कितने कर्त्तव्यशील और दृढ़ प्रतिज्ञ थे!. गत वर्ष उनके भाई भयंकर रोगसे ग्रसित थे और उसी रोगसे उनका देहान्त भी हो गया, लेकिन मृत्युके दो-तीन दिनोंको छोड़कर बराबर कार्यालय आते और काम-काज सम्हालते रहे। जिस दिन वे नहीं आये, उस दिन भी उन्होंने आदमीके द्वारा चिट्ठी भेजकर आवश्यक कामोंको करनेके लिए आदेश दिया।

वर्माजी कला-मर्मज्ञ भी थे। उन्होंने बहुत-से कलापूर्ण सुन्दर चित्रों और कविताओंका संग्रह कर रखा था। इस विषयके जो प्रेमी उनके घरपर आते, उनको बड़े प्रेमसे अपना संग्रह दिखाते और कविता सुनाते थे। एक सम्पादक विवाह करनेके इच्छुक थे। वर्माजीने स्वयं लड़कीके रिश्तेदार बनकर जो उनके साथ पत्र-व्यवहार किया था, वह पढ़नेमें बहुत ही रोचक और सरस था।

मुझे पूरी बातें ख्याल नहीं। एक बार उन्होंने "लँगड़े आम लँगड़ेके लिए भेजिये", इस तरहकी हास्यप्रद एक चिट्ठी लिखकर प्रोफेसर मनोरंजनप्रसादजीको भेजी थी। इस पत्रसे एक ही ईंटमें दो चिड़ियोंका शिकार हुआ। प्रोफेसर मनोरंजनप्रसादने लँगड़े आम भेजे और साथ ही कविवर रामधारीसिंह 'दिनकर'ने भी। श्री रामधारीसिंह रजिस्ट्रार हैं, इसलिए वर्माजीने रजिस्ट्रारीका खयाल करते हुए उसी ढंगसे आमकी पहुँच लिखी। उसमें उन्होंने जो लिखा, उसका कुछ अंश मुझे याद है :—

"जनाबके भेजे हुए दो टोकरी आम पाये और यह रसीद लिख दी, ताकि वक्त जरूरत काम आवे।" इस पत्रमें ऐसी बात भी लिखी थी, जिससे दो टोकरी आम भेज देनेसे ही उनका छुटकारा नहीं हो जाता था, बल्कि वह रसीद प्रतिवर्ष उनको आम भेजनेके लिए मजबूर करती थी।

वर्माजी निकट-भविष्यमें अफ्रीका-यात्रा करनेवाले थे। इसके सम्बन्धमें उन्होंने स्वामी भवानीदयाल संन्यासीको पत्र लिखा था। अभी जब कि वे बीमार पड़े, तो संन्यासीजीका जवाब आया था, जिसे पढ़कर मैंने ही वर्माजीको सुनाया था। उस पत्रमें उन्होंने लिखा था कि "आपके दक्षिण-अफ्रीका आनेके विचारका मैं स्वागत करता हूँ। आपको सबसे पहले भारत-सरकारसे पूर्वीय और दक्षिण-अफ्रीकाके लिए पासपोर्ट लेना चाहिये। अच्छा हो कि उसमें मारीशस भी शामिल कर लें। इसके साथ ही आप यहाँकी सरकारके पास परमिटके लिए अर्जी भेज सकते हैं। यहाँ आनेपर आप स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, Vice-President, Natal Indian Congress, के मेहमान रहेंगे और उनकी सहायता और सम्मतिसे दक्षिण-अफ्रीकाका परिभ्रमण करेंगे। इसके सम्बन्धमें मुझसे पूछा जायगा तो मैं आपकी प्रशंसाके पुल बाँध दूँगा, बशर्ते कि आप चतुर्वेदीजीका जीवन-चरित लिख दें। आप दक्षिण-अफ्रीका आ जायँ और यहाँसे पूर्व-अफ्रीका होते हुए भारत लौटें। यदि आप आ गये, तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।"

वर्माजीने नेताओं, राजनीतिज्ञों और लेखकोंके हास्योंका संग्रह करना प्रारम्भ किया था। हास्यकी बातोंके संग्रहके लिए सभी बड़े लोगोंके पास उन्होंने एक-एक खुफिया रख छोड़ा था। अभी जब वे बीमार थे, तो विनायकराव घोरपड़े उनसे मिलनेके लिए आये थे। अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमिटीके सिलसिलेमें वे कलकत्ता आये हुए थे। वर्माजीने उन्हें पूज्य पण्डित जवाहरलाल नेहरूके हास्योंका संग्रह करके भेजनेके लिए ताकीद की थी। हास्यकी बातोंके संग्रहकी एक मोटी पुस्तक 'हसन्तिका' नामसे छपानेका उनका विचार था; लेकिन वे इस कामको अधूरा ही छोड़कर चले गये। उनका कुछ हास्योंका संग्रह किया हुआ

मसाला पड़ा हुआ है, जो शायद विशाल भारत बुकडिपोके प्रोप्राइटर श्री अयोध्यासिंह प्रकाशित करनेवाले थे। पता नहीं अब वह संग्रह कहाँ है। हास्यके सम्बन्धमें उनका निजी विचार निम्न-लिखित था, जो उनकी लिखी हुई कापीसे उद्धृत करता हूँ—"मनुष्य जानवरोंसे कहीं अधिक विकसित और उच्चकोटिका जीव है, क्योंकि उसे हँसना आता है। जानवर हँसना नहीं जानते। जो व्यक्ति कभी न हँसता हो, उसे किसी घोड़ा-डाक्टर (Veterinary Surgeon) से अपना इलाज कराना चाहिये, अथवा किसी चिड़िया-खाने या पिंजरापोलमें विश्राम करना चाहिये। वह मनुष्य समाजमें रहनेके योग्य नहीं है।

"हम लोगोंके जीवनमें सैकड़ों हास्यप्रद घटनाएँ रोज ही हुआ करती हैं। यदि जीवनमें हास्य न होता, तो इस दुःखमय संसारमें एक दिन भी रहना दुस्तर हो जाता। बड़े-से-बड़े विद्वानों, फिलासफरों और दिन-रात गम्भीर विषयोंमें निरत रहनेवालोंके जीवनमें भी हास्यकी बातें हुआ करती हैं। वास्तवमें उन्मुक्त हास्य एक दवा है, जो दिमागपर लदे हुए भारी बोझको हलका करने और नयी स्फूर्ति प्रदान करनेमें बहुत लाभदायक सिद्ध होती है।"

वे देश-विदेशके लम्बी दाढ़ी-मूछोंके पुरुषोंके चित्रोंका संग्रह कर रहे थे और दाढ़ी-मूछोंके सम्बन्धमें एक लम्बा लेख लिखनेकी सोच रहे थे। नावपर मल्लाह क्या गीत गाते हैं, वे उनके संग्रहके प्रयत्नमें थे। जहाजपर काम करनेवाले मजदूरोंसे मिलकर मजेदार लेख लिखनेका भी उनका इरादा था।

वे बच्चोंके लिए मनोरंजक शैलीकी एक नवीन पुस्तक लिखनेका भी विचार रखते थे। उसके लिए विदेशसे कुछ पुस्तकें और पत्रिकाएँ भी मँगायी थीं। उनका यही उद्देश्य और चेष्टा थी कि हिन्दी-संसारमें जो चीज अभी अधूरी है, उसे पूरा करें और एक नयी चीज उपस्थित करें।

वर्माजी जब बीमारीसे अच्छे होकर वायु-परिवर्तनके लिए इटावा जा रहे थे, उस दिन भी मैंने उनसे भेंट की थी। उस दिन न मालूम उन्हें क्या सूझी कि लगातार चार घण्टेतक बातचीत करते रहे। अधिकतर बातें खाने-पीनेके सम्बन्धमें थीं। अन्तमें उन्होंने कहा—"पन्द्रह-सोलह वर्षके बाद मैं यहाँ बीमार पड़ा था। जब मैं कलकत्ते लौटकर आऊँगा, तो आफिस भरको चायपार्टी दूँगा। अस्सी-नब्बे आदमी होंगे। चायके साथ एक-एक सन्देश, रसगुल्ला, नमकीन, सिंघाड़ा (त्रिखूंट) आदि ठीक रहेंगे। लोगोंको खिलाने-पिलानेके बाद तुम हमारे साथ चलकर दूकानमें खाना। कलकत्तेमें सबसे प्रसिद्ध सन्देशकी दूकान भीमसेन नागकी है, वहाँ चलकर सन्देश खायँगे। बाग-बाजारमें नवीनचन्द्रदासके रसगुल्ले और धर्मतल्लेवाली मशहूर दूकानकी कचौड़ी खायँगे, फिर बालीगंज चलकर श्री नारायणस्वामी अय्यरके यहाँ चाय पियेंगे।"

मैंने आश्चर्यमें आकर पूछा—"आज आप खाने-पीनेकी इतनी बातें क्यों कर रहे हैं?"

उन्होंने कहा—"भाई डेढ़ महीना हुआ, अन्नकी कौन कहे, जल भी नसीब नहीं हुआ।

सोडावाटर इत्यादि पीता रहा। सो अव पथ्य मिलनेके वाद अनेक तरहकी चीजोंके खानेको मन कर रहा है।"

जब वे बीमार पड़े थे, तब मैं प्रतिदिन तो नहीं, पर एक दिनका अन्तर देकर जरूर उनकी सेवामें उपस्थित होता था। सबसे पहले 'विशाल भारत'का ही समाचार पूछते, कितना कम्पोज हुआ, कितने फर्मे छपे इत्यादि। यद्यपि लम्बी बीमारीके कारण उनको बोलनेमें भी अत्यन्त कष्ट होता था, तथापि 'विशाल भारत'के वारेमें वातचीत किये विना न मानते थे। कहते थे, पण्डितजीके चले जानेसे अब मुझे छः महीनेतक सारी शक्ति 'विशाल भारत'पर ही केन्द्रित कर देनी होगी। मेरा तो अनुमान है कि 'विशाल भारत'की चिन्ताओंको साथ लिये ही उनके प्राण निकले होंगे।

वर्माजीकी असामयिक मृत्युसे 'विशाल भारत'की जो भयंकर हानि हुई, उससे इस पत्रके पाठक भलीभाँति परिचित हैं; पर मेरी जो हानि हुई, उसे मैं ही जनता हूँ।[1]

× × ×

स्वर्गीय वर्माजी

पण्डित श्रीराम शर्मा

कविवर गालिबने एक बार लिखा था—

"दिल ही तो है संगो खिश्त से भर न आये क्यों,
रोयेंगे हम हजार वार कोई हमें रूलाये क्यों।"

हमारी भी वही हालत है और अजीव हालत है, कि न तो कुछ लिखते ही बनता है और न व्यक्तिगत स्नेहके कारण, बिना लिखे ही रहा जाता है। वर्माजीके निधनपर कुछ लिखना अपने कलेजेपर छुरी-सी चलाना है। उनके स्मरणसे दिल भर आता है, वर्षोंकी स्मृतियाँ जाग्रत हो जाती हैं। साहित्यिक मजाक और कलकत्तेके वे दिन एक-एक करके सामने आ जाते हैं। वर्माजीका हँसमुख चेहरा, वे रसीले और सहानुभूतिपूर्ण नयन, उनकी चुटीली वातें, व्यंग्यपूर्ण विनोद और उनकी वे दो 'प्रेयसी'—वैसाखियाँ मूर्तिमान होकर सामने आ जाती हैं। फिर कलम चलनेको इनकार करती है—हूक-सी उठती है।

---

१. इस लेखके लेखक श्री रामधन राम एक अर्सेतक कलकत्तेके 'विशाल भारत' कर्यालयमें कर्मचारी रहे। वे राजनीतिक पीड़ित हैं और उन्होंने जेल यात्रा की है। श्रद्धेय पण्डित बनारसीदास जी चतुर्वेदीके संसर्गमें रहकर वे शीघ्र ही एक अच्छे लेखक बन गये। चतुर्वेदीजीने उपर्युक्त लेखके सम्बन्धमें कहा था—"वर्माजीके विषयमें जिन-जिन महानुभावोंके लेख अबतक छपे हैं, उनमें रामधनके ये संस्मरण अपना अलग ही महत्व रखते हैं।" —श्यामसुन्दर खत्री

विधिकी विडम्बना है कि उल्टी वातें हो रही हैं। उमरके नाते और व्यक्तिगत सम्वन्धके नाते वर्माजीको मेरे निधनपर लिखनेका मौका होना चाहिये था। उमरमें चार वर्ष छोटे वर्माजीको साधारणतया यह अवसर मिलना था, कि अपनेसे बड़ेपर लिखते। पर देखनेको यह वदा था, कि वर्माजीकी मौत पहले हो। इसे दुर्भाग्यके अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

वर्माजीकी साहित्यिक साधना, लगन और सूझको वे ही समझते हैं, जो उनके सम्पर्कमें आये थे अथवा जिनसे उनका घनिष्ठ सम्वन्ध था। शरीरके भार सँभालनेके लिए उन्हें बैसाखीका सहारा लेना पड़ता था, शरीरकी उस कमीको उन्होंने आत्माकी वलिष्ठता और साहित्य-सेवासे पूरा किया था। वर्माजीकी-सी निथरी-सुथरी और वामुहावरे भाषा लिखनेवाले हिन्दीमें कम हैं। उर्दूके ज्ञानसे उनकी भाषामें लोच और सफाईका आना स्वाभाविक था; पर इसके अतिरिक्त उनकी जुवानसे जादू-भरी वातें निकलती थीं। जीवनकी सम्पूर्ण शक्तिको उन्होंने साहित्य-सेवाके विन्दुपर केन्द्रीभूत कर दिया था, और इसलिए हिन्दी साहित्यमें वर्माजी वड़ी तेजीसे आगे वढ़ रहे थे। वीसों नामी लेखकोंको उन्होंने वीसों मील पीछे छोड़ दिया था। और एक प्रतिभा, जो उनमें छिपी पड़ी थी—हास्यरसकी थी। 'औघड़'का[1] जन्म ही शायद इसीलिए हुआ था कि हिन्दी-साहित्यको वर्माजी एक अनूठी चीज देते। 'विशाल भारत'का चाय-चक्रम वर्माजीकी ही कृति थी। मित्रगण तो उसमें तनिक संशोधन कर देते थे। हास्यरसमें तो वर्माजी हिन्दीके हास्यरस-लेखकोंसे आगे वढ़ जाते, यदि उन्हें तीन-चार वर्ष रहनेको और मिलते।

स्वर्गीय वर्माजीके संस्मरण तो फिर कभी लिखनेकी कोशिश की जायगी। इस समय तो दिलो-दिमाग साथ नहीं देते—

"मंजिले इश्कपर तनहा पहुँचे कोई तमन्ना साथ न थी,
आखिर इस राहमें आकर इक इक साथी छूट गये।"

× × ×

---

१. "औघड़" हास्य-रसका मासिक पत्र था जिसे विशाल भारत-बुक डिपोके अध्यक्ष ठाकुर अयोध्या सिंह जीने स्व० श्री ब्रजमोहन वर्माके सहयोगसे प्रकाशित करना आरम्भ किया था परन्तु उनका सहयोग एक ही दो अंकतक प्राप्त हो सका क्योंकि वे रोगग्रस्त हो गये और फिर उनका शरीरान्त हो गया। —श्यामसुन्दर खत्री

स्वर्गीय ब्रजमोहन वर्मा

लगातार ढाई महीनेतक रोग-शय्यासे निर्दोष जीवनके क्षण-क्षणका हिसाव चुकाकर १० दिसम्बर सन् ३० के शुक्रवारको तमसाच्छन्न दिनमें ही देवांगनाओंके नृत्य-चपल नूपुर-निक्वणों और चमरान्दोलनसे चारु-कर-वलित-कंकणोंकी झंकारसे घिरे देव-विमानपर, सहयोगी 'विशाल भारत'के सफल, यशस्वी, संयुक्त सम्पादक श्री व्रजमोहन वर्मा अपनी लौकिक लीला संवरण करके, हमलोगोंके बीचसे सदाके लिए उठ गये। उन्हें प्रकृति-श्रीकी अपेक्षा स्वर्ग-श्री अधिक प्रिय थी, यह वात दीर्घ कालके मेल-जोलमें भी हम नहीं समझ सके। और न प्रसन्न-वदन उनसे कभी ऐसे निष्ठुर व्यवहारकी आशा-कल्पना ही कर सके। आप कहेंगे, यह तो तुम्हारा ही मोह है—उनका क्या? फिर विधि-विधानपर किसीका जोर ही क्या? और इस नश्वर संसारको कोई तत्वदर्शी भला प्यार ही क्यों करेगा? आदि। इसी प्रत्यक्ष सत्यसे आप हमारी जवान बन्द कर देना चाहते हैं? लेकिन वियोगकी जो पीड़ा हृदयको मथ रही है, उसे कैसे शान्त करेंगे? शायद आप कहेंगे—"कीर्तिर्यस्य स जीवति!"—यश ही तो असल जीवन है। मांस-पिण्डका मोह व्यर्थ!

मानते हैं और जानते भी हैं कि संसारमें पाप है, कलुष है, पंक और वीभत्सता है, और यही सब लेकर आपामर-साधारणका है वास्तविक लौकिक जगत्! किन्तु कहाँ?—वर्माजीने तो अपने अल्प जीवनमें, अपनी रचना-राशिमें कहीं, कभी इसकी चर्चा भी नहीं की; सूचना भी नहीं दी! मानो अप्रियदर्शी, दग्धदेहा पाप-मूर्तिको कभी उनका प्यार ही नहीं मिला! हास्य-सिद्ध उनकी रचनाओंमें जो कुछ सुन्दर है, सुकुमार और मनहर, शुभ और सत्य है, सरल और स्वाभाविक है—वही आयोजित हुआ है। उन्हें पढ़कर जान पड़ता है, आनन्द ही आँखमिचौनी खेल रहा है—माधुर्य और सौन्दर्य परस्पर क्रीड़ा कर रहे हैं। कहीं किसी तरहका उद्वेग नहीं—द्वन्द्व नहीं; है केवल तरल हास्य—अमर प्रसन्नता! जहाँ कहीं उन्होंने त्याज्य विषयोंका चित्र आँका, वहाँ भी कलुषकी आड़में चारुता ही मन हरती है। ऐसे सिद्धहस्त लेखक, सफल सम्पादक, शिष्ट आलोचक, चित्र-कला-मर्मज्ञ एवं सरल-सरस कविके परिचयके लिए, हम जानते हैं, आप अत्यधिक उत्सुक होंगे। खासकर, जब उन्होंने आपके वीच, सेवा-भावसे काम करके भी, आत्मगोपन किया। उनका व्रत था, नामसे कामको धक्का लगता है। इसीलिए एकान्त साधनाकी जो सजी-सँवरी चीज वे हमें दे गये हैं, चिरकालतक हम उसे अपनाकर रख सकेंगे और सच्चे हृदयसे उनके कृतज्ञ भी होंगे।

अतीत युगमें हिन्दी-साहित्यकी जन-प्रिय व्रज-वोलीका जो शृंगार शुभ मुहूर्तमें एक दिन बुन्देलखण्डने किया और जिसकी ज्योति आज भी एक रस जगमगा रही है—फिर कभी फीकी नहीं हुई, उसी पवित्र भूमिकी गोदके कालपीमें प्रसिद्ध साहित्य-सेवी स्वर्गीय कृष्णवलदेव वर्माके ख्यात खान्दानमें सितम्बर १८९९ ई० में स्व० व्रजमोहन वर्माने जन्म लिया। इनके पिताका नाम लाला झुन्नूलाल था और ये चार भाई थे। लाला राधाकृष्ण, लाला छन्नूलाल उनसे वड़े और कृष्णवलदेव छोटे थे। लाला झुन्नूलालके भी

चार पुत्र थे ; जिनमें व्रजमोहन वर्मा तृतीय थे। और नाना परिस्थितियोंमें दुःखका वरण करते हुए, अन्तमें हमारे यही प्रिय वर्माजी अपने लम्बे परिवारका कुल वोझ अपने एक वड़े और छोटे भाईपर छोड़कर निष्ठुरतासे चले भी गये !

वर्माजी वचपनसे ही दुर्वल थे; किन्तु उनमें दृढ़ अध्यवसाय, अपूर्व लगन और ईश्वर-दत्त प्रतिभा थी। कालपीमें ही उन्हें प्राथमिक शिक्षा मिली। इसी समयसे उनका झुकाव काव्यकी ओर हुआ। यद्यपि भाषा-ज्ञानका अभाव था, छन्द-लय और शब्द-तत्त्वसे अन-भिज्ञ थे, फिर भी, उनकी इस समयकी रचनामें स्वाभाविक कविका वीज स्पष्ट है।

वादको वे लखनऊ चले गये। वहीं मैट्रिककी परीक्षाके समय उन्हें कूलपर दर्द जान पड़ा। पर अपनी धुनमें मस्त वे लापरवाह रहे। परीक्षा समाप्त होते ही, एक रातमें ही दर्द वेहद वढ़ गया। वे शय्याशायी हुए। फिर डाक्टरोंकी सलाहसे लगातार कई महीनोंतक चारपाईसे उठ न सके। हालत नाजुक थी। इलाज होता रहा। फलतः अच्छे तो हुए, पर शरीर अकड़कर काठ हो गया। जिसका फल वे आमरण भोगते रहे हैं। चलने-फिरनेसे लाचार, वे वैसाखियोंके सहारे ही खुली दुनियाकी छातीपर विधाताके अकारण अत्याचारपर मौन उपहास करते रहे—जैसे उन्हें कुछ भी रोष नहीं ! विद्याकी लगन उत्तरोत्तर वढ़ती गयी। यहाँतक कि वीमारीकी हालतमें ही, वे हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजीकी सैकड़ों चुनी पुस्तकोंके पटन-पाठनसे अपूर्व मर्मज्ञ हो गये। फिर जीवनभर यही नशा रहा।

इसके वाद उनका कलकत्तेका जीवन है।

विकास हुआ और लिखनेकी तवीयत मिली। पहले-पहल खुलकर मैदानमें नहीं उतरे। गुमनानोंसे यत्र-तत्र लिखते रहे। इसी समय 'हिन्दूपंच'के स्वर्गीय सम्पादक ईश्वरी-प्रसाद शर्माके अनुरोधसे वे उनके पत्रमें व्यंग्य,–हास्य-सम्वन्धी नोट, कहानियाँ, निवन्ध और कविताएँ लिखने लगे। कविताएँ वहुधा 'चिलविल'के नामसे लिखा करते थे। इसके वाद 'श्रीकृष्ण-सन्देश'के यशस्वी सम्पादक श्री लक्ष्मणनारायण गर्देसे परिचय हुआ और उस पत्रमें भी वे लिखने लगे। कुछ दिनों वाद, जब पं० वनारसीदासजी चतुर्वेदीके सम्पादकत्वमें 'विशाल भारत' निकला, उनसे परिचय हुआ, तो वे 'विशाल भारत'के सम्पादकीय विभागमें शामिल हुए। तवसे अवतक पूरी लगन और ईमानदारीसे अपने उत्तरदायित्वका निर्वाह किया। इसी वीच अंगरेजी और वँगलाकी कई साहित्यिक और सामयिक चीजोंका उन्होंने पुस्तकाकार अनुवाद भी किया, जिनमें 'आजका रूस', 'त्रिलोचन कविराज' और 'पिस्तौलका निशाना' वहुत ही प्रसिद्ध हैं। पत्र-पत्रिकाओंमें लिखनेके वाद जो-कुछ भी समय मिला, उन्होंने उसे भी व्यर्थ नहीं किया। अभी लगभग पाँच सौ पृष्ठोंकी और ठोस सामग्री अप्रकाशित है। गद्यकी उनकी अपनी शैली थी। भाषा वामुहावरा सीधी और वोधगम्य लिखनेके पक्षपाती थे। यहाँतक कि उनकी यह प्रेरणा काव्यमें भी ज्योंकी त्यों ही रही। 'हिन्दी-साहित्यका विस्तृत इतिहास'की समग्री जुटाकर भी वे उसे कोई रूप न दे सके, यह हिन्दीका दुर्भाग्य है। हास्यके उनके कितने ही

पद्य अभी प्रकाशमें नहीं आये। पाठकोंकी जानकारीके लिए हम उनकी कविताके प्रकाशित—अप्रकाशित यहाँ दो उद्धरण देते हैं। देखिये, सीधी भाषामें शिष्ट हास्य कैसा बन पड़ा है :—

ब्रजके बन गाँव दिहातनमें अलि! छायो बसन्त है बाग-बगारन।
पल्लव पल्लव नूतन भे, अरु फूल खिले तरु डारन डारन।
कुंजन कुंजन क्वैलिया कूकत, गुंजत भृंग बसन्तके चारन।
बिललात फिरैं ब्रज-बाला विचारी, अहेरी मनोजके बानकी मारन।

पै कलकत्तेकी बात अनोखी, यहाँ सब चीज निराली ही राजै।
फूल खिलैं यहाँ कौन भला? जहाँ पेड़के नाम पै ताड़ बिराजै।
भौंरनकी नहिँ गुंज यहाँ, भन्नात मसागण साज-समाजै।
बौरे रसाल कहूँ उत तो, बौराये फिरैं नर पेटके काजै।

ब्रज-वीथिन माहिँ पराग बिछो, यहाँ कीच भरे मग छावत छोपू।
वे ब्रजबाला नहीं जिन पै तकि, काम चलावत बान सकोपू।
कुंचित-केशी मिसैं उचकैं, यहाँ मूँड़ धरे डलिया-अस टोपू।
कूकत क्वैलिया ह्वै है कहूँ, यहाँ कानन फाड़त मोटर-भोंपू।

२९ फरवरी (हिन्दू-पंच)

ऊटपटाँग

बिजली चमक रही है, ऊदी घटा है छायी,
बरसातका जमाना, नदियोंमें बाढ़ आयी।
सरजूकी तेज मौजें हैं मारती थपेड़े;
पद्माने भी उबलकर, कितने डुबाये बेड़े।
वह सरस्वती कि जिसका नामोनिशाँ नहीं था,
बढ़-बढ़के चुपके-चुपके करने लगी है हमला।
हर सिम्त डूबनेका सामान हो रहा है,
भँवरोंका तेज चक्कर औसान खो रहा है।
या रब है दिलकी किश्तीका एक तू सहारा,
पा जाऊँ शान्ति मैं यदि मिल-जाय जो किनारा।
है भरी हृदयमें चिर अशान्ति,
प्रभु, कहाँ मिलेगी मुझे शान्ति!

(अप्रकाशित सन् १९३५)

कवितामें दिलकी असलियत सीधी-सादी जवानमें फूटकर निकली है। किन्तु, उनसे मिलकर किसीको इसका हाल नहीं मिला। अपनी तमाम बीतीको हजम करके वह धीर पुरुष किस शानसे उठ गया, क्या आप जानकर दुःखी न होंगे? इसीलिए, प्रत्यक्ष सत्य—संसार नश्वर है, जानकर भी धैर्य नहीं बँधता। उनकी अप्रकाशित रचनाओंमें जीवन-का असल तत्त्व मूर्तिमान है। शायद इसीलिए उन्होंने जीवन-कालमें उसे छिपा रखा था। भाषा, विचार और शैलीके सम्बन्धमें इस समय यहाँ अधिक विचार करनेका मौका नहीं—दिल ही नहीं। यदि ईश्वरकी इच्छा हुई, तो उनकी संचित सामग्री भेंट करके हम अपने उदार और स्नेही पाठकोंको वर्माजीका असल परिचय देंगे। आज हम उनके दुःखी परिवारके साथ सच्ची हार्दिक सहानुभूति रखते हुए परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि वह दिवंगत आत्माको शान्ति प्रदान करे।[1]

× × ×

स्व० ब्रजमोहन वर्माकी पुण्य-स्मृतिमें

आह वर्माजी,

आप भी···आपने भी वही किया जो जमाना हमेशासे करता आ रहा है। आप तो ऐसे न थे! क्या 'विशाल भारत'को विशाल इसी दिनके लिए बनाया था कि आपके वियोगमें तड़प-तड़पकर प्राण छोड़ दे। डेढ़ वर्षकी कष्ट-साध्य बीमारीमें किया हुआ गहन अध्ययन और असाधारण प्रतिभा क्या इसीलिए प्रकाश दे रही थी कि वह अन्धकारको दूर करनेके पहले ही बुझ जाय। अभी तो 'विशाल भारत'के पाठकोंने रसामृतका स्वाद भी न पाया था। 'विशाल भारत' आजाद भारतको कुछ देने भी न पाया था कि आपने उससे किनारा-कशी कर ली। यह धोखा है, सरासर धोखा है जिसे आपने अपनी इच्छा, अपने स्वभाव, और अपने उद्देश्यके विरुद्ध साहित्य-जगत्को दिया है।

---

१. यह निबन्ध कलकत्तेके 'औघड़'—नामक मासिक पत्रके नवम्बर सन् १९३७ के अंकसे (जो देरसे प्रकाशित हुआ था उद्धृत किया गया है। 'औघड़'में निबन्धके साथ रचयिता-का नाम नहीं दिया गया है। निबन्ध मर्मस्पर्शी है परन्तु इसमें कुछ बातें सही नहीं हैं जिनका निराकरण कर देना उचित है—

(१) इसमें वर्मा जीका जन्म सन् १८९९ में लिखा है। उनका जन्म सन् १९०० का है।

(२) वर्मा जीका स्वर्गवास सन् ३० में नहीं, सन् १९३७ में हुआ था। यह शायद छापेकी भूल है।

(३) निबन्धसे सूचित होता है कि वर्मा जी रोग-शय्या-मुक्त होकर कलकत्ते आये थे। वास्तव-में वे अपनी चिकित्साके लिए ही कलकत्ते आये थे और यहीं उन्हें लगातार डेढ़ वर्ष-तक शय्याशायी क्या, शय्याबद्ध रहकर अपनी चिकित्सा करानी पड़ी थी।

(४) निबन्धमें लिखा है कि वर्मा जी कविताएँ बहुधा "चिलबिल" के नामसे लिखा करते थे। दो-एक कविता, जिसमें वे अपना नाम नहीं देना चहते थे, "चिलबिल"के नामसे निकली थीं, वर्ना वे इस नामसे कविता नहीं करते थे। —श्यामसुन्दर खत्री

आप जानते थे कि आपके प्रोत्साहनके दो शब्द, आपकी 'वाह'के दो अक्षर 'आजाद'-की आत्मामें नवजीवनका संचार कर देते थे। आपकी 'वाह' प्राप्तकर मैं अपनी रचनाको कितना सफल समझता था। दुःखके दिनोंमें जब मैं अपने जीवनसे निराश होकर आपकी सेवामें उपस्थित होता था तो आपकी धैर्य वँधानेवाली सान्त्वनाके दो शब्द मेरी मुर्दा नसोंमें पुनः एक नये उत्साहकी लहर दौड़ा देते थे। हे आदरणीय वन्धु! आज वह सान्त्वनाके दो शब्द खोकर मैं अपनेको सर्व-हारा समझ रहा हूँ।

वर्माजी, आपने शायद कभी महसूस नहीं किया था किन्तु मैंने किया था कि जिस समय कोई निर्धन साहित्यिक और दुःखसागरमें डूबता हुआ कोई निराश व्यक्ति आपकी सेवामें पहुँच जाता था, तो आप विना पूछे और विन माँगे इस प्रकार यथासाध्य उसकी सहायता करते थे कि उसका स्वाभिमानी हृदय आपकी सहायताके बोझको फूल-सा भी अनुभव नहीं करता था। आपका देनेवाला दाहना हाथ देते समय स्वयं इतना झुक जाता था कि लेनेवाली हथेली भी गर्व अनुभव करने लगती थी, और आपका वह दान उसके लिए आशीर्वाद वन जाता था। वकौल किसी शायरके—

है नेक काम, वह जो इन्सान करके भूले।
अहसानका मजा है, अहसान करके भूले॥

कदाचित् शायरने इस शेरकी रचना आप जैसे उदार और विशाल हृदय 'इन्सान'के लिए ही की थी। आपके वायें हाथको हमेशा यह तशवीश ही रही कि दाहिने हाथने क्या दिया? माना कि आपके इस प्रकारके अहसानों और दानका विशद वर्णन अखवारोंमें नहीं छपा लेकिन सैकड़ों दिलोंपर अवश्य अंकित है और ताकयामत अंकित रहेगा!

हे स्वर्गीय बन्धुवर! तुम्हारी गौरवमयी मधुर स्मृति आज भी कितने ही दिलोंको वेदना पहुँचा रही है! तुम्हारा कलकत्तेसे जाना और ऐसा जाना कि फिर पलटकर न आना आज अत्यधिक दुःखदायी प्रतीत हो रहा है। अपने जीवनके अधिकाधिक दिनोंको कलकत्तेमें बिताकर न जाने क्यों तुमने प्रस्थान करनेके लिए कानपुर चुना था। क्या अपने इष्ट-मित्रों और भक्तोंकी, जिन्हें तुमने अपने अहसानसे, अपने मधुर-स्वभाव और मृदु-व्यवहारसे अपना वना लिया था, सेवा लेना भी मंजूर न था? यही तुम्हारी महानता थी, यही तुम्हारा सबसे वड़ा गुण था जिसे आज हम अव समझे हैं, जव समझनेके लिए कुछ नहीं रह गया!

हे आदरणीय स्वर्ग-लोक-वासी वर्माजी, आपके चरणोंमें मेरे हृदयकी श्रद्धा और भक्तिके ये फूल अर्पित हैं, इन्हें स्वीकार करना और कभी अपने चरणोंसे अलग न करना!

राजनारायण चतुर्वेदी 'आजाद'
कलकत्ता

विशाल भारतके प्राण वर्माजी

काटन मार्केट

नागपुर सिटी

१५–१२–३७

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी,

प्रणाम। मुझे पिछले महीने ही पता चला था कि आप विशाल भारतसे अलग हो गये हैं। तभीसे पत्र लिखनेका विचार कर रहा हूँ। किन्तु लगभग दो माससे मेरी तबीयत ठीक नहीं है, इसीसे न लिख सका।

कल शामको तो बड़ी Shocking news सुनी। वर्माजीकी मृत्युसे हमलोगोंको बड़ा धक्का लगा। कितने सहृदय, कितने खुशमिजाज, कितने मजाकिया थे वे। विशाल भारतके तो वे प्राण ही थे। आप तो केवल पालिसी वतलाते और सम्पादकीय टिप्पणी ही लिखा करते थे। समझमें नहीं आता विशाल भारतका अब क्या होगा। मैं तो समझता हूँ आपका विशाल भारतमें जाना अत्यन्त आवश्यक है। आप भले ही ६ माहके लिए ही जावें, किन्तु जावें अवश्य। आज ही मेरे एक मित्रका पत्र आया है। उन्होंने भी यही लिखा है कि कुछ दिनोंके लिए आपका विशाल भारतमें वापिस जाना अत्यावश्यक है। हाँ, दूसरे व्यक्ति जो इस कार्यको सम्हाल सकते हैं, श्री श्रीराम शर्मा हैं, किन्तु वे तो इस समय Asstt. Rural Development officer to the U. P. Govt. हैं। वे तो शायद लखनऊसे हट ही नहीं सकते। इससे आप ही वापिस जावें। "विशाल भारत" हिन्दी मासिकोंमें सर्वश्रेष्ठ है और उसे जीवित रखना ही होगा। जिस पौधेको आपने और वर्माजीने इतने कष्ट सहकर भी सींचा और इतना बड़ा किया, उसे तो आपको हर तरहसे जीवित रखना ही होगा।

विनीत

ललिता शंकर

× × ×

अश्रु अर्घ्य

गुरुकुल विद्यामन्दिर
सूपा
१५-१२-३७

प्रिय चतुर्वेदीजी,

नमस्ते,

दैनिक हिन्दुस्तान (दिल्ली) में यह पढ़कर अत्यन्त दुःख हुआ कि भाई ब्रजमोहन वर्मा अव इस भौतिक संसारमें नहीं हैं। हिन्दीका एक सुरुचि-सम्पन्न कृतिकार और मार्मिक कलाकोविद जो कि ख्यातिके आँचलसे बाहर नहीं आया था—सदाके लिए अतीतके आँचलमें ओझल हो गया। इस जीवनमें एक वार ही उनके दर्शनका सुयोग प्राप्त किया था। पर उस छोटी-सी मुलाकातने हृदयपर एक अमिट प्रभाव अंकित कर दिया था। आज तो उनकी स्मृतिमें अश्रुभरे नयन लेकर वैठा हूँ। दिलमें एक विशेष प्रकारका अभाव अनुभव कर रहा हूँ। कृपया यह पत्र पाते ही मुझे स्वर्गीय भाई वर्माजीके आत्मीय जनोंका Postal Address प्रेषित कीजिये; जिससे उनको समवेदनासूचक पत्र आदि प्रेषित किया जा सके। वे अपने पीछे किन-किनको विलखता छोड़ गये हैं? और अधिक क्या लिखूँ।

भवदीय
शंकरदेव विद्यालंकार

× × ×

परिशिष्ट—३ की प्रतिलिपि

श्रीमान्,

सहर्ष निवेदन है कि श्री ब्रजमोहन वर्मा (स० सम्पादक विशाल भारत) का शुभ विवाह

? ? ? ? ? ? ? ? ?
? ? ? ? ? ? ? ? ?

(दिल्ली की मुखाकृति)

के साथ होना निश्चित हुआ है।
अतएव १ अप्रैल को रात के
१ बजे लाल बाज़ार थाने पर
उपस्थित होने की कृपा कीजिये।

Ramdhan Ram
G. K. Banerjee
P. Chakraverty

वनारसीदास चतुर्वेदी
श्रीपति पाण्डेय
अयोध्या सिंह

एक निमंत्रण-पत्र
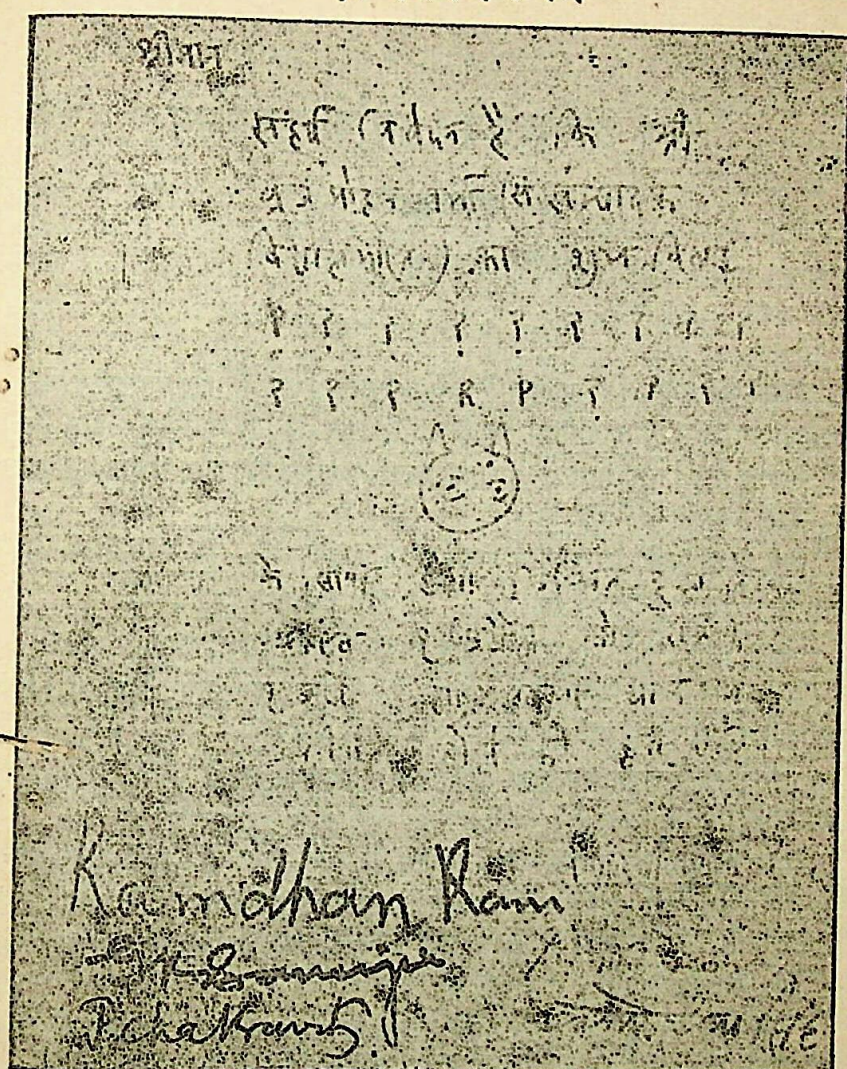
विशाल भारतके प्रधान सम्पादक पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीने श्री ब्रजमोहन वर्माके विवाहका यह निमन्त्रण-पत्र, जिसमें कन्या (बिल्ली) के मुखकी आकृति अंकित है, खुद दस्तखत करके तथा अन्य सहकारियोंसे हस्ताक्षर कराके, वर्माजीको बनानेके लिए चुपचाप उनकी मेजपर रखवा दिया था। परन्तु वर्माजी बननेवाले जीव नहीं थे। उन्होंने इसे पढ़ा, मुसकुराए, और चट इसकी पीठपर निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखकर चतुर्वेदीजीको लौटा दिया :—

"मंजूर है मुझको वही आज्ञा जो कुछ हो आपकी।
शर्त लेकिन है यही बिल्ली न हो पंजाब की।।

. ब्र० मो० वर्मा"

—श्यामसुन्दर खत्री

स्व० कृष्णबलदेव वर्माके सम्बन्धमें

स्व० कृष्णबलदेव वर्मा

बुन्देलखण्डके अनन्य भक्त

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी

"आप मुझे शायद न जानते होंगे, मेरा नाम कृष्णबलदेव है।" एक वयोवृद्ध सज्जनने 'विशाल भारत' कार्यालयमें पधारकर अपना परिचय इस प्रकार दिया। बात तेरह वर्ष पहलेकी है, पर वर्माजीकी वह मुखमुद्रा, जिससे अकृत्रिम स्नेह और विनम्रता टपकती थी, मुझे 'ज्यों-की-त्यों' याद है।

मैंने उत्तर दिया, "सरस्वतीके किसी पुराने अङ्कमें—२०-२५ वर्ष पहलेका कोई अङ्क था—आपका चित्र मैंने देखा था।" "हाँ, ठीक बात है, वही हूँ।"—

इतना कहकर वर्माजी विराज गये और 'विशाल भारत'के प्रूफ देखना शुरू कर दिया! मैं हैरान था कि ये अजीब आदमी हैं। वर्माजीने उन त्रुटियोंका संशोधन किया, जो मुझसे छूट गयी थीं, और कई घण्टे काम करके चलते वक्त कहा—

"आप किसी तरहका सङ्कोच न कीजिये। कलकत्ता आपके लिए नयी जगह है और मैं यहाँ वर्षोंसे रहता हूँ। किसी तरहका कष्ट हो तो मुझसे कहिये।"

फिर तो वर्माजीसे इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया कि उनकी प्रेमपूर्ण डाँट अक्सर सुननेको मिलती थी। कभी किसीसे मिलाने ले जाते तो कभी किसीसे। खास तौरपर मेरी वस्त्र-सम्बन्धी 'अव्यवस्था'से वे सख्त नाराज रहते थे। चौबेजी तुम बड़े सिल्लक बिल्ले हौ, जरा सलीका तो सीखो।" मैं हँस देता।

वर्माजीको एक धुन थी (उस समय मैं उसे खप्त समझता था) यानी वे हर वक्त बुन्देलखण्ड तथा 'केशव'की रट लगाये रहते थे। केशवकी पचासों रचनाएँ उन्हें कण्ठस्थ थीं और उनकी स्मरण-शक्ति देखकर दंग रह जाना पड़ता था।

जब वर्माजी बुन्देलखण्डकी प्रशंसा करने लगते तो फिर उनकी जबान थकती न थी। ऐसा प्रतीत होता था कि बेतवा नदीमें बाढ़ आ गयी है। यदि उनका वश चलता तो वे 'विशाल भारत'को बुन्देलखण्ड प्रान्तका मुख-पत्र ही बना डालते। जब देखिये तब बुन्देलखण्ड प्रान्तके विषयमें कोई न कोई लेख या चित्र लिये मौजूद हैं! उनके आग्रहपर बुन्देलखण्डविषयक कितने ही लेख मैंने 'विशाल भारत'में प्रकाशित भी किये पर उनको तृप्त करना असम्भव था।

अपनी मृत्युके तीन महीने पहले उन्होंने श्रीयुत गौरीशङ्कर जी द्विवेदीको लिखा था :—

"पूज्यवर,

प्रणाम। आपको यह जानकर दुःख होगा कि मैं ता० २३ को इलाहाबाद गया। वहाँसे ओरियण्टल कान्फ्रेंस एटेण्ड करने पाटलिपुत्र गया। वहाँसे बौद्धकालीन युनिवर्सिटी नालन्द, राजगिरि, वैशाली, सहस्रा आदि देखनेको था कि पाटलिपुत्रमें सख्त बीमार पड़ गया, और यहाँ काशी अपने भानजे डाक्टर अचलविहारी सेठ एम. बी.बी.एस. सी. (मेडिकल आफिसर सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल बनारस) के पास लौट आया। परसों सबेरे मेरे रोगने भयानक रूप धारण किया। हार्ट सिंक होने लगा, नाटिका बैठ चली। विश्वनाथ-जीसे आप सब मित्रोंकी मंगल कामना करते हुए अटल निद्रा लेनेको ही था कि डाक्टरके इन्जेक्शन और मकरध्वजके डोजोंने हार्ट एण्ड नाटिकाको सँभाल लिया। अब मैं इम्प्रूव कर रहा हूँ। और अभी जबतक बिलकुल ठीक नहीं हो जाऊँगा तबतक आठ-दस दिन यहाँ रहूँगा। यदि कैलाश-लाभ कर लूँगा तो मेरी शुभ कामनाओं-को सदैव अपने साथ समझियेगा और सदैव मातृ-भाषाकी सेवामें रत रहियेगा। बुन्देलखण्डके गौरवका ध्यान रहे। सोते जागते जो कुछ लिखिये-पढ़िये वह मातृ-भूमिके गौरवके सम्बन्धमें ही हो। शोक, मैं इस बीमारीके कारण शय्यासीन होनेसे सुधाके 'ओड़छाङ्क'को अभी कुछ नहीं लिख सका हूँ। एक पुराना लेख 'बुन्देलखण्डका चित्तौर ओड़छा दुर्ग' था वह सरस्वतीको दे दिया था। १ तारीखतक आपके पास उसकी प्रति सरस्वतीकी पहुँचेगी तथा एक प्रति महाराज साहबकी सेवामें, एक दीवान साहबकी सेवामें पहुँचेगी। उसे आप अवश्य देखियेगा। लेख सचित्र है, उसमें ओड़छाका गौरव है। चित्तौराधिपति प्रतापपर, वीरशिरोमणि वीरसिंह देवका ऐतिहासिक प्रमाणोंके साथ प्राधान्य है। चित्तौरसे ओड़छा गौरवशाली है, यह भाव है। यदि आठ दिन और जीवित रहा तो सुधाके अंकके लिए लेख पहुँचेगा।"

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मातृ-भूमिसे उनका अभिप्राय बुन्देलखण्डसे ही था। मैं उन दिनों उनकी इस भक्तिको 'अन्ध श्रद्धा' तथा 'प्रान्तीयता' ही समझता था और साथ-ही-साथ मेरा यह भी खयाल था कि वर्माजी अपने प्रान्तकी जो प्रशंसा करते हैं उसमें बहुत-कुछ अत्युक्ति है। अब इस भूमिमें तीन वर्ष रहनेके बाद मुझे अपनी यह भ्रमात्मक धारणा दूर कर देनी पड़ी है। यहाँ आकर मैं अपने प्रान्त यानी ब्रजमण्डलका प्रेमी बन गया हूँ और मेरे मनमें यह आकांक्षा उत्पन्न हो गयी है कि मैं भी आगे चलकर अपने ब्रजमण्डलके प्रति वैसी ही भक्ति हृदयमें धारण कर सकूँ, जैसी स्वर्गीय वर्माजीमें बुन्देलखण्डके प्रति थी।

अपने ८–३–२९ के पत्रमें उन्होंने बन्धुवर गौरीशंकर जी द्विवेदीको लिखा था :—

"मैं बुन्देलखण्डके इतिहास तथा प्रख्यातिके लिए, जो कुछ सम्भव है, कर रहा हूँ। मुझे बुन्देलखण्डसे प्रीति और भक्ति है। मैं मरकर फिर वहीं जन्म लेना चाहता हूँ। वह पावन क्षेत्र है, वह वीर भूमि है, उसका इतिहास समुज्जवल है। आपने देख लिया होगा कि बुन्देलखण्डका जहाँ कोई नाम भी न जानता था वहाँ उसकी अब कितनी ख्याति है।

यहाँ कलकत्तेमें विशाल भारत लेक्चर सीरीज मैजिक लैण्टर्न द्वारा प्रदर्शित करनेका जो प्रबन्ध हुआ है उसमें दो लेक्चर्स वुन्देलखण्डके इतिहास मन्दिर व मूर्ति निर्माण, कला-साहित्य व वीर चरित्रपर भी मेरे हैं। अब मेरा आपका और सबका कर्तव्य है कि इस बुन्देलखण्डके गौरवको जीवित रखें और ख्यातिको बढ़ावें।"

जहाँ-कहीं वे जाते, अपने प्रान्तकी चर्चा किये बिना न रहते। हिन्दुस्तानी एकेडेमीसे उन्होंने यह तय करा लिया था कि वे स्वयं कवीन्द्र केशवदासके ग्रन्थोंका सम्पादन करेंगे। इतिहासके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत डाक्टर कालिदास नागको उन्होंने इस बातके लिए राजी कर लिया था कि वे इस प्रान्तका दौरा उनके साथ करेंगे और परिषदों, कान्फ्रेंसों तथा सम्मेलनोंमें उनके जानेका मुख्य उद्देश्य यही होता था कि वे अन्वेषकों तथा विद्वानोंका ध्यान इस प्रान्तकी ओर आकर्षित करें।

किसीसे वे हरदौलके गीत मँगाते थे तो किसीसे सारंगाका गीत। दिन रात उन्हें इसी प्रान्तकी फिक्र थी और उनके पत्रोंमें बस यहींकी चर्चा रहती थी।

"राज लाइब्रेरीमें पता लगाइये कि कवीन्द्र केशवदास जीके किन-किन ग्रन्थोंकी हस्त-लिपि वहाँ मौजूद हैं।"

"झाँसीके श्री श्रवणप्रसादजीको लिखिये कि वे गीत इत्यादिका संग्रह करावें।"

"गुरुजी पं० बालकृष्णदेव जीसे पूछिये कि क्या केशवके ग्रन्थोंकी कोई प्रति उनके पास भी है।"

"किसीके यहाँ जहाँगीर चन्द्रिका मिलेगी ?"

"अकबरके दर्पदमनकारी महाराज वीरसिंह देवका चित्र तलाश कराइये !"

एक चिट्ठीमें उन्होंने द्विवेदीजीको लिखा था:—"आप तथा रसिकेन्द्र जी परस्पर परामर्श करके मुझे यह लिखियेगा कि बुन्देलखण्डके किन-किन स्थानोंके चित्र संग्रह किये जावें। मैंने विशाल भारतसे यह तय कर लिया है कि प्रति लेख १० ब्लाक चित्र वह छाप देंगे और अपनी ओरसे ब्लाक बनवा लेंगे ! मैं समझता हूँ कि बुन्देलखण्डके इतिहासके छपने और सचित्र छपनेका एक प्रकारसे मैंने पूरा प्रबन्ध कर लिया है। अब रहा लेख प्रस्तुत करने और उसके सम्बन्धमें खोज करनेका काम वह हमलोगोंके ऊपर निर्भर है। यदि इस समय हम आप सब सपरिश्रम लेखमाला प्रस्तुत करनेमें लग जावेंगे तो अब आप विश्वास कर लीजिये कि जिस कामको कठिन-साध्य ही नहीं असम्भव समझते थे, वह सुलभ हो गया। अब चित्रोंवाली कठिनाई न रही। प्रकाशनके लिए भी साधन प्रस्तुत हैं।"

विशाल भारतमें मैंने वर्माजीके आदेशानुसार बुन्देलखण्डविषयक अनेक चित्र तथा लेख छापे थे। उन्हींके आज्ञानुसार महारानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब तथा छत्रसालके रंगीन चित्र 'विशालभारत' में प्रकाशित हुए थे। कवीन्द्र केशवदासका तिरंगा चित्र भी वे विशाल भारतके लिए तलाश कर रहे थे।

स्वर्गीय वर्माजीके सत्संगका सौभाग्य मुझे केवल दो वर्षतक प्राप्त हुआ। एक दिन उन्होंने एक क्षीणकाय व्यक्तिको मुझसे मिलाया और कहा, "चौबेजी, मैं तो अब वृद्ध हो गया, हृद्रोगसे पीड़ित रहता हूँ, न जाने कब चल दूँ, आपको एक साहित्यसेवी सौंपता हूँ, आप इससे काम लीजिये।"

मैंने कहा, "ये कौन हैं? इनका शुभ परिचय?" वर्माजीने कहा, "यह मेरा साहित्यिक उत्तराधिकारी है—वैसे भतीजा है। नाम है ब्रजमोहन।"

स्वर्गीय बन्धु ब्रजमोहन वर्माने विशाल भारतके लिए जो महान् कार्य किया और जिस प्रकार वे उसके प्राणस्वरूप बन गये उसकी चर्चा तो फिर कभी की जायगी। इस समय इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आगे चलकर स्वर्गीय कृष्णबलदेव जी वर्माकी ख्याति जितनी बुन्देलखण्ड-प्रेमी होनेके कारण होगी उससे अधिक होगी स्वर्गीय ब्रजमोहन वर्माके पूज्य चाचा होनेके कारण।

यद्यपि स्वर्गीय कृष्णबलदेव वर्मा जी अपनी मातृभूमि बुन्देलखण्डके अनन्य भक्त थे, पर उनमें क्षुद्र प्रान्तीयताका सर्वथा अभाव था और उनकी साहित्यिक रुचि पूर्णतया उदार थी।

जब उनसे 'सुधा'के ओरछा-अङ्कके लिए लेख माँगा गया तो उन्होंने लिखा था :—

"यह जानकर मुझे और भी आनन्द हुआ है कि 'सुधा' ओरछा-अङ्क प्रकाशित करेगी। मैं उसमें सहयोग देनेके लिए पूर्णतया प्रस्तुत हूँ। साहित्यिक देवस्वरूप श्री केशवदास जी मेरे हृदयाराध्य उपास्य देव हैं। फिर यह कहाँ सम्भव है कि जहाँ उनका अथवा ओरछा राज्यका गुणगान होनेको हो वहाँ मैं कुछ भी त्रुटि करूँ? पर कहना इतना ही है कि एक सप्ताहका समय जो लेखके लिए आप मुझे देते हैं वह बहुत ही अपर्याप्त है, कारण यह है इस समय मैं बहुत व्यग्र हूँ, यह सप्ताह क्या दो सप्ताहतक मैं ऐसा फँसा हूँ कि दम मारनेका अवकाश नहीं, क्योंकि ता० २१ नवम्बरको मैं प्रयाग जा रहा हूँ। एकेडेमीकी ओरसे पत्रिका पहिली जनवरीको प्रकाशित होनेवाली है। उसके एडिटोरियल बोर्डकी मीटिंग २३ नवम्बरकी है। पत्रिकाके एडिटोरियल बोर्डका मैं आनरेरी मेम्बर हूँ। पत्रिकाके लिए एक बहुत विस्तृत लेख भारतवर्षके अन्तिम सम्राट् महाराज समुद्रगुप्तपर लिखा है। समुद्रगुप्तके सम्बन्धमें खोज करने और स्टडी करनेमें मुझे दो मास लग गये। प्रयाग, कौशाम्बी, दिल्ली, एरण, गया आदिक स्तम्भोंपरके लेखोंको पढ़ना पड़ा, कनिंघमकी आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्टकी स्टडीज करनी पड़ीं। गुप्तकालीन मुद्राओं व मूर्तियोंको खोजकर उनसे ऐतिहासिक रहस्य उद्घाटन करने पड़े। अब वह लेख पूर्ण करके भेजा है। वीर-विलासकी भूमिका कलतक लिखकर तैयार हो जावेगी। उसे भी प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ। दूसरे, २५ दिसम्बरको काशीमें ऑल एशियाटिक एज्यूकेशन कान्फ्रेंस होनेवाली है, उसका भी मैं मेम्बर हूँ, उसके लिए भी लेख प्रस्तुत करना है, जो भारतवर्षकी प्राचीन युनिवर्सिटियों और शिक्षा-पद्धतिपर होगा, साथ ही २६ ता० को काशी नागरीप्रचारिणी सभाके साहित्य-परिषद्का अधिवेशन है, जिसके लिए सभापति श्रीयुत राव बहादुर माधव-

राव किवे हैं। उस परिषद्के लिए बन्धुवर बाबू श्यामसुन्दरदासजी राय साहबने बुन्देलखण्डके साहित्यपर एक लेख पढ़नेकी आज्ञा की है। जिसकी मैं स्वीकृति दे चुका हूँ, और जिसे तैयार करनेका आज ??गा लगाऊँगा। साथ ही पटनेमें ओरियंटल कान्फ्रेंस है उसमें भी जाना पड़ेगा और उसके लिए भी कुछ मसाला इकट्ठा करना होगा। अतः आप बाबू दुलारेलाल जीसे यह कहिये कि वे कृपा कर ओरछाङ्कके पन्द्रह-बीस पृष्ठकी जगह मेरे लेखके लिए रिजर्व रखें।"

इस पत्रसे स्पष्टतया प्रकट है कि श्रद्धेय वर्माजीकी साहित्यिक रुचिमें सङ्कीर्णता बिलकुल नहीं थी। जिस प्रेमके साथ वे कलकत्तेमें होनेवाले अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका मंत्रित्व कर सकते थे उसी प्रेमके साथ अपने बुन्देलखण्ड प्रान्तके किसी गाँवकी खाक भी छान सकते थे। स्वप्रान्त-प्रेम तथा स्वदेश-प्रेम कोई परस्पर विरोधी भावनाएँ नहीं हैं।

हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है कि ज्यों-ज्यों हमारी मातृभूमिमें साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जाग्रति होती जायगी त्यों-त्यों हम स्थानीय केन्द्रोंको अधिकाधिक महत्त्व देते जायँगे। यदि हममेंसे प्रत्येक अपने जनपद अथवा मण्डलकी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक प्रगतिके लिए कटिबद्ध हो जाय तो समस्त भारतकी सर्वाङ्गीन उन्नति होनेमें देर न लगे। यद्यपि हमें अपने देशका सम्पूर्ण रूप अपने सामने रखना चाहिये (वहाँपर भी हमें क्षुद्र राष्ट्रीयताके खतरेसे अपनेको बचाना होगा) तथापि हमारा कल्याण इसीमें है कि हम अपनी परिमित शक्तियोंका खयाल करके अपेक्षाकृत एक छोटेसे स्थल या जनपदको अपना कार्यक्षेत्र बना लें। कार्यकी सुविधाके लिए क्षेत्रोंके विभाजनके मानी 'प्रान्तीयता' हर्गिज नहीं।

स्वर्गीय कृष्णबलदेव वर्माके जीवनमें सबसे अधिक आकर्षक बात यही थी कि बुन्देलखण्डको उन्होंने अपने हृदयमें सर्वोच्च स्थान दे रखा था। यद्यपि गार्हस्थिक दुर्घटनाओं, शारीरिक कष्टों और राजनीतिक झंझटोंके कारण वे अपने प्रान्तकी यथोचित सेवा न कर सके तथापि जो कुछ भी उन्होंने किया तदर्थ हम सबको उनका कृतज्ञ होना चाहिये। वह समय दूर नहीं है जब कि बुन्देलखण्ड प्रान्तकी जनता स्वर्गीय कृष्णबलदेव वर्माके इस अनन्य प्रेमसे भलीभाँति परिचित हो जायगी और जिस कामको वे अधूरा छोड़ गये उसे पूर्ण करेगी। उनकी आत्माको सन्तोष तभी होगा जब बुन्देलखण्ड-प्रान्त सांस्कृतिक दृष्टिसे अपने प्राचीन गौरवको पुनः प्राप्त कर ले।

× × ×

श्री कृष्णबलदेव वर्मा के प्रति

जिन्होंने प्रचार देवनागरीका करनेमें
नाना कष्ट झेले निज सौख्य-साधना तजी,
जिनकी एकान्त साध रही आँखों देखनेकी
रम्याटवी हिन्दीकी हरी-भरी सजी-धजी,
प्रारम्भिक जिनकी तपस्याके फलस्वरूप
आज राष्ट्रभाषाकी विजय-दुन्दुभी बजी,
पूजनीय वन्दनीय अभिनन्दनीय सदा
उन्हीं कर्मवीरोंमें थे कृष्णबलदेवजी ॥

सदन वात्सल्यके, निकेतन सुजनताके,
सहृदयताके अवतार मूर्तिमान थे,
देशभक्ति-मदमें प्रमत्त रहते थे सदा
परहित-व्रतधारी सुमन समान थे।
जीवनकी साधना थी वाणीकी उपासना ही
विद्या-व्यसनी थे प्रत्न-तत्वग महान थे,
परम उदारचेता कृष्णबलदेवजी थे
अनुकरणीय गुणगणके निधान थे ॥

प्रत्न-तत्व वर्णनकी शैली कैसी रोचक थी,
कहते थे मानों घटनाएँ देखी आँखकी;
चर्चा जब काव्यकी विमुग्ध-चित्त करते थे,
वाणीमें मिठास भर जाती रही दाखकी।
हास्यपूर्ण सरल विनोदमय व्यंगोंमें थी
क्षमता विचित्र ज्ञान-अंजन-सलाखकी;
महामना पूज्यपाद कृष्णबलदेवजीकी
एक एक बात रही एक एक लाखकी ॥

—श्यामसुन्दर खत्री

× × ×

स्वर्गीय बाबू कृष्णबलदेव वर्मा

स्वर्गीय पण्डित बालदत्त पाण्डेय, कलकत्ता

अत्यन्त खेदका विषय है कि गत २७ मार्च सन् १९३१ ई० को पुण्यधाम काशीमें हिन्दी-साहित्यके अत्यन्त प्रतिष्ठित प्राचीन तथा प्रतिभाशाली लेखक, पृष्ठपोषक एवं उन्नायक, प्राचीन आर्य संस्कृतिके परम उपासक और बुन्देलखण्डके मध्यकालीन इतिहासके श्रेष्ठतम ज्ञाता, सरलता, सुजनता, सहृदयता एवं उद्योग और उत्साहके साक्षात् अवतार, मंजुलमूर्ति बाबू कृष्णबलदेव वर्माका देहावसान कोई ६० वर्षकी उम्रमें हो गया।

बाबू कृष्णबलदेव वर्माका जन्म बुन्देलखण्ड प्रान्तकी वीराङ्गना, झाँसीकी सुप्रसिद्ध महारानी लक्ष्मीबाईके अन्तिम दिनोंके लीला-क्षेत्र—कालपी नगरमें एक सम्भ्रान्त खत्री-कुलमें हुआ था। आपके पूर्वज कई सौ वर्ष पहले सरहिन्दसे आकर व्यापारके हेतु कालपीमें बस गये थे और वहाँ अच्छी प्रतिपत्ति कर ली थी। गत सिपाही-विद्रोहके समय वहाँका सरकारी खजाना आपलोगोंके ही हाथमें था। जिस समय सुप्रसिद्ध नाना साहब पेशवा तथा महारानी लक्ष्मीबाईने कालपीको अपने अधिकारमें किया, उस समय उन लोगोंने आपके ही पूर्वजोंके निर्माण किये हुए सुविशाल देवालयकी इमारतोंमें अवस्थान किया था। आपके पूर्वजोंने उक्त नाना साहब पेशवाको ऋण-स्वरूप पचहत्तर हजार रुपये भी दिये थे। जब उक्त नगर महारानीके हाथसे निकल गया और उन्हें वहाँसे भागना पड़ा तो महारानी-जीकी पादुका, स्नान करनेकी चौकी एवं नाना साहबके दरबारी चित्रकार द्वारा अंकित नाना साहब तथा महारानीके चित्र आदि वहीं रह गये थे, जिन्हें आपने बड़े यत्नसे सुरक्षित रखा था। उपर्युक्त चित्रोंको वर्माजीने कलकत्तेके हिन्दी-मासिक-पत्र 'विशाल भारत'की किन्हीं पिछली संख्याओंमें प्रकाशित भी कराया था।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा कालपीमें हुई थी। वहाँसे आपने अंग्रेजी मिडिल पास किया, फिर लखनऊके केनिंग कालेजमें प्रवेश किया। यहीं बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। बालक-पनसे ही आप बड़े उत्साही थे। बुद्धि बड़ी प्रखर थी। आपमें सर्वतोमुखी प्रतिभा थी। इन्हीं गुणोंके कारण आपकी अपने सहपाठियों तथा अध्यापकोंमें अच्छी प्रतिष्ठा थी। साहित्य-सेवा तथा सार्वजनिक सेवाका भाव आपने अपने पूज्य पितासे पाया था। लखनऊ-में आकर आपको अपनी प्रतिभाके विकासका अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। विद्याध्ययनके साथ-साथ आपने नगरके साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक—सभी प्रकारके आन्दोलनोंमें भाग लेना प्रारम्भ किया। इन्हीं गुणोंके कारण लखनऊके तत्कालीन स्वनाम-धन्य नेता बाबू गङ्गाप्रसाद वर्माका ध्यान आपकी ओर आकृष्ट हुआ और शीघ्र ही आपसे घनिष्ठता हो गयी। फिर तो आप बाबू गंगाप्रसाद वर्माके दाहिने हाथ हो गये और उन्हें प्रत्येक सार्वजनिक कार्यमें सहायता दिया करते थे।

इन्हीं दिनों लखनऊमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। सन् १८९९ ई०की कांग्रेस बड़ी महत्त्वपूर्ण हुई थी। उस समय कांग्रेसके अधिवेशनको सफल बनाना एक दुस्तर कार्य था। एक तो जनतामें उतनी जागृति न थी, और दूसरे कांग्रेसको नष्ट करनेके लिए सरकारी

अधिकारी, उनके पिट्ठू धनिक हिन्दू और मुसलमानोंमें प्रसिद्ध सर सय्यद अहमदके अलीगढ़ी चेले षड्यन्त्र रचा करते थे। उन लोगोंने एण्टी कांग्रेस नामक संस्था स्थापित की थी। लखनऊके उक्त अधिवेशनको विफल बनानेके लिए पूरी तैयारियाँ की गयी थीं। वावू कृष्णवलदेव वर्मा इस अधिवेशनमें स्वयंसेवकोंके कप्तान थे। उन्होंने दिवा-रात्रि परिश्रम कर, कांग्रेसके अधिवेशनको पूर्ण सफल बनानेमें ही सहायता न की, बल्कि एण्टी कांग्रेसके अधिवेशनमें अपने दलके साथ पहुँचकर उसका तख्ता ही उलट दिया। इन सेवाओंके लिए आपकी प्रशंसा हुई थी। इन्हीं दिनों हिन्दीके प्रचारार्थ, उर्दूके दुर्गम दुर्ग लखनऊसे आपने "विद्या-विनोद-समाचार" नामक हिन्दी पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ किया और दो वर्षतक बड़ी योग्यताके साथ सम्पादन किया। लखनऊसे निकलनेवाला हिन्दीका पहला पत्र वही था।

लखनऊके इस समयके प्रायः सभी प्रमुख व्यक्तियोंसे आपका हेल-मेल था। "रस-कुसुमाकर" नामक सुन्दर काव्य-ग्रन्थके प्रणेता स्वर्गीय अयोध्या-नरेश, सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित विशुननारायण दर, "अवध-पञ्च"के सम्पादक सय्यद सज्जाद हुसेन आदिसे आपकी विशेष घनिष्ठता थी। सज्जाद हुसेन साहवको तो आप प्यारमें "भाई साहब मरहूम" कहा करते थे। ब्रह्म-लीन श्री स्वामी रामतीर्थ भी आपको बहुत प्यार करते थे। आपकी तत्परता देखकर उन्होंने प्यारसे आपका नाम "खुदाई फौजदार" रख छोड़ा था।

लखनऊ म्यूजियमके तत्कालीन क्यूरेटर, जर्मन विद्वान् डाक्टर फ्यूररसे भी आपकी मैत्री हो गयी थी। इन्हींके सत्संगसे आपको भारतीय पुरातत्व तथा ऐतिहासिक शोध सम्बन्धी कार्यसे अनुराग हुआ। बुन्देलखण्डके इतिहासको आपने विशेष रूपसे अध्ययन किया था। तत्सम्बन्धी खोजमें आपने अपने जीवनका बहुत बड़ा समय व्यय किया। इसीलिए बुन्देलखण्डके इतिहासके आप बहुत बड़े ज्ञाता थे। बंगालके ख्यातनामा इतिहास-वेत्ता, 'करुणा' तथा 'शशाङ्क' नामक ऐतिहासिक उपन्यासोंके अमर लेखक स्वर्गवासी बाबू राखालदास बन्दोपाध्याय आपके बुन्देलखण्ड-सम्बन्धी ऐतिहासिक ज्ञानके कायल थे। उन्होंने वर्माजीके साथ बुन्देलखण्डके ऐतिहासिक स्थानोंमें भ्रमण करनेकी अभिलाषा प्रकट की थी। पर बन्दोपाध्याय महाशयकी सुदीर्घकालीन अस्वस्थता तथा असामयिक मृत्युके कारण यह न हो सका।

इधर कुछ वर्षोंसे, कुछ तो शारीरिक अस्वस्थता और कुछ विभिन्न क्षेत्रोंमें कार्य करते रहनेके कारण, आपने हिन्दी लिखना बन्द कर दिया था; पर वर्तमान हिन्दीके प्रारम्भिक कालमें आपने उसकी जो स्तुत्य सेवा की थी, वह उसके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखी रहेगी। मिश्रबन्धुविनोदके १४०२ पृष्ठपर आपके सम्बन्धमें यों लिखा है :—

"नाम—(२९८०) कृष्णबलदेव खत्री, कालपी

ग्रन्थ—(१) भर्तृहरि नाटक, (२) फाह्यान भाषा, (३) ह्यूयनसाँग भाषा, (४) विद्याविनोद पत्र।

जन्म काल—१९२७ के लगभग

विवरण—ये महाशय हिन्दीके बड़े रसिक, गद्यके सुलेखक हैं।
प्राचीन विषयोंकी खोजमें इन्होंने समय लगाया है।
इनका भर्तृहरि नाटक पढ़नेसे रुलाई आ जाती है।
विद्याविनोद पत्र भी इन्होंने कुछ साल निकाला था।"

समय-समयपर 'मर्यादा', 'सरस्वती' आदि पत्रोंमें भी आप लेख लिखते रहे हैं। अभी हालहीमें "महाराज छत्रसाल" तथा "बाबा मलूकदास" आदि कई गवेषणापूर्ण लेख आपने "विशाल भारत"में प्रकाशित किये थे।

काशी नागरी-प्रचारिणी सभाके आप प्रारम्भसे ही परम शुभचिन्तक तथा उत्साही कार्यकर्ता रहे। सभा द्वारा प्रकाशित "लाल" कविके "छत्र प्रकाश" नामक ग्रन्थका आपने सम्पादन किया था। हिन्दीके पुराने साहित्य-प्रेमी स्वर्गीय पण्डित विष्णुलाल मोहनलाल पाण्ड्याको आप बड़ी भक्तिसे स्मरण किया करते थे, और जहाँतक हमें विदित है, सभा द्वारा प्रकाशित महाकवि चन्दके 'पृथ्वीराज-रासो' नामक महाकाव्यके सम्पादनमें आपने पाण्ड्याजीकी यथेष्ट सहायता की थी।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे भी आपका सम्बन्ध बराबर रहा; और कलकत्तेमें सम्मेलन-के जिस अधिवेशनमें "मंगलाप्रसाद पारितोषिक" की स्थापना हुई थी, उसके प्रधान मन्त्री आप ही थे। हिन्दीके प्राचीन कविता-साहित्यपर आपका विशेष अधिकार था। महाकवि चन्दसे लेकर भारतेन्दुके समय तकके प्रायः सभी कवियोंके सहस्रों पद आपको कण्ठस्थ थे; काव्य-चर्चा करते समय, जिस समय भावावेशमें आकर आप कविताकी मन्दाकिनी प्रवाहित करने लगते, उस समय सरस्वतीके इस अनन्य सेवकके प्रति श्रद्धासे बरबस मस्तक नत हो जाता था।

प्रयागकी अर्ध सरकारी साहित्यिक संस्था—हिन्दुस्तानी एकेडेमीके भी आप सदस्य थे। एकेडेमीसे "हिन्दुस्तानी" नामक एक सुन्दर त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती है। आप उक्त पत्रिकाके सम्पादकीय बोर्डमें भी थे। केशवदासके ग्रन्थोंका आपने विशेष रूपसे अध्ययन किया था। अतएव एकेडेमीने उन्हें पूर्ण अधिकारी समझकर केशवदासके समस्त ग्रन्थोंके सम्पादनका भार सौंपा था, पर करालकालने यह होने न दिया।

अपने जिले और झाँसी डिवीजनमें उनकी गणना प्रमुख व्यक्तियोंमें थी। वे बड़े सर्व-प्रिय थे। कोई बीस वर्षतक वे जालौनके डिस्ट्रिक्ट बोर्डके और कालपीके म्युनिसिपिल बोर्डके सदस्य रहे। कालपी म्युनिसिपिलिटीसे आप सर्वप्रथम गैर-सरकारी चेयरमैन और वर्षोंतक आनरेरी मैजिस्ट्रेट रहे; पर असहयोग आन्दोलनके समय कांग्रेसकी आज्ञा शिरोधार्य कर आपने सर्वदाके लिए उपर्युक्त पदोंको त्याग दिया था।

आप एक उच्च श्रेणीके व्यक्ति थे और बड़े-बड़े लोगोंसे मैत्री करनेका तथा बड़ी-बड़ी संस्थाओंमें प्रमुख रूपसे भाग लेनेका आपको व्यसन था। महामना मालवीयजी, त्याग-मूर्ति स्वर्गीय पण्डित मोतीलालजी नेहरू तथा 'लीडर'के यशस्वी सम्पादक श्रीयुत चिन्तामणिजी आपके मित्रोंमेंसे हैं। कौन्सिलके चुनावके सम्बन्धमें मालवीयजी, स्वर्गीय

नेहरूजी तथा चिन्तामणिजी आपकी सहायताका विशेष आदर करते थे। मालवीयजी तो अवतक वर्माजीहीके डिवीजनसे एसेम्वलीके सदस्य होते आ रहे हैं।

आपका व्यक्तित्व वड़ा ऊँचा था। आपका विवाह युक्तप्रान्तके गान्धी, तपस्वी पुरुषोत्तमदास टंडनकी वुआके साथ हुआ था। और जव वे केवल तीस वर्षके थे, उस समय उनकी अर्द्धाङ्गिनीका स्वर्गवास हो गया था। मित्रोंने अनुरोध किया, घरवालोंने वहुत कुछ जोर डाला,पर उन्होंने किसीकी एक न सुनी। दूसरा विवाह न किया और सारा जीवन सरस्वतीकी आराधना करते हुए एक साधककी भाँति पवित्रताके साथ व्यतीत कर दिया।

इधर वर्षोंसे आपका शरीर व्याधियोंका मन्दिर हो रहा था। महीनों केवल दूध और फलपर विता देते थे। वर्षोंतक जीवन धारण करनेके हेतु प्रत्यह एक वार कुछ खा लिया करते थे। परन्तु आपके कार्य करनेके उत्साहमें कोई कमी न होती थी। सभी कार्य पूर्ववत जारी रहते थे। गत दिसम्वर महीनेमें पटनेमें ओरियण्टल कान्फ्रेंसका अधिवेशन था। आपका शरीर अधिक अस्वस्थ था। लोगोंने वहुत कुछ मना किया,पर पुरातत्वका प्रेम वहाँ आपको खींच ही ले गया। वीमारी वढ़ गयी। किसी तरह काशी आये। सव प्रकारका उपचार हुआ, पर कोई फल न हुआ, और अन्तमें सहृदय-शिरोमणि वावू कृष्ण-वलदेव वर्मा अपने असंख्य मित्रों तथा भक्तोंको रुलाकर सदाके लिए चले गये।

एक पुत्र, एक पौत्र तथा कई एक कन्याओंके अतिरिक्त आपका परिवार वहुत वड़ा है। सभीपर आपका समान रूपसे स्नेह था और परिवारवालोंके लिए भी आप आराध्य देव थे। सन्तोषका विषय है कि आपके सुयोग्य भ्रातुष्पुत्र वावू व्रजमोहन वर्मामें आपके अनुपम गुण अंकुरित हो रहे हैं। उनसे हिन्दी-साहित्यको वहुत कुछ आशा है।

(चाँद जुलाई १९३१)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठसंख्या	पंक्ति	मुद्रित	शुद्ध रूप
२१	२०	Vigilence	Vigilance
२२	१२	लार्ट	लार्ड
२२	१५	मह्लिाओंकी	महिलाओंकी
३३	३२	सकारकी	सरकारकी
३७	१३	रूमें	रूपमें
४७	२०	विहश्त	वहिश्त
४९	११	रूहे हव्वतने	रूहे-मुहव्वतने
५२	२१	उपरियुक्त	उपर्युक्त
६३	१	लनिन	लेनिन
७४	३०	चीनीका	चीनका
८०	३४	मयख	मयूख
९६	७	line	live
१३८	३४	मिलमिलाली	मिचमिचाती
२०८	३२	विभुक्षाकी	बुभुक्षाकी
२२१	३	मार्डन	माडर्न
२२१	४	"	"
२२९	१८	तरहामिनी	तरहामनी
२४२	३०	सौ बार	सौ साल
२४४	६	नफाशत	नफासत
२४४	१०	इलाहें	इस्लाहें
२५०	३–७	अजमाये	अजज़ाए
२५१	२५	Interpeter	Interpreter
२६२	१०	accross	across
२६७	(पाद टिप्पणी) ३	चिन्त्यधारा	चिन्ताधाराका

विशेष—पृष्ठ २६१ और २६७ की पादटिप्पणी के नीचे भूल से श्री श्यामसुन्दर खत्री का नाम नहीं छपा है।